॥ श्रीः ॥

अष्टादशस्मृति.

भाषाटीकासमेत.

जिसमें ये हैं कि—

१ अत्रिस्मृति, २ विष्णुस्मृति, ३ हारीतस्मृति, ४ औशनसीस्मृति, ५ आङ्गिरसस्मृति, ६ यमस्मृति, ७ आपस्तम्बस्मृति, ८ संवर्त्तस्मृति, ९ कात्यायनस्मृति, १० बृहस्पतिस्मृति, ११ पराशरस्मृति, १२ व्यासस्मृति, १३ शङ्खस्मृति, १४ लिखितस्मृति, १५ दक्षस्मृति, १६ गौतमस्मृति, १७ शातातपस्मृति, १८ वसिष्ठस्मृति.

इनको
श्रीमत्कान्यकुब्जकुलभूषण पं. बाँकेलालात्मज पं. श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीजीसे भाषानुवाद कराय,

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बंबई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

चैत्र संवत् १९६५, शके १८३०.

अष्टादशस्मृतियोंकी भूमिका ।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।
काणः स्यादेकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥

वेद और धर्मशास्त्र ब्राह्मणोंकी दाहिनी बाँई दो आँखें हैं, इनमेंसे किसी एक (श्रुति वा स्मृति) के न जाननेसे काना और दोनोंके न जाननेसे ब्राह्मण अन्धा होताहै अर्थात् बाहरकी आँख होनेपरभी न होनेके तुल्यहीहै ।

कर्तव्य विषयको जब आँख सुझादेती है तभी मनुष्य उसके करनेमें प्रवृत्त होताहै। धर्मशास्त्र हमको यही शिक्षा देतेहैं कि अमुक कर्म कर्तव्यहै, अमुक नहीं।

धर्मशास्त्रमात्रमें द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका अधिकारहै। महर्षि याज्ञवल्क्य कहतेहैं कि:-"निषेकादिः श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥" अर्थात् गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि (मृत संस्कार) पर्यन्त जिनकी सभी क्रिया वैदिक मन्त्रोंसे होती हैं उन्हीं मात्रका धर्मशास्त्रके पढने और तदनुसार कर्म करनेका अधिकार है दूसरे किसीका नहीं ।

पहिले भारतवर्षमें लोग अपने अपने कर्म करनेमें किसी प्रकार आलस्य नहीं करतेथे बलकि यों कहिये राजनियमके अनुसार ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की जातीथी कि आप अपना धर्मपालन कीजिये उसमें जो बाधाएं उपस्थित होतींथीं राजा उनका निवारण करतेथे। भोजनाच्छादनादिकी तो कोई भी चिन्ता न थी।

अब समयने ऐसा पलटा खायाहै कि द्विजाति अपना कर्म धर्म भलीभाँति कर नहीं सकते । कितनीही पराधीनता ऐसी आपडीहै कि मनुष्य विवशहैं । ऐसी दशामें हम इतना अवश्य चाहतेहैं कि प्रत्येक सनातन धर्मियोंको अपना अपना कर्तव्य तो मालूम होजाय जिसके अनुसार वह यथाशक्ति वर्ते ।

यह अष्टादशस्मृति धर्मका भाण्डारहै इनमें सभी विषय मिलेंगे जिनका यथाशक्ति आचरण करनाही द्विजोंका कर्तव्यहै । कोईभी विषय इसका क्लिष्ट न रहजाय इसलिये हमने मुरादाबाद निवासी पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीजीसे सरल उत्तम भाषाटीका करवाई है । आशाहै कि, प्रत्येक गृहस्थ इस अत्यन्त उपयोगी धर्मग्रन्थको लेकर स्वकर्तव्य पालन करेंगे.

खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

श्रीः ।

भाषाटीकासमेत अष्टादशस्मृतिकी विषयानुक्रमणिका ।

शातातपस्मृति १७.

॥ इति भाषाटीकासमेत अष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ श्रीः ॥

अष्टादशस्मृतयः।

भाषाटीकासमेताः।

श्रीयोगिजनवल्लभाय नमः।

अत्रिस्मृतिः १.

हुताग्निहोत्रमासीनमत्रिं वेदविदां वरम् ॥ सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नमस्कृतम् ॥ १ ॥ नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रुवन् ॥ हितार्थं सर्वलोकानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रइत्यादिसे निश्चिन्तमनयुक्त बैठेहुए वेदकी विधिके जाननेवालोंमें प्रधान शास्त्रके पारदर्शी ऋषियोंके पूज्य महर्षि अत्रिजीको ॥ १ ॥ प्रणाम करके ऋषि बोले कि, हे भगवन्! जिसके करनेसे त्रिलोकीका कल्याण हो, आप उसी विषयको हमसे कहिये ॥२॥

अत्रिरुवाच ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

अत्रिजी बोले कि, हे वेदशास्त्रअर्थतत्त्व जाननेवाले ऋषियो! तुमने जैसे सन्देहयुक्त अर्थात् अनिश्चित विषयको पूछाहै सो उसे मैंने जैसा देखा और जैसा सुनाहै [अर्थात् अपने विचारसे और गुरुके उपदेशके अनुसार] वह सभी वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥ जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ४ ॥ सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥ चतुर्णामपि वर्णानामत्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥

(इस प्रतिज्ञायुक्त वचन कहनेके उपरान्त) महर्षि अत्रिजीने सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे आचमन, समस्त देवताओंको प्रणाम और सम्पूर्ण सूक्तोंका जप करके सम्पूर्ण शास्त्रोंके अनुसार ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण पाप और सन्देहोंका नाश करनेवाला, चारों वर्णोंका हितकारी सनातन धर्मशास्त्र निर्माणकिया ॥ ५ ॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥ सर्वपापैः प्रमुच्यंते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥ तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥ ७ ॥

---

१ अथात्रिस्मृत्युपक्रमः।

यहांपर "इत्युक्त्वा ततः" ऐसा अध्याहार होताहै अर्थात् मूलमें यह पद न होनेपर भी अर्थके वश लाना पडताहै।

इस संसारमें जो इच्छानुसार पाप करनेवाले हैं और जो धर्मकी निन्दा करतेहैं वह भी इस उत्तम धर्मशास्त्रके श्रवण करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजायँगे ॥ ६ ॥ इस कारण वेदके जाननेवाले यत्नसहित इसका पाठ करैं और धर्मके अनुसार उत्तम चरित्रोंवाले शिष्योंको भी सुनावें ॥ ७ ॥

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ॥
एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

निन्दित कुलमें उत्पन्नहुए, दुराचरण करनेवाले, मूर्ख, शूद्र और दुष्टस्वभाववाले ब्राह्मण इन पांच प्रकारके मनुष्योंको श्रेष्ठ ब्राह्मण इसकी शिक्षा न दें ॥ ८ ॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥ पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा ह्यनृणी भवेत् ॥ ९॥ एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ॥ शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

यदि गुरुने शिष्यको एक अक्षर भी पढायाहै, तथापि पृथ्वीमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे अर्पणकर शिष्य ऋणसे मुक्त होसकै ॥ ९ ॥ एक अक्षरके शिक्षा देनेवाले गुरुका जो मनुष्य सन्मान नहीं करते वह सौ: जन्मतक कुत्तेके जन्मको भोगकर अन्तमें चांडाल हो जन्म लेतेहैं ॥ १० ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं चैवावमन्यते ॥
स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य वेदको पढकर उसके गर्वसे अन्यान्य शास्त्रके उपदेशको ग्रहण नहीं करता वह इक्कीस वार पशुकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ११ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥
प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य अपने आचारके पालनमें तत्पर हैं अर्थात् कभी कुमार्गमें पैर नहीं धरते वह दूर होनेपर भी मनुष्योंकी प्रीतिके पात्र हैं ॥ १२ ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥ क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥ शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥ दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥ शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥ तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥ बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ कराना यह तीन जीविका हैं ॥ १३ ॥ क्षत्रियोंके पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं, और शस्त्रका व्यवहार और प्राणियोंकी रक्षाकरना यह दो जीविका हैं ॥१४॥ वैश्यको भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और वार्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, गौओंकी रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका हैं,

शूद्रोंकी, ब्राह्मणोंकी सेवा करना यही तपस्या और शिल्पकार्य उनकी जीविका है ॥ १५ ॥ मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्मके अनुसार चलनेपर इस कालमें बहुतसा सन्मान प्राप्तकर परलोकमे श्रेष्ठ गतिको पातेहैं ॥ १६ ॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥

जो पूर्वोक्त अपने २ धर्मका त्यागकर दूसरे धर्मका आश्रय करतेहैं, राजा उनको दण्ड देकर स्वर्गका भागी होताहै ॥ १७ ॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥
परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करतेहैं, दूसरोंका धर्म सुन्दरी पराई स्त्रीकी समान तजनेके योग्य है ॥ १८ ॥

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि जलधारा जिस प्रकारसे अग्निको नष्ट करतीहै, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र सम्पूर्ण राज्यका नाश करताहै ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

दानलेना, पढ़ाना, निषिद्ध वस्तुका खरीदना और वेचना वा यज्ञकराना इन चारों कर्मोंके करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होतेहैं ॥ २० ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवणके बेचनेसे तत्काल पतित होता है और दूधके बेचनेसे भी तीन दिनमें शूद्रकी समान होजाताहै ॥ २१ ॥

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्तददंडवत् ॥ २२ ॥ विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ॥ तेऽप्यनावृष्टिमिच्छंति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

व्रत और अध्ययनसे शून्य ब्राह्मण जिस ग्राममें भिक्षा मांगकर जीवन धारण करतेहैं राजा उस ग्रामको अर्थात् उस ग्रामके अव्रत और निरक्षर ब्राह्मणोंके पालनेवाले नगरवासियोंको चोरको भात देनेवालेके दंडकी तुल्य (अर्थात् चोरको पोषण करनेवालेके दंडके तुल्य) दंड देवै ॥ २२ ॥ जिस राज्यमें पंडितोंके भोगनेयोग्य वस्तुको मूर्ख भोगतेहैं, वहाँ अनावृष्टि वा अन्य किसी प्रकारका महाभय उपस्थित होताहै ॥ २३ ॥

---

१ शास्तिः शासनम् । २ तेषु राष्ट्रेषु ।

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥ तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान्पूजयेन्नृपः ॥ २४ ॥ त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोऽग्नयः ॥ एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥२५ ॥

जिस राज्यमें राजा वेदके जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रमें कुशल ऐसे ब्राह्मणोंका आदर करताहै, उस स्थानपर सर्वदा सुवृष्टि होतीहै ॥ २४ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल यह तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम यह तीनों वेद; ब्रह्मचर्य्य,गार्हस्थ्य,वानप्रस्थ और संन्यास यह चारों आश्रम; दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय यह तीनों अग्नि इन सबकी रक्षाके निमित्त विधाताने ब्राह्मणोंकी सृष्टि कीहै ॥ २५ ॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वंति ते द्विजाः ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते[१] ॥ २६ ॥ य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ॥ यशःस्वर्गे नृपत्वं च पुनः कोशं च सोऽर्जयेत् ॥ २७ ॥

जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण मौनका अवलम्बन कर प्रातःकाल और सायङ्कालके समय सन्ध्यावन्दन करतेहैं, वह राजा दिव्य सहस्र वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ २६ ॥ जो राजा चारों वर्णोंके उक्त धर्मको विचारकर उनके गुण दोषका विचार करताहै, उसके राज्यकी दृढ़ता और कोश (खजाने) का संचय होताहै, और उसको स्वर्ग प्राप्तहोताहै ॥२७॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ॥
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २८॥

दुष्टोंका दमन और श्रेष्ठोंका पालन, न्यायके अनुसार धनका संग्रह करना, विचारके निमित्त आयेहुए अर्थियोंपर पक्षपातका न करना और सब प्रकारसे राज्यकी रक्षा करना यह पांच राजाओंके यज्ञ (अर्थात् तत्सदृश आवश्यक) कर्म हैं ॥ २८ ॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवंतीह पार्थिवाः ॥
नतु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवंति द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥

राजा इस प्रकारसे प्रजापालन करके जैसे पुण्यको प्राप्त करताहै, ब्राह्मण हजार २ यज्ञकरके भी वैसे पुण्यको नहीं प्राप्त करसक्ते ॥ २९ ॥

अलाभे देवखातानां ह्रदेषु सरसीषु च ॥
उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारक्ये[२] स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥

देवताओंके तीर्थ वा जलाशयोंके न मिलनेपर हृद (हौद) वा सरोवरमें स्नान करै, दूसरे जलाशय (तलावआदिक) होनेपर चार मट्टीके पिंड बाहर निकालकर फिर उसमें स्नानकरै ॥ ३० ॥

वसा शुक्रमसृङ् मज्जा मूत्रं विट् कर्णविण्नखाः ॥ श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३१ ॥ षण्णां षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ मृद्वारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषां तु वारिणा ॥ ३२ ॥

---

१ यस्य राज्ञो राष्ट्रेषु इति शेष. । २ स राजा इति शेषः । ३ परकीये जलस्थाने ।

वसा (मेद) शुक्र, रक्त,मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कानका मल, नख, श्लेष्मा, अस्थि, नेत्रोंका मल, धर्म (पसीना) यह बारह मनुष्योंके मल हैं ॥ ३१ ॥ उनमेंसे मट्टी और जलसे तो प्रथमके छहों मलोंकी शुद्धि होतीहै और केवल जलसे शेष छहों मलोंकी शुद्धि पंडितोंने कहीहै ॥ ३२ ॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहा दमः ॥
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान, और दया यह ब्राह्मणोंके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिंदितैः ॥ आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥ एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३५ ॥ शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥ अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥३६॥ न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥ न हसेच्चान्यदोषांश्च मानसूया प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥ यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥ न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥ न कुप्यति न चाहंति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥ स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥ परस्मिन्बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ॥ आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥ यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपि भवेद्द्विजः ॥ स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥ ४२ ॥

अभक्ष्य वस्तुका त्याग, श्रेष्ठका संसर्ग, और शास्त्रमें कहेहुए अन्यान्य आचारोंके पालन करनेका नाम शौच है ॥ ३४ ॥ उत्तम कर्मोंका आचरण और निन्दित कर्मोंका त्याग करना इसीको धर्मके जाननेवाले ऋषियोंने मंगल कहाहै ॥ ३५ ॥ शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो जिससे शरीरको ग्लानि होती हो उसे अत्यन्त न करै उसका नाम अनायास है ॥ ३६ ॥ गुणवान् मनुष्योंके गुणोंको नष्ट न करना और दूसरेके गुणोंकी प्रशंसा करना दूसरेके दोषोंको देखकर उनका उपहास न करना इसीका नाम अनसूया है ॥ ३७ ॥ आवश्यकीय सम्पूर्ण वस्तुओंमेंसे जो कुछ भी मिलजाय उसीसे संतुष्ट रहना और पराई स्त्रीकी अभिलाषा न करना इसीका नाम अस्पृहा है ॥ ३८ ॥ कोई मनुष्य यदि बाह्य वा मानसिक दुःख उत्पन्न करै तो उसके ऊपर क्रोध वा उसकी हिंसा न करनेका नाम दम है ॥ ३९ ॥ किञ्चित् प्राप्तिके होनेपर भी उसमेंसे थोडा २ प्रतिदिन प्रसन्न मनसे दूसरेको देना इसका नाम दान है ॥ ४० ॥ दूसरेके प्रति, माता पिता आदि अपने कुटुम्बियोंके प्रति, मित्रोंके प्रति, वैरकारीके प्रति और अपने शत्रुके प्रति समान व्यवहार करना इसीका नाम दया है ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थ होकर भी इन सब लक्षणोंसे भूषित है वह उत्तम स्थानको प्राप्त करताहै. उसका फिर जन्म नहीं होता ॥४२॥

इष्टापूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः ॥
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षो विधीयते ॥ ४३ ॥

इष्टकर्म और पूर्तकर्म ये उभयविध कर्म ब्राह्मणनेही यत्नसे करने इष्टकर्मसे स्वर्ग प्राप्तहोताहै और पूर्तकर्मसे मोक्ष मिलताहै ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥४४ ॥ वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्यमें तत्परता, वेदकी आज्ञाका पालन, अतिथियोंका सत्कार और वैश्वदेव इनका नाम इष्ट है ॥ ४४ ॥ बावडी, कूप, तलाव, इत्यादि जलाशयोंका बनाना, देवताओंके मंदिरकी प्रतिष्ठा, अन्नदान और बगीचोंका लगाना इसका नाम पूर्त है ॥ ४५ ॥

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ॥
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥

इस इष्ट और पूर्त्त कार्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको समान अधिकार है, यद्यपि शूद्र भी पूर्त्त कार्यमें अधिकारी है, परन्तु उसके अन्तर्गत जो वैदिक कर्म है उसका अधिकार उसे नहीं है ॥ ४६ ॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा यमोंका सेवन करै, नियमका अनुष्ठान यथासमयमें कियाजाताहै सर्वदा नहीं, और जो यमोंका त्याग कर केवल नियमही करताहै तो वह पतित होताहै ॥ ४७ ॥

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥ प्रीतिः प्रसादो माधुर्य्यं मार्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥ शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ॥ व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥

अक्रूरता, क्षमा, सत्यवादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता इन दशोंका नाम यम है ॥ ४८ ॥ शौच, यज्ञका अनुष्ठान, तपस्या, अर्थात् वेदका पढ़ना, विधिरहित रतिका त्याग, व्रत, मौन, उपवास और स्नान यह दश नियम हैं ॥४९॥

प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जति ॥ यमुद्दिश्य[1] निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः[2] ॥५०॥ मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ॥ यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत् ॥ ५१ ॥

कुशाकी प्रतिमाको लेकर तीर्थके जलमें स्नान करै, उसने उस मूर्त्तिको जिसके आशयसे जलमें स्नान करायाहै, वह आठवां हिस्सा पुण्यका प्राप्त करताहै ॥ ५० ॥ माता, पिता,

१ अनुपदं वक्ष्यमाणमात्राद्यतिरिक्तम् । २ निमज्जनं कारयिता ।

भ्राता, मित्र, और गुरुके पुण्यकी इच्छासे जो स्नान करतेहैं, वह उस स्नानके बारहवें अंशके फलको प्राप्त करतेहैं ॥ ५१ ॥

अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥
पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

जिस मनुष्यके पुत्र नहीं है वह पुत्रके प्रतिनिधिको ग्रहण करै, कारण कि श्राद्ध तर्पणादिक कार्य विना पुत्रके नहीं होते ॥ ५२ ॥

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥ ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥५३॥ जातमात्रेण पुत्रेण पितॄणामनृणी पिता ॥ तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥ कांक्षंति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥

पिता यदि उत्पन्न हुए पुत्रका मुख जीवित अवस्थामें एकबार भी देखले तो वह पितरोंके ऋणसे मुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ पुत्रके पृथ्वीपर उत्पन्न होतेही मनुष्य पितरोंके ऋणसे छूटजाताहै, और उसी दिन वह शुद्ध होताहै कारण कि यह पुत्र नरकसे उद्धार करताहै ॥ ५४ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी उचित है कारण कि यदि उनमेंसे कोई एकभी पुत्र गयाजी जाय, कोई अश्वमेध यज्ञको करै और कोई नील वृषका उत्सर्ग करै ॥ ५५ ॥ नरकसे भयभीत हुए पितृगण "जो पुत्र गयाको जायगा वही हमारे उद्धारका करनेवाला होगा" यह विचारकर ऐसे पुत्रकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥

फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥
गयशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ५७ ॥

फल्गू नदीमें स्नान करके गयासुरके मस्तकपर चरण धर गयाके गदाधर देवताका दर्शन करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे भी छूटजाताहै ॥ ५७ ॥

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ॥
अक्षयाँल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य महानदी (गंगाआदि) में स्नान आचमन कर देवता और पितरोंका तर्पण करतेहैं, वही अक्षय लोकको प्राप्त होकर वंशका उद्धार करतेहैं ॥ ५८ ॥

शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ॥
आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥

---

१ "पुत्" नाम नरकका है उससे त्राण (उद्धार) करताहै, अपने पिताको, इसीसे वह पुत्र कहाताहै; ऐसा अक्षरार्थ पाया जाताहै।

२ नील वृषका लक्षण—जिसकी पूंछका अग्रभाग, खुर और शींग श्वेत हों और सब अंग लाल हो उसको नील वृष कहतेहैं।

३ गंगाम्।

पवित्र भोजन और भोज्यहीन देशमें, शंकाके स्थानमें, प्राणकी रक्षाके अर्थ जिसकी पवित्रतामें संदेह है ऐसे द्रव्योंके भोजन करनेसे उसका जो प्रायश्चित्त है उसे मैं कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ५९ ॥

अक्षारलवणं रौक्षं पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥
त्रिरात्रं शंखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ६० ॥

प्रथमतः ब्राह्मण (अपने शुद्धिके अर्थ) खारी नमकसे रहित अर्थात् रूखा अन्न और कांतिकी देनेवाली ब्राह्मी वा शंखपुष्पी औषधीको दूधके साथ मिलाकर तीन राततक पिये ॥ ६० ॥

मद्यभांडे द्विजः कश्चिदज्ञानात्पिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणा[2] ॥ ६१ ॥ पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मान्युदुंबरम् ॥ क्वाथयित्वा पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६२ ॥

(प्रश्न-) यदि कोई ब्राह्मण विना जानेहुए मदिराके पात्रमें जलपान करले तो उसका प्रायश्चित्त किसप्रकार होताहै; और उस मनुष्यकी शुद्धि किस कर्मके अनुष्ठान करनेसे होतीहै ? ॥६१॥ (उत्तर-) ढाकके पत्ते, बेलके पत्ते, कुश, कमलके पत्ते, गूलरके पत्ते इन सबका काथ बनाय कर तीन दिनतक पानकरै तब शुद्ध होताहै ॥ ६२ ॥

सायं प्रातस्तु यः संध्यां प्रमादाद्विक्रमेत्सकृत्[3] ॥
गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ६३ ॥

जो मनुष्य असावधानतासे एकवार प्रातःकाल वा संध्याकालकी संध्या न करै तौ दूसरे दिन स्नानकरनेके उपरान्त एकाग्रचित्त हो एकसहस्रवार गायत्रीका जपकरै ॥ ६३ ॥

रोगाक्रांतोऽथवाऽऽयासात् स्थितः स्नानजपाद्बहिः ॥
ब्रह्मकूर्चं[4] चरेद्भक्त्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य रोगसे व्याकुल हो या अत्यन्त परिश्रमके करनेसे स्नान और जप न करसकै वह भक्तिपूर्वक "ब्रह्मकूर्च" और यत्किंचित् दान करके शुद्ध होताहै ॥ ६४ ॥

गवां शृंगोदके स्नात्वा महानद्युपसंगमे ॥
समुद्रदर्शने चापि व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥

सर्पसे काटाहुआ मनुष्य गौओंके सींगोंके जलमें वा गंगा यमुनाके संगमके स्थानमें स्नान करके फिर समुद्रका दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६५ ॥

वृकश्वानशृगालैस्तु यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ॥ हिरण्योदकसंमिश्रं घृतं प्राश्य

---

१ "ब्रह्मसुवर्चलाम्" इस पाठके होनेसे उसका अर्थ पीले वर्णके सूर्यावर्त वृक्षके पत्ते, ऐसा हुआहै।

२ इति विप्रतिपत्तौ सत्यामिति श्लोकांतशेषः । ३ अतिलंघयेत् । ४ पंचगव्यप्राशनपूर्वकं जपविघातप्रत्यवाय परिहारार्थं प्रायश्चित्तम् ।

५ पंचगव्यप्राशन (भक्षण) पूर्वक जपविघातप्रत्यवायपरिहारार्थ प्रायश्चित्त ।

विशुद्धयति ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥

जिस ब्राह्मणको वृक (भेडिया) कुत्ता, या गीदडने काटाहो वह सुवर्णसे शुद्धहुए जलके साथ घृतको भोजन करै तब वह शुद्ध होताहै ॥ ६६ ॥ (परन्तु) जिस ब्राह्मणीको कुत्ता, गीदड, भेडिया आदि हिंसक जन्तुओंने काटाहो तौ वह उदयहुए ग्रह नक्षत्रोंके देखनेसे शीघ्र ही शुद्ध होजातीहै ॥ ६७ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत ॥
सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥

यदि व्रती ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो तो वह तीन दिनतक उपवास करै; और घृतसहित यावक (आधा पकाहुआ जौ वा कुलथी) को भोजनकर व्रतकी समाप्ति करै ॥ ६८ ॥

मोहात्प्रमादात्संलोभाद्व्रतभंगं तु कारयेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धयेत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥

मोह वा असावधानतासे या लोभके वशसे जिसने व्रतभंग करदियाहै वह तीन दिन तक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै और फिर व्रतको धारण करै ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्धयति ॥ ७० ॥ क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥ अभोज्यान्नं तु भुक्तान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ॥ अभक्ष्यं मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ ७२ ॥

यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानसे दूसरे ब्राह्मणका जूंठा भोजन करले तौ वह दो दिन गायत्रीके जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७० ॥ यदि ब्राह्मण विना जानेहुए क्षत्री या वैश्यका जूंठा अन्न भोजन करले तौ वह तीन दिनतक गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७१ ॥ भक्षण न करनेयोग्य अन्नको, पूर्वभुक्तसे अवशिष्ट (बचेहुए) अन्नको, स्त्री और शूद्रके जूंठे अन्नको, या भक्षण न करनेयोग्य मांसको जो मनुष्य भोजन करताहै; वह सात दिनतक जौकी लपसी (दलिया) को पिये तो शुद्ध होताहै ॥ ७२ ॥

असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥
तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ७३ ॥

जो जाति स्पर्श करनेके योग्य नहीं है उसके स्पर्श करनेवाले द्विजको स्नान करना योग्य है, जिसने उसका जूंठा खायाहै वह छैः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करै ॥ ७३ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥
पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥

---

१ रातमें काटे तो दिन निकलतेही सूर्यको देखले तो शुद्धि होतीहै । दिनमे काटे तो संध्याको तारा देखकर शुद्धि होतीहै ।

२ पूर्वभुक्तावशिष्टमन्नम् ।

जिस ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्यने विष्ठा, मूत्र, वा सुरा जिसमें मिली हो ऐसी कोई वस्तु अज्ञान (भूल) से खाई है, तौ वह फिर संस्कारके (यज्ञोपवीत इत्यादिके) योग्य है ॥७४॥

वपनं मेखला दंडं भैक्ष्यचर्यं व्रतानि च ॥
निवर्तंते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्माणि ॥ ७५ ॥

उन द्विजातियोंको पुनःसंस्कारके समय मस्तक मुडाना, मेखलाका धारणकरना, दंडका ग्रहण करना, भिक्षाका माँगना, और ब्रह्मचर्यका धारण करना, यह कार्य करने नहीं होंगे॥७५॥

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥ प्रत्याज्यं[1] मृन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥ गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत्पुनः[2] ॥ ७७ ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु[3] पूतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥ तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

जिस घरमें मुर्दा पडाहै उसकी शुद्धि किस प्रकार होतीहै सो मैं कहताहूं. उस घरके मट्टीके पात्र और सिद्धहुए अन्नको त्यागदे ॥ ७६॥ उन सब वस्तुओंको घरसे निकालकर फिर गोबर से घरको लिपावै; और पीछे बकरीके गोबरसे धूपितकरै ॥ ७७ ॥ ब्राह्म मंत्रैको पढकर सुवर्ण और कुशाओंसे जलको घरमें छिडकै तब उस गृहकी शुद्धि होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७८॥

राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ॥
पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥

राजा अथवा अंत्यज चांडाल जिस किसी ब्राह्मणको बलपूर्वक विचलित (श्रेष्ठ मार्गसे अलग करके अभक्ष्य वस्तुका भोजन कराय असत् मार्गमें) करै तौ यह ब्राह्मण तीन प्राजापत्य करके फिर संस्कार करै ॥ ७९ ॥

शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥
तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत ॥ ८० ॥

जिसको कुत्तेने स्पर्श कियाहो वह स्नान करै; और जिसने जूंठा भोजन कियाहो तो वह यत्नपूर्वक कृच्छ्रव्रत करै (तब शुद्ध होताहै) ॥ ८० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ॥
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥

इसके पीछे सूतक अर्थात् आशौचके विषयका वर्णन करताहूं और उसके पीछे प्रायश्चित्तोंका वर्णन करूंगा ॥ ८१ ॥

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥
त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥

---

१ "प्रयोज्यं" ऐसा पाठ हो तो 'मट्टीके पात्रोंको वर्ते और सिद्ध (अन्यके) पकाये, अन्नको भक्षण करै' ऐसा अर्थ जानना ।

२ छागसंबंधिना पुरीषेण ।

३ जिस मंत्रके ब्रह्मा देवता हों उस वैदिक मंत्रको ब्राह्म मंत्र कहतेहैं ।

जो अग्नि और वेदकरके समन्वित (युक्त) हैं वह एकही दिनमें, जो केवल वेदपाठी ही हैं वह तीनः दिनमें; और जो अग्निहोत्री और वेदपाठी नहींहैं ऐसे निर्गुण ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होतेहैं ॥ ८२ ॥

व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥
राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छंति ब्राह्मणाः ॥ ८३ ॥

शास्त्रके अनुसार व्रत धारणकरनेवाला, अग्निहोत्रका करनेवाला, और राजा, एवं ब्राह्मण जिसको अशौच होनेकी इच्छा नहीं करते, इन सब मनुष्योंके यहां अपने २ कर्मके अनुसार अशौच नहीं होता ॥ ८३ ॥

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ॥
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण दशदिनके पीछे, क्षत्रिय बारह दिनके उपरान्त, और वैश्य पंद्रह दिनके पीछे, शूद्र एक महीनेके पीछे शुद्ध होताहै ॥ ८४ ॥

सपिंडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः॥ पिंडांश्चोदकदानं च शावशौचं तथानुगम् ॥ ८५ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥ षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात्सप्तमे त्र्यहमेव वा ॥ ८६ ॥

एक वंशमें उत्पन्न होकर अपनेसे सात पीढियोंतक सपिंड संज्ञा होतीहै; और इनको ही पिंड प्रदान और तर्पण कियाजाताहै; पूर्वोक्त मरणाशौचभी उसका अनुगामी है; अर्थात् सपिंडोंके निमित्त करना योग्य है ॥ ८५ ॥ परन्तु सूतिकाके अशौचमें चार पीढीतक, दश रात्रि, और पांचवी पीढीमें छैः दिनतक, और छठी पीढीमें तीन रातेतक, और सातवींमें तीन दिनतक ही अशौच रहताहै ॥ ८६ ॥

मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तरि यौनिकम् ॥ ८७ ॥

मरणके अशौचमें (हीनवर्णकी) दासी और अनुलोमी (पतिसे नीच वर्णकी) स्त्रियोंको पतिकी समान अशौच होताहै, स्वामीके मरनेके उपरान्त जिस वंशमें उसका जन्म हुआथा उस वंशके अनुसार ही सूतक माना जायगा ॥ ८७ ॥

शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥
चतुर्थे सप्तभिक्षं स्यादेप शावविधिः स्मृतः ॥ ८८ ॥

जिस मनुष्यने मृतक मनुष्यका स्पर्श कियाहो (उस मृतक शरीरके छूनेवाले मनुष्यको जो स्पर्श करताहै और उसको जो छूताहै वह उसः समय पहनेहुए वस्त्रको विना उतारेही सवस्त्र स्नानकरै, और शवस्पृष्ट चौथा अर्थात् तीसरे स्पर्शीको छूनेवाला सात घरोंकी भिक्षा करके खाय, यही शवस्पर्शमें विधि कहीगईहै ॥ ८८ ॥

एकत्र संस्कृतानां तु मातॄणामेकभोजिनाम् ॥
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ॥ ८९ ॥

---

१ यहां "यस्याहस्तस्य शर्वरी" इस न्यायसे तीन दिन तीन रात समझना ।

सौतके पुत्रका जन्म अथवा उसकी मृत्यु होनेपर एक समयमें व्याहीहुई, एक घरमें अन्नको खानेवाली असवर्णा माताओंको पतिकी समान (स्वामीके अनुसार) सूतक होगा; परन्तु यह सब पृथक् रहतीहों या अलग २ व्याहीगई हों तो अपनी २ जातिके अनुसार अशौच होगा ॥ ८९ ॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके ॥
पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ९० ॥

ऊँटनी, या भेडका दूध, अशौचान्न, और रसोईये ब्राह्मणका अन्न और जो (मरेका एकों-दशाह) श्राद्धका अन्न भोजन करताहै उसको चांद्रायण व्रत करना योग्य है ॥ ९० ॥

सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ॥
त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य अधर्मके निमित्त (अर्थात् आज संध्या इत्यादि कर्म नहीं करना होगा ऐसा विचार कर) अशौचान्नको खाताहै वह तीन दिनतक उपवास करके एक दिन जलमें निवास करै ॥ ९१ ॥

महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ॥
होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ९२ ॥
बालस्त्वंतर्दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥
सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य दोनों ही अशौचोंमें महायज्ञ (काम्ययज्ञ)को न करै, परन्तु शुष्क अन्न वा फलसे नित्यका होम करै ॥ ९२ ॥ जन्म होनेके उपरान्त दशदिनके बीचमें ही जिस बालककी मृत्यु होजाय उसकी शुद्धि तत्कालही होजातीहै, उसको जन्मका सूतक नहीं होता ॥ ९३ ॥

कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं पिंडमेव च ॥
स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥ ९४ ॥

जो मूडन (चौल) होनेके पीछे बालक मरजाय तौ नाम और स्वधाका उच्चारण करके तर्पण और पिंड उसका करना होगा ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव मंत्रे पूर्वकृते तथा ॥
यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९५ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥
पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥ ९६ ॥

ब्रह्मचारी और संन्यासीको और अशौचसे पहले संकल्प कियेहुए मंत्रके जपमें और यज्ञमें तथा जिस विवाहमें वृद्धिश्राद्धतक होगयाहै, उस विवाहमें (विवाहपद संस्कारमात्रका उपलक्षक है) तत्कालही अशौचनिवृत्ति होजातीहै ॥ ९५ ॥ जो विवाह, उत्सव और यज्ञके बीचमें अशौच होजाय तौ उस पूर्वसंकल्पित कार्यके करनेमें कोई दोष नहीं होगा, यह अत्रिऋषिका वचन है ॥ ९६ ॥

मृतसञ्जननोर्द्ध तु सूतकादौ विधीयते ॥
स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाश्चेन्न संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥

मरेहुए बालकके जन्म होनेके पीछे जो अशौच होताहै उसमें आचमनके द्वारा ब्राह्मणोंके अंगका स्पर्श होतेही अशौच नहीं रहता; जो सूतिकाको स्पर्श न कियाहो तो ॥ ९७ ॥

पंचमेहनि विज्ञेयं संस्पर्शं क्षत्रियस्य तु ॥ सप्तमेहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ ९८ ॥ दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥ मासेनै-वात्मशुद्धिः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ९९ ॥

क्षत्रियका पांच दिनमें, वैश्यका सात दिनमें, और शूद्रका दशदिनमें स्पर्श होताहै, यह बुद्धिमानोंको जानना योग्य है ॥ ९८ ॥ और शूद्रके जन्म मरणमें एक मासतक अशौच होताहै, बुद्धिमानोंको ऐसा जानना योग्य है ॥ ९९ ॥

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्राद्धत्याग विहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १०१ ॥

चिरकालतक रोगी, कंजूस, जो सर्वदा ऋणी रहै,धर्मकार्यसे रहित, मूर्ख, और जो स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो ॥१००॥ और जिसका चित्त जुयेमें अत्यन्त लगा हो सर्वदा पराधीनतामें रहनेवाला और श्राद्धदान रहित मनुष्यके दग्धहोकर भस्म होवै तबतकही अशौच है ॥१०१॥

द्वे कृच्छ्रे परिवित्तिस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्यात्पितुः सांतपनं कृतम् ॥ १०२ ॥ कुब्जवामनषंढेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥ जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥१०३॥ क्लीबे देशांतरस्थे च पतिते व्रजितेपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥ पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥ अग्निहोत्रादिकार्यस्ति न दोषः परिवेदने ॥ १०५॥

परिवित्ति(१) मनुष्य दो प्राजापत्यको करै तौ वह शुद्ध होताहै, और परिवेत्तासे विवाहिता कन्याको एक प्राजापत्य करना होताहै;और कन्याकी माताको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करना योग्यहै, और कन्याके पिताको सान्तपन करना चाहिये ॥ १०२ ॥ बडा भाई यदि (जो) कुबडा, बौना, बावला, जन्मसे अंधा, जन्मसे बहरा, गूंगा, जनसमाजमें निंदित, तोतला, और वेदके पढनेमें असमर्थ हो तौ छोटे भाईका प्रथम विवाह होजानेपर उसे दोष नहीं लगेगा ॥ १०३ ॥ बडा भाई यदि नपुंसक, विदेशी, संन्यासी, पतित और योगशास्त्रमें रत हो (योगाभ्यास करनेके कारण उसकी विवाहमें इच्छा नहीं हो) तो उसे भी परिवेदनमें दोष नहीं होगा ॥ १०४ ॥ जिस मनुष्यका पिता, पितामह, बडाभाई यह अग्निहोत्रके अधिकारी हुएहैं, पीछे यह मनुष्य (प्रायश्चित्त करके) अग्निको ग्रहण करै तौ बडे भाईसे प्रथम विवाह करनेमें दोषी नहीं होगा ॥ १०५ ॥

---

१ बडे भाईका विवाह होजानेके पहले ही जो छोटेका विवाह होजाय तो उस छोटे भाईको "परिवेत्ता" और बडेको "परिवित्ति" कहतेहैं ।

भार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतेपि वा ॥
अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकसंयुगे ॥ १०६ ॥

स्त्रीके मरनेपर अथवा दूरदेशमें जानेपर अथवा पातक लगनेपर पुत्र अग्निहोत्रादि कर्मोंका अधिकारी होताहै ॥ १०६ ॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्यं रोगसमन्वितः ॥
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ १०७ ॥

यदि ज्येष्ठ भाईकी मृत्यु होगई हो, या वह सर्वदा रोगी रहताहो तो उसकी आज्ञा लेकर छोटा भाई शंख ऋषिके वचनके अनुसार अपना विवाह करले ॥ १०७ ॥

नाग्नयः परिविंदंति न वेदा न तपांसि च ॥
नच श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैवाभ्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥

ज्येष्ठ भाईकी विना आज्ञाके छोटा भाई अग्निहोत्र नहीं करसकता, वेद नहीं पढ सकता, तप नहीं करसकता, और न श्राद्ध ही कर सकताहै ॥ १०८ ॥

तस्माद्धर्मं सदा कुर्याच्छ्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥ १०९ ॥

जो श्रुति स्मृतिमें कहेहुए नित्य (संध्याआदि) वा नैमित्तिक (जातकर्मआदि) और जो स्वर्गके देनेवाले काम्य कर्म हैं, उनका अनुष्ठान कर धर्मका संचय करै ॥ १०९ ॥

एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ॥
अमावास्यां न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥ ११० ॥

शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको केवल एक ही ग्रास खाय, इस दिनसे प्रारंभ कर पूर्णिमातक एक२ ग्रासको बढाता जाय, अर्थात् पूर्णिमातक तिथिकी संख्याके अनुसार ग्रासोंकी संख्या होगी, और कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे प्रतिदिन एक २ ग्रासको कम करै, और अमावस्याको उपवास करै, ऐसा करनेसे चान्द्रायण व्रत होताहै; यह चान्द्रायण व्रतकी विधि है ॥ ११० ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥
इत्येतत्कथितं पूर्वैर्महापातकनाशनम् ॥ १११ ॥

पहले तीन दिनतक एक २ ग्रासका भोजन करै; और अगले तीन दिनमें सर्वथा भोजन न करै इसे अतिकृच्छ्र कहतेहैं। पहले आचार्योंने इस व्रतको ही महापातकोंका नाशकरनेवाला कहा है ॥ १११ ॥

वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥ न स्पृशंतीह पापानि महापातकजान्यपि ॥११२॥ वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्रात्रिं नीत्वाप्सु सूर्यदृक् ॥ जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवधादृते ॥ ११३ ॥

वेदके अभ्यासमें रत, क्षमाशील, और महायज्ञके करनेवाले मनुष्यको ब्रह्महत्यादिकोंका पाप भी स्पर्श नहीं करसकता ॥ ११२ ॥ वायुका पान कर दिनमें सूर्यकी ओर देखता रहै;

और रात्रिमें जलमें निवास कर सहस्रवार गायत्रीका जप करनेसे ब्रह्महत्याके अतिरिक्त सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ११३ ॥

पद्मोदुंबरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कमलपत्र, गूलरके पत्ते, बेलपत्र, कुश, पीपलके पत्ते और ढाकके पत्ते इन सबका क्वाथ बनायकर इस जलको पानकरै इसका "पर्णकृच्छ्र" नाम कहाहै ॥ ११४ ॥

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम् ॥
जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ११५ ॥

गायका दूध, गोमूत्र, गायकी दही, गायका गोबर, और घी, इस पंचगव्यका पानकरै, और दूसरे दिन निर्जल उपवास करै, इसको "सान्तपनकृच्छ्रव्रत" कहतेहैं ॥ ११५ ॥

पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोयं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ११६ ॥

ऊपर कहेहुए पंचगव्यमेंसे एक २ पदार्थको एक २ दिन (किसी दिन दूध किसी दिन दही आदि) इस प्रकारसे पाँच दिन भोजन करै, छट्ठे दिनके उपरान्त सातवें दिन उपवास करै, इस व्रतको "महासान्तपनकृच्छ्र" कहतेहैं ॥ ११६ ॥

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजा-
पत्यो विधिः स्मृतः ॥११७॥ सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥
अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥ ११८ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्याव-
द्वास्य विशेन्मुखे ॥ एतद्ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ॥ ११९ ॥

तीन दिन सायंकालको और तीन दिन प्रातःकालको, और तीन दिन विना मांगेहुए जो मिलजाय ऐसे भोजनको करै, इसके पीछे तीनदिनतक उपवास करै (इन बारह दिनमें होनेवाले व्रतको) "प्राजापत्य" कहतेहैं ॥ ११७ ॥ इस व्रतमें सायंकालके समय बारह ग्रास, और प्रातःकालके समयमें पंद्रह ग्रास, और विना मांगेहुए चौबीस ग्रास खाय, इसके पीछे तीन दिनतक उपवास करे ॥ ११८ ॥ यह सभीको जानना उचित है कि इस प्रायश्चित्तके, अंगसे उत्पन्नहुए शरीरकी शुद्धि करनेवाले भोजनका, ग्रास मुरगेके अंडेकी समान हो; या जितना ग्रास उसके मुखमें स्वच्छन्दतासे जा सकै उसके निमित्त वही ग्रास श्रेष्ठ है॥११९॥

त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ॥ त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो
दिनत्रये ॥ १२० ॥ षट्पलानि पिबेदापस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ पलमेकं तु
वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ॥ १२१ ॥

तीन दिन छैः पलपरिमित तनक गरम जल पिये; और तीन दिन तीन पलपरिमित गरम दूध पिये, और तीन दिनतक एक पलपरिमित गरम घृतका पान करै, और तीन दिनतक वायु भक्षण करै, ऐसा अनुष्ठान करनेसे "तप्तकृच्छ्र" व्रत होताहै ॥ १२० ॥१२१॥

त्र्यहं तु दधिना भुंक्ते त्र्यहं भुंक्ते च सर्पिषा ॥ क्षीरेण तु त्र्यहं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥ त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥ एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२३ ॥

तीन दिनतक तीन पलपरिमित दहीका, और तीन दिनतक एक पलपरिमित घृतका और तीन दिनतक तीन पलपरिमित घृतका, पानकरै, और तीन दिनतक वायुको भक्षण करै, इसीको " वैदिककृच्छ्र" व्रत कहतेहैं ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् ॥ १२४ ॥

एक दिनमें केवल एकहीवार भोजन करै, एक दिन रात्रिको एक दिन विना मांगेहुए भोजन करै, और एक दिन उपवास करै, इस प्रकारसे "पादकृच्छ्र" व्रत होताहै ॥ १२४ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ १२५ ॥

और इक्कीस दिनतक केवल दूधहीको पीकर रहै, इस प्रकारसे "कृच्छ्रातिकृच्छ्र" व्रत होताहै; और बारह दिनतक उपवास करै इसको "पराक" व्रत कहतेहैं ॥ १२५ ॥

पिण्याकश्चामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥
एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥ १२६ ॥

चार दिन तकवराबर प्रतिदिन खल, कच्चा मट्ठा, जल, सत्तू, इनका एक २ ग्रास भोजन करै; और एक दिन उपवास करै इस व्रतका नाम "सौम्यकृच्छ्र" कहाहै ॥ १२६ ॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाह्निकः ॥ १२७ ॥

इन पांचोंमेंसे क्रमानुसार एक २ का तीन २ दिनतक आवृत्ति करनेसे पंद्रह दिनमें जो व्रत होताहै उसीका नाम "तुलापुरुष" है ॥ १२७ ॥

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत् ॥
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ १२८ ॥

दुहाहुआ कपिलागऊके स्वाभाविक गरम दूधको जो मनुष्य पीताहै वह व्यासजीका बनाया (किया) हुआ "कृच्छ्र" है, यह चाण्डालको भी शुद्ध करदेताहै ॥ १२८ ॥

निशायां भोजनं चैव तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥ अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथोदितम् ॥ १२९ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥ यत्फलं समवाप्नोति तथा कृच्छ्रैस्तपोधनाः ॥ १३० ॥

(दिनमें अनाहार रहकर) रात्रिमें भोजन करनेका नाम "नक्तव्रत" है, जिस पापका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै उसका यह प्रायश्चित्त चान्द्रायण व्रत कहाहै ॥ १२९ ॥ (हे तपस्वीमनुष्यो !) दुगनी दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जिस प्रकारका फल प्राप्त होताहै; प्रथम कहेहुए कृच्छ्रके करनेसे भी उसी प्रकारका फल प्राप्तहोताहै ॥ १३० ॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥
शौचमृद्धार्यभिरतो गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥१३१॥

जो मनुष्य वेदके पढनेमें तत्पर, क्षमाशील, और धर्मशास्त्रको विचारकर उसके उपदेशके अनुसार शौच और आचारका पालन करतेहैं, वह गृहस्थी होनेपरभी मुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ १३१ ॥

उक्तमेतद्द्विजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

इस प्रकारसे यह द्विजातियोंका धर्म कहा; इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणोंसे पतित होतेहैं उसका वर्णन करताहूं; हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाधन, देवताओंकी आराधना, यह छैः कर्म स्त्री शूद्रोंको पतित करनेवाले हैं ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

जो स्त्री स्वामीके जीवित रहतेहुए उपवास करकै व्रत धारण करतीहै, वह स्त्री अपने स्वामीकी आयुको हरण करतीहै; और अन्तमें वह नरकको जातीहै ॥ १३४ ॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थके स्नान करनेकी इच्छा है तो वह अपने पतिके चरणोदकका पान करै, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवानके परम पद (कैलास वा वैकुण्ठ) को प्राप्त करसकैगी ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

स्वामीकी जीवित अवस्थामें वा मृत्युकी अवस्थामें स्त्री वामाङ्गी है; और पुरुष दाहनी ओरका भागी है। परन्तु श्राद्ध, यज्ञ, और विवाहके समयमें स्त्री दहिनी ओरको ही बैठतीहै ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥ ॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा (बृहस्पति) ने इन स्त्रियोंको शुद्धता दान कीहै; और अग्निने भी सम्पूर्ण शुद्धता दीहै; इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र हैं ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥ विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रिय-स्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥ वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥

तदासौ वेदवित्प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥ एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥ स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ॥ १४० ॥

ब्राह्मणके वंशमें जन्म लेनेसे ब्राह्मण होताहै, और जब उसका संस्कार होताहै (उपनयन होताहै) तब उसको द्विज कहतेहैं, विद्यासे विप्रत्व प्राप्त होताहै; और उक्त जन्म संस्कार और विद्या इन तीनोंसे "श्रोत्रिय" पदका वाच्य होताहै ॥ १३८ ॥ जो ब्राह्मण वेद शास्त्रको पढते और उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करतेहैं उनको वेदवित् (वेदका जाननेवाला) कहा जाताहै; उनके वचन पवित्रताके देनेवाले हैं ॥ १३९ ॥ वेदका जाननेवाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्मका आचरण करताहै, वही श्रेष्ठ धर्म है, और मूर्खोंके सहस्रों यत्न करनेपर भी वह धर्म नहीं होता ॥ १४० ॥

पावका इव दीप्यंते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥ प्रतिग्रहेण नश्यंति वारिणा इव पावकः ॥ १४१ ॥ तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥ नाशयंति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवांबरे ॥ १४२ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण जप होमादिके द्वारा अग्निकी समान दीप्तिमान् होजातेहैं; और जलसे जिस प्रकार अग्निके तेजका नाश होताहै उसी प्रकारसे जो ब्राह्मण प्रतिग्रह (अर्थात् दान) को लेतेहैं उनका तेज भी नष्ट होजाताहै ॥ १४१ ॥ जिस प्रकारसे तीक्ष्ण पवन आकाशमें स्थित सम्पूर्ण मेघोंको छिन्न भिन्न कर देताहै, उसी प्रकारसे विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण भी उस प्रतिग्रहसे उत्पन्नहुए दोषोंको प्राणायामसे दूर करदेताहै ॥ १४२ ॥

भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥ लक्ष्मीर्बलं यशस्तेज आयुश्चैव प्रहीयते ॥ १४३ ॥ यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥ तच्चान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४४ ॥ पात्रोपरि स्थितं पात्रं यस्तु स्थाप्य उपस्पृशेत्॥ तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४५ ॥

जो ब्राह्मण भोजन करनेके उपरान्त आचमन कर गीले हाथ रहताहै अर्थात् अंगोछे आदिसे हाथ नहीं पोंछलेता; उसके यहां लक्ष्मी कभी निवास नहीं करती; और बल, तेज, यश, आयु इन सभीकी हानि होतीहै ॥ १४३ ॥ जो मनुष्य भोजनके गृहमें (भोजनके) आसन पर स्थित होकर कुल्ला करताहै; उसका अन्न भोजन करनेके योग्य नहींहै और जो यदि भोजन भी करलियाहै तो वह चांद्रायण व्रत करै ॥ १४४ ॥ और जो मनुष्य आसन पर स्थित पात्रके ऊपर पात्र रखकर उस पात्रके जलसे आचमन करताहै उसके अन्नको भी भोजन न करै और जो भोजन करैगा तो उसे चांद्रायण व्रत करना होगा ॥ १४५ ॥

अश्रद्धया च यद्दत्तं विप्रेऽग्नौ दैविके क्रतौ ॥
न देवास्तृप्तिमायांति दातुर्भवति निष्फलम् ॥ १४६ ॥

देवताके उद्देश्यकरके जो यज्ञ कियाजाता है उसमें श्रद्धारहित जो कुछ ब्राह्मण वा अग्निमें अर्पण कियाजाताहै; उसके देनेसे देवता तृप्त नहीं होते किन्तु वह अन्नादिक प्रदान कियेहुए भी निष्फल होजातेहैं ॥ १४६ ॥

हस्तं प्रक्षालयित्वा यः पिबेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ १४७ ॥

जो द्विजोंमें उत्तम भोजन करनेके अनन्तर हाथोंको धुलाकर उसी शेष जलको पीतेहैं उस श्राद्धकर्मके अन्नको पितरलोग स्वीकार नहीं करते; वह मानों राक्षसोंने खाया, पितर निराश होकर चलेगये ॥ १४७ ॥

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः ॥
नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥ १४८ ॥

वेदसे श्रेष्ठ और कोई शास्त्र नहीं है, मातासे श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें दानकी अपेक्षा उत्तम मित्र नहीं है ॥ १४८ ॥

अपात्रेष्वपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥
हव्यं देवा न गृह्णंति कव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥

परन्तु जो दान कुपात्रको दियाजाता है वह सात पीढीतक दग्ध करताहै; अपात्रमें (कुपात्रमें) दियाहुआ हव्य (देवताओंके योग्य) कव्य (पितरोंके योग्य) जो अन्न उसे देवता वा पितर ग्रहण नहीं करते ॥ १४९ ॥

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥
श्वानविष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥

लोहेके पात्रसे जो अन्न दिया जाताहै वह अन्न सब प्रकारसे भोजन करनेवालेको विष्ठाकी समान वरजनेयोग्य है, और उसका दाता नरकको जाताहै ॥ १५० ॥

पित्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥
न दद्याद्वामहस्तेन आयसेन कदा च न ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य पीतल अथवा लोहेके पात्रमें रखकर अन्नको बाँये हाथसे कदापि न परोसे ॥ १५१ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितॄन् ॥ अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेतां नरकं च तौ ॥ १५२ ॥ अभावे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥ १५३ ॥

जो मनुष्य श्राद्धमें अपने पितरोंकी तृप्तिके अभिप्रायसे मट्टीके पात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन करानाहै, उस अन्नको देनेवाला और खानेवाला दोनोंही नरकको जातेहैं ॥ १५२ ॥ और जो अन्यान्य पात्र न मिले तौ श्राद्धीय ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मट्टीके पात्रमें परोसदे; कारण कि, पवित्र ब्राह्मणोंके सत्य असत्य सभी वचन प्रामाणिक हैं ॥ १५३ ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥ भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥ न च कांस्येषु भुंजीयादापद्यपि कदाचन ॥ मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥ कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः ॥ १५६ ॥

यदि संन्यासीको सुवर्णके पात्र, लोहेके पात्र, चांदी, अथवा कांसीके पात्रमें जो भिक्षा दीजातीहै उसका धर्म नहीं होता; और उससे प्राप्तहुई भिक्षाको खानेवाला भिक्षु (संन्यासी) पापका भोक्ता होताहै ॥ १५४ ॥ भिक्षुक कभी अधिक विपत्तिके आजानेपर भी कांसीके

पात्रमें भोजन न करै; कारण कि, जो संन्यासी कांसीके पात्रमें भोजन करतेहैं, उन्हें मल भक्षणका दोष कहाहै ॥ १५५ ॥ कांसीके पात्रकी जो अपवित्रता है; और गृहस्थमें जो पाप है, कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाला भिक्षुक इन दोनोंके पापोंका अधिकारी होताहै ॥१५६॥

अत्राप्युदाहरंति ॥ सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥
भुंजन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥

इस विषयमें (किसीने) कहाहै कि, सुवर्ण, लोहा, तांबा, कांसी, चांदी, इनके पात्रमें भिक्षुक भोजन करनेसे दोषी नहीं होता, परन्तु इन सब पात्रोंके ग्रहण करनेसे दोषी होताहै ॥ १५७ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ १५८ ॥ चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥ एकान्नं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥ १५९ ॥

प्रथम संन्यासीके हाथमें जल दे, फिर भिक्षा दे, और इसके पीछे जल दे, तो वह भिक्षा मेरुपर्वतकी समान होजातीहै; और वह जल समुद्रकी समान होजाताहै ॥ १५८ ॥ यती म्लेच्छके गृहसे भी भ्रमर (भौंर) की वृत्तिका अवलम्बन करै (अर्थात् अनेक स्थानोंसे अन्नका संग्रह करै) परन्तु एकके स्थानका अन्न भक्षण न करै चाहै उसका देनेवाला बृहस्पतिकी भी समान क्यों न हो ॥ १५९ ॥

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं गृहे वसन् ॥ दशरात्रं पिबेद्वज्रमापस्तु त्र्यहमेव च ॥ १६० ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ॥ एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥

और जो यति गृहमें रहकर विपत्तिके विना ही आये (इच्छानुसार) सिद्धहुए अन्नकी भिक्षा करताहै वह दश दिनतक वज्र और तीन दिनतक शुद्ध जलका पान करै ॥ १६० ॥ गोमूत्रसे मिलेहुए और घृतसे पकायेहुए जौका नाम "वज्र" है यह भगवान् अत्रिजीने कहाहै ॥ १६१ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२ ॥

ब्रह्मचारी, यती, विद्यार्थी, गुरुकी प्रतिपालना करनेवाला, पथिक और दरिद्र, इन छैः जनोंको भिक्षुक कहतेहैं ॥ १६२ ॥

षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव वै स्त्रियम् ॥
आदंतजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६३॥

गर्भवती स्त्रीके संग छैः महीनेतक विषय करै, और फिर बालक होनेके उपरान्त जबतक बालकके दांत न उपजआवैं तबतक विषय न करै इस प्रकारसे धर्म नष्ट नहीं होताहै ॥ १६३ ॥

ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीयं गुरुतल्पगः ॥ तृतीयं तु सुरापेयं चतुर्थं स्तेयमेव च ॥ १६४ ॥ पापानां चैव संसर्गं पंचमं पातकं महत् ॥ १६५ ॥ एषामेव

विशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥ त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथ-क्पृथक् ॥ १६६ ॥

बालकके जन्महोनेके पीछे पहले महीनेमें ब्रह्महत्याका, दूसरेमें गुरुपत्नीमें गमनका, तीसरेमं सुरापान, और चौथेमें चोरीकरनेका ॥ १६४ ॥ पांचवेंमें गाढ संसर्ग करनेका, पाप लगताहै ॥ १६५ ॥ इन पापोंसे शुद्धहोनेके निमित्त क्रमानुसार तीन वर्षतक व्रत करै तब ब्रह्महत्याके पापसे भी मुक्त होसकताहै और चतुर्विध अन्य पातकोंसे भी पृथक् पृथक् कृच्छ्र-करनेसे मुक्त होताहै ॥ १६६ ॥

अर्द्धं तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥
षड्भागो द्वादशश्चैव विट्शूद्रयोस्तथा भवेत् ॥ १६७ ॥

क्षत्रीको ब्रह्महत्याका ब्राह्मणसे आधा पाप और वैश्यको छठा भाग, और शूद्रको बारहवाँ भाग ब्रह्महत्याका पाप लगताहै ॥ १६७ ॥

त्रीन्मासान्नक्तमश्नीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥
स्त्रीघाती शुद्ध्यतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेव वा ॥ १६८ ॥

स्त्रीका मारनेवाला मनुष्य तीन महीनेतक नक्तव्रत करै, पृथ्वीमें शयन, और एक वर्षतक कृच्छ्रव्रत करै तब शुद्ध होताहै ॥ १६८ ॥

रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥
एतेषां यस्तु भुंक्ते वै द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥

धोबी, नट, (नाटिका इत्यादिमें सजकर जो जीविका निर्वाह करतेहैं) वेणुकर्मोपजीवी (डोम) इनके यहांके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करताहै वह चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होताहै ॥ १६९ ॥

सर्वांत्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥
पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १७० ॥

सम्पूर्ण अंत्यजोंके साथ जाने और उनके द्रव्यके भोजन करने एवम् उनके साथ बैठनेसे पराकव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै, यह भगवान् अत्रिजीनें कहाहै ॥ १७० ॥

चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः॥ गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिद्व्य-हान्यपि ॥ १७१ ॥ संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाप्युदक्यया ॥ अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽ-श्नीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥ १७२ ॥

जो ब्राह्मण चांडालके पात्रका जल पीताहै वह सत्ताईस दिनतक गोमूत्रसे मिलेहुए जौ भोजनकरै तब शुद्ध होताहै ॥ १७१ ॥ यदि जिस ब्राह्मणने चांडाल वा ऋतुमती स्त्रीके स्पर्श-किये हुए पक्वान्नको अज्ञानतासे भोजन कियाहै तौ वह आधा प्राजापत्य करै ॥ १७२ ॥

चांडालान्नं यदा भुंक्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः ॥ चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ॥ १७३ ॥ षड्रात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥ त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ १७४ ॥

यदि चांडालके यहांके अन्नको चारों वर्णोंने भोजन कियाहै, तौ उनकी शुद्धि इस प्रकारसे होतीहै, ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै क्षत्री सांतपनको करै ॥ १७३ ॥ और वैश्य छेः दिनतक व्रत और पंचगव्यका पान करै,और शूद्र तीन रात्रितक व्रत करके यत् किंचित् दान करै, तब उनकी शुद्धि होतीहै ॥ १७४ ॥

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसंस्पृशः ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७५ ॥ ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥ १७६ ॥

(प्रश्न-) जिस ब्राह्मणने वृक्षपर चढकर फल खायाहै और उस समय उस वृक्षकी जडको चांडालने छूलियाहो तौ उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥१७५॥ (उत्तर-) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह ब्राह्मण वस्त्रोंसहित स्नान करै, और एक दिन नक्तभोजन करै पश्चात् घृतका पान करै तब वह शुद्ध होताहै ॥ १७६ ॥

एकं वृक्षं समारूढश्चंडालो ब्राह्मणस्तथा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ । ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ १७८ ॥

(प्रश्न-) जो ब्राह्मण और चांडाल एकही वृक्षपर चढकर वहां स्थित फलोंको भक्षण करतेहैं तौ उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७७ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वस्त्रोंसहित स्नान करके अहोरात्र (एक दिन एक रात) उपवास करै, पश्चात् पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १७८ ॥

एकशाखासमारूढश्चंडालो ब्राह्मणो यदा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत ॥ १७९ ॥ त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्काच्छुद्धिः सांतपनं तथा ॥ १८० ॥ तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाभिधीयते ॥ १८१ ॥

(प्रश्न-) जो ब्राह्मण और चांडाल एकही वृक्षकी शाखापर चढकर फलोंको भक्षण करतेहैं तो उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७९ ॥ (उत्तर-) वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यका पानकरै तब शुद्ध होताहै ॥ १८० ॥ स्त्रियोंको म्लेच्छके साथ संसर्ग होनेपर सांतपन कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होतीहै, और पीछेसे तप्तकृच्छ्रके करनेसे शास्त्रकारोंने उनकी शुद्धि कहीहै ॥ १८१ ॥

स वर्तेत यथा भार्यां गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥ सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥ संगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुनः ॥ १८३ ॥

म्लेच्छने जिसका संग कियाहै ऐसी भार्याके साथ संभोग करनेवाला वस्त्रसहित स्नान करै और केवल घृतकाही भोजन कर तप्तकृच्छ्र करै तब शुद्ध होताहै. और जिसने संतानके निमित्त ऐसी स्त्रीका संग कियाहो वह भी उपरोक्त व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

चंडालम्लेच्छश्वपचकपालव्रतधारिणः ॥
अकामतः स्त्रियो गत्वा पाराकेण विशुद्धयते ॥ १८४ ॥

चांडाल, म्लेच्छ, श्वपच, कपालव्रतधारी (अघोरी) जिस मनुष्यने अज्ञानतासे इनकी स्त्रियोंके साथ गमन कियाहै तौ वह पराकव्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८४ ॥

कामतस्तु प्रसूतां वा तत्समो नात्र संशयः ॥
स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥

यदि जानकर इन स्त्रियोंमें जिस मनुष्यने गमन कियाहै; अथवा संतान उत्पन्न होनेपर प्रसूतास्त्रीके संग भोग करनेवाला पुरुष स्त्रीकी समान जातिमें होजाताहै इसमें कुछ भी संदेह नहीं कारण कि वह पुरुष ही उस स्त्रीकी संतान होकर जन्म लेताहै ॥ १८५ ॥

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्रं कुरुते द्विजः ॥ तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १८६ ॥ केशकीटनखस्नायु अस्थिकण्टकमेव च ॥ स्पृष्ट्वा नद्युदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

जो ब्राह्मण तेल वा घृतसे उबटन करके (विना स्नान किये) शौचको जाताहै, अथवा लघुशंका करताहै अथवा जो ब्राह्मण तैल वा घृतसे उबटन करके चाण्डालको स्पर्श करताहै वह पंचगव्यका पान कर एक दिन रात्रितक उपवास करके शुद्ध होताहै ॥ १८६ ॥ केश, कीट, नख, स्नायु, अस्थि और कांटोंको जो स्पर्श करताहै वह नदीके जलमें स्नानकर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८७ ॥

मत्स्यास्थि जंबुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥
हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥ १८८ ॥

मच्छीकी अस्थि, शृगालकी अस्थि, नख, शुक्ति (शीपी) और कौडी इनके स्पर्श करनेसे स्नानकर, सुवर्णसे शोधित गरम घीका भोजन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १८८ ॥

गोकुले कंदुशालायां तैलचक्रेक्षुयंत्रयोः ॥
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

गोकुल (ग्वाल) कंदुशाला (भट्टी) तेल निकालनेका कोल्हू, और ईख पेलनेका कोल्हू, स्त्री और रोगीका शौचाशौच विचारके योग्य नहीं है, अर्थात् यह सबही पवित्र हैं ॥ १८९ ॥

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥ नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥ पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभिः ॥ भुंजते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यंति कर्हिचित् ॥ १९१ ॥ असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ॥ अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुंचति ॥ १९२ ॥ विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥ तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ १९३ ॥ स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥ बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥ १९४ ॥ न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥

स्त्रियें देवताओंके जारत्वसे * भी दूषित नहीं होतीं, ब्राह्मण वेदोक्त कर्म (यज्ञिय हिंसा इत्यादिक) करनेसे दूषित नहीं होते (तालाब आदिमें स्थित) जल विष्ठा मूत्रके स्पर्श होनेसे भी अशुद्ध नहीं होता अग्नि अपवित्र वस्तुओंको दग्धकरके भी अपवित्र नहीं होती ॥ १९० ॥ प्रथम स्त्रियोंको चंद्रमा, गंधर्व, अग्नि इत्यादि देवता भोग करतेहैं, पीछे मनुष्य भोगतेहैं। वह किसी प्रकारसे भी (मानसादि सामान्य पापसे) दुष्ट नहीं होतीं ॥ १९१ ॥ असवर्ण (इतरवर्ण) पुरुषका जो स्त्री गर्भ धारण करतीहै वह गर्भिणी स्त्री जबतक संतान उत्पन्न न करै तबतक अशुद्ध रहतीहै ॥ १९२ ॥ संतान जन्मके पीछे वह स्त्री जब ऋतुमती होतीहै तब वह कांचन (अग्निकी) समान शुद्ध होजातीहै ॥ १९३ ॥ स्त्रीके सब प्रकारसे अस्वीकार अवस्थामें (विना राजीके) यदि कोई छलसे या बलसे या चोरीसे उससे मिले ॥ १९४ ॥ तौ इस प्रकार दुष्टा हुई स्त्रीको त्याग करना उचित नहीं, कारण कि इस कार्यमें स्त्रीकी इच्छा नहीं थी, पीछे ऋतुकालके उपस्थित होनेपर इस स्त्रीके साथ संसर्ग करना योग्य है (इससे प्रथम संसर्ग न करे) कारण कि ऋतुकालके आनेपर स्त्रियें शुद्ध होतीहैं ॥ १९५ ॥

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अंत्यजाः स्मृताः ॥ १९६ ॥ एतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैव तद्द्वयम् ॥ १९७ ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः ॥ प्राजापत्येन शुद्धयेत ऋतुप्रस्रवणेन तु ॥ १९८ ॥ बलाद्भृता स्वयं वापि परप्रेरितया यदि ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्धयति ॥१९९॥ प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ॥ न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ॥ २०० ॥

रजक, चर्मकार, नट, (नाटक इत्यादिको करकै जीविका निर्वाह करनेवाले) बुरुड (जो बांसकी डालियाँ बनातेहैं) धीमर, कलाल, भील, इन सात जातियोंको अंत्यज कहतेहैं ॥१९६॥ जानकर जो स्त्री इनसे अथवा जो मनुष्य इनकी स्त्रीमें गमन करताहै और जो इनके यहाँका अन्न भोजन करताहै, वा दान लेताहै उसका प्रायश्चित्त कृच्छ्राब्द (एक वर्षतक एक २ करके क्रमानुसार प्राजापत्य व्रत ३० प्राजापत्य) करना योग्य है, और जिसने बिना जाने कियाहै वह चान्द्रायण करै तब शुद्ध होताहै ॥ १९७ ॥ जो स्त्री केवल एकहीबार म्लेच्छ वा (उनकी समान) पापी (चांडाल वा अत्यन्त पापी इत्यादि) से भोगी गईहै, वह प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करै; और रजस्वला होनेपर उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १९८ ॥ जो स्त्री

* यहां जार शब्दसे देवताभुक्त जानना मनुष्योंका जारत्व न लेना जैसा कि ऋग्वेदमें लिखा है " सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ " अष्टक ८ अध्याय ३ । वर्ग २७ मंत्र ४०

अर्थात् पहले सोम, फिर गंधर्व, तिसके पीछे अग्नि स्त्रीपर अधिकार करतेहैं पीछे मनुष्य पति होताहै सोमने पवित्रता, गंधर्वने सुन्दर वाणी और अग्निने सर्वभक्षीपना दियाहै, इस कारण स्त्री शुद्ध है, इन तीनों देवताओंका छः वर्षतक अधिकार रहताहै, इसीसे इनको जारपना कहतेहैं, मनुष्योंका जारत्व यहां नहीं कहाहै.

बलपूर्वक हरि गईहो, या किसीके कहनेसे गईहो, और एकवार ही भोगीगईहो तौ वह प्राजापत्य व्रतको करके शुद्ध होतीहै ॥१९९॥ जिन स्त्रियोंने बहुत दिनोंके तपका प्रारंभ कियाहो तौ उनके मासिक धर्म होनेपर उनका व्रत कभी भंग नहीं होता ॥ २०० ॥

मद्यसंस्पृष्टकुम्भेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत पुनः संस्कारमर्हति ॥ २०१ ॥

जिस ब्राह्मणने मदिरासे छुए घडेका जल पियाहो तो वह कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त करके शुद्ध होताहै, और फिर वह संस्कारके योग्य है ॥ २०१ ॥

अंत्यजस्थासु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥

जो वृक्ष अंत्यजोंके हों, और उनपर बहुत सारे फल पुष्प आतेहों तो उन वृक्षोंके फूल फल सभीके भोगने योग्य हैं ॥ २०२ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २०३ ॥

जो ब्राह्मण चांडालसे स्पर्श कियेहुए जलको पीताहै वह "कृच्छ्रपाद"का अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै यह आपस्तंब ऋषिका वचन है ॥ २०३ ॥

श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रीरजोमद्यमेव च ॥ एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥ २०४ ॥ एकं द्व्यहं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २०५ ॥

(प्रश्न–) श्लेष्मा, जूता, विष्ठा, मूत्र, रज, रुधिर, वा मदिरासे दूषित कूपका जल पानकनेसे उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥ २०४ ॥ (उत्तर–) ब्राह्मण तीन दिनतकर, क्षत्री दो दिनतक, और वैश्य एक दिनतक उपवास करै, और शूद्र नक्तव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०५ ॥

सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥ पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ॥ शिरःकंठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥ २०६ ॥ दशषट्त्रितयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ॥ अत्राप्युदाहरंति ॥ प्रमादान्मद्यपसुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥ गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ॥ २०७ ॥

सद्यः वमनके (तत्काल हुई कैके) स्पर्शसे वस्त्रों सहित स्नान करै, और पहले दिनके वमनके स्पर्शसे एक दिन और अधिक दिनकी वमनके स्पर्शसे तीन दिनतक उपवास करना ब्राह्मणोंको कर्तव्य है मस्तकमें सुराका लेप होनेसे दश दिन, और कंठमें सुराका लेप होनेसे छैः दिन जांघमें सुराका लेप होनेसे तीन दिन और पैरमें सुराका लेप होनेसे एक दिनतक उपवास करै ॥ २०६ ॥ इस स्थानपर ऋषिने कहाहै कि जो श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रमादके वशसे मद्यपाई पुरुषसे मद्य लेकर (अर्थात् अविधि मद्य) पान करताहै वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौको दश दिनतक खाय तब शुद्ध होताहै ॥ २०७ ॥

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥
न देवा भुंजते तस्य न पिबंति हविर्जलम् ॥ २०८ ॥

जो ब्राह्मण मद्यप (अविधि मद्यका पानकरनेवाले)के वा निषाद (भील) के अन्नको भोजन करताहै देवता उसके दियेहुए हव्यका भोजन वा उसके दियेहुए जलका पानतक-भी नहीं करते ॥ २०८ ॥

चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च व्याधितः ॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥ २०९ ॥

जो स्त्री स्वामीके साथ मरनेको चितापर चढकर पश्चात् उठकर चितासे निकल पडे, वा रोगद्वारा रजोहीन होजाय वह प्राजापत्य व्रत करने तथा दश ब्राह्मणों को भोजन करानेसे शुद्ध होगी ॥ २०९ ॥

ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलावहाः ॥ अनाशकान्निवर्तंते चिकीर्षंति गृहस्थितिम् ॥ २१० ॥ धारयेत्रीणि कृच्छ्राणि चांद्रायणमथापि वा ॥ जाति-कर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥ २११ ॥

जो निंदित ब्राह्मण संन्यासी होजातेहैं, वा जिन्होंने अपनी मृत्युका संकल्प करके अग्निमें प्रवेश या जलमें प्रवेश कियाहै और फिरभी उनका जीवन नष्ट नहीं हुआ है ॥ २१० ॥ और वह फिर गृहस्थ होनेकी इच्छा करते हैं तौ वह तीन प्राजापत्य, चांद्रायण और जातकर्म इत्यादि सब संस्कारोंके भागी होते हैं ॥ २११ ॥

न शौचं नोदकं नाश्रु नापवादानुकंपने ॥ ब्रह्मदंडहतानां तु न कार्यं कटधारणम् ॥ २१२ ॥ स्नेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥ गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् ॥ २१३ ॥

ब्रह्मदंड, (ब्रह्मशापादि) से जो नष्ट होगया है, उसका अशौच नहीं होता उसके निमित्त जल आदिका दान वा अश्रुत्याग करना, उचित नहीं है उसका गुण वर्णन करना, या उसके प्रति दया प्रकाश करके दुःखकरना वा उसके निमित्त "कट धारण" (शय्यान्तरको छोडकर केवल काठपर शयन) करना ठीक नहीं है ॥ २१२ ॥ यदि कोई मनुष्य इस (ब्रह्मदंडहत) मनुष्यके प्रति अंतःकरणके स्नेहसे वा उसके क्षमावान् पुत्रादिके भयसे अथवा विनयसे इन सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करै तो वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौका आहार करै यही एक उसका प्रायश्चित्त है ॥ २१३ ॥

वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥ आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनांबुभिः ॥ २१४ ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः ॥ तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ २१५ ॥

जो मनुष्य वृद्धहोकर शौच स्मृतिसे वर्जित होगया हो, अर्थात् जिसको शौचाशौचके विषयका ज्ञान नहीं है, वैद्योंने भी जिसकी चिकित्सा करनी छोडदी हो, पश्चात् उसने ऊँचे-

से गिरकर या अग्निमें प्रवेश करके निर्जल रहकर वा जलमें डूबकर आत्मघात किया हो ॥ २१४ ॥ तौ उसके पुत्रोंको तीन दिनतक अशौच होगा, दूसरेही दिन अस्थिसंचय (गंगाजीमें डालनेके निमित्त चितासे अस्थियोंका संग्रह करना) और तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन श्राद्ध करैं ॥ २१५ ॥

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥
मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ॥ २१६ ॥

जिसके घरमें एक भी गौ बछडेवाली अर्थात् दूध देनेवाली न हो उसका मंगल किस प्रकारसे होसकता है और पाप दुःख वा अमंगलका नाश किस प्रकारसे होसकता है ॥२१६॥

अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २१७ ॥

अधिक दूधके दुहनेसे या अधिक चढनेसे, रस्सी डालनेके अर्थ नाक छेदनेसे, या नदी वा पर्वतमें रोकनेसे गौकी मृत्यु होनेपर साक्षात् गोवधप्रायश्चित्तका पादोन (एकपाद कम) प्रायश्चित्त करै ॥ २१७ ॥

अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥ चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्यकृत् ॥ २१८ ॥ द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥ २१९ ॥

धर्ममें निष्ठा करनेवाले आठ बैलोंके हलको चलाते हैं; छैः बैलोंका हल चलाना भी व्यावहारिक है, अर्थात् उसके करने से समाज में निन्दनीय नहीं है, निर्दयी मनुष्य चार बैलोंका हल चलाते हैं, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वे गौकी हत्या करनेवाले हैं ॥२१८॥ * दो बैलोंका हल एक पहरतक और चार बैलोंका हल मध्याह्न कालतक, छैः बैलोंका हल तीन पहरतक, और आठ बैलोंका हल सारे दिनतक चलाना योग्य है ॥ २१९ ॥

काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ प्राजापत्यं चरेन्मृत्सा अतिकृच्छ्रं तु आयसैः ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्तेन तच्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ २२१ ॥

जो मनुष्य काष्ठ, लोष्ट (ढेला आदि) से गौको मारता है वह "कृच्छ्र" व्रतको करै और जिसने मट्टीके द्वारा गौहत्या की है वह "प्राजापत्य" को करै, और जिसने लोहदंड से गौहत्या की है वह "अतिकृच्छ्र" व्रतको करै ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्त हो जानेपर ब्राह्मण-भोजन करावै, और बछडे सहित एक गाय ब्राह्मणको दक्षिणामें दे ॥ २२१ ॥

शरभोष्ट्रहयान्नागान्सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥
हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २२२ ॥

---

* पहले श्लोकमें चार और दो बैलोंके हल चलाने को निषिद्ध कहाहै, और इस स्थानमे उनका एक प्रकारसे विधान किया है, इस कारण यहां यह जानना होगा कि इसप्रकार कुछ समयके लिये चार वा दो बैलोंका हल चलाना निषिद्ध नहीं है परन्तु सम्पूर्ण दिन हल चलाना निषिद्ध है ।

शरभ (आठ पैरवाला मृग) ऊंट, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र वा गर्दभ इनकी हत्या करनेवाला शूद्रकी हत्याका जो प्रायश्चित्त कहा है उसे करै ॥ २२२ ॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ॥
हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥ २२३ ॥
चंडालस्य च संस्पृष्टं विण्मूत्रोच्छिष्टमेव वा ॥
त्रिरात्रेण विशुद्धं हि भुक्तोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२४ ॥

बिल्ली, गोह, नौला, मेंढक वा पक्षीका मारनेवाला तीन दिनतक दुग्ध पान कर फिर "पादकृच्छ्र" को करै ॥ २२३ ॥ चांडालका स्पर्श किया हुआ और विष्ठा मूत्रसे स्पर्श किया हुआ वा अपनी उच्छिष्टको जो मनुष्य भोजन करता है वह तीन दिनतक उच्छिष्ट भोजन करनेके प्रायश्चित्तको करै ॥ २२४ ॥

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥
उद्धरेत्षट्शतं पूर्णं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२५ ॥

जो जलाशय, बावडी, कुआ, तलाव, मुरदे इत्यादिके स्पर्शसे दूषित होजाते हैं इनकी शुद्धि छैः सो घडे जल भरकर बाहर निकालनेसे तथा उसमें पंचगव्य डालनेसे होतीहै॥२२५॥

अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥
उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ २२६ ॥

जिन जलाशयोंमें आस्थि, और चर्म पडेहैं अथवा गर्दभ कुत्ते पडके मरगएहैं, उन जलाशयोंका संपूर्ण उदक निकालडालैं, और पंचगव्य आदिकोंसे शुद्ध करै ॥ २२६ ॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारुकशिल्पिहस्ते ॥
स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२७ ॥

दोहिनी और मशकका जल, यन्त्र (जलादिके निकालनेकी कल) आकर (खान) कारीगर और शिल्पीका हाथ, स्त्री, बालक और बुड्ढोंके आचरण, और जिनका अपवित्रपन प्रत्यक्षमें नहीं देखागया है वह सब पवित्र हैं ॥ २२७ ॥

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥
अवास्ययज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः ॥ २२८ ॥

नगरीकी रोक शत्रुओंसे परकोटाके घिरजानेके समयमें, संकटके देशमें, सेवाके स्थानमें अग्निके घरमें लगजानेके समय, यज्ञकी समाप्ति हुए विना और बडे २ उत्सवोंके समयमें दोषादोषका विचार करना कर्तव्य नहीं है ॥ २२८ ॥

प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च ॥
श्वपाकचंडालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥ २२९ ॥

प्याऊ, वन, घडियों, (घरैंटों) का कुआ और द्रोणी (खेतकी क्यारी) में जो स्रोतसे निकला हुआ जल हो उसके पीनेमें कुछ दोष नही है। कंजर, और चांडालके बनाये हुए कुएआदिका जल पीकर मनुष्यकी पंचगव्यके पीनेसे शुद्धि होतीहै ॥ २२९ ॥

रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥ २३० ॥

वीर्य, विष्ठा, वा मूत्र, इनका जिसमें स्पर्श हो ऐसे कूपके जलको जो पान करताहै वह तीन रात्रितक उपवास करै और जिसने ऐसे दूषित घडेके जलका पान किया हो वह "सान्तपन" करके शुद्ध होता है ॥ २३० ॥

क्लिन्नभिन्नशवं यस्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥
प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३१ ॥

जो किसी ब्राह्मणने मुरदेके स्पर्शसे दूषित हुए जलको पान किया हो तो उसका प्रायश्चित्त तप्तकृच्छ्र करना योग्य है ॥ २३१ ॥

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥
प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३२ ॥

जिस ब्राह्मणने, ऊंटनी, गधी, वा किसी अन्य मनुष्यकी स्त्रीके दूधको पिया हो तौ वह तप्तकृच्छ्र व्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ २३२ ॥

वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥
पंचरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २३३ ॥

यदि ब्राह्मणको उच्छिष्ट अवस्थामें यवन इत्यादि स्पर्श करले, तौ वह पंचगव्यका पान कर पांच रात्रितक उपवास करै तब शुद्ध होता है ॥ २३३ ॥

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥
चर्मभांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥ २३४ ॥

जिस जलसे गौकी तृप्ति होसकै वह पृथ्वीपर रक्खा हुआ निर्मल जल, चर्मपात्रसे लगाई हुई धाराका जल, और यंत्रसे निकला हुआ जल यह सब पवित्र हैं ॥ २३४ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥
उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३५ ॥

चांडालने जिसे स्पर्श किया हो वह केवल स्नानही करै, और जो उच्छिष्ट अवस्थामें स्पर्श किया हो तौ तीन रात्रिमें शुद्ध होता है ॥ २३५ ॥

आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥
आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥ २३६ ॥

खानसे निकली हुई वस्तु कभी अशुद्ध नहीं होती, मदिराके स्थानको छोडकर सभी आकर शुद्ध हैं ॥ २३६ ॥

भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥ खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्भृष्टतरं शुचि ॥ २३७ ॥ अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥ गोकुले कंदुशालायां तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ॥ २३८ ॥

जौ, चना, खजूर और कपूर यह भुने हों अथवा विना भुने हों सभी अवस्थामें शुद्ध हैं और अन्यान्य द्रव्योंकी ढेरियें जो परस्पर मिलीहुई धरी हैं उनमें जो अशुद्ध हो जाँय वही

अशुद्ध गिनी जाँयगी दूसरी नहीं ॥२३७॥ स्त्रियोंके आचरण किये हुए कार्यमें शाआक कुलमें कंदुशालामें (अर्थात् हलवाईके दूकान में) तेलनिकालनेके यंत्रमें, और ईखके कोल्हूमें, शौचाशौचका विचार करना योग्य नहीं है ॥ २३८ ॥

अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ २३९ ॥

पवित्र आकाशसे गिरनेवाली जलधारा और वायुसे उडीहुई धूरि यह सर्वदाही पवित्र हैं ॥ २३९ ॥

बहूनामेकलग्नानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ॥
अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथंचन ॥ २४० ॥

एक साथ बैठे हुए अनेक मनुष्योंमें यदि एक मनुष्य अपवित्र हुआ बैठा होय तौ अशौच उसी एककोही लगताहै, अन्य मनुष्योंको किसी तरहसे आशौच लगता नहीं ॥ २४० ॥

एकपंक्त्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ॥
यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥ २४१ ॥

एक पंक्तिमें पृथक् २ बैठे हुए भोजन करनेवालोंमेंसे यदि एक मनुष्यकी देहमें नीलका स्पर्श होजाय तौ उस पंक्तिके सभी मनुष्योंको अशुद्ध कहा जायगा ॥ २४१ ॥

यस्य पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥
त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ॥ २४२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरपर नीलेरंगका वस्त्र देखा जायगा (अर्थात् जो नीले रंगका वस्त्र पहर रहाहै) वह मनुष्य तीन रात्रि, और अन्य एक दिनतक उपवास करें ॥ २४२ ॥

आदित्येस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ॥ भगवन्केन शुद्धिः स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन ॥ २४३ ॥ आदित्येस्तमिते रात्रौ स्पर्शहीनं दिवा जलम् ॥ तेनैव सर्वशुद्धिः स्याच्छवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ २४४ ॥

(ऋषियोंने प्रश्न किया कि) हे भगवन् ! हे तपोधन ! सूर्यके अस्त होनेके उपरान्त रात्रिके समय यदि स्पर्श न करनेयोग्य वस्तुका जो स्पर्श करले तौ उसकी शुद्धि किसप्रकारसे होतीहै सो आप कहिये ॥ २४३ ॥ (अत्रिजी बोले कि) रात्रिके समय विना छुआ जो दिनका निर्मल जल रक्खा हुआ है उसके जलसे मुरदेके स्पर्श अतिरिक्त और सबकी शुद्धि होतीहै ॥ २४४ ॥

देशं कालं च यः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः ॥
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः ॥ २४५ ॥

और जिन पापोंका प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं कहा है, देश, समय, शक्ति और पापका विचार करके उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करलें ॥ २४५ ॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ॥
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४६ ॥

देवयात्रामें (देवताओंके दर्शनके निमित्त जानेमें) विवाहमें, यज्ञआदि प्रकरणमें और सम्पूर्ण उत्सवोंमें स्पर्श करनेके योग्य और अयोग्यका विचार नहीं होता है ॥ २४६ ॥

आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥ स्नेहपकं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥ अंत्यभांडस्थितास्त्वेते निष्क्रांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥ २४८ ॥

आरनाल (चनेआदिकी खटाई) दूध, कंदुक, दही, सत्तू, स्नेह, (घी तेलसे पकाहुआ) पदार्थ और मट्ठा यह यदि शूद्रके यहांकाभी हो (उसको भक्षण करनेसे ब्राह्मणोंको) दोष नहीं है ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांस (विना पकाहुआ मांस) घृत, तेल और फलसे उत्पन्नहुए स्नेह (इंगुदीवृक्षका तेल आदि) यह चांडालके पात्रसे निकलतेही शुद्ध होजाते हैं ॥ २४८ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २४९ ॥

यदि ब्राह्मणने विना जाने हुए शूद्रके यहाँका जलपान कर लिया है तो वह स्नान करनेके उपरान्त पंचगव्यका पानकर एक दिनतक उपवास करै तब शुद्ध होता है ॥ २४९ ॥

आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ॥
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५० ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री है वह यदि महापातकी होजाय तो वह जलमें होमके पात्रोंको फेंककर फिर अग्निको ग्रहण करै ॥ २५० ॥

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ॥ अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ २५१ ॥ वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरेद्द्विजः ॥ प्राणानाशु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २५२ ॥

जो मनुष्य विवाहकी अग्निको ग्रहण करके अपनेको गृहस्थ मानते हैं (और अग्निकी रक्षा नहीं करते) उनका अन्न भोजन करनेके योग्य नहीं है, कारण कि उनका भोजन वृथापाक (निष्फल) कहा गया है (देवता उसके अन्नको भोजन नहीं करते इसीसे उसका पाक निष्फल है) ॥ २५१ ॥ इस वृथापाकके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करले वह इस प्रायश्चित्तको करै कि जलके बीचमें तीनवार प्राणायाम करके घृतका भोजन करै तब शुद्ध होता है ॥ २५२ ॥

वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५३ ॥

पाँच हत्याके पापको दूरकरनेके निमित्त वैदिक अग्निमें (वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कीहुई अग्निमें) वा लौकिक अग्निमें (पदार्थ पकानेके निमित्त प्रज्वलित अग्निमें) वा हुतोच्छिष्टमें (नित्य जिसमें होम किया हो ऐसी अग्निमें) अथवा जलमें वा पृथ्वीमें वैश्वदेव करै ॥ २५३ ॥

कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ॥ पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद्बुधः ॥ २५४ ॥ ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्यग्निं यवीयकः ॥ नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५५ ॥

यदि बडा भाई निर्गुण हो, और छोटा सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित हो तो ज्ञानी छोटाभाई बडे भाईसे प्रथम विवाह करके गृह्य अग्निको धारण करै ॥ २५४ ॥ परन्तु जब बडे भाईमें कोई दोष नहींहै तब छोटा भाई जो (गृह्य) अग्निको ग्रहण करले तौ उसको प्रतिदिन निःसंदेह ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ २५५ ॥

महापातकिसंस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ॥
संस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते स्नानमेव विधीयते ॥ २५६ ॥

जिस मनुष्यको महापातकीने स्पर्श किया हो वह, और जिसने महापातकीके स्पर्श किये हुएके अन्नको भोजन किया हो वह दोनोंही स्नानकरनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ २५६ ॥

पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव च ॥ गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २५७ ॥ कृच्छ्रार्द्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥ अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २५८ ॥ पतितानां यदा भक्तं भुक्तं चंडालवेश्मनि ॥ मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २५९ ॥

पतित मनुष्यका साथ जिसने एक पक्ष वा एक महीनेतक कियाहो वह मनुष्य पंद्रह दिनतक गोमूत्रसे सिद्धहुए जौका भोजन करै तब शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥ जो ब्राह्मण पतित मनुष्यके यहां अन्नको जानकर भोजन करले तो वह आधाकृच्छ्र करै और विना जानेहुए भोजन करले तो कृच्छ्रसांतपन व्रतको करै ॥ २५८ ॥ शातातप मुनिने कहा है कि यदि जिस मनुष्यने पतितके यहांका भोजन किया हो, वा चांडालके घरमें भोजन किया हो तौ वह पंद्रहदिनतक केवल जलहीको पीता रहै ॥ २५९ ॥

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ॥
अग्निना न च संस्कारः शंखस्य वचनं यथा ॥ २६० ॥

गौ और ब्राह्मणके द्वारा निहतहुए और पतित मनुष्योंका अग्निसे संस्कार नहीं होता है; यही शंखऋषिका वचन है ॥ २६० ॥

यश्चंडालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥
त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥ २६१ ॥

यदि ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो किसी चांडालकी स्त्रीके साथ भोग करले तौ वह प्राजापत्य व्रतको कर तीन कृच्छ्रव्रतको करै तब शुद्ध होता है ॥ २६१ ॥

पतिताच्चान्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ॥
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥ २६२ ॥

जो ब्राह्मणने पतितके यहांका अन्न ग्रहण किया हो तो उस अन्नको त्यागदे और यदि ब्राह्मणने पतितके अन्नको भोजन किया हो तो उसको वमनद्वारा त्याग दे; और फिर अतिकृच्छ्रव्रतको करै (तब शुद्ध होता है) ॥ २६२ ॥

अंत्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काष्ठलोष्टतृणानि च ॥
न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥ २६३ ॥

अंत्यज (चांडालादि) के हाथसे फेंकेहुए, काष्ठ, लोष्ट, तृण और उच्छिष्टका स्पर्श न करै (और यदि करै) तौ अहोरात्रका व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २६३ ॥

चंडाल पतितं म्लेच्छं मद्यभांडं रजस्वलाम् ॥ द्विजःस्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो यदि संस्पृशेत् ॥ २६४ ॥ अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वान्नं स्नानमाचरेत् ॥ ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ॥ २६५ ॥ भुंजानः संस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुटं तथा ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टस्त्र्यहेण तु ॥ २६६ ॥

चांडाल, पतित, म्लेच्छ, मदिराका पात्र और रजस्वला स्त्री इनका स्पर्श कर के ब्राह्मण भोजन न करै, और जो भोजन करते समय इनका स्पर्श होजाय तौ ॥ २६४ ॥ फिर भोजन न करै, और उस अन्नको त्यागकर स्नान करै, फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर तीन रात्र उपवास करै, और घृतके सहित जौका भोजन कर व्रतको समाप्त करै ॥ २६५ ॥ भोजन करते समय कौआ, या मुरगा छूजाय तौ तीन रात्रतक उपवास करै तब शुद्ध होता है और जो भोजनके अंतमें उच्छिष्ट अवस्थाके समयमें कौए या मुरगेका स्पर्श होजाय तौ एकदिनमें उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ २६६ ॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥
चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६७ ॥

जो नैष्ठिक धर्ममें स्थित होकर फिर उसको त्याग देता है वह एक महीनेतक चांद्रायण व्रतको करै, यह शातातप ऋषिने कहा है ॥ २६७ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चांद्रायणं चरेत् ॥ २६८ ॥ अमानुषीषु गोवर्जमुदक्यायामयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २६९ ॥

जो मनुष्य पशु और वेश्यामें गमन करते हैं, वह प्राजापत्य व्रतको करैं; और जो गौके साथ गमन करते हैं वह मनुजीके कहेहुए चांद्रायण व्रतको करैं ॥ २६८ ॥ गौके अतिरिक्त पशुकी योनि, अयोनि, अर्थात् भूमि आदिमें वा जलमें वीर्य डालनेवाले मनुष्य कृच्छ्र सांतपन व्रतको करै ॥ २६९ ॥

उदक्यां सूतिकां वापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥ २७० ॥

रजस्वला, सूतिका, वा अन्त्यजाका स्पर्श करनेवाला मनुष्य तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, यह पुरातन विधि है ॥ २७० ॥

संसर्गं यदि गच्छेच्चेदुदक्यया तथांत्यजैः ॥ प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २७१ ॥ एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥ दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७२ ॥

जिस मनुष्यका रजस्वलाके साथ वा अन्त्यजाके साथ स्पर्श होजाय तौ वह मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके योग्य है, और प्रायश्चित्तके प्रथम स्नान करै ॥ २७१ ॥ और एक दिन गोमूत्र

पिये, और तीन दिन गौका गोबर भक्षण करै, यदि विजातीय चांडाली आदि स्त्रीके साथ जल पिया हो तौ तीन दिन गोमूत्र और तीन दिन गोबर भक्षण करै, यदि पूर्वोक्त स्त्रीके साथ मैथुन किया हो तौ पांच तथा सात दिन गोमूत्र और गोबरका सेवन करनेसे दोष दूर होता है ॥ २७२ ॥

स्मृत्यंतरम् ॥ अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥
पूयंते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७३ ॥

अन्य स्मृतियोंमें भी कहा है कि अपनी जातिके स्वीकार करनेसे या ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे महापातकी पापीभी शुद्ध हो जाते हैं ॥ २७३ ॥

भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ॥
दंतकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ॥ २७४ ॥

पूर्वोक्त विना शुद्धहुए पातकियोंके साथ भोजन करनेवाला पुरुष प्राजापत्य नामक व्रत करनेसे शुद्ध होता है; और उनके साथ दंतधावन करनेसे एक दिन रातमें शुद्ध होता है, यही पवित्र होनेकी विधि है ॥ २७४ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालवायसैः ॥ निराहारा भवेत्तावत्स्नात्वा कालेन शुद्धयति ॥ २७५ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजंबुकशंबरैः ॥ पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७६ ॥ स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥ एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७७॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ॥ त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्व्यासस्य वचनं यथा॥२७८॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥ चतूरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७९ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥ षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥२८०॥ अकामतश्चरेदूर्ध्वं ब्राह्मणी सर्वतः स्पृशेत ॥ चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८१ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, कौआ, अथवा चांडाल छूले तौ वह रजकी शुद्धितक निराहार रहै पीछे चौथे दिन शुद्ध स्नानको करके शुद्ध होजाती है ॥ २७५ ॥ जिस रजस्वला स्त्रीको ऊँट, गीदड, वा शंबर स्पर्श करले तौ वह पांच राततक निराहार व्रतकर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ २७६ ॥ यदि ब्राह्मणी रजस्वलाने ब्राह्मणी रजस्वलाको स्पर्श कर लिया हो तौ वह एक रात्रितक निराहार रहकर पंचगव्यका पान करै तब शुद्ध होती है ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणी रजस्वलाने क्षत्रीकी स्त्री रजस्वलाका स्पर्श कर लिया हो तौ वह ब्राह्मणी तीन रात्रितक उपवास कर (पंचगव्यका पान करै) तब शुद्ध होती है यह व्यासजीका वचन है ॥ २७८ ॥ यदि वैश्यकी कन्या रजस्वलाको ब्राह्मणकी स्त्रीने स्पर्श किया हो तौ वह ब्राह्मणी चार रात्रितक निराहार रहकर पंचगव्यका पान करनेसे शुद्ध होजाती है ॥२७९॥ यदि ब्राह्म रजस्वला शूद्रा रजस्वलाका स्पर्श करले तौ छैः रात्रिमें शुद्ध होती है ॥ २८० ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणी सबको स्पर्श करसकती है, इस रीतिसे चारों वर्णोंकी शुद्धि कही है ॥ २८१ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥ भोजने मूत्रचारे च शंखस्य वचनं यथा ॥ २८२ ॥ स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥ वैश्ये नक्तं च कुर्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥ २८३ ॥ चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ॥ एतांस्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥ २८४ ॥ एतैः स्पृष्टा द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥ उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८५ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मणने उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मण स्नान करै, और भोजन वा मूत्र त्यागनेके समय स्पर्श किया हो तो स्नान करै, यदि इस प्रकारसे क्षत्रीने स्पर्श किया हो तो जप, होम करै और इसी प्रकारसे वैश्यने स्पर्श किया हो तो नक्तव्रत करै, और जो शूद्रने स्पर्श किया हो तो उपवास करै यह शंख ऋषिका वचन है ॥ २८२ ॥ २८३ ॥ चमार, धीमर, धोबी, और नट जिस ब्राह्मणने इनका स्पर्श अज्ञानतासे किया हो तो वह सावधान होकर आचमन करै ॥ २८४ ॥ यदि ये ब्राह्मणका स्पर्श करलें तौ एक रात्र दूध पिये, और पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श करलें तौ घृतको खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥ २८५ ॥

यस्तु च्छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८६ ॥

जो ब्राह्मण श्वपाककी छायामें चले तौ स्नान कर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होता है ॥ २८६ ॥

अभिशस्तो द्विजोऽरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ॥ २८७ ॥ वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥ अब्भक्षो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥ २८८ ॥

जो ब्राह्मण अभिशस्त (कलंकित) हो वह वनमें जाकर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करै, और एक महीनेतक उपवास करै, या चांद्रायण व्रतको करै ॥ २८७ ॥ यदि झूंटाही दोष लगाहो तो भ्रूणहत्याका व्रत करै बारह दिनतक केवल जलहीको पीकर पराकव्रतका अनुष्ठान करै (तब शुद्ध होता है) ॥ २८८ ॥

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥
निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २८९ ॥

मूर्ख ब्राह्मणको मारकर शूद्रकी हत्याका प्रायश्चित्त करै और गुणी निर्गुणको मारकर पराकव्रतका अनुष्ठान करै ॥ २८९ ॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥
तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९० ॥

जिसको उपपातक लगा हो यदि वह मनुष्य मरजाय तो उसका संस्कार करनेवाला दो प्राजापत्यको करै ॥ २९० ॥

प्रभुंजानोऽतिसस्नेहं कदाचित्स्पृश्यते द्विजः ॥
त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्निःस्नेहमथवा चरेत् ॥ २९१ ॥

स्नेह सहित पदार्थको भोजन करते समय ब्राह्मणको कदाचित् कोई छूले तो तीन रात्रतक नक्तव्रत करै अथवा रूखा भोजन करै ॥ २९१ ॥

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च ॥
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥ २९२ ॥

बिल्ली, कौआ, कुत्ता, और नौलेकी उच्छिष्टको, केश और कीटयुक्त द्रव्यको भोजन करनेसे तेजकी बढानेवाली ब्राह्मी औषधीका क्वाथ बनायकर पान करै ॥ २९२ ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥
स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २९३ ॥

ऊंट गाडीपर वा गधेकी सवारीपर बैठकर ब्राह्मण स्नानकर प्राणायाम करै तब शुद्ध होता है ॥ २९३ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥
त्रिः पठेद्वा यतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २९४ ॥

क्रमानुसार प्राणोंको रोककर व्याहृति (भूः इत्यादि) ॐकार और शिरो मंत्रयुक्त गायत्रीका तीनवार पाठ करै उसको प्राणायाम कहते हैं ॥ २९४ ॥

शकृद्द्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥
क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्यं तथा दधि ॥ २९५ ॥

गोबरसे दूना गोमूत्र, चौगुना घी, अठगुना दूध और अठगुना दही डाले इसे पंचगव्य कहते हैं ॥ २९५ ॥

पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत ॥
उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥ २९६ ॥

पंचगव्यका पान करनेवाला शूद्र, मदिराका पान करनेवाला ब्राह्मण यह दोनों समान पापके अधिकारी हैं, यह दोनोंही मनुष्य चिरकालतक नरकमें वास करते हैं ॥ २९६ ॥

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्यं भक्षयंति याः ॥
दुग्धं हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् ॥ २९७ ॥

जो बकरी गौ और भैंस यह अपवित्र (विष्टा) इत्यादिका भोजन करती हों तो उनके दूधको हव्यमें (जो देवताओंको द्रव्य दिया जाता है) और कव्यमें (जो पितरोंके निमित्त दिया जाता है) न लगावै, और इनके गोबरसे भी न लीपै ॥ २९७ ॥

ऊनस्तनी अधीका वा या च स्वस्तनपायिनी ॥
तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत् ॥ २९८ ॥

और जिनके थन छोटे वा बडे हों अथवा चारसे अधिकहों अथवा जो अपना स्तनआपही पीतीहो तो उनके दूधकोहवनमें ग्रहण न करै जो करेगा तौ किया ना कियाबराबर होगा२९८॥

ब्राह्मौदने च सोमे च सीमंतोन्नयने तथा ॥
जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९९ ॥

ब्रह्मौदनमें, सोम यज्ञमें, सीमन्तोन्नयनमें, और जातकर्मके श्राद्ध और नवक श्राद्धमें जो भोजन करताहै वह चांद्रायणव्रतको करै ॥ २९९ ॥

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ३०० ॥

राजाका अन्न तेजको और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको नष्ट करता है (इस कारण वह भोजन करनेके योग्य नहीं है) और जो मनुष्य अपनी कन्याके अन्नको भोजन करता है वह मानों पृथ्वीके मलको भोजन करता है (कन्याका अन्न और मल दोनोंही समान हैं) ॥ ३०० ॥

स्वसुता अप्रजाता चेन्नाश्नीयात्तद्गृहे पिता ॥
भुंक्ते तस्या माययान्नं पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ३०१ ॥

कन्याके संतानआदि उत्पन्न न हुई हो तो पिता उसके गृहमें भी भोजन न करै, और जो ऐसा करता है वह पूयनामक नरकमें प्राप्त होता है (इन दोनों वचनोंसे तो यह सिद्ध हुआ कि दौहित्र और दौहित्रीके जन्म होनेपर जमाईके घरमें और दौहित्र इत्यादिके जन्म होनेके प्रथम अपने गृहमें कन्याके हाथसे खानेमें कोई बाधा नहीं है) ॥ ३०१ ॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३०२ ॥

चारों वेदोंका पढनेवाला, सर्वशास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला (ब्राह्मण) जो राजाके घरमें जाकर भोजन करता है (तो वह राजाके यहांका अन्न खानेवाला) विष्ठाके कीडे होकर जन्म लेता है ॥ ३०२ ॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥ पतंति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः ॥ ३०३ ॥ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ त्रिपक्षे चैव कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ३०४ ॥ आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥ ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ॥ ३०५ ॥ द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥ पतंति पितरस्तस्य ब्रह्मलोके गता अपि ॥ ३०६ ॥

जो ब्राह्मण विनाही आपत्तिके आयेहुए नवकश्राद्ध × तीन पक्षका श्राद्ध, षाण्मासिक श्राद्ध मासिक और वार्षिक श्राद्धमें जो भोजन करता है उसके पितर गिरकर नरकको जाते हैं ॥ ३०३ ॥ जिसने नवक श्राद्धमें भोजन किया है वह चांद्रायण व्रतको करै, और जिसने मासिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पराक व्रतको करै, और जिसने त्रिपक्षके श्राद्धमें

१ जो यज्ञोपवीतके समय चावल बनते हैं ।

× मरनेके दिनसे चौथे, पाँचवे नौवें और ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होताहै उसको नवक श्राद्ध कहते हैं ।

और छठे मासके श्राद्धमें भोजन किया है वह कृच्छ्रव्रतको करै ॥ ३०४ ॥ और जिसने वार्षिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पादकृच्छ्रको करै, और दूसरे वार्षिक श्राद्धमें भोजन करनेवाला एक दिनतक उपवास करै, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यको न करके महीनेके श्राद्धमें पर्व (पूर्णमासीआदि) में ॥ ३०५ ॥ द्वादशाह श्राद्धमें [कुलाचारके अनुसार वा युक्त गणनाके द्वारा आयुका भाव निर्णय होनेपर बारहदिनमें अर्थात् श्राद्धके दूसरे दिनमें जो कर्तव्य सपिंडीकरणान्त कार्य किया जाता है उसका नाम द्वादशाह श्राद्ध है] त्रिपक्ष श्राद्धमें और वार्षिक श्राद्धमें जो श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करता है उसके पितर ब्रह्मलोकमें जाकर भी पतित होते हैं (वहांसे गिरकर नरकको जाते हैं) ॥ ३०६ ॥

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नंति वै द्विजाः ॥
भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ३०७ ॥

जिसके घरमें पक्षमें अथवा महीनेमें जो ब्राह्मण भोजन न करते हों तौ उस दुष्टचित्तके अन्नको खाकर ब्राह्मण चाँद्रायण व्रतको करै ॥ ३०७ ॥

एकादशाहेऽहोरात्रं भुक्त्वा संचयने त्र्यहम् ॥
उपोष्य विधिवद्विप्रः कूष्मांडीं जुहुयाद्घृतम् ॥ ३०८ ॥

मृतकके ग्यारहवें दिन भोजन करके अहोरात्र (एकरात एकदिन) और अस्थिसंचयके दिन भोजन करके तीन दिन विधिपूर्वक उपवास करकै ब्राह्मण बैठे और घृतसे हवन करै ॥ ३०८ ॥

यत्र वेदध्वनिश्रांतं न च गोभिरलंकृतम् ॥
यत्र बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्गृहम् ॥ ३०९ ॥

जो घर वेदकी ध्वनिसे पवित्र नहीं, जो घर गौसे शोभायमान नहीं है, और जो घर बालकोंसे परिपूरित नहीं है वह घर स्मशानके समान है ॥ ३०९ ॥

हास्येऽपि बहवो यत्र विना धर्मं वदंति हि ॥
विनापि धर्मशास्त्रेण स धर्मः पावनः स्मृतः ॥ ३१० ॥

हास्यके समयमें भी बहुतसे मनुष्य धर्मके विरुद्ध कहते हों तौ धर्मशास्त्रके विनाही वह धर्म पवित्र माना गया है ॥ ३१० ॥

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम ॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३११ ॥

जो मनुष्य अज्ञानतासे हीन वर्णको (अपनेसे अधम जातिको) अभिवादन करता है तो वह मनुष्य स्नानकर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ३११ ॥

समुत्पन्ने यदा स्नाने भुंक्ते वापि पिबेद्यदि ॥
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ३१२ ॥

जो (मनुष्य) स्नानके योग्य हो और वह विनाही स्नान किये यदि भोजन करले या जलपान करले तौ वह स्नान करके एकाग्र चित्तसे आठ हजार गायत्रीका जप करै॥३१२॥

अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥ मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥ ३१३ ॥ दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ॥ कार्पासं दंतकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥ ३१४ ॥

जो मनुष्य उंगलीसे दतौन करता है, और जो केवल लवणका भोजन करता है, जो मिट्टीका भोजन करता है, यह गोमांसभक्षणकी समान है (अर्थात् उपरोक्त तीनों कार्योंको जो मनुष्य करता है उसको गोमांस भक्षण करनेका पाप होता है) ॥ ३१३ ॥ दिनमें कैथकी छायाका निवास, रात्रिमें दहीका भोजन, शमी और कपासकी लकडीकी दतौन करनेसे विष्णुकीभी लक्ष्मी हर जातीहै ॥ ३१४ ॥

शूर्पवातो नखाग्रांबु स्नानवस्त्रं घटोदकम् ॥ मार्जनीरजः केशांबु देवतायतनोद्भवम् ॥ ३१५ ॥ तेनावगुंठितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥ मार्जनीरेणुकेशांबु हंति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ३१६ ॥

सूपकी पवन, नखोंके अग्रभागका जल, स्नानका वस्त्र, घटका जल, बुहारीकी धूरि, केशोंका जल यदि यह देवस्थानके हों ॥ ३१५ ॥ और जो मनुष्य इनमें लोटताहै वह मानो गंगाजलमें लोटताहै (देवस्थानको छोडकर अन्यस्थानकी) उडीहुई बुहारीकी धूरि, और केशोंका जल इन दोनोंका संसर्ग मनुष्योंके दिनमें किये हुए पुण्योंका नाश करताहै ॥३१६॥

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके ऊषरस्थले ॥ अंतर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले सुरालये ॥ ३१७ ॥ वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥ शुचौ देशे तु संग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता ॥ ३१८ ॥

बँमईकी मट्टी, चुहोंके भट्टेकी मट्टी, जलमेंकी मट्टी, श्मशानकी मट्टी देवताओंके मंदिरकी मट्टी, ॥ ३१७ ॥ और जिसे बैलोंने खोदाहो ऐसी मट्टी इन सात स्थानकी मट्टीको कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ग्रहण न करै और पवित्रस्थानसे कंकर और पत्थर जिसमें न हों ऐसी शुद्ध मृत्तिकाका ग्रहण करै ॥ ३१८ ॥

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दंतधावने ॥ स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ॥ ३१९ ॥ यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥ युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२० ॥

विष्ठात्यागनेके समयमें, मैथुनमें, मूत्रत्याग, होम, और दतौनके समयमें स्नान, भोजन, और जपकरनेके समयमें सदा मौन धारण करै ॥ ३१९ ॥ जो मनुष्य वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मौनको धारणकर भोजन करताहै वह हजार करोड युगतक स्वर्गमें वास करताहै ॥ ३२० ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२१ ॥

प्रौढपाद (पाँवपसारकर) स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवताओंकी पूजा, स्वाध्याय, और पितरोंका तर्पण न करै ॥ ३२१ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात्पातयित्वा द्विजोत्तमम् ॥
नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं भवेत् ॥ ३२२ ॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको पातक लगाकर सर्वस्वभी दान करताहै उसका सब (दानसे उत्पन्नहुआ फल) नष्टहोकर भ्रूणहत्याके फलको प्राप्त होताहै ॥ ३२२ ॥

ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि प्रशस्यते ॥ ३२३ ॥

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और स्त्रियोंको प्रसवकालमें (संतान होनेके समयमें) जो दान करनेको नैमित्तिकदान कहाहै इसकारण वह दान रात्रिमेंभी श्रेष्ठ है ॥ ३२३ ॥

क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ॥
यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् ॥ ३२४ ॥

जो मनुष्य रेशम, कपास, वा पट्टसूत्रके बनेहुए यज्ञोपवीतको दान करताहै वह वस्त्रदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२४ ॥

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ॥
तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२५ ॥

घृतसे भरेहुए उत्तम काँसीके पात्रको भक्तिपूर्वक यथाविधिसे जो दान करताहै तौ उसको अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ ३२५ ॥

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छोभने च उपानहौ ॥
स गच्छन्यमार्गेपि अश्वदानफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥

जो मनुष्य श्राद्धके समयमें उत्तम उपानहको दान करताहै वह कुमार्गगामी होकरभी अश्वदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२६ ॥

तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्णं तु समाहितः ॥
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गं नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३२७ ॥

जो मनुष्य भक्तिसहित तेलसे भरेहुए पात्रको दानकरताहै वह निश्चयही स्वर्गमें जाताहै इसमें किंचिन्मात्रभी संदेह नहीं ॥ ३२७ ॥

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥
पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गे लोके महीयते ॥ ३२८ ॥

दुर्भिक्षके समयमें अन्नका देनेवाला, सुकालके समयमें सुवर्णका दान करनेवाला, और वनमें (दुर्गम वन,जिसमें जल न हो) जलका देनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाताहै ॥३२८॥

यावदर्धप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥
पृथिवी तेन दत्ता स्यादीदृशीं गां ददाति यः ॥ ३२९ ॥

गौ जबतक अधब्याई हो (अर्थात् संतान सम्पूर्ण रूपसे पृथ्वीपर न आई हो) तौ वह तबतक पृथ्वीकी समान है, जो मनुष्य इसप्रकारकी गौका दान करता है उसको पृथ्वीके दानकरनेकी समान फल प्राप्तहोताहै ॥ ३२९ ॥

तेनाग्नयो हुताः सम्यक्पितरस्तेन तर्पिताः ॥
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाह्निकम् ॥ ३३० ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन गौको ग्रास (खानेको) देताहै वह [इस ग्रासके दानसेही] अग्निहोत्र, पितृतर्पण, और देवताओंकी पूजा इन सभीके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३३० ॥

जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ ३३१ ॥

जन्मसे लेकर जितने पाप किये हैं वह, और मातापिताका जो अपराध कियाहै वह, शीघ्रही वस्त्रदान करनेसे निःसंदेह नष्टहोजातेहैं ॥ ३३१ ॥

कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ ३३२ ॥

जो मनुष्य शृंग आदिके सहित काली मृगछालाका दान करताहै वह नरकमें पडेहुए पूर्वपुरुषोंके एकसो एक कुलोंका उद्धार करताहै ॥ ३३२ ॥

आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥
शूलपाणिस्तु भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥ ३३३ ॥

सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चंद्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव; यह पृथ्वीके दानकरनेवालेकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३३३ ॥

वालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तर्षिमंडलम् ॥ गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीर्यति ॥ ३३४ ॥ क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ॥ ३३५ ॥

सप्तर्षिमंडलपर्यन्तकी जो बालु (रेते) की राशि है वह सौवर्ष पीछे एक २ पल कमहोनेसे नष्ट होजातीहै ॥ ३३४ ॥ परन्तु कन्याके दान करनेसे जो फल होताहै वह नष्ट नहीं होता ॥ ३३५ ॥

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥ सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोधिकम् ॥ ३३६ ॥ पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥ सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३३७ ॥

दुःखकी अवस्थामें जो प्राणकी रक्षा करता है उसको दानके तीन [धर्म, अर्थ, और काम] फल प्राप्तहोते हैं, समस्त दानके बीचमें विद्याका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है ॥ ३३६ ॥ पुत्रादि आत्मीय मनुष्यको और ब्राह्मणको विद्याका दान दे और कपटी मनुष्यको विद्याका दान न दे, किसी मनोरथसे विद्याका दान करनेवाला स्वर्गको और निष्काम विद्याका दाता मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ ३३७ ॥

ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥ मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ॥ ३३८ ॥ शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥ तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ३३९ ॥

अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जो ब्राह्मण वेदका ज्ञाता, सवशास्त्रका पारदर्शी, मातापिताका भक्त, ऋतुके समयमें अपनी ही स्त्रीमें गमनकरनेवाला, शीलवान्, उत्तम आचरणोंसे युक्त, और प्रातःकालके समय [ब्राह्म मुहूर्तमें] स्नान करनेवाला हो उसीको दान करके दे ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

संपूज्य विदुषो विप्रानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ॥
तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥ ३४० ॥

प्रथम विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करके अन्य ब्राह्मणको दानदे, और ऐसे कार्यको न करै कि जिसे न कभी सुना और न कभी देखाहो ॥ ३४० ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः ॥
पितॄणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥ ३४१ ॥

इसके उपरान्त कहताहूं कि श्राद्धकर्ममें जिन ब्राह्मणोंको पितरोंके निमित्त दान देनेसे अक्षय होताहै और जिन ब्राह्मणोंको दान देनेसे निष्फल होताहै ॥ ३४१ ॥

न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ॥ नित्यं चानृतवादी च तांस्तु
श्राद्धे न भोजयेत् ॥ ३४२ ॥ हिंसारतं च कपटमुपगुह्य श्रुतं च यः ॥ किंकरं
कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा॥ ३४३॥ दुश्चर्माणं शीर्णकेशं पांडुरोगं जटा-
धरम् ॥ भारवाहिनं रौद्रं च द्विभार्यं वृषलीपतिम् ॥ ३४४ ॥ भेदकारी भवे-
च्चैव बहुपीडाकरोपि वा ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४५ ॥
बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान् ॥ एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्तु
प्रतिग्रहः ॥ ३४६ ॥

जो अंगहीन हैं, रोगी, वेद और धर्मशास्त्रोंको नहीं जानते, सर्वदा मिथ्या भाषण करतेहैं उनको श्राद्धमें भोजन करना योग्य नहीं ॥ ३४२ ॥ हिंसक, कपटी, वेदको छिपानेवाला, नौकर, कपिल, काना, कुष्ठरोगी, ॥ ३४३ दुश्चर्मा (जिसके शरीरका चाम बिगड़गयाहो) शीर्णकेश, (जिसके शिरके बाल गिरगयेहों,) पांडुरोगी, जटाधारी, बोझेका उठानेवाला, भयानक, दो स्त्रियोंवाला, और वृषलीपतिको[1] श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ३४४ ॥ जो मनुष्य परस्परमें भेद डलवानेवाला हो, अनेकोंको पीडादायक, अंगहीन, वा जिसका कोई अंग अधिक हो उसकोभी श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ३४५ ॥ बहुत भोजन करनेवाला, जिसके मुखमें दीनता हो, दूसरोंके गुणोंमें दोषोंको देखनेवाला, और क्रूरबुद्धिवाले पुरुषको कदापि धनादि वा पात्रका अन्न दान करके न दें ॥ ३४६ ॥

अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥
अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ ३४७ ॥

यदि कोई मनुष्य किसी शारीरिक अंगके विकारके वशसे पंक्तिको दूषित करनेवाला हो अर्थात् अंगहीन हो परन्तु वह वेद इत्यादि शास्त्रोंका जाननेवाला हो तौ यमराजने उसको निर्दोषी मानकर पंक्तिको पवित्र करनेवाला कहाहै ॥ ३४७ ॥

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ॥
काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ॥ ३४८ ॥

श्रुति और स्मृतिही ब्राह्मणोंके दो नेत्र हैं जो एकका जाननेवाला है; (श्रुति और स्मृति, इन दोनोंमेंसे जो एकका जाननेवाला है) वह एकनेत्रसे हीन है, और जो दोनों विषयोंको नहीं जानताहै उसको अंधा कहाहै ॥ ३४८ ॥

---

१ शूद्रा, बन्ध्या, मृतवत्सा, और कन्यावस्थामें ऋतुमतीका नाम वृषली है ।

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥
तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वंधकस्यात्रिरब्रवीत् ॥ ३४९ ॥

जिसमें श्रुति, स्मृति, शास्त्र न हों, न शील हो, न कुल हो, उस अंधे और अधमको श्राद्धमें अन्नदान न करै यह अत्रिऋषिने कहाहै ॥ ३४९ ॥

तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥
न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ ३५० ॥

इसकारण वेद और धर्मशास्त्रोंसे ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व है, केवल वेदसेही ब्रह्मत्व प्राप्त नहीं होता, यह अत्रिका वचन है ॥ ३५० ॥

योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥ लौकिकज्ञश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैवाधरोत्तरम् ॥ ३५१ ॥ वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित् ॥ व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥ तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ ॥ ३५२ ॥ यावतो ग्रसते ग्रासान्पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥३५३॥ नरकस्था विमुच्यंते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ॥ तस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥ ३५४ ॥

योगशास्त्रके कथित जिसके नेत्र हों, और अपने चरणोंके जो अग्रभागको देखताहो, अर्थात् कहीभी कुदृष्टिसे जो न देखताहो, लौकिक व्यवहारका जाननेवाला हो, शास्त्रमें कहेहुए ऊंच नीचको जो देखनेवाला हो ॥ ३५१॥ ज्ञानवान् हो शास्त्र और वेदका जाननेवाला हो और जो व्रतकरनेवाला तथा कुलीन हो, वेद और स्मृतियोंमें सदा प्रीति रखनेवाला हो, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें जिमावै तौ पितरोंकी अक्षय तृप्ति होतीहै ॥ ३५२ ॥ जितने ग्रास उपरोक्त लक्षणयुक्त ब्राह्मण भोजन करता है उतनेही प्रकाशमान तेजस्वी पितर पिता, पितामह और प्रपितामह नरकमें पडेहुए भी मुक्तहोकर शीघ्रही स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं, इसकारण श्राद्धके समय यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करै ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ॥
इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥ ३५५ ॥

जिस ब्राह्मणका पिता मरगयाहो वह यदि प्रत्येक महीनेकी अमावसके दिन श्राद्ध न करै तो प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ ३५५ ॥

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥
धनं पुत्राः कुलं तस्य पितृनिःश्वासपीडया ॥ ३५६ ॥

जो गृहस्थ कन्याके सूर्य अर्थात् कन्यागतोंमें श्राद्ध नहीं करता उसका धन, पुत्र, और वंश पितरोंके श्वासकी पीडासे नष्ट होजाता है ॥ ३५६ ॥

कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ॥ शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥ ३५७ ॥ ततो वृश्चिकसंप्राप्ते निराशाः पितरो गताः ॥ पुनः

स्वभवनं यांति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५८ ॥ पुत्रं वा भ्रातरं वापि दौहित्रं पौत्रकं तथा ॥ पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥ ३५९ ॥

कन्याराशिपर सूर्यके होनेसे सब पितर अपने उत्तम पुत्रोंके पास आजातेहैं, और जबतक वृश्चिककी संक्रान्तिका दर्शन न हो तवतक प्रेतपुरी सूनी रहती है ॥ ३५७ ॥ और जब सूर्य वृश्चिक राशिमें आतेहैं तब पितृगण [श्राद्धके बिना पायेहुए] उनको दारुण शाप देकर अपने स्थानको चले जातेहैं ॥ ३५८ ॥ पितरोंके कार्यको पुत्र, भाई, धेवता और पोता यदि यह भक्तिसहित करतेहैं तौ यह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५९ ॥

यथा निर्मथनादग्निः सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥ तथा संदृश्यते धर्मः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६० ॥ यः प्राप्नोति तदा सर्वं कन्यागते च गंगया ॥ सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ ३६१ ॥ सर्वयज्ञफलं विद्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६२ ॥ महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः ॥ घनैर्मुक्तो यथा भानू राहुमुक्तश्च चंद्रमाः ॥ ३६३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः संतापं च विलंघयेत् ॥ सर्वसौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६४ ॥ सर्वेषामेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते ॥ मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोधनम् ॥ ३६५ ॥ श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ॥ अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ३६६ ॥ वैश्यस्य चान्नमेवाज्यं शूद्रान्नं रुधिरं भवेत् ॥ एतत्सर्वं मया ख्यातं श्राद्धकाले समुत्थिते ॥ ३६७ ॥

जिस प्रकारसे सम्पूर्ण काष्ठोंमें अग्नि मथन करनेसे जानी जातीहै उसी प्रकारसे श्राद्ध करनेसे विना धर्मका स्वरूप ज्ञात नहीं होता इसमें संदेह नहीं॥३६०॥जो गंगाजीपर कन्याके सूर्यमें श्राद्ध करताहै उसको सम्पूर्ण शास्त्रोंके पढनेका, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल, सब यज्ञोंका फल, और विद्यादानका फल निःसंदेह प्राप्त होताहै ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ जिसप्रकार सूर्य भगवान् मेघोंके ग्राससे मुक्त होतेहै, और चंद्रमा जिसप्रकारसे राहुके ग्राससे मुक्त होताहै उसी प्रकारसे श्राद्धके दानके प्रभावसे महापातकी मनुष्य भी सर्व पापोंसे तथा उपपातकोंसे छूटकर सर्व प्रकारके सुखोंको प्राप्त करतेहैं इसमें कुछभी सन्देह नहीं ॥ ३६३ ॥ ॥ ३६४ ॥ सब दानोंके बीचमें श्राद्धदानही श्रेष्ठ है कारण कि सुमेरुपर्वतकी समान किये हुए पापोंकोभी श्राद्धका दान शुद्ध करदेताहै ॥ ३६५ ॥ मनुष्य श्राद्ध करनेसे स्वर्ग लोकमें सन्मान पाताहै, श्राद्धके समय ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है, क्षत्रीका अन्न दूधकी समान है, वैश्यका अन्न घृतरूप है, और शूद्रका अन्न रुधिरकी समान है इन सबका वर्णन मैंने तुमसे किया ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

वैश्वदेवे च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ॥ अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ ३६८ ॥ व्यवहारानुपूर्व्येण धर्मेण बलिभिर्जितम् ॥ क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ॥ ३६९ ॥

बलि, वैश्वदेव, होम, और देवताओंके पूजनमें वेदोक्त मंत्रोंको जप, ऋक्, यजु, और सामवेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित होनेके कारण ब्राह्मणका अन्न निर्मल अमृतरूप है ॥ ३६८ ॥

व्यवहारकी रीतिसे धर्मपूर्वक बलवानोंने जीतकर संचित कियाहै इस कारण क्षत्रीका अन्न दूधकी समानहै, और यज्ञकी रक्षा करनेके कारण वैश्यका अन्न घृतरूप है ॥ ३६९ ॥

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ॥
पशुर्म्लेच्छोऽपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥ ३७० ॥

देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल, यह दश प्रकारके ब्राह्मण कहे हैं ॥ ३७० ॥

संन्ध्या स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥ अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७१ ॥ शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥ निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७२ ॥ वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥ सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७३ ॥ अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥ आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते॥३७४॥ कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥ वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७५ ॥ लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभं क्षीरसर्पिषः ॥ विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥ चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥ मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७७ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः॥३७८॥ वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥ निश्शंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥ निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चंडाल उच्यते ॥ ३८० ॥

जो प्रतिदिन संध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजा अतिथिकी सेवा और जो वैश्वदेव करतेहैं उनको "देव" ब्राह्मण कहतेहैं [इन सब कर्मोंके करनेवाले ब्राह्मणकी देवसंज्ञा है) ॥३७१॥ शाक, पत्ते, फल, मूलको भक्षण करनेवाला और जो वनमें निवासकर नित्य श्राद्धमें रत रहताहै ऐसे ब्राह्मणको "मुनि" कहाहै ॥ ३७२ ॥ जो प्रतिदिन वेदान्तको पढ़ताहै और जिसने सबका संग त्यागदियाहै, सांख्य और योगके ज्ञानमें जो तत्पर है उस ब्राह्मणको "द्विज" कहाहै ॥ ३७३ ॥ जिसने रणभूमिमें सबके सन्मुख धान्वीयोंको युद्धके आरंभमें जीताहो और अस्त्रोंसे परास्त कियाहो उस ब्राह्मणको "क्षत्री" कहतेहैं ॥ ३७४ ॥ खेतीके कार्यमें रत और गौकी पालनामें लीन, और वाणिज्यके व्यवहारमें जो ब्राह्मण तत्पर हो उसको 'वैश्य' कहतेहैं ॥ ३७५ ॥ लाख, लवण, कुसुंभ, घी, मिठाई, दूध, और मांसको जो ब्राह्मण बेचताहै उसको 'शूद्र' कहतेहैं ॥ ३७६ ॥ चोर, तस्कर, [बलपूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेवाला] सूचक, [निकृष्ट सलाहका देनेवाला,] दंशक [कडवा बोलनेवाला] और सर्वदा मत्स्य मांसके लोभी ब्राह्मणको "निषाद" कहतेहैं ॥ ३७७ ॥ जो ब्रह्म वेद और परमात्माके तत्त्वको कुछ नहीं जानता; और केवल यज्ञोपवीतके बलसेही अत्यन्त गर्व प्रकाश करताहै, इस पापसे उस ब्राह्मणको 'पशु' कहतेहैं ॥ ३७८ ॥जो निःशंकभावसे (पापका भय न करके) बावडी, कूप, तालाव, बाग, छोटा तालाव इनको बन्द करताहै उस ब्राह्मणको

'म्लेच्छ' कहाहै ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीन (संध्या इत्यादि नित्य नैमित्तिक कर्मोंसे हीन) मूर्ख, सर्व धर्म (सत्यवादिता इत्यादि) से रहित और सर्व प्राणियोंके प्रति जो निर्दयता प्रकाश करताहै उस ब्राह्मणको' चांडाल' कहतेहैं ॥ ३८० ॥

वेदैर्विहीनाश्च पठंति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ॥
पुराणहीना कृषिणो भवंति भ्रष्टास्ततो भागवता भवंति ॥ ३८१॥

जिनको वेद नहीं आता वह शास्त्रको पढतेहैं, जिन्हें शास्त्र नहीं आता वह पुराणोंको पढतेहैं, और जिन्हें पुराण नहीं आता वह खेती करतेहैं और जिनसे खेती नहीं होती वह वैरागी होजातेहैं ॥ ३८१ ॥

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः ॥
श्राद्धयज्ञे महादाने वरणीयाः कदाच न ॥ ३८२ ॥

ज्योतिषी, अथर्ववेदका ज्ञाता, कीर (जो तोतेकी समान केवल पढाई हुई बोली बोलता हो) और पुराणके पाठकरनेवालेको श्राद्ध, यज्ञ, और महादानमें कदापि वरण न करै ॥ ३८२ ॥

श्राद्धे च पितरो घोरं दानं चैव तु निष्फलम् ॥
यज्ञे च फलहानिःस्यात्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ३८३ ॥

उपरोक्त ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन करानेसे पितर घोर नरकमें जातेहैं, दान देनेसे दान निष्फल होताहै, यज्ञमें वरण करनेसे फलकी हानि होतीहै, इसकारण इन कामोंमें ऐसे ब्राह्मणोंको वर्जदे ॥ ३८३ ॥

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ॥
चतुर्विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८४ ॥

भेडोंका पालनेवाला, चित्रकार, वैद्य, और नक्षत्रपाठक, (जो घर २ नक्षत्र तिथि बताताहुआ फिरताहै) यह चार प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान पंडित होनेपरभी पूजनीय नहींहैं ॥ ३८४ ॥

मागधो माथुरश्चैव कापटः कीटकानजौ ॥
पंच विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८५ ॥

मगध देशके निवासी, माथुर, कपट देशका रहनेवाला, कीकट, और कान देशमें जो उत्पन्न हुआ हो, यह पांच ब्राह्मण बृहस्पतिकी समान पंडित होनेपरभी पूजनीय नहींहैं ॥ ३८५ ॥

क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ॥
तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिंडं न विद्यते ॥ ३८६ ॥

मोल लीहुई कन्या भार्या नहीं होसकती इसकारण उससे उत्पन्न हुए पुत्र पितरोंको पिंड देनेके अधिकारी नहींहैं ॥ ३८६ ॥

अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिबते द्विजः ॥
सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥ ३८७ ॥

जो ब्राह्मण अष्टशल्लीके जलको अंजुलीसे पीताहै वह जल मदिरा और गोमांसभक्षणकी समान है ॥ ३८७ ॥

उर्ध्वजंघेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥
तावच्चंडालरूपेण यावद्गंगां न मज्जति ॥ ३८८ ॥

जो ऊर्ध्वजंघ (जंघा ऊपरको करकै) ब्राह्मणके दोनों चरणोंको धोतेहैं वह जबतक गंगा स्नान नहीं करते तबतक चांडाल (अशुद्धि) अवस्थामें रहते हैं ॥ ३८८ ॥

दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥
अजाखुररजःस्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३८९ ॥

दीपक, शय्या, और आसनकी छाया (जो ऊपर पडे तो) कपासके वृक्षकी दतौन और बकरीके खुरोंसे उडीहुई धूरि इसका स्पर्श इन्द्रकी भी लक्ष्मी हरताहै ॥ ३८९ ॥

गृहाद्दशगुणं कूपं कूपाद्दशगुणं तटम् ॥
तटाद्दशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥ ३९० ॥

घरके स्नानकी अपेक्षा कुएका स्नान करनेसे दशगुणा फल होताहै, कुएसे दसगुणा तटपर और तटसे दसगुणा नदीमें स्नान करनेसे फल मिलताहै, और गंगाके स्नानसे असंख्य पुण्य प्राप्त होताहै उसकी गणना नहीं होसकती ॥ ३९० ॥

स्रवद्यद्ब्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥
वापी कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥ ३९१ ॥

ब्राह्मणोंको स्रोतोंका जल, क्षत्रियोंको सरोवरका जल, वैश्यको वापी कूपका जल, और शूद्रको बरतनका जल साधारण स्नानके उपयोगी है वा इस वचनसे वर्णानुसार इन सब जलोंके पार्थक्यके निर्णय करनेसे जाना जाताहै, स्रोतेका जल सबसे श्रेष्ठ है, सरोवरका जल उससे कम है, वापी और कुएका जल उससे अपकृष्ट है और बरतनका जल सबसे निषिद्ध है ॥ ३९१ ॥

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यात्तिलतर्पणम् ॥ अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥ ३९२ ॥ गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ॥ मघा पिंडप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९३ ॥

यदि किसीका भृगुपतन हो तो तीर्थका स्नान, महादान, और तिलसे तर्पण, एक वर्ष पर्यन्त न करै ॥ ३९२ ॥ गंगापर, गयामें, तथा अमावस्याके दिन अथवा क्षय तिथिमें और वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीमुख श्राद्धके करनेमें पिंडदानका मघानक्षत्रके होनेपर कुछ दोष नहींहै इनके अतिरिक्त अन्य स्थलमें मघानक्षत्रमें श्राद्ध वर्जित है ॥ ३९३ ॥

घृतं वा यदि तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥
चत्वारो ह्याज्यसंस्थाना हृतं नैव तु वर्जयेत् ॥ ३९४ ॥

---

१ जो पहाडके ऊपर मुक्तिके निमित्त गिरकर मरते हैं उसको महागुरुनिपातन अर्थात् भृगुपतन कहते हैं ।

घृत, तेल, दूध, और दधि यह चार वस्तु चाहैं नीचसेभी प्राप्त हौं तौभी इनके द्वारा हवन करनेमें किसीप्रकारका दोष नहीं है ॥ ३९४ ॥

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्भाषितानत्रिणा स्वयम् ॥ इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्मनिष्ठिताः ॥ ३९५ ॥ य इदं धारयिष्यंति धर्मशास्त्रमतंद्रिताः ॥ इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यंति त्रिविष्टपम् ॥ ३९६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ॥ आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महतीं श्रियम् ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिमहर्षिस्मृतिः समाप्ता ॥ १ ॥

अत्रिजीने कहेहुए इन धर्मोंको सुनकर उन धर्मपरायण ऋषियोंने महात्मा अत्रिजीसे यह कहा ॥ ३९५ ॥ कि, जो मनुष्य आलस्यको छोडकर इस धर्मशास्त्रको धारण करेंगे (अर्थात् इसके मर्मको ग्रहण करेंगे) वह इस लोकमें यश प्राप्त कर अंतमें स्वर्गधामको प्राप्त होंगे ॥ ३९६ ॥ इसके पाठ करनेसे विद्यार्थी विद्याको और धनकी इच्छा करनेवाला धनको और आयुकी इच्छा करनेवाला आयुको सौन्दर्यश्रीकी इच्छा करनेवाला सौन्दर्यश्रीको प्राप्त करेगा ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ॥ १ ॥



॥ श्रीः ॥

विष्णुस्मृतिः २.

भाषाटीकासमेता।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारंभः ॥ विष्णुमेकाग्रमासीनं श्रुतिस्मृतिविशारदम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे कलापग्रामवासिनः ॥ १ ॥ कृते युगे ह्यपक्षीणे लुप्तो धर्म्मस्सनातनः ॥ तत्र वै शीर्यमाणे च धर्मो न प्रतिमार्गितः ॥ २ ॥ त्रेतायुगेऽथ संप्राप्ते कर्तव्यश्चास्य संग्रहः ॥ यथा संप्राप्यतेऽस्माभिस्तत्त्वन्नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमाणां यो धर्मो विशेषश्चैव यः कृतः ॥ भेदस्तथैव चैषां यस्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ ऋषीणां समवेतानां त्वमेव परमो मतः ॥ धर्मस्येह समस्तस्य नान्यो वक्तास्ति सुव्रत ॥ ५ ॥ श्रुत्वा धर्मं चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ॥ तस्माद्ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ धर्मकामा इमे द्विजाः ॥ ६ ॥

एकाग्र चित्तसे बैठेहुए श्रुति और स्मृतियोंके जाननेवाले विष्णुजीसे कलापग्रामके निवासी सम्पूर्ण मुनियोंने यह पूछा ॥ १ ॥ कि सतयुगके बीतजानेपर सनातनधर्म लोप होगया, और उसके बीतनेपर किसीने धर्मका शोधन नहीं किया ॥ २ ॥ इससमय धर्मका संग्रह अवश्य करना उचित है, कारण कि अब त्रेतायुग वर्तमान है; जिस रीतिसे वह धर्म हमको प्राप्त होजाय, वह रीति आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! वर्ण और आश्रमोंका धर्म तथा इनके धर्मोंकी विशेषता ऋषियोंने कीहै; अथवा परस्परके धर्मका भेद, यह आप सब हमसे कहो ॥ ४ ॥ यहांपर जितने ऋषि एकत्रित हुए हैं, उन सबमें तुम्हीं श्रेष्ठ माने गये हो; हे सुव्रत ! इसकारण तुम्हारे अतिरिक्त सम्पूर्ण धर्मका वक्ता दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥ आपके कहे हुए धर्मको सुनकर उसीके अनुसार हम सब आचरण करेंगे; यह सभी ब्राह्मण धर्मके श्रवण करनेकी अभिलाषा कर रहे हैं; इसकारण हे द्विजोंमें उत्तम ! आप धर्मका वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

इत्युक्तो मुनिभिस्तैस्तु विष्णुः प्रोवाच तांस्तदा ॥ अनघाः श्रूयतां धर्मो वक्ष्यमाणो मया क्रमात् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ॥ एतेषां धर्मसारं यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥

मुनियोंके इसप्रकार कहनेपर उससमय विष्णुजी बोले कि, हे पापरहितों ! मैं जिस धर्मको क्रमानुसार कहूंगा उसको तुम सब श्रवण करो ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र तथा इतर (प्रतिलोम सङ्कर अन्त्यजादिक) इतने वर्ण लोकमें वर्तमान हैं, मेरे कहेहुए इन्हींके धर्मके अनुसार धर्मको तुम सुनो ॥ ८ ॥

ऋतावृतौ तु संयोगाद्ब्राह्मणो जायते स्वयम् ॥
तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गर्भादौ तु प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

ऋतु (रजोदर्शनसे सोलहदिनके भीतर) में स्त्री और पुरुषके संयोगसे ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं, इसी निमित्त ब्राह्मणका संस्कार गर्भसे लेकर करै (यहांपर गर्भाधाननामक संस्कार भी अन्यत्र लिखा हुआ, वेदोक्त जान लेना) यह प्रथम संस्कार गर्भका है ॥ ९ ॥

सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥
गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भेगर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

सीमंत (अठमासा) कर्म स्त्रीका संस्कार नहीं है, परन्तु गर्भकाही है, इसकारण प्रति-गर्भमें सीमंत संस्कार करै ॥ १० ॥

जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् ॥
बहिर्निष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ॥ ११ ॥

पुत्रके उत्पन्न होनेपर वेद शास्त्रके अनुसार जातकर्म (दसूठन) करै इसके पीछे उस बालकका मंगल सहित बहिर्निष्क्रमण करै (घरसे बाहर ले जावै) ॥ ११ ॥

षष्ठे मासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ॥
तृतीयेऽब्दे च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥

जब छैः महीनेका बालक होजाय तौ उसका अन्नप्राशन करै और जब तीन वर्षका हो जाय तब केशकर्म (मुंडन) करै ॥ १२ ॥

गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ द्विजत्वे त्वथ संप्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक् ॥ १३ ॥ गर्भादेकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥ कारयेद्विजकर्माणि ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मणका गर्भसे लगाकर आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै; कारण कि ब्राह्मण होनेपरही गायत्रीका अधिकारी होता है ॥ १३ ॥ क्षत्रियका यज्ञोपवीत गर्भसे लगाकर ग्यारहवें वर्षमें करै; और वैश्यका यज्ञोपवीत बारहवें वर्षमें करना उचित है ॥ १४ ॥

---

१ यहांपर पुंसवन संस्कारका कथन इसकारण नहीं किया कि वह पुत्रही होगा ऐसा किसी कारण सो विदित होजाय तभी करना लिखाहै ।

२ इसीको "चूडाकरण चौल संस्कार" भी कहतेहैं ।

३ यह कालनियम अष्टम वर्षकाभी उपलक्षक (सूचक) है कारण कि "गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्" ऐसा मनुका वचन है । ब्रह्मवर्चसकाम हो अर्थात् बालक प्रबुद्ध हो तौ उसको शीघ्र ब्रह्मवर्चस्वी (ब्रह्मतेजःसम्पन्न) होनेके अर्थ पाँचवें वर्षमें भी उपनयन करदे क्योंकि "ब्रह्मवर्चस्यकामस्य कार्यो विप्रस्य पंचमे" ऐसा मनुका वचन है; यह मुख्यकाल यहांपर कहाहै; गौणकाल गर्भसे षोडश वर्षतकभी अन्यत्र कहा, ततःपर व्रात्य (अर्थात् संस्कारसे हीन) होजाताहै; ऐसा होनेपर व्रात्यस्तोम यज्ञ करकै उसका संस्कार होसकताहै, एवं क्षत्रियादिकके विषयमें भी मुख्य कालसे द्विगुणा काल समझलेना ।

शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥
उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

और चौथा शूद्रवर्ण सम्पूर्ण संस्कारोंसे हीन है; उसका संस्कार केवल यही कहा है कि वह तीनों वर्णोंको आत्मसमर्पण करै; अर्थात् उनकी सेवा भली भांतिसे करता रहै ॥ १५ ॥

यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥
सूत्रं वस्त्रं च गृह्णीयाद्ब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्य (यज्ञोपवीत होनेसे लेकर प्रथम आश्रम) में जिस वर्णका जो जो दंड, मेखला, (मूंजकी कौंधनी) मृगछाला, सूत्र, यज्ञोपवीत जनेऊ, वस्त्र, अन्यत्र (मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें) कहे हैं, उस २ का नियमसहित धारण करै ॥ १६ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तथा ॥ त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥ १७ ॥ अब्देवतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥ सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥ १८ ॥

ब्राह्ममुहूर्त्तमें[1] उठकर शुद्ध जलसे तीनवार आचमन[2] और प्राणायाम करके सावधान होकर मौन धारण कर बैठे ॥ १७ ॥ अप् (जल) है देवता जिनकी ऐसे मंत्रोंसे[3] देहका मार्जन (देहसे शिरपर्यन्त छींटा मार) कर (पूर्वमुख हो) सूर्योदयतक गायत्रीका जप करता हुआ बैठारहै[4] ॥ १८ ॥

अग्निकार्यं ततः कुर्यात्प्रातरेव व्रतं चरेत ॥ गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभिवादनम् ॥ १९ ॥ समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥ प्रांजलिः सम्यगासीन उपस्थाय यतः सदा ॥ २० ॥

इसके पाछे अग्निहोत्र करै, और प्रातःकालके समय ही व्रत (महानाम्न्यादि) करै; इसके उपरान्त गुरुके चरणोंमें प्रणाम[5] करै ॥ १९ ॥ समिध (हवनआदिकके अर्थ लकडी) कुशा, और जलका घडा गुरुके लिये लाकर हाथ जोड भलीभाँति जितेन्द्रिय हो गुरुके सन्मुख बैठकर गुरुकी स्तुति करके सावधानीसे रहाकरै; इस प्रकारसे सर्वदा नियम पालन करै ॥२०॥

यंयं ग्रंथमधीयीत तस्यतस्य व्रतं चरेत् ॥ सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१ ॥ द्विजातिषु चरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ॥ निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥ सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरत् ॥ २३ ॥

---

१ तीन या चार घडी रात्रि शेष रहनेपर ।

२ यहां दो वार विना मन्त्रके तीसर वार "ऋतञ्च सत्यञ्च" इस अघमर्षण सूक्तसे आचमन करना बाद श्रोत्र वंदन आदिक करकै प्राणायाम सप्तव्याहृतिक सशिरस्क सावित्रीमंत्रसे करै. ऐसा मन्वादि मे स्पष्ट लिखाहै सो वहांसे जानलेना (यहांसे ब्रह्मचर्य धर्मको अध्याय समाप्त होनेतक कहेंगे)

३ "आपो हि ष्ठा" इत्यादिक इसका मंत्र है ।

४ यह अशक्तिपक्षमे बैठकर जपकरना लिखाहै, शक्ति हो तो खडा होकर जपै क्योंकि "गायत्र्यभिमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय तां जपेत्" ऐसा वचन है ।

५ दहिने हाथसे गुरुके दहने चरणको और वांये हाथसे गुरुके वाम चरणको छुवे और शिर झुकावै।

जिस २ ग्रन्थको पढै उसी २ ग्रन्थका व्रत करै; और गायत्रीके उपदेशसे सम्पूर्ण वेदके पठनपर्यन्त ॥ २१ ॥ तीनों द्विजातियोंमें भिक्षाके समय भिक्षाटन करै, उस भिक्षाको गुरुदेवको निवेदन करकै गुरुकी सम्मतिसे ब्रह्मचारी भोजन करै ॥ २२ ॥ सायंकालकी संध्या करते समय अष्टोत्तरशत गायत्रीका जप करै और सायंकालको भोजनके लिये उसी भाँति भिक्षाके निमित्त जाय ॥ २३ ॥

वेदस्वीकरणे हृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः ॥
निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्स उदाहृतः ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी वेद पढनेमें प्रसन्न और गुरुके आधीन तथा गुरुका हितकारी होताहै; और जो मृत्युकालतक गुरुके यहांही निवास करता है उसीको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहतेहैं ॥ २४ ॥

अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥ गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥ २५ ॥ अनेनैव विधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहम् ॥ कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥

इस प्रकारसे ब्रह्मचर्य धर्मको करके वेदको पढकर गुरुदेवके घरसे आकर गृहस्थ धर्मकी आकांक्षा करै ॥ २५ ॥ शास्त्रकी विधिके अनुसार इसीप्रकार स्त्रीका पाणिग्रहण (विवाह) करै, बडे कुलमें उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्रीका ॥ २६ ॥

परिणीय तु षण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् ॥
औदुंबरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहे गृहे ॥ २७॥

विवाह करकै जो छैः महीने अथवा एक वर्षतक स्त्रीका संग नहीं करताहै, उस ब्रह्मचारीको घर २ में औदुंबरायण नामसे पुकारते हैं ॥ २७ ॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा ॥
जाते पुत्रे तथा कुर्यादग्न्याधेयं गृहे वसन् ॥ २८ ॥

जिस समय स्त्री ऋतुमती हो तौ पुत्रकी इच्छासे स्त्रीका संसर्ग करै; पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर घरमें रहता हुआ भी अग्निहोत्र ग्रहण करै ॥ २८ ॥

पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही ॥ चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न विस्मृतः ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुत्र उत्पन्न होनेके पीछे स्त्रीको विना ऋतुहुए स्त्रीसंग करनेसे गृहस्थी दोषी होताहै; और चौथे पुत्र होनेपर गृहस्थी होकेभी जान बूझकर ब्रह्मचर्यही रक्खे ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम् ॥
प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥ १ ॥

अब मैं इसके आगे गृहस्थियोंके उत्तम धर्मको कहताहूं, ब्रह्मलोकके स्थानके दाता उस धर्मको भलीभाँति सुनैं ॥ १ ॥

सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥
स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमतंद्रितः ॥ २ ॥

प्रातःकालही सबजने उठकर शौचादि कार्यसे निश्चिन्त हो सदा आलस्यरहित स्नानकर संध्योपासन करै ॥ २ ॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यद्दुरितं कृतम् ॥
प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयंति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

मोहसे अथवा अज्ञानसे जो पाप रात्रिमें कियाहै उसको प्रातःकालके स्नान करनेसे ब्राह्मणोंमें उत्तम मनुष्य दूर करते हैं ॥ ३ ॥

प्रविश्याथाग्निहोत्रं तु हुत्वाग्निं विधिवत्ततः ॥ शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥ स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवत् ॥ देवानृषीन्पितॄंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥

फिर अग्निशालामें जाकर विधिसहित अग्निहोत्र कर शुद्धदेशमें बैठकर शक्तिके अनुसार वेदको पढै ॥ ४ ॥ वेदके पाठ करचुकनेके पीछे वेदका पढनेवाला ब्राह्मण स्नान करके तिल और जलसे देवता ऋषि पितर इनका तर्पण करै ॥ ५ ॥

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुंजीत वाग्यतः ॥
भुक्तोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किंचिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥

फिर मध्याह्न समयके आनेपर शिष्ट (बलिवैश्वदेवसे बचाहुआ) अन्नको मौन धारण कर भोजन करै, भोजन करलेके उपरान्त कुछ विश्राम करके ब्रह्मका विचार करै ॥ ६ ॥

इतिहासं प्रयुंजीत त्रिकालसमये गृही ॥ काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा बहिः ॥ ७ ॥ आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्रीं शक्तितो जपेत् ॥ हुत्वा चाथाग्निहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रियाम् ॥ ८ ॥ बलिं च विधिवद्दत्त्वा भुंजीत विधिपूर्वकम् ॥

दिनके तीसरे भागमें इतिहास (महाभारत आदि) काभी विचार करै, और संध्या होनेपर घरमें अथवा बाहर ॥ ७ ॥ पश्चिम दिशाके सन्मुख बैठकर संध्योपासन करै; और यथा शक्ति गायत्रीका जप करै, इसके पीछे अग्निहोत्र और अग्निकी प्रदक्षिणा ॥ ८ ॥ और विधिसहित बलिवैश्वदेव करके विधिपूर्वक भोजन करै;

दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ॥ ९ ॥ तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥ कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥ संनिवेश्याथ विप्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥

---

१ यहांपर उस स्थानसे पहलेके अर्थसे लेकर सब कृत्य पश्चिममुख होकर करै और उससे पहलेका कुल कृत्य पूर्वमुखही होकर करै ।

२ दशवार या अट्ठाईस वार, वा अष्टोत्तर, इससे अधिक नहीं, कारण कि नित्यकर्मका निर्वाह इतनेमें ही होताहै अधिक (१०००) करनेसे रात्रि आजायगी उससे सूर्यके अभाव होनेसे गायत्री जप निषिद्ध है ।

जो दिनके समय या रात्रिके समय कोई अभ्यागत आजाय तौ ॥ ९ ॥ तृण (आसन) भूमि, जल, वाणीसे उसका भली भाँतिसे आदर सत्कार करै, आने जानेकी कथा (आपने बडी कृपा की आपका आना कहाँसे हुआ इत्यादि) से उसको सन्तुष्ट करकै विद्याआदिका विचार करै ॥ १० ॥ पहली पहल उसे शयन कराकर उसकी आज्ञा लेकर पीछे आप शयन करै,

यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥ योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥१२॥ पूज्या नित्यं भवंत्येव सर्वे चैव निवासिनः ॥ तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं गृहमागतम् ॥ १३ ॥ तस्मिन्प्रयुक्ता पूजा या साक्षयायोपकल्पते ॥

जो भिक्षाके लिये योगी आवै तौ उसके सन्मुख बैठकर ॥ ११ ॥ योगीका नित्य पूजन करै, ऐसा न करनेसे पापका भागी होताहै, पुरमें अथवा ग्राममें यदि योगी आजाय ॥१२॥ तौ उस योगीके आनेसे वहांके निवासी सब पूजने योग्य होतेहैं, इस कारण जो योगी घरमें आवै तौ उसका नित्य पूजन करे ॥ १३ ॥ उसकी कीहुई पूजा अक्षय (अविनाशी) सुख देनेवाली होतीहै,

गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥

गृहस्थियोंका उत्तम स्वर्गका साधन जो कर्म है वह कर्म मैं तुमसे कहताहूं कि ॥ १४ ॥ ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर उस (पूर्वोक्त) सम्पूर्ण कर्मका भली प्रकार आचरण करै,

चतुःप्रकारं भिद्यंते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥ १५ ॥ वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः ॥ कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव वा ॥१६॥ त्र्यहैहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोपि वा ॥ श्रौतं स्मार्तं च यत्किंचिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥ १७ ॥ गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत ॥ एवं विप्रो गृहस्थस्तु शांतः शुक्लांबरः शुचिः ॥ १८ ॥ प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥ १९ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

धर्मके सिद्ध करनेवाले गृहस्थी चार प्रकारके भिन्न २ होतेहैं ॥ १५ ॥ अपनी २ वृत्ति (जीविका) के भेदसे उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होताहै १ को कुशूलधान्य (कोठेमें तीन वर्षतक निर्वाह होजाय इतने अन्नको जो रक्खै,) २ कुंभीधान्यक (एक वर्षतक निर्वाह होनेके लिये कुंडोंमें जो अन्नको रक्खै) ॥ १६ ॥ ३ त्र्यहैहिक (तीन दिनका जो अन्न रक्खै) ४ सद्यःप्रक्षालक (उस दिनका उसीदिन उठानेवाला) वेद अथवा स्मृतियोंमें कहाहुआ जो धर्मका साधन कर्म है ॥ १७ ॥ घरमें रहनेवाले मनुष्यको वह समस्त करना चाहिये, कारण कि, न करनेवाला दोषका भागी होताहै, इस प्रकारसे शांत स्वभाव श्वेत वस्त्रोंवाला शुद्ध गृहस्थी ब्राह्मण ॥ १८ ॥ ब्रह्माके उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै; इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ॥चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥१॥ गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान्न हापयेत् ॥ अग्निहोत्रं च जुहुयादन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥

गृहस्थी अथवा ब्रह्मचारी जिस समय वनमें निवास करै तब चीर (चीथडे) अथवा बक्कल इनको धारण करै; और अकृष्टान्न (जो विना जोते और बोये पैदा हो उस अन्नको) भक्षण करै और मौन होकर रहै ॥ १ ॥ अथवा निर्जन स्थानमें जाकरभी पंच यज्ञोंका परित्याग न करै; अन्न अथवा नीवार (पसाईके चावल) आदिसे अग्निहोत्रभी करै ॥ २ ॥

श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥
पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥ ३ ॥

और श्रावणके महीनेमें अग्निका आधानकर ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्यधर्ममें स्थित) वनमें रहता हुआ पंचयज्ञकी विधिसे आलस्यरहित हो यज्ञ करै ॥ ३ ॥

संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्वने ॥
त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥

जो अपने भोजनके लिये वनका अन्न इकट्ठा कियाहै उसको क्वारके महीनेमें दानकरदे, और नये वनके अन्नको संग्रह करै ॥ ४ ॥

आकाशशायी वर्षासु हेमंते च जलाशयः ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥ अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥

वर्षाऋतुमें आकाश (खुले ऊँचे) स्थान में; जाडोंमें जलमें शयन करै, ग्रीष्मऋतु (गरमी) में पंचाग्निके मध्यमें बैठकर वनमें वास करताहुआ मनुष्य सर्वदा रहै ॥ ५ ॥ और इसके पीछे कृच्छ्र, चांद्रायण, तुलापुरुष, अतिकृच्छ्र, इन व्रतोंको निष्काम होकर शुद्धतासे करै ॥ ६ ॥

त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भतजान्गुणान् ॥ पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥ ७ ॥ प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषां किंचिदात्मवान् ॥ दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्दधानः प्रियंवदः ॥ ८ ॥ रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥ वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यचिंतयन् ॥ ९ ॥ केशरोमनखश्मश्रून्न छिंद्यान्नापि कर्त्तयेत् ॥ त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥ चतुःप्रकारं भिद्यंते मुनयः शंसितव्रताः ॥ अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥

---

१ अर्थात् स्त्रीसंगआदिक ऋतुकाल अन्य समयमें गृही पुरुष वानप्रस्थी हुआ न करै, जितेन्द्रिय होकर रहै ।

और पांचों भूतोंके गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) को सहता हुआ त्रिकाल स्नान करै; वनमें प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्यधर्ममें स्थित) पुरुष अतिथियोंका पूजन करै ॥ ७॥ और दान किसीसे न ले, केवल आत्माकोही जानता रहै, श्रद्धावान् और प्रियभाषी होकर प्रतिदिन यथाशक्ति दान दे ॥ ८ ॥ रात्रिमें स्वयं बनाये स्थण्डिल (चौतरे) पर शयन करै और पैरोसे फिरते २ सारादिन व्यतीत करै अथवा अपने मनमें किंचित् भी क्लेशित न हो;और वीरासनसे बैठा रहै ॥९ ॥ और केश, रोम, नख, डाढी इनको न कतरे और न इनको छेदन करै; और वनवासमें तत्पर शुद्ध अपने शरीरकी प्रीतिको छोड दे; अर्थात् अपने शरीरसे किंचित भी प्रेम न करै; और अपने पूर्वोक्त कर्मोंको करता रहै ॥ १० ॥ इस व्रतके करनेवाले मुनि चार प्रकारके होतेहैं, यह व्रत बडा कठिन है अनुष्ठान (अपने २ कर्तव्य) की विशेषतासे उनमें उत्तर उत्तर श्रेष्ठ होताहै ॥ ११ ॥

वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेंद्रियः ॥ १२ ॥ भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥ आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥ षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः ॥ काले चतुर्थे भुंजानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥ त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥ निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठान्नभोजनः ॥ १५ ॥ दिनार्थमन्नमादाय पंचयज्ञक्रियारतः ॥ सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥ एवमेते हि वै मान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

प्रथम साल भरके लिये विधिपूर्वक वनके आहारको संग्रह कर वानप्रस्थोंके धर्ममें स्थित आलस्यको छोड और इन्द्रियोंको जीतकर जो समयको बिताता हो ॥ १२ ॥ इन सब कर्म के करनेवाले वानप्रस्थको भूरिसंवार्षिक कहते हैं । २ दूसरा मरण कालतक वनमें रहै; और मृत्युकी इच्छाभी न करै ॥१३॥ और छैः महीनेतकके अन्नका संग्रह करै और पंचयज्ञ कर्ममें तत्पर रहै;चौथे काल (संध्या) में भोजन करताहुआ धर्मसे शरीरको त्यागता है ॥१४॥ तीसरा एक महीनेअर्थात् तीसदिनके लिये शुद्धव्रत हो वनके अन्नका संग्रह कर,सम्पूर्ण कर्मोंको करकै दिनके छठेभागमें भोजन करै ॥ १५ ॥ चौथा एक दिनके लिये अन्नका संग्रह करकै पंचयज्ञ कर्ममें तत्पर रहै;यह सद्यःप्रक्षालक नामक चौथा कहा है ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे चारों मुनि कठिन व्रत करनेवाले पूजनीय होते हैं ॥ १७ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

यथोत्तमानि स्थानानि प्राप्नुवंति दृढव्रताः ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १ ॥

जिस प्रकारसे गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और यति यह चारों दृढव्रत करनेवाले उत्तम स्थान (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होते हैं वह यह है कि ॥ १ ॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य दत्त्वा चाभयदक्षिणाम् ॥ २ ॥ चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥ आचार्येण समादिष्टं लिंगं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥ शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्मांश्च शिक्षयेत् ॥

सब कामनाओंसे विरक्त होकर संन्यासको ग्रहण कर अपनी आत्मामेंही अग्नियोंको मानकर स्त्रीआदिकोंको अभयदक्षिणा (त्याग) देकर ॥२ ॥ ब्राह्मण घरसे चलकर चौथे आश्रममें गमन करै, आचार्यके बताये हुए चिन्होंको सावधान होकर धारण करे ॥ ३ ॥ संन्यास आश्रमके धर्मोंको सीखै, शौच और संन्यासियोंके धर्मोंको सीखता रहै.

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता ॥ ४॥ दया च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ॥ ग्रामांते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥ पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत् ॥ वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥ ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतापहारिणीम् ॥ ७ ॥ पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिरालंभप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥ नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ॥ वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥ एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥ याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम् ॥ १० ॥ साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥

अहिंसा,सत्य, चोरीको छोडदेना,ब्रह्मचर्य, अफल्गुता (निरर्थकपन का त्याग) ॥४॥ समस्त प्राणियोंपर दया करना, यति इतने कर्मोंको नित्यप्रति अवश्य करै ग्रामके निकट किसी वृक्षके नीचे सदा अपना स्थान बनाकर रातभर रहे ॥ ५ ॥ वर्षाऋतुमें एक स्थानपर बैठा रहै, और कीडेकी समान पृथ्वीपर भ्रमण करै, वृद्ध, रोगी, भयानक इनकी संगति न करै ॥ ६ ॥ वर्षाकालके समय ग्राममें अथवा नगरमें जो यति एक स्थान में रहता है वह दूषित नहीं होता; कोपीन (लंगोटी) ओढने का वस्त्र जिसमें कि शरदी न लगे, ऐसी कंथा (गुदडी) ॥ ७ ॥ और खडाऊं इनको ग्रहण करै, और इनसे इतरका संग्रह न करै स्त्रियोंका स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप तथा देखना ॥ ८ ॥ नाच, गान, सभा, सेवा, नौकरी, निन्दा, इनको छोडदे वानप्रस्थ और गृहस्थी इनका संगभी यत्नसहित त्यागदे ॥ ९ ॥ - म्पूर्ण परिग्रह त्यागकर केवल अकेला भ्रमण करै; मांगे या विना मांगेसेही जो मिल जाय उसी भिक्षासे अपना निर्वाह करै ॥ १० ॥ अच्छा कहकर लेनेवालेको याचित, विना मांगे जो मिलै उसे अयाचित, कहते हैं ;

चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकब दकौ ॥ ११ ॥
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥

यह संन्यासी चार प्रकारके होते हैं १ कुटीचक, २ बहूदक ॥ ११ ॥ ३ हंस, ४ परमहंस इनमें जो २ पिछला है वही वही उत्तम है.

एकदंडी भवेद्वापि त्रिदंडी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥ त्यक्त्वा सर्वसुखास्वबादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥ अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥ नान्यस्य गेहे भुंजीत भुंजानो दोषभाग्भवेत्॥ कामं क्रोधं च लोभं च तथेर्ष्यासत्यमेव च ॥ १४ ॥ कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥ भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥ कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट् त्यक्तबांधवः ॥

एक दंडको धारण करै या तीन दंडको॥१२॥सम्पूर्ण सुखोंके स्वादको छोडकर पुत्रके ऐश्वर्य (प्रताप) के सुखको त्यागदे; अपने लडकोंहीमें नित्य निवास करै; और यत्नसहित ममताको त्यागदे ॥ १३ ॥ दूसरेके घरमें भोजन न करै, जो परायें घरमें भोजन करताहै वह दोषका भागी होता है और काम क्रोध, लोभ, ईर्षा, झूठ, इन सबको ॥ १४ ॥ कुटीचक त्यागदे और समस्त वस्तु (जो कि संचित की है) पुत्रके अर्थ छोडदे; आप भिक्षाटनआदिमें असमर्थ होकर संन्यासी अपने पुत्रोंकोंही देहको सौंपदे ॥ १५ ॥ इस संन्यासीको कुटीचक कहते हैं.

त्रिदंडं कुंडिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥ सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव वहूदकः ॥ प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥ १७ ॥ विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेंद्रियः ॥ ईषत्कृतकषायस्य लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥ अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥

२ दूसरा बंधु जिसने अपने त्याग दिये हैं ऐसा संन्यासी त्रिदंड कुंडी और भिक्षाका पात्र ॥ १६ ॥ यज्ञोपवीत इनको वहूदक नित्य ग्रहण करै, प्राणायाम में तत्पर रहै और निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ १७ ॥ हृदय में भगवान् का ध्यान कर इंद्रियोंको जीतकर समय बिताता रहै, कुछेक गेरुवा वस्त्रोंको रंगकर एक चिह्न (संन्यासकी पहचान) बनाकर स्थित हुए संन्यासीका ॥ १८ ॥ चिह्न अन्नके निमित्त कहा है, मोक्षके लिये नहीं कहा, ऐसी मर्यादा है ॥

त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥ इंद्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥ कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥ अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥ यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥ ॥ २१ ॥ अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

२ तीसरे इसमें सम्पूर्ण पुत्रादिकोंको त्याग और योगमार्गमें स्थित रहकर ॥ १९ ॥ जो इन्द्रिय और मनको वशमें करताहै उस संन्यासीको हंस कहते हैं। कृच्छ्रचांद्रायण, तुलापुरुष ॥ २० ॥ और इतर व्रतोंसे ब्रह्मपदकी इच्छा करता हुआ संन्यासी अपने शरीरको सुखादे; यज्ञोपवीत, दंड, और जिससे मक्खी आदिक जीव शरीरपर न गिरै ऐसा वस्त्र ॥ २१ ॥ वेदके ज्ञाता हंसको यही परिग्रह है इतर नहीं ॥

आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥ वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥ आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥

चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥ त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥ जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षरिदं त्यजेत् ॥ कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽधश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥ कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं च धारयेत् ॥ आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥ अव्यक्तलिंगोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः ॥ प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ ॥ २७ ॥ त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥ देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्द्विजातिषु ॥ २८ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥

४ चौथा अपने आत्मा (देह) में व्यापक ब्रह्मको जपता और प्राणायामोंको करता हुआ, ॥ २२ ॥ सब संगोंसे रहित और आत्मामें स्थित, और जिसने युक्त होकर गृहआदिकोंको त्याग दियाहै, वह नित्य पृथ्वीपर विचरण करै ॥ २३ ॥ यह चौथा इन चारोंमें बडा और ध्यानभिक्षु (परमहंस) को कहाहै, त्रिदंड, कुंडी, यज्ञोपवीत, कपालिका (भिक्षाका पात्र) ॥ २४ ॥ जंतुओंकी निवारण करने योग्य वस्त्र इन सबको भिक्षुक त्यागदे, कौपीन ओढनेका वस्त्र, इनकाही केवल धारण ॥ २५ ॥ परमहंस करै, और एक दंडका धारण करै; और अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंको त्यागकर रहै ॥ २६ ॥ अपने चिह्नोंको छिपाकर और अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरण करै; पूजा (बडाई) की प्राप्तिसे प्रसन्न न हो और जो पूजा न हो तो क्रोधभी न करै ॥ २७ ॥ तृष्णाको त्यागकर गूंगेकी समान मौन धारणकर पृथ्वीमें भ्रमण करै; और देहहीकी रक्षाके निमित्त भिक्षाको द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीन जातियोंके घर) में मांगे ॥२८॥ भिक्षुकका पात्र हाथही है उसीसे नित्य गृहोंमें विचरण करै; अर्थात् भिक्षा मांगै ॥

अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृप्तवान्मनुः ॥ २९ ॥
सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च ॥

और मनुजीने भिक्षाके लिये विना धातु तुंबा आदिके पात्र रचे हैं ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण भिक्षुकोंको, काष्ठ तोंबी आदिकोंके पात्र कहेहैं ॥

कांस्यपात्रे न भुंजीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥ मलाशाः सर्व उच्यंते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥ कांस्यभोजी यतिः सर्वं तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥

और विपत्तिके आजानेपर भी कांसीके पात्रमें भोजन न करै ॥ ३० ॥ जो यति कांसीके पात्रमें भोजन करते हैं, उन्हें विष्ठाका खानेवाला कहाहै; कांसीके पात्र बनानेवालेको और उसमें भोजन करनेवाले गृहस्थको जो पाप होताहै ॥ ३१ ॥ उन दोनोंका वह पाप कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको मिलताहै ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥ उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥ आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३३ ॥ निंद्यश्च सर्वदेवानां पितॄणां च तथोच्यते ॥

जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ॥ ३२ ॥ उत्तम आचरणको स्वीकार कर फिर उसका त्याग करता है, उसे आरूढपतित जानना; और वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत (बाह्य) है ॥ ३३ ॥ और वह सब देवता और पितरोंमें निंदित कहाताहै ॥

त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवंति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥
न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रोपजीविनाम् ॥

त्रिदंड (संन्यास) के आश्रयसे बहुतसे द्विज जीवन करते हैं ॥ ३४ ॥ लिंगमात्रसेही जीवनकरनेवालेको मोक्ष नहीं मिलती, ॥

त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥ आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय, इनको त्यागकर ॥ ३५ ॥ आत्माके विषयही स्थित रहता है, वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकांक्षिणाम् ॥
वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ॥ १ ॥

पवित्र आचरणवाले धर्म अर्थ कामके अभिलाषी राजाओंका जो धर्म है उसको मैं कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥ दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिः प्रजाः ॥ ३ ॥

तेज, सत्य, धैर्य–दक्षता (चतुरता) संग्राममें न भागना, दान, ईश्वरता, (यथार्थ न्याय करना) यह क्षत्रियोंका धर्म कहाहै ॥ २ ॥ प्रजाओंका पालन करना क्षत्रियोंका परम धर्म है, इसकारण यत्नसहित राजा प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ३ ॥

त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥
दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥ ४ ॥

और क्षत्री यत्नसहित तीन कर्मोंको करै, दान, पढना, यज्ञ, और फिर योगमार्गका सेवन ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ॥
तेषु तुष्टेषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्धते ॥ ५ ॥

सर्वदा ब्राह्मणोंको संतोष देनेवाला आचरण करता रहै, उनके प्रसन्न होनेपर राजाओंके राज्य और उनके खजानेकी वृद्धि होतीहै ॥ ५ ॥

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ॥ ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥ खलयज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ॥ कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥ ७ ॥

व्यवहार (लैनदैन), कृषि, गौओंकी पालना, ब्राह्मण और क्षत्रीकी सेवा यह तीन कर्म वैश्यके लिये कहे हैं ॥ ६ ॥ और कृषि (खेती) के खलियानके यज्ञ और गौओंके यज्ञको गौओंके शरण (घर) इनको वैश्य सर्वदा करै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥ कुर्वंस्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥ पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥ तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥

शूद्र ईर्षाको त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इनकी सर्वदा सेवा करै कारण कि इनकी शुश्रूषा धर्मसहित करनेवाला शूद्र स्वर्गलोकको जीतलेता है ॥ ८ ॥ और शूद्रको भी पंचयज्ञ करना कहा है; उसको भी परस्परमें नमस्कार करना कहाहै; इससे अन्योन्यमें सर्वदा नमस्कार शब्दसे व्यवहार करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता ॥ ९ ॥

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥ श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ॥ १० ॥ प्राणानर्थांस्तथा दारान्ब्राह्मणार्थे निवेदयेत् ॥ स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥

शूद्र दो प्रकारके हैं एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरा अनधिकारी, उन दोनोंमेंसे श्राद्धके अधिकारीका अन्न भोजन करना उचित है और अनधिकारीका उचित नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र, अपनी स्त्री, धन, प्राण इनको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण करदे, उस शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य है, और शेष शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य नहीं ॥ ११ ॥

कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥
कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

और शूद्र क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनकी सेवाको करै, वैश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, इनकी सेवा करै, और क्षत्री केवल ब्राह्मणही की सेवा करै ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥
पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥

---

१ यद्वा ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकका प्रतिदिन नमस्कार करना उसको कहाहै उसे करता हुआ शूद्र हानिको नहीं प्राप्त होसकताहै, इस कारण अवश्य प्रतिदिन उन्हें प्रणाम कराकरै–ऐसाभी अर्थ किन्हीं २ का अभिमत है ।

वैश्य और क्षत्रिय, इनको तीन आश्रम कहेहैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमकी प्राप्ति तौ केवल ब्राह्मणहीको कही है ॥ १३ ॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥
यदत्राविदितं किंचित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह चारों आश्रमोंका सनातन धर्म मैंने तुमसे कहा; इसमें जो कुछ जानना तुमको शेष रहाहै उसको तुम इतर ग्रंथोंसे जान जाओगे ॥ १४ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥ २ ॥



श्रीः ॥

हारीतस्मृतिः ३.

भाषाटीकासमेता।



प्रथमोऽध्यायः १.

(यहांसे हारीतस्मृतिका आरम्भ है इसमें हारीतशिष्य और अन्यान्यऋषियोंका संवाद है। ऋषियोंका प्रश्न.)

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ॥ इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवः- स्वर्द्विजोत्तम ॥ १ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ॥ येन संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥

भूः भुवः और स्वर्गलोकमें स्थित जिन सम्पूर्ण द्विजश्रेष्ठोंने वर्णाश्रमधर्मको अवलम्बन किया, वह केशव भगवान्के भक्त हैं यह आपने प्रथम कहाथा ॥ १ ॥ इससमय वर्ण और आश्रमका धर्म आप हमसे कहिये, जिससे सनातन नारसिंह देव सन्तुष्ट हों ॥ २ ॥

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

(यह सुनकर हारीतशिष्यने उत्तर दिया कि) मैं इस समय पूर्वकालमें ऋषियोंके साथ महात्मा हारीतका जो अति उत्तम संवाद हुआथा वह आपसे कहूंगा ॥ ३ ॥

हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥ प्रणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयो धर्म- कांक्षिणः ॥ ४ ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्त्तक ॥ वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥ ५ ॥ समासाद्योगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥ एतच्चान्यच्च भगवन्ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें धर्मके ज्ञाता सम्पूर्ण मुनि सब धर्मोंके जाननेवाले अग्निकी समान दीप्तिमान् बैठे हुए हारीत ऋषिको नमस्कार करके पूछते हुए ॥ ४ ॥ कि हे भार्गव ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वधर्मप्रवर्त्तक भगवन् ! हमसे वर्ण और आश्रमोंके धर्मको कहिये ॥ ५ ॥ और संक्षेपसे विष्णुभक्तिकारक योगशास्त्र और जो अन्यान्यविष्णुभक्ति है उसेभी आप कहिये, कारण कि, आप हम सबके परमगुरु हों ॥ ६ ॥

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे धर्म्मान्व- क्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ७ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥ सन्धार्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् हारीत मुनिने उत्तर दिया कि हे सज्जनश्रेष्ठ मुनि- गण ! मैं वर्ण और आश्रमसमूहका नित्य धर्म योगशास्त्र कहताहूँ ॥ ७ ॥ इस धर्म और योगशास्त्रको भलीभांतिसे जानकर मनुष्य जन्म संसारके बंधनसे छूटजाताहै ॥ ८ ॥

पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि ॥ सुष्वाप भोगिपर्यंके शयने तु श्रिया सह ॥ ९ ॥ तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूत्किल ॥ पद्ममध्येऽभवद्ब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥ स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनःपुनः ॥ सोपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥ यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ॥ असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः ॥ १२ ॥ शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ॥ यथा प्रोवाच भगवान्पद्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥ तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥

पूर्व कालमें सृष्टिके रचनेवाले जलके ऊपर लक्ष्मीके सहित शेषकी शय्यापर परमात्मा देव भगवान् विष्णु योगनिद्रामें मग्न थे ॥ ९ ॥ उन सोतेहुए भगवान्की नाभिसे एक बडा कमल उत्पन्नहुआ, उस कमलके बीचमेंसे वेद वेदांगोंके भूषण ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ १० ॥ देवादिदेव भगवान् विष्णुजीने उनसे वारंवार जगत्की सृष्टि रचनेके लिये कहा; तब ब्रह्माजीने भी देवता, असुर, मनुष्य इनके सहित सम्पूर्ण जगत्को रचकर ॥ ११ ॥ यज्ञकी सिद्धिके लिये पापरहित ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया, इसके पीछे क्षत्रियोंको भुजाओंसे और वैश्योंको जंघाओंसे रचा ॥ १२ ॥ और शूद्रोंको चरणोंसे रचकर भगवान् पद्मयोनिने उनसे जो वचन कहे, हे द्विजोत्तमो ! उन वचनोंको मैं तुमसे कहताहूं तुम श्रवण करो; और वह वचन धन, यश, अवस्था, स्वर्ग, मोक्ष फल, इनके देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥

ब्राह्मणीके गर्भमें ब्राह्मणके औरससे उत्पन्नहुआ मनुष्यही ब्राह्मण कहाताहै; उसके धर्म और उसके रहनेयोग्य देशको कहताहूं ॥ १५ ॥

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते ॥
तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्ध्यंति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥

हे द्विजसत्तमगण ! जिस देशमें कालामृग स्वभावसे ही विचरण करै उस देशमें ब्राह्मण निवास करै, कारण कि किये हुये धर्म उसी देशमें सिद्ध होतेहैं ॥ १६ ॥

षट्कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ तैरेव सततं यस्तु वर्तयेत्सुखमेधते ॥ १७ ॥ अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥

महात्मा ब्राह्मणोंके निजके छैः कर्म कहेहैं; जो उन छैः प्रकारके कर्मोंसे निरन्तर जीवन व्यतीत करताहै, वही सुखी होताहै, अर्थात् धनवान् पुत्रवान् होता है ॥ १७ ॥ पढाना, पढना, यज्ञकराना, और यज्ञकरना, दान और प्रतिग्रह ये छैः प्रकारके कर्म कहेहैं ॥ १८ ॥

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥ शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ १९ ॥ एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्द्विजः ॥ तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥ २० ॥ योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥ विदितात्प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥ वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं

शुचौ देशे समाहितः ॥ धर्म्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥ वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥

इनमें पढाना तीन प्रकारका है पहला धर्मके निमित्त दूसरा धनके निमित्त, और तीसरा सेवा शुश्रूषा के लिये ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मण इन तीनोंमे से एकको भी नहीं करता वह वृथाचारी कहाताहै, ऐसे कर्महीन ब्राह्मणको हितका अभिलाषी मनुष्य कभी विद्यादान न करै ॥ २० ॥ योग्य शिष्यको विद्या पढावै और अयोग्य शिष्यको त्यागदे. विदित (अर्थात् निष्पाप मनुष्यको जानकर) मनुष्यके निकटसे गृहस्थधर्मकी सिद्धिके लिये प्रतिग्रह ले॥२१॥ प्रतिदिन शुद्ध देशमें सावधान होकर वेदका अभ्यास करै, और शुद्ध मनवाले ब्राह्मणोंसे सर्वदा धर्मशास्त्र पढना उचित है ॥ २२ ॥ धर्मशास्त्र भी वेदकी समान पढना उचित है,रातदिन धर्मशास्त्रको सुनना चाहिये;

स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥२३ ॥ दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्म्मशास्त्रं पठेद्द्विजः ॥ २४ ॥

श्रुति स्मृति इन दोनोंसे हीन ब्राह्मणको ॥ २३ ॥ जो दान देता है, या जो भोजन कराता है, उस दान और भोजनादिकर्मसे दाताका कुल नष्ट होजाता है; इस कारण ब्राह्मण सब प्रकारसे यत्नसहित धर्मशास्त्रको पढै ॥ २४ ॥

श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्म्मिते ॥
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥

श्रुति और स्मृति ब्राह्मणके दोनों नेत्र परमेश्वरके बनाये हुए हैं; इन श्रुति या स्मृतिरूप एक नेत्रके बिना हुए वह काना है, और श्रुति स्मृति रूप दोनोंसे जो हीन है उसे अंधा कहा है ॥ २५ ॥

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतंद्रितः ॥ सायंप्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः ॥ २६ ॥ सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिनेदिने ॥ अतिथीनागता न्भक्त्या पूजयेदविचारतः ॥ २७ ॥ अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो गृही ॥ स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २८ ॥ कृतहोमस्तु भुंजीत सायंप्रातरुदारधीः ॥ सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्म्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥ २९ ॥ स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ॥ सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितै-

---

१ तात्पर्य यह है कि, केवल प्रत्यक्षमे दो नेत्र होनेसे ब्राह्मण नेत्रवान् नहीं होसकते परन्तु वेद और शास्त्रके जाननेसे ही ब्राह्मण नेत्रवान् कहातेहैं, बाहिरी कामोंमें, अर्थात् मार्गादिकके चलनेमें हमारे यह बाहिरी नेत्र काम आतेहैं, परन्तु किस मार्गमे जानेसे हमारा कल्याण होताहै और किस मार्गमें जानेसे हमारा अमंगल होगा, इस बातके निर्णय करनेमें इनकी सामर्थ्य नहीहै, इसके निर्णय करनेमें श्रुति स्मृति रूपी दोनों नेत्र ही मार्ग दिखलानेवाले हैं, वरन् ब्राह्मणोंको सर्वदा बाह्य मार्ग त्यागकरकै अन्तर (ज्ञान) के मार्गमें विचरण करना होताहै इस कारण श्रुति और स्मृतिरूपी नेत्रोंके विना हुए ब्राह्मणोंको पग २ पर अंधेकी समान टोकरें खानी पड़तीहैं ।

षिणीम् ॥ ३० ॥ एष धर्म्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ॥ धर्म्ममेव हि यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

आलस्यरहित होकर गुरूकी सेवा करै; प्रातःकाल और संध्याकालमें विवाहाग्निकी उपासना करै ॥ २६ ॥ और भली भांतिसे स्नानकर प्रतिदिनही बलि वैश्वदेव करै और अपनी शक्तिके अनुसार घरपर आयेहुए अतिथियोंकी विना विचार कियेहुए (अर्थात् यह गुणवान् है या निर्गुण हैं इस बातका विचार न कर) पूजा करै ॥ २७ ॥ और अन्य अभ्यागतोंकी भी गृहस्थी ब्राह्मण शक्तिके अनुसार पूजा करै, और सर्वदा अपनी स्त्रीमें रत रहै; पराई स्त्रीको त्यागदे ॥ २८ ॥ उदार बुद्धिवाला मनुष्य सायंकालमें और प्रातःकालमें होम करकै भोजन करै; सत्य बोलै क्रोधको जीतले अधर्ममें बुद्धिको न लगावै ॥ २९ ॥ अपने कर्मके समयमें प्रमादसे कर्मको न छोडै, और सत्य हितकारी, और परलोकमें सुखकारी ऐसी वाणीको कहै ॥ ३० ॥ यह संक्षेपसे ब्राह्मणोंका धर्म कहा; जो ब्राह्मण सर्वदा धर्माचरण करतेहैं वह ब्रह्मपद अर्थात् मुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३१ ॥

इत्येष धर्म्मः कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ॥
वदामि राज्ञामपि चैव धर्म्मान्पृथक्पृथग्बोधत विप्रवर्य्याः ॥ ३२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो धर्म तुमने मुझसे पूछाथा वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला धर्म मैंने तुमसे कहा; अब राजाओंके भी पृथक् २ धर्मोंको कहताहूं. तुम श्रवणकरो ॥ ३२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १ ॥

क्रमानुसार क्षत्री वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्मोंको कहताहूं, जिन धर्मोंके आचरण करनेसे क्षत्री आदि तीन वर्ण उत्तम गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्म्मेण पालयन् ॥ कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥ दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्म्मबुद्धिसमन्वितः ॥ स्वभार्य्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥

क्षत्री राजसिंहासनपर स्थित होकरभी धर्मके अनुसार प्रजापालनकर भली भांतिसे वेद पढै, और विधिसहित यज्ञको करै ॥ २ ॥ जो राजा सर्वदा धर्ममें बुद्धि करकै ब्राह्मणोंको दान देता है, और जो नित्य अपनी स्त्रीमे ही रत रहता है, वह राजा सदैव छठे भागके लेनेका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

१ जिसमें विवाहका होम हो और जीनेतक बनीरहै उसीको विवाहाग्नि कहतेहैं उसीमें होम करै ।

२ अर्थात् अतिथियोंसे भोजनादि सत्कार करनेसे प्रथम गोत्र शाखा आदिक नहीं पूंछे ।

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥ देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्य्यपरस्तथा ॥ ४॥ धर्म्मेण यजनं कार्य्यमधर्म्मपरिवर्जनम् ॥ उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥

नीतिशास्त्रमें कुशल और संधि (मेल) विग्रह (लडाई) इनके तत्त्वको भी राजा जानें-देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति रक्खै और पितरोंके कार्यमें भी तत्पर रहै ॥ ४ ॥ धर्मसे यज्ञ करना और अधर्मको त्यागना उचित है, इन पूर्वोक्त कर्मोंके करनेसे क्षत्रियको उत्तम गति प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि॥ दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ६ ॥ दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥ स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥ धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥ अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्मे चादेहपातनात् ॥ ८ ॥ यज्ञाध्ययनदानानि कुर्य्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥ ९ ॥ एतद्वैश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥ एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१०॥

वैश्यका यह धर्म है; कि गौओंकी रक्षा करै, खेती और वाणिज्य करै यथाशक्ति दान और ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ६ ॥ वैश्य दंभ और मोहरहित वाक्यके द्वारा दूसरेकी ईर्षा न करै अपनी स्त्रीमें रत रहै, और पराई स्त्रीको त्यागदे ॥ ७ ॥ धनसे ब्राह्मणोंको और यज्ञके समय ऋत्विजोंको जिमा (तृप्त) कर मृत्युकाल तक धर्ममें अपनी प्रभुताई न चलाकर समय बितावै; ॥ ८ ॥ और प्रतिदिन आलस्यको छोडकर यज्ञ, अध्ययन और दान करै, और पितरोंके कार्य (श्राद्धआदि) और भगवान् नरसिंहजीके पूजनमें तत्पर रहै ॥ ९ ॥ यह वैश्यका धर्म है; धर्मानुष्ठानमें रतहुआ जो वैश्य इसके अनुसार धर्माचरण करता है, वह स्वर्गमें जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्य्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥ दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥ ११ ॥ अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥ शूद्राणामधिकं कुर्यादर्चनं न्यायवर्तिनाम् ॥ धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥ स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥ इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्म्मभिः ॥ १४ ॥ स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५ ॥

शूद्रका यही धर्म है कि वह यत्नपूर्वक ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी सेवा करै और विशेष करकै ब्राह्मणोंकी तो दासकी समान सेवा करै ॥ ११ ॥ विना माँगे दे, और अपनी जीविका निर्वाहके लिये कष्ट सहन करै, और पाकयज्ञकी विधिसे आलस्यको छोडकर देवताओंकी पूजाकरै ॥ १२ ॥ और न्यायमें तत्पर हुए शूद्रका भी पूजन अधिकतासे करै, मन वचन और शरीरकी क्रियासे, सर्वदा जीर्ण वस्त्रोंका धारण करै, और ब्राह्मणकी उच्छिष्टकी भोजन करै ॥ १३ ॥ अपनी स्त्रियोंमें रमण करै; और पराई स्त्रीको त्यागदे; मन, वचन, कर्म, और

देहसे शूद्र इसी प्रकार करताहै ॥ १४ ॥ इन सब कर्मोंके करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, और पुण्यके प्रभावसे शूद्र इंद्रके स्थानको प्राप्त होजाता है; ॥ १५ ॥

वर्णेषु धर्म्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा ॥
शृणुध्वमत्राश्रमधर्म्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनींद्राः ॥ १६ ॥

इति हारीते धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पूर्वकालमें जिसप्रकार ब्रह्माजीने कहाथा, वही मैंने तुमसे सब वर्णोंके यथार्थ धर्म कहे हैं, हे मुनीन्द्रों ! इस समय मैं सनातन आश्रमधर्मको कहता हूं,आप क्रमानुसार श्रवणकरो॥१६॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च ॥ गुरोः कुले प्रियं कुर्य्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्यमधः शय्या तथा वह्नेरुपासना ॥ उदकुंभान्गुरोर्दद्या-द्गोग्रासं चेंधनानि च ॥ २ ॥ कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥ विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ ३ ॥ यः कश्चित्कुरुते धर्म्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् ॥ न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥४॥ तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरु-सन्निधौ ॥ ५ ॥

यज्ञोपवीत होनेके उपरान्त बालक गुरुकुलमें निवास करै, और कर्म, मन, वाणीसे गुरुके कुलमें प्रीति रक्खै ॥ १ ॥ गुरुके घरमें वासकरनेके समय, ब्रह्मचर्य, पृथ्वीपर शयन, अग्निहोत्र करता रहै और गुरुके लिये जलका घडा, और इंधन (लकडी) और गायोंके निमित्त घास दे ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी विधिपूर्वक वेदको पढै, और जो विना विधिसे अध्ययन करताहै उसे अध्ययन (पढने) का फल प्राप्त नहीं होता॥३॥ जो कोई दुरात्मा विधिको छोडके धर्मको आचरण करताहै, वह विधिभ्रष्ट पुरुष धर्मको आचरण करके भी उसके फलको प्राप्त होता नहीं ॥ ४ ॥ इसकारण स्वाध्यायकी (पढनेकी) सिद्धिके निमित्त गुरुकुलमें वेदके व्रतोंको करै, और गुरुके समीपसे सम्पूर्ण शौचादिके आचरण सीखै ॥ ५ ॥

अजिनं दंडकाष्ठं च मेखलाश्चोपवीतकम् ॥ धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समा-हितः ॥ ६ ॥ सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्याद्दंतधावनम् ॥ ७ ॥ छत्रं चोपानहं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥ नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ हस्त्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयते-न्द्रियः ॥ संध्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९ ॥ अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ॥ तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥१०॥

मृगछाला, दंड, मेखला, (मूंजकी कौंधनी) यज्ञोपवीत, इनको सावधान और अप्रमत्त हो कर धारणकरै ॥ ६ ॥ जितेन्द्रिय होकर भोजनकी प्राप्तिके निमित्त प्रातःकाल और संध्याके समय भिक्षाके निमित्त भ्रमण करै और नित्य सावधानीसे आचमन करने पीछे दन्तधावन करै ॥ ७ ॥ छत्री, जूता, गंध, माला, नृत्य, गाना, निरर्थक बोलना और मैथुन इनको त्याग

दे ॥ ८ ॥ जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोडेपर न चढ़ैं; और व्रतमें स्थित रहकर ब्रह्मचारी संध्योपासना करै ॥ ९ ॥ संध्या करनेके उपरान्त गुरुके दोनों चरणों में नमस्कार कर पीछे भक्तिसहित पिता और माताकी सेवा करै ॥ १० ॥

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥
एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥

जो ब्रह्मचारी तीन कर्मोंसे (अर्थात् गुरु, माता, पिता, इनकी सेवासे) नष्ट होजाय तौ उसपर सब देवता अप्रसन्न होते हैं इससे ईर्षारहित होकर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षामें स्थित रहै ॥ ११ ॥

अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥

गुरुसे सम्पूर्ण चारों वेद अथवा दो वेद या एक वेदको पढकर उन्हें दक्षिणा दे; जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ग्राममें निवास करै ॥ १२ ॥

यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥ संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १३॥ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्य्ये यावदायुषम् ॥ तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥ १४ ॥

जिसकी जिह्वा, लिंग, इन्द्रिय, उदर (पेट) और हाथ भलीभांतिसे वशमें है; वह ब्राह्मण संन्यासकी प्रतिज्ञाको करके ब्रह्मचारीके आचरणसे ॥ १३ ॥ उस आचार्य (गुरु) के यहां ही जितनी अवस्था है उतने समयको व्यतीत करै,यदि आचार्य न हो तौ उसके पुत्रके समीप, और पुत्रके न होनेपर उसके शिष्यके निकट; और शिष्यभी न हो तौ गुरुके कुलमें रहकर जन्म बितावै ॥ १४ ॥

न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥ इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतंद्रितः ॥ १५ ॥ नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

इस नैष्ठिक ब्रह्मचारीको विवाह और संन्यास नहीं कहा; जो आलस्यरहित होकर उस विधिसे शरीर छोडता है ॥ १५ ॥ उस ब्रह्मचारीका पृथ्वीपर फिर जन्म नहीं होता; (अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त होताहै)॥ १६ ॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विंदति ॥१७॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो ब्रह्मचारी सावधान होकर विधिपूर्वक गुरुकी सेवा करताहुआ पृथ्वीमें भ्रमण करताहै वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्याको प्राप्त होकर उस विद्या के सुलभ फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ असमानार्षिगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥ १ ॥ सर्वावयवसंपूर्णा सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ॥ ब्राह्मेण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥ २ ॥

वेदको ब्रह्मचर्यसे पढाहुआ और गुरूके मुखसे पढाहुआ शास्त्रके तात्पर्यका ज्ञाता, ब्राह्मण अपना (विवाहकरनेवाला पुरुषका) गोत्र और प्रवरके तुल्य गोत्र और प्रवर जिसके नहीं है ऐसी और जिसके भाई हो ऐसी अच्छी ॥ १ ॥ सुन्दर आचरणवाली, और देहके सम्पूर्ण अंगोंसे युक्त ऐसी कन्या से विवाह करे; और ब्राह्मण आठ विवाहोंके मध्यमें जो उत्तम ब्राह्मविवाह है, उससे विवाह करै ॥ २ ॥

तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ॥

इसी प्रकारसे औरभी वर्णोंके विवाह धर्मानुसार बहुत कहे हैं-

औपासनं च विधिवदाहृत्य द्विजपुंगवाः ॥ ३ ॥
सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतंद्रितः ॥
स्नानं कार्य्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण विधिपूर्वक औपासनाग्नीको ग्रहण करके ॥ ३ ॥ आलस्यरहित हो सायंकाल और प्रातःकालमें प्रतिदिन होमकरै । और नित्य दंतधावन करके स्नान करै ॥ ४ ॥

उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ॥ मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥ ५ ॥ तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम्॥ करंजं खादिरं वापि कदंबं कुरवं तथा ॥६॥ सप्तपर्णं पृश्निपर्णी जंबूं निंबं तथैव च ॥ अपामार्गं च बिल्वं चार्कं चोदुंबरमेव च ॥७॥ एते प्रशस्ताः कथिता दंतधावनकर्म्मणि ॥ दंतकाष्ठस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्तितः॥८॥ सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः॥ अष्टांगुलेन मानेन दंतकाष्ठमिहोच्यते॥प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान्विशोधयेत् ॥ ९ ॥ प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥ दंतानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ १० ॥ अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥ अपां द्वादशगंडूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥ ११ ॥

---

१ दांतोंकी शुद्धि पर्वादिक निषिद्धकालसे अन्य कालमें "कण्टकक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलसंमितम् । कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं दन्तधावनमाचरेत् ॥" इस याज्ञवल्क्योक्तवचनके अनुसार जिसमें काँटे हो वा दूध हो उस वृक्षकी कनिष्ठा उंगलीकी बराबरमोटी बारहअंगुलकी लम्बी लकडीको लेकर उसके पूर्वार्द्धमें कूंची बनाकर कियाकरै उसका मंत्र यह है "ॐआयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां च मेधाञ्च त्व नो देहि वनस्पते ॥ १ ॥" इसको पढ़कर दतौंन करकै उसको चीरकर जिव्हाकी शुद्धि करके उसे धोवे फिर अपने सन्मुखसे बचाकर होसकै तौ नैर्ऋतकोणमें पहले दांये हाथकी फिर बांये हाथकीको फैंकदेवै ।

उषःकाल में उठकर यथाविधि शौचादि को करै, कारण कि मुखके पर्युषित रहनेसे मनुष्य नित्य अपवित्र रहताहै ॥ ५ ॥ इसकारण सूखी अथवा गीली दंतकाष्ठका भक्षण (दंतौन) करै और वह काठ करंज वा, खैर, कदंब,मौलसिरीका होना श्रेष्ठ है ॥ ६॥सप्तपर्ण, पृष्णिपर्णी जामन, नीम, ओंगा, बेल, आक, गूलर, ॥ ७ ॥ इतने वृक्ष दतौनके लिये उत्तम कहे हैं, और दतौनके काठका भक्षण इस भांति संक्षेपसे कहाहै ॥ ८ ॥ कांटेवाले वृक्ष और दूधवाले वृक्षोंकी लकडीकी दतौन करनेसे पुण्य और यशकी वृद्धि होतीहै, आठ अंगुल, या दश अंगुलकी लम्बी लकडी दतौनके लिये कहीहै, अथवा प्रादेशमात्र लम्बी [अंगूठेसे तर्जनीतक] दतौनकी लकडीका प्रमाण है इससे दांतोंकी शुद्धि करै ॥ ९ ॥ हे सन्तोंमें उत्तमों ! पडवा, अमावस्या, छठ और नवमीतिथिमें जो दतौन करता है उसके सात कुल दग्ध होजाते हैं ॥ १० ॥ इन दिनोंमें दतौन न करकै दतौनके अभावमें केवल जलसे बारह कुल्ले करके मुख शुद्ध करै ॥ ११ ॥

स्नात्वा मंत्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥ मंत्रवत्प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकांजलिम् ॥ १२ ॥ आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ युद्धयन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१३॥ उदकांजलिनिःक्षेपाद्गायत्र्या चाभिमंत्रिताः ॥ निघ्नंति राक्षसान्सर्वान्मन्देहाख्यान्द्विजेरिताः ॥१४॥ ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥ मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १५ ॥ तस्मान्न लंघयेत्संध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥ उल्लंघयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पहले मंत्रोंसे आचमन करकै पीछे स्नानकर आचमन करै, और मंत्रोंसे आत्मा (देह) को शुद्धकर जलकी अंजुली सूर्य भगवान्को दे ॥ १२ ॥ कारण कि अव्यक्तजन्मा भगवान् ब्रह्माजीके वरदानसे दर्पितहो मंदेह नामके राक्षसगण प्रातः कालके सूर्यके साथ युद्धकरते हैं ॥ १३ ॥उस समय गायत्रीके मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुई ब्राह्मणोंकी दीहुई जलाञ्जलि उन मंदेह-नामक सम्पूर्ण राक्षसोंको नष्टकरतीहै ॥ १४ ॥ तिस जलांजलिसे ब्राह्मणोंके द्वारा तथा मरीचि आदि महाभागों और सनकादिक योगियोंसे सुरक्षित होकर सूर्यभगवान् (आकाश में) गमनकरते हैं ॥ १५ ॥ इसकारण द्विजातिगण सावधान होकर प्रातःकाल और सायंकाल की संध्याका उल्लंघन न करैं जो मनुष्य मोहके वशसे संध्याका उलंघन करतेहैं वह निश्चयही नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥

सायं मंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चाञ्जलिम् ॥
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्धयति ॥ १७ ॥

सायंकालमें आचमन करनेके पीछे मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुए जलको शरीरपर छिडककर सूर्यभगवान्को जलांजलि देकर (चारबार) उनकी प्रदक्षिणा करै, इसके पीछे जलको स्पर्शकर शुद्धि प्राप्तकरै ॥ १७ ॥

---

१ भक्षण इसवास्ते कहाहै कि व्रतादिकमें दन्तधावन काष्ठसे न करै ।

२ यह प्रमाण क्षत्रियके अर्थ कहाहै, अथवा द्वादशांगुल (बारहअंगुल) नहीं मिलनेपरका है ।

३ यह प्रमाण वैश्यके अर्थ कहाहै ।

पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनात् ॥ १८ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यां च यथाविधि ॥ गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्ताराणि पश्यति ॥ १९ ॥

भलीभांतिसे नक्षत्र दीखतेहों उस समय प्रातःकालकी संध्या करे; और जबतक सूर्यभगवान्का दर्शन भलीभांतिसे न होजाय तबतक गायत्रीका जप करताहै ॥ १८ ॥ और सूर्यके अस्तहोनेके पूर्व अर्थात् अर्धास्तमित समयमें विधिसे संध्या प्रारंभ करकै जबतक कुछ २ तारोंका दर्शन न हो तबतक गायत्रीका जप करता रहै ॥ १९ ॥

ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ॥
संचिंत्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ॥ २० ॥

इसप्रकार सन्ध्यावन्दन करनेके उपरान्त बुद्धिमान् ब्राह्मण घरमें जाकर शास्त्रकी विधिके अनुसार स्वयं होम करै; इसके पीछे पोष्यवर्ग (पुत्र भृत्य आदि) के भरणके निमित्त चिन्ताकरै ॥ २० ॥

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥
ईश्वरं चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ॥ २१ ॥

इसके उपरान्त निश्चिन्त होकर ज्ञानी ब्राह्मण अपने शिष्यके कल्याणके लिये कुछ एक स्वाध्याय (पढ़ाना) करै, और हे द्विजोत्तमों ! इसके पीछे कार्यके लिये राजाके यहांको जाय ॥ २१ ॥

कुशपुष्पेंधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥ ततो मध्याह्निकं कुर्याच्छुचौ देश मनोरमे ॥ २२ ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥ स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ २३ ॥

दूरदेशमेंसे जाकर कुशा, फूल, ईंधन (लकडी) आदिको लावै, इसके पीछे मनोरम शुद्धदेशमें जाकर मध्याह्निक (जो दुपहरको कियाजाताहै) कर्मको करै ॥ २२ ॥ संक्षेपसे पापनाशक उसकी विधि कहताहूं उसविधिके अनुसार स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै॥२३॥

स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ॥ सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ॥ २४ ॥ नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ॥ न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥ २५ ॥ सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत् ॥ तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ॥ २६ ॥

शुद्ध अक्षत (चावल) और तिलोंके साथ स्नानके लिये मट्टीको लाकर उदार मन होकर शुद्ध और अधिक जलवाली नदीपर जा स्नानकरै ॥ २४ ॥ नदीके होतेहुए इतर जलमें स्नान न करै, और अधिक जलवाले तीर्थके होते हुए अल्पजलवाले (कूपादि) में स्नान न करै॥२५॥ नदियोंमें श्रेष्ठ गंगादि समुद्रवाहिनीमें सोत (प्रवाह) के सन्मुख स्थितहोकर स्नानकरै नदीके न होनेपर तालावादिके जलमें स्नान करै ॥ २६ ॥

शुचिदेशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलांबरम् ॥ मृत्तोयेने स्वकं देहं लिंपेत्प्रक्षाल्य यत्नतः ॥ २७ ॥ स्नानादिकं च समाप्य कुर्यादाचमनं बुधः ॥ सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि ॥ २८ ॥ हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥

प्रथम शुद्धदेशमें जलको छिडककर सम्पूर्ण वस्त्रोंको रखदे, पीछे यत्नपूर्वक मट्टी और जलसे अपनी देहको लीपकर प्रक्षालन करै ॥ २७ ॥ स्नानादिको करकै बुद्धिमान् मनुष्य आचमन करै; फिर वह पुरुष जलके भीतर प्रवेशकरकै मौनहोकर नियम सहित ॥ २८ ॥ हरिका स्मरणकरकै जंघातक जलमें गोतालगावै ॥

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समंत्रतः ॥ २९ ॥ प्रोक्षयेद्वारुणैर्मंत्रैः पावमानीभिरेव च ॥ कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ३० ॥ स्योनापृथ्वीति मृद्गात्रे इदंविष्णुरिति द्विजाः ॥ ततो नारायणं देवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम् ॥ ३१ ॥ निमज्ज्यांतर्जले सम्यक्क्रियते चाघमर्षणम् ॥

इसकेपीछे किनारेपर आकर मंत्रोंसहित जलसे आचमन करके ॥ २९ ॥ वरुणदेवताके मन्त्र अथवा पावमानी सूक्तसे शरीरका प्रोक्षणकरै; कुशाके अग्रके जलसे यत्नसहित देहका प्रोक्षण करकै ॥ ३० ॥ स्योनापृथ्वी इत्यादि मंत्रोंसे अथवा इदंविष्णु–इत्यादि मंत्रोंको पढकर देहमें मट्टी लगावै; इसके पीछे प्रत्येक गोतेमें नारायणका स्मरण करै ॥ ३१ ॥ इसके पीछे जलके बीचमें निमग्न हुए अघमर्षण मंत्र (ऋतंचसत्यमित्यादि) को जपै ॥

स्नात्वाक्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सह ॥ ३२ ॥ तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥ जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्के च वाससी ॥ ३३ ॥ परिधायोत्तरीयं च कुर्य्यात्केशान्न धूनयेत् ॥

इसके पीछे स्नानकरकै अक्षत और तिलोंसे देव ऋषि और पितरोंका ॥ ३२ ॥ तर्पणकरके किनारेपर आकर वस्त्रको निचोडकर सावधानीसे सफेद वस्त्रोंको ॥ ३३ ॥ पहनकर दुपट्टा पहने; और बालोंको न झाडे; अर्थात् शिखाको नहीं फटकारे कारण कि, उसके जलका अंगपर गिरना अच्छा नहींहै ॥

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ मलाक्तं गंधहीनं च वर्जयेद्वरं बुधः ॥ ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥ ३५ ॥

अत्यन्तलाल और नीलावस्त्र श्रेष्ठ नहींहै ॥ ३४ ॥ मैले कुचैले और गन्धहीन वस्त्रको त्यागदे; इसके पीछे बुद्धिमान् मनुष्य मट्टीके जलसे पैरोंको धोवै ॥ ३५ ॥

दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥ त्रिःपिबेदीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् ॥ ३६ ॥ पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत्॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥ तथैव पंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥ अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥ ३८ ॥ कुर्वीत दर्भ-

१ यहांपर देव ऋषियोंके अक्षतसे और पितरोंके तिलसे ऐसा क्रमिक जानलेना ॥

पाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥ प्राणायामत्रयं धीमान्यथान्यायमतंद्रितः ॥ ३९ ॥

इसके पीछे दहिने हाथका गौके कानके समान आकार बनाय देखकर तीनबार जल पिये (आचमन करै) फिर दोबार अंगूठेसे मुखमार्जन करै अर्थात् दोनों होठोंको पोंछै ॥३६॥ फिर पैर और शिरपर जलछिडककर बीचकी तीन अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श करै, अंगूठे और अनामिकासे दोनों नेत्रोंको स्पर्श करै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार विधिसहित बुद्धिमान् मनुष्य सावधान होकर पांचों उंगलियोंसे मस्तकका स्पर्श करै, शुद्ध मनवाला ब्राह्मण इस विधिसे आचमन करके ॥ ३८ ॥ कुशा हाथमें लेकर पूर्व मुख हो आलसको छोडकर न्याससहित तीन प्राणायाम करै ॥ ३९ ॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥ त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत ॥ ४० ॥ वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥ त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१॥ यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥ मंत्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ ४२ ॥ शनैरुच्चारयन्मंत्रं किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥ किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ४३ ॥ धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥ शब्दार्थचिंतनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

इसके पीछे वेदोंकी माता गायत्रीको जपै और जपयज्ञ करै यह जपयज्ञ तीन प्रकारकाहै, आपसे उसका स्वरूप कहताहूं ॥ ४० ॥ वाचिक, उपांशु (धीमीवाणीसे) और मानसिक, यह तीन प्रकारके जपके भेदहैं। इन तीनों जपयज्ञोंके बीचमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठहै ॥ ४१ ॥ जिसका ऊँचा और नीचा उच्चारण स्पष्टपदाक्षरोंके शब्दोंसे मन्त्रपाठ कियाजाताहै उसी जपको वाचिक कहतेहैं ॥ ४२ ॥ और जिसमें कुछ २ होठ कंपित हों और धीरे २ मन्त्रका उच्चारणहो, कुछ २ शब्द सुनाई आताहो, उसे उपांशु जप कहतेहैं ॥ ४३ ॥ बुद्धिसेही पद और अक्षरकी पंक्तिका स्मरणहो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आवैं; केवल शब्द और अर्थका विचारही जिसमें हो, उसका नाम मानासिक जपयज्ञहै ॥ ४४ ॥

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥ प्रसन्ने विपुलान्भोगान्प्राप्नुवंति मनीषिणः ॥ ४५ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ॥ जपितान्नोपसर्पंति दूरादेव प्रयांति ते ॥ ४६ ॥ छंदऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मंत्रमतंद्रितः ॥ जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥ ४७ ॥

१ अर्थात् उसमे फेन बुलबुले आदिक दुष्टवस्तु न होवे ऐसा देखले ।

२ यहां यह बात जानना चाहिये कि अंगुष्ठ तर्जनीसे दोनों नासापुट, अंगुठ मध्यमासे चक्षुयुगल, अंगुष्ठअनामिकासे कर्णद्वय, अंगुष्ठकनिष्ठिकासे नाभि स्पर्श करके हाथ धो हृदयका सम्पूर्ण हस्तसे स्पर्श करे, फिर हाथ धो मूलोक्त अनुसारसे शिरका स्पर्श करकै दोनों भुजाओंकाभी उसीप्रकार स्पर्श करै इसको श्रोत्रवन्दनकर्म कहतेहैं ।

जपसे स्तुति कियेजाकर देवता प्रसन्न होतेहैं, देवताओंके प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको बहुतसी वंशकी वृद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ४५ ॥ जपकरनेसे भयंकर राक्षसगण, पिशाच और सर्प यह निकट नहीं आसकते बरन् वह दूरसेही भाग जातेहैं ॥ ४६ ॥ छंद और ऋषिको जानकर आलस्यरहित होकर मन्त्रजपै, प्रतिदिन मनसे छन्द आदिको जानकर ब्राह्मण गायत्रीको जपै ॥ ४७ ॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ४८ ॥

सहस्र गायत्रीका जप श्रेष्ठ है, और शत (१००) गायत्रीका जप मध्यम, और दशका जप निकृष्ट (अधम) है, जो प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है वह पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥

अथ पुष्पांजलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥ उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥ ४९ ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ॥

इसके उपरान्त श्रीसूर्यनारायणको पुष्पसहित जलकी अंजुली (अर्घ) देकर ऊर्ध्वबाहुहो (ऊपरको दोनों हाथउठा) कर "उदुत्यं जातवेदसम्,, और "तच्चक्षुर्देवहितम्" इन सूक्तों- [सूर्यकी स्तुतिके मंत्रों]को जपै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे (७ सातवार वा तीनवार) प्रदक्षिणा करकै सूर्यको नमस्कार करै ॥

तत्तीर्थेन देवादीनद्भिः संतर्पयेद्द्विजः ॥ ५० ॥ स्नानवस्त्रं तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ॥ तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

फिर द्विज, जलसे देवै आदिक तीर्थसे सूर्यदेवता आदिकोंका तर्पण करै ॥ ५० ॥ फिर स्नानके वस्त्रको निचोडकर पुनर्वार आचमन करै, कारण कि इसीस्थानपर भक्तोंका स्नान और दान कहा है ॥ ५१ ॥

दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्य्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५२ ॥

श्रद्धायुक्त हो कुशाके आसनपर बैठकर कुशा हाथमें ले पूर्वमुख होकर ब्रह्मयज्ञकी विधिके अनुसार ब्रह्मयज्ञ करै ॥ ५२ ॥

---

१ यहां जपके उपरान्त अर्घ देकर उपस्थान कहाहै परन्तु सो अन्यस्मृतिसे विरुद्ध होताहै, अतः प्राणायामके अनन्तर आपो हि ष्ठा इत्यादिक मंत्रसे मार्जनकरनेपर अघमर्षणसूक्त जपै, इसके उपरान्त आचमन करके इस अर्घको दे वो उपस्थान करे, तत्पश्चात् जप करै, उपस्थानमें उर्द्ध्वबाहु होना मध्याह्नहीमें कहाहै, सायं प्रातः अंजली बांधही कर करै ।

२ "कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य तु । प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात्" ऐसा मनुका वचन है, अंगुलियोंके अग्रभागको देवतीर्थ कहतेहैं, उससे देवताओंको तर्पण करै अंगुष्ठतर्जनीको मध्यके पितृतीर्थ कहतहैं उससे पितरोंका तर्पणकरै । अंगुष्ठमूलको ब्रह्मतीर्थ कहतेहैं उससे ऋषियोंका तर्पणकरै ।

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ उत्थाय मूर्द्धपर्य्यंतं हंसःशुचिषदित्यृचा ॥ ५३ ॥ ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥ विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥ ५४ ॥

इसके उपरान्त उठकर फिर तिल पुष्प और अक्षतोंसे अर्घको मस्तक पर्यन्त उठाकर 'हंसःशुचिपत्'इत्यादि ऋचासे अभिमंत्रित करकै सूर्यको दे ॥ ५३ ॥ फिर सूर्यभगवान्को नमस्कार करकै घरको जाय, वहां विधिसे पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा इत्यादि १६ मंत्र) से विष्णुका पूजन करै ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्म विधानतः ॥
गोदोहमात्रमाकांक्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥ ५५ ॥

इसके उपरान्त वैश्वदेवकी विधिके अनुसार वैश्वदेवको बलिदेवै, जितने समयमें गौदुहन होसकता है उतने समयतक गृहस्थी अतिथिकी बाट देखतारहै ॥ ५५ ॥

अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥ स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांबुना ॥ ५६ ॥ स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवंति गृहमेधिनः ॥ आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥ ५७ ॥ पादशौचेन पितरः प्रीतिमायांति दुर्लभाम् ॥ अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादतिथये कार्य्यं पूजनं गृहमेधिना ॥

जिसको पहले कभी न देखाहो ऐसे आये अतिथिकीभी स्वागतवचन (आप अच्छे हैं बडी कृपाकरी जो दर्शन दिया इत्यादि) कहना आसन देना, देखकर उठना, जल आदिसे अतिथिकी पूजा (सत्कार) करै ॥ ५६ ॥ स्वागत पूछनेसे गृहस्थी की अग्नि संतुष्ट होती है, आसनके देनेसे इन्द्र प्रसन्नहोतेहैं ॥ ५७ ॥ चरणोंके धोनेसे पितृगण दुर्लभ प्रीतिको प्राप्त होतेहैं उत्तम अन्नके देनेसे प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्नहोतेहैं ॥ ५८ ॥ इसकारण गृहस्थियोंको अतिथिका पूजन करना अवश्य कर्तव्यहै,

भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ॥ ५९ ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राड् ब्रह्मचारिणे ॥ अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ॥६०॥ अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥ ॥ ६१ ॥ वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ६२ ॥ तस्मात्प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात्समाहितः ॥ विष्णुरेव यतिश्चायमिति निश्चित्य भावयेत् ॥ ६३ ॥

तथा गृहस्थी भक्ति और शक्तिसे सर्वदा विष्णुका पूजन करै ॥ ५९ ॥ अनंतर अन्नके विभागसे पूर्वही व्यंजन (भाजी)सहित भिक्षा देवै ॥६०॥संन्यासी और ब्रह्मचारी भिक्षुकको बलिवैश्वदेवके लिये अन्नको निकालकर भिक्षा देकर बिदाकरै ॥ ६१ ॥ कारण कि, वैश्वदेवके न करनेसे जो पाप होताहै उसके दूर करनेको भिक्षुक समर्थ है और जो पाप भिक्षुकके निरादर करनेसे होताहै, उस पापको वैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ६२ ॥ इसकारण

जो अतिथि आवै उसे सावधान होकर भिक्षा दे और निःसन्देह संन्यासीको विष्णुका रूप विचारै ॥ ६३ ॥

सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि ॥
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजीत वा गृही ॥ ६४ ॥

गृहस्थी मनुष्य प्रथम, सुहागिनी, और कुमारी, बालक और वृद्ध इन मनुष्योंको भोजन कराकर पीछे शेष बचे अन्नको आप भोजन करै ॥ ६४ ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥ अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ ६५ ॥ पञ्च प्राणाहुतीः कुर्य्यान्मंत्रेण च पृथक्पृथक् ॥ ततः स्वादुकरान्नं च भुंजीत सुसमाहितः ॥ ६६ ॥

(भोजनको इसभांतिसे करै कि) पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर बैठे और मौन धारणकर अथवा परिमित बोलकर प्रसन्नचित्तहो प्रथम अन्नदेवको नमस्कारकर ॥ ६५ ॥ पीछे पृथक् पृथक् मन्त्रोंसे प्राणाहुति (प्राणाय स्वाहा इत्यादि) को करै, पीछे स्वादिष्ट अन्नको भलीभांतिसे सावधानहोकर भोजन करै ॥ ६६ ॥

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥ ६७ ॥

भोजनके उपरान्त आचमन करके इष्टदेवताका स्मरण करताहुआ उदरका स्पर्श करै, इसके उपरान्त विद्वान् मनुष्य कुछेक समयको इतिहास और पुराणोंके सुननेमें बितावै ॥ ६७ ॥

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥
कृतहोमस्तु भुंजीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥ ६८ ॥

फिर विधिविधानसहित ग्रामसे बाहर जाकर सन्ध्यावंदन करै; फिर होमकरके और अभ्यागतको भोजन कराकर आप रात्रिको भोजन करै ॥ ६८ ॥

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥
नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ६९ ॥

सायंकाल और प्रातःकालमें भोजन करनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको वेदने दीहै, इस बीच-(दिनमें दुबारा) भोजन नहीं करै,कारण कि यह भोजनकी विधिभी अग्निहोत्रके तुल्य है॥६९॥

शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥ स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः॥७०॥महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु॥तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः ॥ ७१ ॥ माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्जयेत् ॥ अध्यापनं समभ्यस्यन्स्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७२ ॥ नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥ न पठेद्रुदितं श्रुत्वा संध्यायां तु द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥

शिष्योंको पढावै, और अनध्यायके दिन न पढावै, ब्राह्मण जो यह सम्पूर्ण अनध्याय अष्टमी चतुर्दशी आदिक धर्मशास्त्र और पुराणोंमें कहेहैं उनको पढाना वर्जितकर दे ॥ ७० ॥

तथा महानवमी, द्वादशी, भरणी नक्षत्र, पर्व, अक्षयतृतीया, इनमेंभी द्विज शिष्योंको न पढावै ॥ ७१ ॥ माघमहीनेकी रथसप्तमीको भी पढाना उचित नहीं स्नानके समय पढानेको वर्जेदे ॥ ७२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुरदेको लेजाते अथवा पृथ्वीपर पडेहुए देखकर या रोनेके शब्दको सुनकर, और सन्ध्याके समयमें न पढे ॥ ७३ ॥

दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ॥
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ ७४ ॥

और हे ब्राह्मणों ! यह दानभी गृहस्थियोंको देने योग्य है, सुवर्णदान, गौदान, और पृथ्वीदान ॥ ७४ ॥

एवं धर्म्मो गृहस्थस्य सारभूत उदाहृतः ॥ य एवं श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ७५ ॥ ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नरसिंहप्रसादतः ॥ तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार गृहस्थीके सारभूत धर्मको मैंने तुमसे कहा; जो श्रद्धासहित इस धर्माचरणको करताहै, वह ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै ॥ ७५ ॥ और नरसिंह भगवान्की कृपासे उसे अधिक ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै; हे द्विजोत्तमों ! उस ज्ञानसे ब्राह्मण मुक्तिको प्राप्तहोतेहैं॥ ७६ ॥

एवं हि विप्राः कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः ॥
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्म्मं कुर्वन्प्रयत्नाद्धरिमेति युक्तम् ॥ ७७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे विप्रगण ! संक्षेपसे मैंनें तुमसे सनातनधर्मका समूह कहा; गृहस्थी यत्नसहित गृहस्थके पालनेयोग्य इस धर्मके करनेसे सर्वोत्तम विष्णु भगवान्को प्राप्त होताहै; अर्थात् उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ ७७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः ॥
धर्माश्रमं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १ ॥

हे महाभाग सत्तमगण ! अब मैं वानप्रस्थधर्मको कहताहूं, तुम सावधान होकर मेरे कहे हुए उस आश्रमके धर्मको श्रवणकरो ॥ १ ॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः ॥
भार्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥

गृहस्थी पुत्रपौत्रादिको और अपनी वृद्ध अवस्थाको देखकर पुत्रोंके ऊपर अपनी स्त्रीको सौंप या उसे अपने संग लेकर वनको चलाजाय ॥ २ ॥

नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ॥
धारयञ्जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥ ३ ॥

नख, केश, और सफेद गात्रकी त्वचाको धारण करताहुआ वनमें स्थितहो शास्त्रकी विधिके अनुसार अग्निहोत्र करै ॥ ३ ॥

धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिंदितैः ॥ शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपस्तदा ॥ पक्षांते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपकभुक् ॥५॥ तथा चतुर्थकाले तु भुंजीयादष्टमेऽथवा ॥ षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥ ६ ॥ घर्मे पंचाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ॥ हेमंते च जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥

वनमें उत्पन्नहुए अथवा अनिंदित नीवारादि अन्नसे शाक मूल फलोंसे यत्नसहित अपना निर्वाह और होमको करै ॥ ४ ॥ त्रिकाल स्नानकर तीक्ष्ण (कठिन) तपस्या करै, पक्षके अन्तमें वा महीनेके अन्तमें भोजन करै, और अपने आप भोजन बनाकर भक्षणकरै ॥ ५ ॥ चौथे पेहरमें अथवा आठपहरमें या छटेपहरमें भोजनकरै, या वायुही भक्षणकरके रहै ॥ ६ ॥ घर्म (उष्णकाल) में पंचाग्निके मध्यमें और वर्षाऋतुमें निराश्रयमें, और शीतकालमें जलके मध्यमें बैठकर तप करता हुआ समय बितावै ॥ ७ ॥

एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ॥ अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥ आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥ स्मरन्नतींद्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥

जो क्रमानुसार इस प्रकार कर्मोंके करनेमें समर्थ होताहै वह धर्मात्मा अग्निको अपने आत्मामें रखकर उत्तरदिशामें जाय ॥ ८ ॥ पीछे वनमें जाकर शरीर छूटनेतक मौन धारणकर जो तपस्वी अतींद्रिय (जिसको नेत्रआदि न जाने) ब्रह्मका स्मरण करताहै, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै ॥ ९ ॥

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥
विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो वानप्रस्थ वनमें जाकर मनको वशमें कर समाधि लगाये तपकरताहै, वह पापोंसे रहित निर्मल और शांतरूप वानप्रस्थ सनातन दिव्यपुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१ यहांपर चतुर्थकाल शब्दका अर्थ यह है कि, जिसप्रकार ब्राह्मणोंकी प्रातःकाल और सायंकालमें दोवार भोजनकरनेकी विधि कहीहै, प्रातःकाल भोजनका पहला काल कहाहै, उसी प्रकारसे सायंकालको दूसरा काल कहाहै, यदि कोई एकदिन व्रत रहकर दूसरे दिन मध्याह्नके समयमें भोजनकरै, तौ उसने चौथे समयमें भोजन किया; कारण कि उसके उस भोजनके पहले उसके भोजनका तीनवारका समय बीत चुकाहै; इस प्रकारसे आठवां और छटा कालभी समझना योग्य है ।

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥
श्रद्धया तमनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बंधनात् ॥ १ ॥

इसके पीछे उत्तम चौथेआश्रम (संन्यास) का धर्म कहताहूं, श्रद्धासहित उस धर्मके अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य संसारके बंधनसे छूटजाताहै ॥ १ ॥

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्पातयंश्चैव किल्बिषम् ॥ चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥ २ ॥ दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥ दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥३॥ इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रव्रजेत्पुनः ॥ ४ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रममें स्थिति और पापोंको दूरकरता हुआ ब्राह्मण संन्यासकी विधिसे चौथे आश्रममें जाय (संन्यास) को ले ॥ २ ॥ पितर, देवता और मनुष्य इनके निमित्त दानकरके और पितर मनुष्य अपनी आत्माके लिये श्राद्ध करके ॥ ३ ॥ पूर्व अथवा उत्तरको मुखकरके वैश्वानरी यज्ञ[1] करै, फिर अपनेमें अग्निको मानकर मंत्रका ज्ञाता पुरुष संन्यासको ग्रहण करै ॥ ४ ॥

ततःप्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् ॥ बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥ ५ ॥ त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम् ॥ वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥ शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारिणीम् ॥ ७ ॥ पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥ ८ ॥

उसीसमयसे पुत्रादिकोंका स्नेह और संभाषणादिको त्याग दे, और अपने बंधु तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान करै ॥ ५ ॥ चार अंगुलका कपडा और काली गौके बालोंकी रस्सी लिपटी हो और जिसकी ग्रंथि सम हों, ऐसा वांसका त्रिदण्ड ग्रहण करै ॥ ६ ॥ शौच और आसनके विचारके लिये मुनियोंकी कहीहुई कौपीन और शीतको दूरकरनेवाली गुदडी ॥ ७ ॥ और खडाऊं इनको ग्रहणकरै, अन्य वस्तुका संग्रह न करै; यह संन्यासीके सदैव कालके चिह्न कहेहैं ॥ ८ ॥

संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ९ ॥ तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥ आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ १० ॥ गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥

पूर्वोक्त सम्पूर्ण वस्तुओंका संग्रह कर संन्यास लेनेवाला उत्तम तीर्थमें जाकर वस्त्रपूत (छने) जलसे विधिसहित आचमन करै; और स्नान करै ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त देवताओंको

---

१ वैश्वानरी यज्ञ संन्यास लेतेसमय होताहै ।

तर्पणकर सूर्यभगवान्को तथा आत्माको नमस्कार करै, पूर्वको मुखकर मौन धारण कर तीन प्राणायाम करै ॥ १० ॥ पीछे यथाशक्ति गायत्रीका जपकरनेके उपरान्त परब्रह्मका ध्यान करै,

स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥ सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥ सम्यग्याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥ पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोधयेत् ॥ यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥ चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥ सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रे नियोजयेत् ॥ सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥ भुंजीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ वटकाश्वत्थपर्णेषु कुंभीतेन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥ कोविदारकदंबेषु न भुंजीयात्कदाचन ॥ मलाक्ताः सर्व उच्यंते यतयः कांस्यभोजिनः॥१७॥ कांस्यभांडेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः ॥ १८ ॥ भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥ न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥ १९ ॥

प्रतिदिन अपनी जीविकाके निमित्त भिक्षाके लिये भ्रमण करै ॥ ११ ॥ सन्ध्याके समय ब्राह्मणके घरपर जाकर दहिने हाथसे भलीभांति केवल (ग्रास) मांगै ॥ १२ ॥ बांये हाथमें पात्रको रखकर उसे दहिने हाथसे खाली करै अर्थात् पात्रमेंसे अन्नको निकाले; जितने अन्नसे अपनी तृप्ति होसकै उतनीही भिक्षाका संग्रह करै ॥ १३ ॥ इसके पीछे फिर लौटकर उस पात्रको दूसरे स्थानपर रख और चार अंगुलसे ढककर सावधानीसे एक ग्रासको ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण व्यंजनों सहित दूसरे पात्रमें रक्खै, और उसको सूर्यआदि भूत देवताओंको देकर, और जलसे छिडककर ॥ १५ ॥ पत्तोंके दोने या पात्रमें संन्यासी मौन धारणकर भोजन करै. वड, पीपल, अगस्त, तेंदु, ॥ १६ ॥ कनेर, कदंब इनके पत्तोंमें कभी भोजन न करै; जो संन्यासी कांसीके पात्रमें भोजन करतेहैं उनको मलीन कहा है ॥ १७ ॥ कांसीके पात्रमें जो भोजन पकाताहै और कांसीके पात्रमें जिमानेवाले गृहस्थीको जो पाप होताहै, उन दोनोंके पाप काँसीके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको लगताहै ॥ १८ ॥ संन्यासी जिस पात्रमें भोजन करै उस पात्रको मंत्रोंसे प्रक्षालन (धोना) करै, वह पात्र यज्ञके चमसा (एक यज्ञका पात्र होताहै) की समान कभी अशुद्ध नहीं होता ॥ १९ ॥

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच्च भास्करम् ॥
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥ २० ॥

इस उपरान्त आचमन और ध्यान करके भगवान् सूर्यदेवकी स्तुति करै; और विद्वान् मनुष्य शेष दिनको जप ध्यान और इतिहासोंमें व्यतीत करै ॥ २० ॥

कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेदेवगृहादिषु ॥
हृत्पुंडरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २१ ॥

सायंकालमें सन्ध्यावंदनादि करे घरमें रात्रिको बितावै; अपने हृदयरूपी कमलमें अविनाशी आत्माका ध्यान करै ॥ २१ ॥

यदि धर्मरतिः शांतः सर्वभूतसमो वशी ॥
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ २२ ॥

यदि संन्यासी इसप्रकारसे धर्ममें तत्पर और सब प्राणियोंमें समदर्शी, वशी (जिसके इन्द्रिय वशमें हो) और शांत हो तौ वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै, वहां जाकर फिर उसे इस संसारमें आना नहीं पडता ॥ २२ ॥

त्रिदंडभृद्यो हि पृथक्समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाक्षः ॥
संमुच्य संसारसमस्तबंधनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् २३॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो त्रिदंडी संन्यासी पृथक् २ ऐसा आचरण करै और धीरे २ जिसकी इन्द्रिय संसारसे विरक्त होजांय, वह संसारके सम्पूर्ण बंधनोंको तोडकर अमृतरूपी विष्णुभगवान्के पदको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ॥
येन स्वर्गापवर्गौ च प्राप्नुवंति द्विजातयः ॥ १ ॥

वर्ण और आश्रमोंके धर्मोका स्वरूप कहा, इस धर्मका अनुष्ठान करनेसे द्विजातिगण स्वर्ग और मोक्षको पाते हैं ॥ १ ॥

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ॥
यस्य च श्रवणाद्यांति मोक्षं चैव मुमुक्षवः ॥ २ ॥

इस समय संक्षेपसे योगशास्त्रका उत्तम सार कहताहूं, जिसके सुननेसे मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्य मुक्त होजातेहैं ॥ २ ॥

योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ॥
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥ ३ ॥

योगाभ्यासके बलसेही सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं, इसकारण योगमें तत्पर होकर मनुष्य उत्तम आचरणसे नित्य ध्यान करै ॥ ३ ॥

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेंद्रियम् ॥ धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥ ४ ॥ एकाकारमनानंतं बुद्धौ रूपमनामयम् ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥

प्रथम प्राणायामसे वाणीको, प्रत्याहार (विषयोंसे इन्द्रियोंके हटाने) से इन्द्रियको, और धारणा (स्थिरताके कर्म) से वशकरने अयोग्य मनको वशमें करकै ॥ ४ ॥ एकाग्रचित्त

होकर देवताओंको भी अगम्य (प्राप्तिके अयोग्य) और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जो जगत्‌के आश्रय विष्णु भगवान् हैं उनका ध्यान करै ॥ ५ ॥

आत्मना बहिरंतःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ॥
रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम् ॥ ६ ॥

जो ब्रह्म अपने स्वरूपसे बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्णकी समान जिसकी कांति है; ऐसे ब्रह्मका एकान्तमें बैठकर मरणसमयतक ध्यान करै ॥ ६ ॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ॥ ७ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, जो सबके हृदयमें विराजमान है और जो सबके जानने योग्य है, वह परमात्मा मैंही हूं, ऐसा चिंतवन करै ॥ ७ ॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ॥
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥ ८ ॥

जबतक आत्माके लाभका सुख न हो, तबतक शास्त्रकारोंने तप ध्यान श्रुति और स्मृतिका धर्म करना कहाहै, आत्माकी प्राप्तिका विरोधी जो है उसको न करै ॥ ८ ॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ॥ एवं तपश्च विद्या च संयुत भेषजं भवेत् ॥ ९ ॥ यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु वान्नेन संयुतम् ॥ उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥ देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बंधनात् ॥ न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२॥

जिसप्रकारसे घोडेके विना रथ और सारथीके विना घोडा नहीं चलता और दोनोंही परस्परमें सहायक हैं; इसीप्रकारसे विद्याभी तपस्याके विना साथहुए कुछ काम नहीं करसकती, विद्या (ज्ञान) तप यह दोनों मिलकर संसारके रोगकी औषधी है ॥ ॥ ९ ॥ जिसभांति मीठेसे युक्त अन्न और अन्नसे युक्त मीठा; और जैसे दोनों पंखोंसेही आकाशमें पक्षियोंकी गति (उडान) है ॥ १० ॥ उसीभांति ज्ञान और कर्म इन दोनोंसेही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै; ज्ञान और तपसे युक्त और योगमें तत्पर हुआ ब्राह्मण ॥ ११ ॥ दोनों देहो (स्थूल और सूक्ष्म) को शीघ्र छोडकर बंधनसे छूटजाताहै, इसभांति जिसका देह नष्ट होगयाहै उसका नाश कभी नहीं होता ॥ १२ ॥

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मैंने वर्ण और आश्रमके भेद और उनका सनातन धर्म संक्षेपसे तुमसे कहा ॥ १३ ॥

श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वंस्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥

स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले धर्मको इसप्रकार सुनकर उन हारीतमुनिको नमस्कार करके सब मुनि प्रसन्न होकर अपने २ आश्रमको चलेगये ॥ १४ ॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

जो मनुष्य हारीतमुनिके कहेहुए धर्मशास्त्रको पढकर धर्मका आचरण करताहै, वह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥ ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पादजस्य च ॥ १६ ॥ अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥ यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥ तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥ राजेंद्र वर्णाश्चत्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥१८॥ स्वधर्मं येऽनुतिष्ठंति ते यांति परमां गतिम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको जो कर्म इसमें कहाहै ॥ १६ ॥ उसके विरुद्ध वर्ताव जो करताहै, वह जातिसे शीघ्रही पतित होजाताहै, जो धर्म वर्णका कहाहै वह उसी प्रकारका उस वर्णका है ॥ १७ ॥ इसकारण ब्राह्मण आपद्कालको छोडकर अपने धर्मको करै, हे राजाओंके स्वामी ! चार वर्ण और चारही आश्रम हैं ॥१८॥ जो अपने धर्मको करतेहैं वह परम गतिको प्राप्त होतेहैं ।

स्वधर्मेण यथा नॄणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥ न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥ अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतंद्रितः ॥ २० ॥ सहस्रानीकदेवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१ ॥

भगवान् नरसिंहदेव जिसप्रकारसे अपने धर्ममें स्थित मनुष्योंपर प्रसन्न होतेहैं ॥ १९ ॥ उसीभांति अन्य कर्मसे प्रसन्न नहीं होते, इसकारण सर्वदा आलस्यरहित होकर समयपर कर्म करताहुआ मनुष्य ॥ २० ॥ सहस्रों देवताओंके स्वामी समंदिर भगवान्को ॥ २१ ॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥ सत्यं सुखं रूपमनंतमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सर्वदा परब्रह्मको उत्पन्नहुए वैराग्यके बलसे क्रियावान् योगी जो ध्यान करताहै वह देहको त्यागकर सत्य सुखरूप अनंत विष्णुके पदको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता ३.

॥ श्रीः ॥

औशनसी स्मृतिः ४.

भाषाटीकासमेता ।

अथौशनसं धर्मशास्त्रम् ॥ उशना उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्तिविधानकम् ॥ अनुलोमविधानं च प्रतिलोमविधिं तथा ॥ १ ॥ सांतरालकसंयुक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते ॥

अब जाति और वृत्तिका विधान अनुलोम (नीच जातिकी कन्यामें ऊँचे वर्णसे उत्पन्न) की विधि तथा प्रतिलोम (ऊँचे वर्णकी कन्यामें नीच वर्णसे उत्पन्न) की विधि कहताहूं ॥ ॥ १ ॥ अंतरालक (जो इनके बीचमें उत्पन्न हुएहैं पुलिंदआदि) उन करके संयुक्त सम्पूर्ण संक्षेपसे कहाजाताहै;

नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥ २ ॥ जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः ॥ वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥ ३ ॥

क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें विवाह होनेपर जो उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥ वह सूत जाति कहाताहै, यह प्रतिलोमविधिका द्विज होताहै, यह सूत वेदका अधिकारी नहीं होता; यह केवल उन वेदोंके धर्मोंका उपदेष्टा (बतानेवाला) होताहै॥ ३ ॥

सूताद्विप्रप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते ॥
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥

सूतसे ब्राह्मणकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे वेणुक (बाड) कहतेहैं और क्षत्रीकी कन्यामें जो सूतसे पैदाहो उसे चमार कहतेहैं ॥ ४ ॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ॥ वृत्तं च शूद्रवत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥ ५ ॥ यानानां ये च वोढारस्तेषां च परिचारकाः ॥ शूद्रवृत्त्या तु जीवंति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें क्षत्रियसे चौर्यसे जो उत्पन्न हो उसे रथकार (बढ़ई) कहते हैं इसका धर्म ब्राह्मणका धर्म नहीं होता है, जो धर्म शूद्रका है वही धर्म इसका होताहै ॥ ५ ॥ जो यान (सवारी) के उठानेवाले हैं, अथवा जो उनके सेवक होकर शूद्रकी जीविकासे निर्वाह करतेहैं वहभी क्षत्रियके धर्मके आचरण न करें ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ॥ वंदित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ ७ ॥ प्रशंसावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ॥

जो वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो उसे मागध (भाट) कहतेहैं, यह क्षत्री और ब्राह्मणोंका बंदी (स्तुति करनेवाला) होताहै ॥ ७ ॥ उसकी जीविका प्रशंसाही है या वैश्यका दास होकर रहै ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥ सीसमाभरणं तस्य कार्ष्णायसमथापि वा ॥ वध्री कंठे समाबद्ध्य झल्लरीं कक्षतोपि वा ॥ ९ ॥ मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम् ॥ नापराह्णे प्रविष्टोपि बहिर्ग्रामाच्च नैर्ऋते ॥ १० ॥ पिंडीभूता भवंत्यत्र नो चेद्वध्या विशेषतः ॥

ब्राह्मणीसे उत्पन्नहुआ शूद्र चांडाल कहाताहै ॥ ८ ॥ इसके आभूषण शीशे तथा लोहेके होतेहैं, यह गलेमें वध्री (चमड़ेका पट्टा) और कोखमें झालरी (झाडुटलिया) बांधकर । ॥ ९ ॥ मध्याह्नकालसे पहले गाँवमें शुद्धिके लिये मलको उठावै. और मध्याह्नके पीछे गाँवमें प्रवेश न करै, परन्तु नैर्ऋत दिशामें गाँवसे बाहरही निवास करै ॥ १० ॥ और यह सब जने एकही स्थानपर रहैं, और जो न रहैं तो यह वधके योग्य हैं,

चण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥
श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्बलम् ॥

चांडालसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहुआ श्वपच कहाताहै ॥ ११ ॥ वह कुत्तेका मांसही भक्षण करतेहैं और उनका बल कुत्ता ही है,

नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥ १२ ॥ तंतुवाया भवंत्येव वसुकांस्योपजीविनः ॥ शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न होताहै वह आयोगव (जुलाहा वा कोरी) कहाताहै ॥ १२ ॥ वह बुनकर और कांसीके व्यापारसे अपनी जीविका निर्वाह करै, इन्हीमेंसे जो वस्त्र निर्माणकरने (सूत रेशम आदिके कसीदे) से जो जीविका करतेहैं, वह शीलक कहाते हैं ॥ १३ ॥

आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः ॥

आयोगवसे जो ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न होतेहैं वह ताम्रोपजीवी (ठठेरे) होतेहैं,

तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥ १४ ॥

और क्षत्रियकन्यामें आयोगवसे जो उत्पन्न हो उसे सूनिक (सोनी) कहतेहैं ॥ १४ ॥

सूनिकस्य नृपायां तु जाता उद्बंधकाः स्मृताः ॥
निर्णजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवंत्यतः ॥ १५ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो सूनिकसे उत्पन्न हो उसे उद्बंधक कहतेहैं, यह वस्त्रोंको धोतेहैं और स्पर्श करने योग्य नहीं होते ॥ १५ ॥

नृपायां वैश्यतश्चौर्यात्पुलिंदः परिकीर्तितः ॥
पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान्दुष्टसत्त्वकान् ॥ १६ ॥

जारीसे जो वैश्यद्वारा क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह पुलिंद कहातेहैं, पुलिंद दुष्ट जीवोंके मारनेवाले और पशुओंको मारकर मांसवृत्ति करते हैं ॥ १६ ॥

नृपायां शूद्रसंसर्गाज्जातः पुल्कस उच्यते ॥ सुरावृत्तिं समारुह्य मधुविक्रयकर्म्मणा ॥ १७ ॥ कृतकानां सुराणां च विक्रेता पाचको भवेत् ॥

शूद्रसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे पुल्कस (कलाल) कहतेहैं, वह मदिरासे जीविका करके मदिरा वा मीठा बेचते हैं ॥ १७॥ और यह मदिराको बनाताभी है और बनी बनाई मदिराकोभी बेंचताहै,

पुल्कसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते॥ १८ ॥

इस पुल्कससे वैश्यकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे रजक कहतेहैं ॥ १८ ॥

नृपायां शूद्रतश्चौर्य्याज्जातो रंजक उच्यते ॥

शूद्रद्वारा जारसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न होताहै उसे रंजक (रंगरेज) कहतेहैं,

वैश्यायां रंजकाज्जातो नर्त्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥

वैश्यकी कन्यामें जो रंजकसे उत्पन्नहो उसे नर्तक (नट) वा गायक (कत्थक) कहतेहैं ॥ १९ ॥

वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः ॥ अजानां पालनं कुर्य्यान्महिषीणां गवामपि ॥ २० ॥ दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ॥

शूद्रसे जो वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहो उसे वैदेहिक (गडारिया) कहतेहैं; वह गाय, भैंस, बकरी इनको पाले ॥ २० ॥ और जीविका उसको दही, घी, मट्ठा, इनका बेचना है,

वैदेहिकात्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणीमें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो वह चर्मोपजीवी होताहै; अर्थात् चाम बेचकर जीविका करताहै ॥ २१ ॥

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो उसे सूचिक (दरजी) अथवा पाचक (रसोई बनानेवाला) कहतेहैं,

वैश्यायां शूद्रतश्चौर्य्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥ २२॥

तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन्पुनः ॥

चोरीसे जो वैश्यकी कन्यामें शूद्रसे उत्पन्नहो, वह चक्री (तेली) कहाताहै ॥ २२ ॥ इसकी जीविका, तिल, खल, अथवा लवणसे है,

विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु समंत्रकम् ॥ २३ ॥ जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजःस्मृतः ॥ अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥ २४ ॥ अश्वं रथं हस्तिनं च वाहयेद्वा नृपाज्ञया ॥ सैनापत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तु वृत्तिषु ॥ २५ ॥

जिस क्षत्रियकी कन्याका ब्राह्मणके साथ विधि विधान सहित विवाह हुआहै उस कन्यासे जो उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ उसे अनुलोम सुवर्णद्विज कहतेहैं, यह नित्य नैमित्तिक (जातकर्मादि) क्रियाको करताहुआ ॥ २४ ॥ घोडा, रथ, हाथी इनको राजाकी आज्ञासे चलाताहै; और सेनापति बनकर अथवा औषधोंसे अपना निर्वाह करै ॥ २५ ॥

नृपायां विप्रतश्चौर्य्यात्संजातो यो भिषक्स्मृतः ॥ अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपालयेत्तु वैद्यकम् ॥ २६ ॥ आयुर्वेदमथाष्टांगं तंत्रोक्तं धर्म्ममाचरेत् ॥ ज्योतिषं गणितं वापि कायिकीं वृद्धिमाचरेत् ॥ २७ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें चोरीसे जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै, वह भिषक् कहाताहै, वह राजाकी आज्ञासे वैद्यक करताहै ॥ २६ ॥ यह अष्टांग आयुर्वेद अथवा तंत्रोक्त धर्मोको करै और ज्योतिष अथवा गणितविद्यासे अपना निर्वाह करै ॥ २७ ॥

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो विधानपूर्वक ब्राह्मणसे उत्पन्न हो (अर्थात् उसका विवाह यथाशास्त्र करकै पश्चात्) वह नृप होताहै;

नृपायां नृपसंसर्गात्प्रमादाद्गूढजातकः ॥ २८ ॥ सोऽपि क्षत्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः ॥ अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥ २९ ॥ सर्वं तु राजवृत्तस्य शस्यते पदवंदनम् ॥ पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥

और इस राजासे क्षत्रियकी कन्यामें प्रमादसे जो उत्पन्न हो, उसे गूढ कहतेहैं ॥ २८ ॥ और वहभी क्षत्रिय होताहै परन्तु अभिषेक (राजतिलक) के योग्य नहीं होता; अभिषेककी अयोग्यतासे इसे गोज (गोल) कहतेहैं ॥ २९ ॥ सब प्रकारसे राजाके चरणोंकी वंदना (नमस्कार) करनाही श्रेष्ठ है; यह गोज राजाओंके पुनर्भू करणमें (दूसरा विवाह करनेमें) राजाके समान है; अर्थात् इसके यहां राजा दूसरा विवाह करले ॥ ३० ॥

वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यंबष्ठ उच्यते ॥ कृष्याजीवी भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥ ध्वजिनीजीविका वापि अंबष्ठाः शस्त्रजीविनः ॥

विधानसहित विवाहीहुई वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै उसे अंबष्ठ कहतेहैं, खेती अथवा आग्नेय (लकडी) यही उसकी जीविका है ॥ ३१ ॥ अंबष्ठोंकी जीविका सेना अथवा शस्त्रकी है,

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुंभकारः स उच्यते ॥ ३२ ॥ कुलालवृत्त्या जीवेत

और चोरीसे वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न हो उसे कुम्हार कहतेहैं ॥३२॥ इसकी जीविका कुलालकी वृत्ति (मट्टीके पात्र बनानेसे) होतीहै;

नापिता वा भवन्त्यतः ॥ सूतके प्रेतके वापि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥ ३३ ॥ नाभेरूर्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ॥ कायस्थ इति जीवेत्तु विचरेच्च इतस्ततः ॥ ३४ ॥ काकाल्लौल्यं यमात्क्रौर्यं स्थपतेरथ कृंतनम् ॥ आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥ ३५ ॥

इसीसे नापित (नाई) उत्पन्न होतेहैं; जन्मसूतक अथवा मरणसूतकमें अथवा दीक्षाकालमें यह केशोंका छेदन करते हैं ॥ ३३ ॥ नाभी (टूंडी) के ऊपरके केशोंके काटनेसे उसे नापित कहतेहैं; और यह कायस्थ नामसे इधर उधर विचरण करताहुआ जीविका करताहै ॥ ३४ ॥ काक (कौआ) से चपलता, यमराजसे क्रूरता,

स्थपति (बढ़ई) से काटना इन तीनों अर्थके जतानेके लिये इन तीनों शब्दोंके पहले अक्षरको लेकर इसको कायस्थ कहाहै ॥ ३५ ॥

शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवो मतः ॥ भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयुः पूतकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥ शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथा मंडलवृत्तिभिः ॥

विधिसहित विवाहीहुई शूद्रकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै उसे पारवश (पारधी) कहतेहैं, यह भद्रक (अच्छे) पहाड़ों आदि पर रहकर जीविका करताहै और उसे पूतक कहा तेहैं ॥ ३६ ॥ शिवादि आगम विद्या (पंचरात्र आदि) ओंसे अथवा यह मंडलवृत्तिसे जीताहै, उसी जातिमें (स्त्री पुरुष दोनों पारशव हों)

तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥ ३७ ॥
वने दुष्टमृगान्हत्वा जीवनं मांसविक्रयः ॥

उनके जो औरस पुत्र होताहै उसे निषाद कहतेहैं ॥ ३७ ॥ उसकी जीविका वनमें वनके दुष्ट मृगोंको मारकर उनके मांसका बेचना है,

नृपाज्जातोथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥
वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्म्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥

जो पुत्र विधिसहित विवाही हुई वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न होताहै, उसकी जीविका वैश्यकी वृत्तिसे है, और क्षत्रियके धर्मको वह न करै ॥ ३८ ॥

तस्यां तस्यैव चौर्येण मणिकारः प्रजायते ॥ मणीनां राजतां कुर्य्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम् ॥ ३९ ॥ प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् ॥

जो चोरीसे वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो वह मणिकार (मीनाकार) होताहै मणियोंका रंगना वा मोतियोंका बींधनाही उसका काम है ॥ ३९ ॥ अथवा मूगोंकी माला या कड़े बनाताहै,

शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४० ॥
नृपस्य दंडधारः स्याद्दंडं दंड्येषु संचरेत् ॥

ब्राह्मणके संसर्गसे जो शूद्रके घर उत्पन्नहो उसे उग्र कहतेहैं ॥ ४० ॥ वह राजाका दंडधारी (चोबदार) होताहै और दंडके योग्योंको दंड देताहै,

तस्यैव चावसंवृत्त्या जातः शुंडिक उच्यते ॥ ४१ ॥
जातदुष्टान्समारोप्य शुंडाकर्मणि योजयेत ॥

और जो चोरीसे ब्राह्मणसे शूद्रीमें उत्पन्नहो वह शुंडिक (करार) कहताहै ॥ ४१ ॥ उत्पन्न होतेही राजा दुष्टोंके ऊपर अधिपति बनाकर उस शुंडिकको शुंडाकर्म (शूलीके देने) में नियुक्त करै,

शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचिकः स्मृतः ॥ ४२ ॥

विधिसहित विवाही हुई शूद्रकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न हो उसे सूचिक (दर्जी) कहते हैं ॥ ४२ ॥

सूचिकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥
शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें सूचिकसे जो उत्पन्न हो वह तक्षक (बढ़ई) कहाताहै, शिल्पकर्म (कारीगरी) वा प्रासादलक्षण (मकान बनानेका प्राकार) कामको करताहै ॥ ४३ ॥

नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबंधकः ॥

सूचिकसे जो क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह मत्स्यबंधक (धीवर) कहाताहै,

शूद्रायां वैश्यतश्चौर्यात्कटकार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥

जो चोरीसे शूद्रकी कन्यामें वैश्यसे उत्पन्न हो उसे कटकार कहतेहैं ॥ ४४ ॥

वशिष्ठशापात्त्रेतायां केचित्पारशवास्तथा ॥ वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतेन च ॥ ४५ ॥ वेदशास्त्रावलंबास्ते भविष्यंति कलौ युगे ॥ कटकारास्ततः पश्चान्नारायणगणाः स्मृताः ॥ ४६ ॥ शाखा वैखानसेनोक्तास्तंत्रमार्गविधिक्रियाः ॥ निषेकाद्याः श्मशानांताः क्रियाः पूजांगसूचिकाः ॥ ४७ ॥ पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं प्रोक्तं धर्मं समाचरेत् ॥

वशिष्ठजीके शापसेभी त्रेतायुगमें कोई एक पारशव हुएथे, वे वैखानस (हरिके गाने) से अथवा परमेश्वरकी भक्तिसे ॥ ४५ ॥ वे शापवाले पारशव कलियुगमें वेदशास्त्रके जाननेवाले होंगे, इसके उपरान्त वह कटकार नामके नारायणके गण कहावैंगे ॥ ४६ ॥ तंत्रमार्गकी विधिसे जिनमें कर्म हैं वैखानस ऋषिने ऐसी शाखा कहीहै और गर्भसे लेकर श्मशानतक १६ संस्कारभी इनके होतेहैं, इसी कारणसे यह सूचिक पूज्य (श्रेष्ठ) हैं ॥ ४७ ॥ ये नारदपांचरात्रमें कहेहुए धर्मको करें;

शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः ॥ ४८ ॥ द्विजशुश्रूषणपरः पाकयज्ञपरान्वितः ॥ सच्छूद्रं तं विजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा ॥ ४९ ॥

शूद्रकी कन्यामें शूद्रसे शूद्रही होताहै ॥ ४८ ॥ जो शूद्र द्विज (ब्राह्मणादि तीन वर्ण) की सेवामें पाकयज्ञ कर्ममें सावधान रहै, वह शूद्र उत्तम है, और जो न रहै उस शूद्रको असच्छूद्र (निन्दाके योग्य) जानना ॥ ४९ ॥

चौर्यात्काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥ ५० ॥

शूद्रकी कन्यामें जो चोरीसे शूद्रसे उत्पन्न हो वह घोडोंकी घास लानेवाला तृणवाहक काकवच कहाताहै ॥ ५० ॥

एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः ॥
जात्यंतराणि दृश्यंते संकल्पादित एव तु ॥ ५१ ॥

इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ४ ॥

यह मैंने भिन्न २ जाति और जीविकाके अनुसार संक्षेपसे कहा और जातिभी इनमेंही मनके संकल्पसे दीखतीहैं ॥ ५१ ॥

इति औशनसीस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ॥ ४ ॥

औशनसीस्मृतिः समाप्ता ४.

॥ श्रीः ॥

आंगिरसस्मृतिः ५.

भाषाटीकासमेता।

श्रीगणेशाय नमः ॥ गृहाश्रमेषु धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ॥ प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥

महर्षि अंगिराजी चारों वर्णोंके गृहस्थ आश्रम आदि धर्मोंमें प्रायश्चित्तकी विधिको विचार-कर कहने लगे ॥ १ ॥

अंत्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ॥
चांद्रं कृच्छ्रं तदर्धं तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥

चांडालके बनाये हुए सिद्ध अन्नको खाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमानुसार चां-द्रायण, कृच्छ्र, अथवा आधा कृच्छ्र करना चाहिये ॥ २ ॥

रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

रजक, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त, मेद, भील, यह सब जाति अंत्यज कही गईहैं ॥ ३ ॥

अंत्यजानां गृहे तोयं भांडे पर्युषितं च यत् ॥
यद्द्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण अंत्यजोंके घरका जल या उनके पात्रका बासी जल यदि अज्ञानसे पीले, तौ शास्त्रमें कहेहुए प्रायश्चित्तको उसी समय करै ॥ ४ ॥

चण्डालकूपे भांडेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे वि-धीयते ॥ ५ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥

यदि अज्ञानसे चांडालके कुए अथवा पात्रका जल पीले, तौ प्रत्येक वर्णके (पीनेवालोंके बीचमें) किस प्रकारका प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सांतपन करै, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य करै, और शूद्र चौथाई प्राजापत्यको क्रमानुसार करै ॥ ६ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वंत्यजातिषु ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानसे अत्यंज जातिके यहांका जल पीले तौ वह एकदिन उपवास करकै दूसरे दिन पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७ ॥

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ आचांत एव शुद्ध्येत अंगिरा मु-निरब्रवीत् ॥ ८ ॥ क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ स्नानं जप्यं तु

कुर्वीत दिनस्यार्द्धेन शुद्ध्यति ॥ ९ ॥ वैश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते॥तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत्॥ ११ ॥

यदि ब्राह्मण कदाचित् उच्छिष्ट अवस्थामें, अर्थात् भोजन करके विना आचमन किये ब्राह्मणको छूले तो आचमन करनेसे शुद्ध होताहै, यह अंगिरा मुनिका वचन है ॥ ८ ॥ जो कभी ब्राह्मणको उच्छिष्ट अवस्थामें क्षत्रिय छूले तौ स्नान और जप करनेसे आधेदिनमें शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥ यदि ब्राह्मणको उच्छिष्ट वैश्य, शूद्र, कुत्ता यह छूलैं तौ एकरात्रि उपवास करकै पंचगव्यके पान करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ १० ॥ जिसके अनुच्छिष्टके स्पर्श करनेसे स्नान कहाहै उसके उच्छिष्टको स्पर्श करनेपर प्राजापत्य व्रतको करै ॥ ११ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्य वै विधिम् ॥ स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १२ ॥ पालनं विक्रयश्चैव तद्वृत्त्या उपजीवनम् ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ स्पृष्ट्वा तस्य महापापं नीलीवस्त्रस्य धारणम् ॥ १४ ॥ नीलीरक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत् ॥अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १५ ॥ नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणो वै प्रमादतः ॥ शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥ नीलीवृक्षेण पक्वं तु अन्नमश्नाति चेद्द्विजः ॥ आहारवमनं कृत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥ भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः ॥ त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चांद्रायणमिति स्थितम् ॥ १८ ॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते ॥ नोपतिष्ठति दातारं भोक्ता भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १९॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्पाके श्रपितं भवेत् ॥ तेन भुक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम्॥ २० ॥ मृते भर्तरि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ॥ भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनंतरम् ॥ २१ ॥ नील्या चोपहते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति ॥ अभोज्यं तद्द्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥ देवद्रोणे वृषोत्सर्गे यज्ञे दाने तथैव च॥ अत्र स्नानं न कर्तव्यं दूषिता च वसुंधरा॥२३॥ वापिता यत्र नीली स्यात्तावद्भूरशुचिर्भवेत् ॥ यावद्द्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ २४॥

इसके उपरान्त नीली (नील) के शौचकी विधि कहताहूं; स्त्रीकी क्रीडाके लिये भोग करनेकी शय्यापर नीला वस्त्र दूषित नहीहै ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मण नीलको बेचताहै; और जो नीलके व्यापारवालेसे अपनी जीविका निर्वाह करताहै वह पापी होताहै, और तीन कृच्छ्रके करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥ नीले वस्त्र धारणकर जो स्नान, ध्यान, जप, होम, वेदपाठ और पितरोंको तर्पण करताहै, उसके छू लेनेसे भी महापाप होताहै ॥ १४ ॥ यदि अज्ञानसे जो मनुष्य नीले रंगे वस्त्रोंको पहरताहै वह एकरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५ ॥ब्राह्मण यदि प्रमादसे नीलके काठको भेदन करै और उसमेंसे रुधिरस-

मानें उसका रस निकल आवै तौ वह चांद्रायण व्रतको करै ॥१६॥ जो ब्राह्मण नीलके वृक्षसे पकेहुए अन्नको खाताहै वह उस खायेहुए अन्नको वमन करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ॥१७॥ यदि द्विजाति (तीनों वर्ण) असावधानी और अज्ञानसे नीलको खालैं, तौ तीनों वर्णोंको चांद्रायण व्रत करना कर्तव्यहै ॥ १८ ॥ नीले रंगके वस्त्रको पहरेहुए जो अन्न परोसताहै और उस परसे हुए अन्नको जो खाताहै उस अन्नदानका फल दाताको नहीं मिलता; और उस अन्नका भोजनकरनेवालाभी पापका भागी होताहै ॥ १९ ॥ नीले वस्त्रको पहनकर जो पाक बनाया जाताहै उसका भोजन करनेवाला ब्राह्मण एक दिन उपवास करै ॥ २० ॥ जो स्त्री पतिके मरजानेपर नीले वस्त्रोंको पहरतीहै, उसका पति नरकमें जाताहै, और फिर वह स्त्री भी नरकमें जातीहै ॥ २१ ॥ नील उत्पन्नहोनेके कारण जो खेत दूषित होगयाहो उसमें उत्पन्नहुआ अन्न द्विजातियोंके भक्षण करने योग्य नहीं, जो उस अन्नको खाताहै उसे चांद्रायण व्रत करना उचित है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें नील उत्पन्न हुआहै उस देवद्रोणमें वृषोत्सर्ग, यज्ञ और दान कभी न करै स्नान भी न करै कारण कि (नीलके प्रभावसे) यह भूमि दूषित होगईहै ॥ २३ ॥ जिस खेतमें नील बोयागयाहै वह खेत बारह वर्षतक अशुद्ध रहताहै; इसके पीछे शुद्ध होताहै ॥ २४ ॥

भोजने चैव पाने च तथा चौषधभेषजैः ॥ एवं म्रियंते या गावः पादमेकं समाचरेत् ॥ २५ ॥ घंटाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपात्यते ॥ चरेदर्धं व्रतं तेषां भूषणार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥ दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ॥ गवां प्रभवतां घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥ अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ॥ सपल्लवश्च साग्रश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥ दंडादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरंति गाम् ॥ द्विगुणं गोव्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥ शृंगभंगे त्वस्थिभंगे चर्मनिर्मोचने तथा ॥ दशरात्रं चरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थो भवेत्तदा ॥ ३० ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं चोपजायते ॥ एतदेव हितं कृच्छ्रमित्थमंगिरसा स्मृतम् ॥३१॥ असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ॥ यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥ प्रायश्चित्तार्द्धमर्हंति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥ मूर्छिते पातिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥३४॥

यदि भोजन करानेसे या जल पिलानेसे तथा औषधी देनेसे गौ मरजाय तौ गौहत्याका चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ २५ ॥ जहां घंटा बांधनेके दोषसे गौ मरजाय वहांभी वही व्रत करै, यदि उनके भूषणके लिये घंटा बांधाहो तब ॥ २६ ॥ सरलतासे गौ वशमें न होतीहो तौ उसे दमनकरने, रोकने और मारने पर गौओंके प्रबल आघातोंसे चौथाई व्रत करै ॥ २७ ॥ अंगुलपर जिसमें गांठें हों और दो हाथका जिसका प्रमाण हो, पत्ते भी हों और अग्रभागभी हो उसे दंड कहतेहैं ॥ २८ ॥ यदि इस दंडसे अथवा और दंडसे गौको प्रहार करै अर्थात् मारैं तौ दुगुने गोव्रत प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २९ ॥ यदि मारनेसे गायका सींग टूटजाय, खाल उघडजाय, हड्डी टूटजाय तौ दश रात्रितक कृच्छ्र व्रत करै;

जबतक उसके सींग आदि अच्छे हों ॥ ३० ॥ गोमूत्रसे मिलेहुए जौकाही कृच्छ्र है, यह अंगिराऋषिका वचन है ॥ ३१ ॥ जो बालक असमर्थ हो उसके बदले पिता अथवा गुरु जो प्रायश्चित्त करदे वह लडका पापका भागी नहीं होता ॥ ३२ ॥ जिसकी अवस्था अस्सी वर्षकी हो, और जो बालक सोलह वर्षकी अवस्थासे कम हो, और जो स्त्री रोगी हो, यह आधे प्रायश्चित्तके अधिकारी हैं ॥ ३३ ॥ लाठीके आघातसे गौको मूर्छा होजाय या वह गिर-पडै; तो वह आठ हजार गायत्रीका जपरूप प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

स्नात्वा रजस्वला चैव चतुर्थेह्नि विशुद्ध्यति ॥ कुर्याद्रजसि निर्वृत्तेऽनिर्वृत्ते न कथंचन ॥ ३५ ॥ रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैकारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥ साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥ वृत्ते रजसि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चेन्द्रिये ॥ ३७ ॥ प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥३९॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होतीहै; और वह रजोदर्शनकी निवृत्तिपरही स्नान करै, निवृत्तिके विनाहुए स्नान न करे ॥ ३५ ॥ रोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त रज जाताहै इससे वह अशुद्ध नहीं होती कारण कि वह रज स्वाभाविक नहीं है ॥ ३६ ॥ जबतक रज निकलताहै तबतक उत्तम आचरण (पूजन पाठ आदिक) न करै; और जब रज निवृत्त होजाय तब पुरुषका संग और घरका कामकाज करै ॥ ३७ ॥ रजोदर्शनके पहले दिन रजस्वला स्त्री चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी (धोबन) होतीहै और चौथे दिन शुद्ध होतीहै ॥ ३८ ॥ यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता वा शूद्र छूले तो वह एक रात्रितक उपवास करै और पंचगव्यको पीकर शुद्ध होती है ॥ ३९ ॥

द्वावेतावशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ॥
शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ ४० ॥

जबतक स्त्री पुरुष शय्यापर शयनकरैं तबतक दोनों अशुद्ध रहतेहैं, इसके पीछे स्त्री तो शय्यासे उठतेही पवित्र होजातीहै, परन्तु पुरुष तथापि शुद्ध नहीं होता ॥ ४० ॥

गंडूषं पादशौचं च न कुर्यात्कांस्यभाजने ॥
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

काँसीके पात्रमें कभी कुले न करै और पैरभी न धोवै (अब पात्रशुद्धि कहतेहैं) कांसीके पात्रकी शुद्धि भस्मसे और ताँबेके पात्रकी शुद्धि खटाईसे होतीहै ॥ ४१ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥
भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यंतोपहतं शुचि ॥ ४२ ॥

---

१ चाण्डाली आदिकसे यहांपर अस्पृश्यता धर्मका उसमें अतिदेश करतेहैं, अर्थात् उसके तुल्य असम्भाष्य और अस्पृश्य होतीहै ।

स्त्रीकी शुद्धि रजोदर्शनसे होतीहै, नदी वेगसे शुद्ध होतीहै, अत्यन्त दूषित पात्रादि पृथ्वीमें छैः महीनेतक रखनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ४२ ॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥
भस्मना दशभिः शुद्ध्येत्काकेनोपहते तथा ॥ ४३ ॥

जिन काँसीके पात्रोंको गौने सूंघलिया हो, या जिनमें शूद्रने भोजन कियाहो अथवा जिन्हें काकने स्पर्श करलियाहो उनकी शुद्धि दशदिनतक भस्मद्वारा मांजनेसे होतीहै ॥४३॥

शौचं सौवर्णरौप्याणां वायुनार्केंदुरश्मिभिः ॥

सुवर्ण और चांदीके पात्र वायु और सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणोंके लगनेसेही शुद्ध होते हैं,

रजःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥
अद्भिर्मृदा च यन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥

और जिस ऊनके वस्त्रमें स्त्रीका रज लगगयाहो या जिससे मुरदेका स्पर्श होगयाहो उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ ४४ ॥ ऊनके वस्त्रमें पूर्वोक्त भ्रष्टता हुईहो तो उतनेही स्थानको मट्टी और जलसे धोवै तभी उसकी शुद्धि होतीहै,

शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥ अन्न व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन शुद्ध्यति ॥ पयो दधि च मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥ तैलं संवत्सरेणैव को जीर्यति वा न वा ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणसे भिन्नके सूखे अन्नको खाकर सातदिनतक उपवास करै ॥ ४५ ॥ और व्यंजनयुक्त अन्नको खाकर एक पक्षतक उपवास करै और दूध दही खाकर एक महीनेतक उपवास करै और घीको खाकर छैः महीनेतक उपवासकरने से शुद्ध होताहै, मनुष्यके पेटमें तेल एक वर्ष में पचताहै अथवा नहीं भी पचता ॥ ४६ ॥

यो भुंक्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥ ४७ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण च सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ४८ ॥ अप्रणामं गते शूद्रे स्वस्ति कुर्वंति ये द्विजाः ॥ शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैव च ॥ ४९ ॥

जो प्रतिदिन महीनेभरतक शूद्रके अन्नको खाताहै; वह इसी जन्ममें शूद्र होजाताहै, और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ४७ ॥ शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल और शूद्रके संग एक आसनपर बैठना, शूद्रसे किसी विद्याका सीखना, यह प्रतापवान् मनुष्यकोभी पतित करदेताहै ॥ ४८ ॥ शूद्रके विना प्रणाम किये हुए जो ब्राह्मण आशिर्वाद देतेहैं वह ब्राह्मण और शूद्र दोनोंही नरकको जातेहैं ॥ ४९ ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥
पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

जन्ममरणके सूतकसे ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होताहै, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होताहै ॥ ५० ॥

अग्निहोत्री तु यो विप्रः शूद्रान्नं चैव भोजयेत् ॥
पंच तस्य प्रणश्यंति चात्मा वेदास्त्रयोऽग्नयः ॥ ५१ ॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाताहै उसकी देह वेद और तीनों अग्नि यह पांचों नष्ट होजातेहैं ॥ ५१ ॥

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाकर पुत्र उत्पन्न करताहै, वह पुत्र उसीके हैं जिसका वह अन्न था, कारण कि अन्नसेही वीर्यकी उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ॥
तद्द्विजेभ्यो न दातव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ५३ ॥

शूद्रने जिसे अपने हाथसे छूलियाहो वह उच्छिष्टको ब्राह्मणको न दे यह वचन आपस्तंब मुनिका है ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥
वैश्येष्वापत्सु भुंजीत न शूद्रेपि कदाचन ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणका अन्न सर्वदा खानेके योग्य है, क्षत्रियके अन्नको पर्व (यज्ञके) समयमें खाले, आपत्तिके आजानेपर वैश्यके अन्नको भोजन करै, परन्तु शूद्रके अन्नको कभी भोजन न करै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥ वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् ॥५५॥ अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मणके अन्नको भोजन करनेवाला दरिद्री, क्षत्रियके अन्नका भोजन करनेवाला पशु होताहै, और जो वैश्यके अन्नको खाताहै वह शूद्र होताहै और शूद्रके अन्नको खानेवाला निश्चयही नरकको जाताहै ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृतस्वरूप है, क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है, वैश्यका अन्न केवल अन्नही मात्र है; और शूद्रका अन्न निश्चयही रुधिर है ॥ ५६ ॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ॥ ५७ ॥

मनुष्य जो पाप करताहै वह अन्नमें रहताहै इसकारण जो जिसका अन्न भोजन करताहै वह उसके पापका भोजन करताहै ॥ ५७ ॥

सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेंद्रियः ॥ पिबेत्पानीयमज्ञानाद्भुंक्ते भक्तमथापि वा ॥ ५८ ॥ उत्तार्याचम्य उदकमवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ एवं हि स मुधाचारी वारुणेनाभिमंत्रितः ॥ ५९ ॥

यदि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण अज्ञानसे सूतकमें जल पीले अथवा भात खाले ॥ ५८ ॥ तौ वमन करकै आचमन करै, और भलीभांतिसे वरुणके मन्त्रोंके पढेहुए जलसे शरीरको छिडकै ॥ ५९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ आचरेज्जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् ॥ ६० ॥ पादुकासनमारूढो गेहात्पंचगृहं व्रजेत् ॥ छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ६१ ॥ अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः॥ एते वै पादुकैर्यांति शेषान्दंडेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥

अग्निहोत्रशाला, गोशाला, देव और ब्राह्मणोंके निकट जपके समयमें खडाऊंओंको त्यागदे ॥ ६० ॥ जो मनुष्य खडाऊंओं पर चढकर अपने घरसे पांचघरतक भी जाय तौ राजाको उचित है कि उसके पैरोंको कटवाडाले ॥ ६१ ॥ कारण कि अग्निहोत्री, तपस्वी, श्रोत्रिय (वेदोक्त कर्मोंका करनेवाला) और वेदका पार जाननेवाला यही खडाऊंपर चढकर चलनेके अधिकारी हैं; और पुरुष राजाके ताडन करने योग्यहैं ॥ ६२ ॥

जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांते भोजने नवे ॥
असपिंडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥

जन्मआदि संस्कारमें, चूडाकर्ममें, अन्नप्राशनमें अपने असपिंडके घर भोजन न करै; और चूडाकर्ममें तौ कदापि न करै ॥ ६३ ॥

याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥
नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ६४ ॥

भिक्षुकका अन्न, नवश्राद्ध (जो मरनेके ग्यारहवें दिन होताहै) सूतकका अन्न, और स्त्रीके पहले गर्भाधानमें अन्नका खानेवाला चांद्रायणव्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ ६४ ॥

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥
तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीयते ॥ ६५ ॥

जो कन्या एकको देकर फिर दूसरेको दीगई हो उसका अन्नभी भोजन करना उचित नहीं, कारण कि यह कन्या पुनर्भू नामसे पुकारी गईहै ॥ ६५ ॥

पूर्वस्य श्राविता यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥ द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धिर्विधीयते ॥ ६६ ॥ राजाचैर्दशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठति गुर्विणी ॥ तावद्रक्षा विधातव्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥

यदि किसी स्त्रीको अन्यसे गर्भ रह गयाहै ऐसा सुनाजाय तौ उस गर्भके संस्कार नहीं करै और फिर दूसरे गर्भाधानके समय में संस्कार करनेसे उस स्त्रीकी शुद्धि होती है ॥ ६६ ॥ इतने वह स्त्री गर्भवती रहै तबतक उस स्त्रीकी शुद्धि नहीं इसवास्ते उसके हाथ दैविककार्यका उपयोग नहीं ले परन्तु पुनः वह अपने पतिसे गर्भिणी होके उसके गर्भसंस्कार किये जांय तबतक उसकी रक्षा करनी फिर अन्य गर्भ होताहै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ ६७ ॥

भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥
तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥

जो स्त्री पतिकी आज्ञा उल्लंघन करके वर्ताव करतीहै उसके यहांका अन्नभी भोजन करना उचित नहीं, और उस स्त्रीको कामचारिणी जानना ॥ ६८ ॥

अनपत्या तु या नारी नाश्नीयात्तद्गृहेपि वै ॥
अथ भुंक्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥

जो स्त्री बाँझ हो उसके यहांभी भोजन करना उचित नहीं, यदि कोई उसके यहां मोहसे भोजन करलेताहै वह पूय (राधके) नरकमें जाताहै ॥ ६९ ॥

स्त्रिया धनं तु ये मोहादुपजीवंति मानवाः ॥
स्त्रिया यानानि वासांसि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ ७० ॥

जो मनुष्य मोहितहो स्त्रीके धनको भोगतेहैं, और स्त्रीकी सवारी या जो उसके वस्त्रोंको बर्ततेहैं वह पापी अधोगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ७० ॥

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
सूतकेषु च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ७१ ॥

इत्यांगिरःप्रणीतं धर्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

राजाका अन्न तेजको हरण करताहै, और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरताहै; और जो सूतकमें खाताहै, वह पृथ्वीके मलको भक्षण करताहै ॥ ७१ ॥

इति आंगिरसस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ॥ ५ ॥

इत्याङ्गिरसस्मृतिः समाप्ता ॥ ५ ॥



श्रीः ।

यमस्मृतिः ६.

भाषाटीकासमेताः ।



श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ॥
प्राब्रवीदृषिभिः पृष्टो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥

चारों वर्णोंके श्रुति और स्मृतिमें कहेहुए धर्मको ऋषियोंके पूछनेसे मुनियोंमें मुख्य यमने क्रमसे कहा ॥ १ ॥

यो भुंजानोऽशुचिर्वापि चंडालं पतितं स्पृशेत् ॥ क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ २ ॥ षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ॥ स्नात्वा त्रिषवणं विप्रः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

जो भोजनके समय अथवा उच्छिष्ट अवस्थामें चांडाल पतितको क्रोध अथवा अज्ञानसे छू ले उसका प्रायश्चित्त कहताहूं ॥ २ ॥ तीनरात्रि या छैरात्रि क्रमसे प्रायश्चित्त करै, त्रिकाल स्नानकरके पंचगव्यके पीनेसे ब्राह्मण शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥ उच्छिष्टत्वे शुचित्वे च तस्य शौचं विनिर्दिशेत ॥ ४ ॥ पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ५ ॥ निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने कृते ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ६ ॥ यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित् ॥ भूमौ निधाय तद्ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ भक्षयित्वा तु तद्ग्रासमुपवासेन शुद्ध्यति ॥ अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥

भोजनके समय यदि ब्राह्मणको कभी अधोवायुके साथ मलत्याग होजाय तौ उच्छिष्ट और अशुद्धिके निवारणके निमित्त शौच (शुद्धि) करै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण पहले शौच करकै पीछे जलसे आचमन करै, इसके पीछे अहोरात्र उपवास करै फिर पंचगव्यके पीनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥ भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करते समयमें यदि मूत्रत्याग होजाय तौ अहोरात्रि उपवास करकै घीकी आहुतिसे होमकरै ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण भोजन करते हुए में अशुद्ध होजाय तौ उस ग्रासको उसी समय पृथ्वीपर रखदे फिर स्नान करै तब शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ यदि उस ग्रासको भी खालियाहो तौ उसकी शुद्धि एक उपवास करनेसे होतीहै, और जिसने सम्पूर्ण अन्न खालियाहो वह तीन रात्रितक अशुद्ध रहताहै ॥ ८ ॥

अश्नतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ॥
स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥ ९ ॥

भोजन करते समयमें यदि वमन होजाय तौ अस्वस्थ (रोगी आदि) तौ तीन सौ गायत्री का जपकरै, और निरोगी मनुष्य तीनहजार गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥

चंडालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः ॥
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ १० ॥

विष्ठामूत्रकरके पीछे जो चांडाल अथवा श्वपच द्विजका स्पर्श करले तौ तीन रात्रितक उपवास करनेसे, और उनको छूनेके पीछे वैसेही भोजनभी करले तौ छैः रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदंत्यजो यदि ॥
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

यदि अंत्यज रजस्वला अथवा सूतिका स्त्रीको छूले तौ उसकी शुद्धि तीन रात्रिमें होती है, यह वचन शातातप ऋषिका है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वमातंगादिवायसैः ॥ निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्कालस्नानेन शुद्धयति ॥ १२ ॥ रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः कचित् ॥ शुद्ध्यतः पंचगव्येन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ॥ १३ ॥ उच्छिष्टेन च संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥ कृच्छ्रेण शुद्धिमाप्नोति शूद्रा दिनोपवासतः ॥ १४ ॥

कुत्ता, हाथी, काक, यदि रजस्वला स्त्री को छूले तौ वह स्त्री उस समय अशुद्ध अवस्थामें भोजन न करै; और चौथेदिन स्नान करै तब शुद्ध होतीहै ॥ १२ ॥ यदि परस्परमें दो रजस्वला स्त्री छूजांय तौ वह पंचगव्यका पान करै और ब्रह्मकूर्च (कुशाओंके मोटक) से अपने शरीरपर पंचगव्यको छिडकै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ १३ ॥ यदि किसी समय उच्छिष्टपुरुष रजस्वलाको छूले; तौ ब्राह्मणकी स्त्री कृच्छ्र करै तब शुद्ध होतीहै और शूद्रकी स्त्रीकी शुद्धि दान और उपवास करनेसे होतीहै ॥ १४ ॥

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते ॥
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५ ॥

जिस अनुच्छिष्टके स्पर्श करनेसे स्नान करना कहाहै यदि वही उच्छिष्ट स्पर्शकरले तौ प्राजापत्यका प्रायश्चित्त करना कहाहै ॥ १५ ॥

ऋतौ तु गर्भं शंकित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥
अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥ १६ ॥

ऋतुके समयमें जो मैथुन गर्भकी इच्छासे कहाहै, उस समय स्नान करना कर्तव्य है; और ऋतुके अतिरिक्त समयमें स्त्रीका संसर्ग करनेसे मलमूत्रके समान शौच करना पडताहै ॥ १६ ॥

उभावप्यशुची स्यातां दंपती शयने गतौ ॥
शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७ ॥

जबतक स्त्री पुरुप दोनोंजने एकशय्यापर शयन करते हैं तबतक दोनों अशुद्ध हैं और जब शय्यासे उतरगये तब स्त्री शुद्ध और पुरुष अशुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ॥
दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥

दुष्टभावसे जो स्त्री अपने पतिके शरीरकी सेवा नहीं करे उस स्त्रीको बारहवर्षतक दंड करे अर्थात् उसके साथ बारहवर्षतक व्यवहार नहीं करे और उसके पास धन अलंकार कुछभी नहीं रक्खै ॥ १८ ॥

त्यजंतोऽपतितान्बंधून्दंड्या उत्तमसाहसम् ॥
पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥ १९ ॥

जो पातित्यदोषहीन बांधवोंको त्याग देतेहैं उनको राजा उत्तम साहस अत्यन्त दंड दे और जो पिता पतित होजाय तो उसे भले त्याग दे; परन्तु माताका कभी त्याग न करै यह त्यागने योग्य नहीं है ॥ १९ ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वाऽऽदिभिरुपक्रमैः ॥ मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥ २० ॥ दंड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥ प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥ २१ ॥

जो मनुष्य रस्सीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे आत्महत्या करै तो उसे गोबरसे लीपदे, और जो वह बचजाय तौ उसे दोसौ रुपये दंड कहाहै ॥ २० ॥ और एक पणिक (मुद्राका) दंड उसके पुत्रमित्रोंको भी कहाहै, इसके पीछे वह सब जने शास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करै ॥ २१ ॥

जलाद्युद्बंधनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ॥ विषप्रपतनं प्रायः शस्त्रघातहताश्च ये ॥ २२ ॥ न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः ॥ चांद्रायणेन शुद्ध्यंति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥ उभयावसितः पापः श्यामाच्छबलकाच्च्युतः ॥ चांद्रायणाभ्यां शुद्ध्येत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥ २४ ॥

जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें डूबकर बचगयेहैं, या जो फाँसी खाकर बचगये हैं और जो मनुष्य संन्यास धर्मको नाश करनेवाले और जिन्होंने उसे त्यागदियाहै और जो विष भक्षण करके या ऊंचेपरसे गिरकर तथा जो शस्त्रके लगनेसे मरगयेहैं ॥२२॥ उपरोक्त पापियोंके घरमें भोजन करनेवाला पापी वा वासकरनेवाला अथवा मनुष्य उभयावसित कहाताहै उसको श्याम वा शवल (कबरे) रंगका बैल न मिलै तौ वह दो चांद्रायण व्रत करै, अथवा एक बछडेसहित गौका दान करनेसे शुद्ध होसक्ता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

श्वशृगालप्लवंगाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना ॥
दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु ॥ २५ ॥

कुत्ता, सियार, वानर, यदि मनुष्योंको विना क्रीडाके किये ही काटखाँय तौ दिनमें संध्याकरने और रात्रिमें शीघ्र स्नानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

अज्ञानाद्ब्राह्मणो भुक्त्वा चंडालान्नं कदाचन ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे चांडालके यहां के अन्नका भोजन करले तौ पंद्रह दिनतक गोमूत्र और जौको खानेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २६ ॥

गोब्राह्मणहनं दग्ध्वा मृतं चोद्बन्धनादिना ॥
पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्द्विजः ॥ २७ ॥

जिसने गौका वध कियाहो अथवा ब्राह्मणका वध कियाहो, और जिसने फाँसी लगाकर प्राणत्यागे हों उसको जो ब्राह्मण फूंके अथवा उसकी फाँसीको काटै तौ वह ब्राह्मण एक कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २७ ॥

चंडालपुल्कसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ॥
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २८ ॥

चांडाल और पुल्कस (चांडालका भेद) के यहां जानकर खानेवाला तथा इनकी स्त्रियों-का संग करनेवाला मनुष्य एक वर्षतक कृच्छ्र करै और जानकर उपरोक्त पातकोंका करने-वाला दो इन्दुकृच्छ्र करै ॥ २८ ॥

कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा ॥
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २९ ॥

जानकर कापालिक (खापर लेकर मागनेवाले) के यहां जिसने अन्न खायाहै अथवा जि-सने उनकी स्त्रियोंके संग भोग कियाहै वह एक वर्षतक कृच्छ्र करै, और अज्ञानसे करनेवाला दो इन्दुकृच्छ्र करै ॥ २९ ॥

अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥
तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥

जो स्त्री गमनकरने योग्य नहींहै उसके साथ गमन करनेवाला, और मदिरा और गोमांस-का भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करकै मौर्वी (सूत्र) के होमसे शुद्ध होताहै ॥३०॥

महापातककर्तारश्चत्वारोथ विशेषतः ॥
अग्निं प्रविश्य शुद्ध्यंति स्थित्वा वा महति क्रतौ ॥ ३१ ॥

चारों महापातक करनेवाले विशेषकरके तो अग्निमें प्रवेश करकै अथवा बडे यज्ञ(अश्वमे-धादि) में टिकनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ३१ ॥

रहस्यकरणेऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ॥
अघमर्षणसूक्तं वा शुद्ध्येदंतर्जले स्थितः ॥ ३२ ॥

इस भांतिके छिपकर (गुप्त) पातक करनेवाला मनुष्य अघमर्षण (ऋतं च सत्यम् इत्यादि) सूक्तका एक महीने भरतक जलमें बैठकर जपकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥ कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजा स्मृ-ताः ॥ ३३ ॥ भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वाऽपः प्रतिगृह्य च ॥ कृच्छ्राब्दमा-चरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ ३४ ॥

धोबी, चमार, नट, कैवर्त, बुरड, मेद, भील इन सातोंको अत्यंज कहाहै ॥३३॥ जानकर इनके यहां भोजन करनेवाला, इनकी स्त्रियोंमें गमन करनेवाला, इनके घरका जल पीनेवाला

इनका दान लेनेवाला पुरुष १ वर्षतक कृच्छ्र व्रत करै । और अज्ञानसे करनेवाला दो इन्दुकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

मातरं गुरुपत्नीं च स्वसॄं दुहितरं स्नुषाम् ॥
गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य माता, गुरुकी स्त्री, भगिनी, लडकी, पुत्रवधू, इनमें गमन करताहै, वह अग्निमें प्रवेश करनेसे (मरजानेसे) शुद्ध होताहै और किसी भांति उसकी शुद्धि नहीं है ॥ ३५ ॥

राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि ॥
कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य रानी, संन्यासिनी, धाय और उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ गमन करता है तथा अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ रमण करताहै वह दो कृच्छ्र करै ॥ ३६ ॥

अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ॥
परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

इतर जो सब माता और पिता के गोत्रकी स्त्री हैं इन सबके साथ गमन करनेवाला सांतपन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३७ ॥

वेश्याभिगमने पापं व्यपोहंति द्विजातयः ॥ पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंचरात्रं कुशोदकम् ॥ ३८ ॥ गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ गोघ्नस्य केचिदिच्छंति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥ ३९ ॥

जिसने वेश्याके साथ गमन कियाहै उस पापको तीनों द्विजाति अत्यंत तपेहुए कुशाके जलको पांचरात्रितक प्रतिदिन एकवार पीकर दूर करसक्ते हैं ॥ ३८ ॥ कोई ऋषी गुरुकी शय्यामें गमन करनेके व्रतकी कोई ब्रह्महत्याके व्रतकी कोई गोहत्याके प्रायश्चित्तकी और कोई अवकीर्णी (अर्थात् ब्रह्मचर्यसे पतित हो उस) के प्रायश्चित्त करनेकी आज्ञा देतेहैं । अर्थात् वेश्यागामी पुरुष इनमेंसे कोई प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होसक्ताहै ॥ ३९ ॥

दंडादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥ द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥ अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ॥ सार्द्रश्च सपलाशश्च गोदंडः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥ गवां निपातने चैव गर्भोपि संपतेद्यदि ॥ एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं यथा पूर्वं तथा पुनः ॥४२॥ पादमुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गात्रसंभवे ॥ पादोनं कृच्छ्रमाचष्ट हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णे गर्भे रेतःसमन्विते ॥ एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥

गोदंडसे ऊँचे अर्थात् उपरसे कठिन आघातसे जो गायको मारै उसे गौहत्याका दुगुना प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ४० ॥ गोदंड उसे कहते हैं अंगूठेके समान मोटा और जिसमें पत्तेलगे हों गीला हो और दो हाथका जिसका प्रमाण हो ॥ ४१ ॥ जो गौओंके मारनेसे गर्भ गिरजाय तौ तीनों द्विजाति क्रमसे एक २ कृच्छ्र करें ॥ ४२ ॥ यदि गर्भ रहनेपरही गर्भ गिरजाय तौ चौथाई कृच्छ्र करै, और जो गर्भके अंग प्रत्यंगके बनजानेपर गर्भ गिरजाय

तो आधा कृच्छ्र करै, और अचतन गर्भका पात होजाय तौ पौन कृच्छ्र करै ॥ ४३ ॥ अंग प्रत्यंगसे पूरे और वीर्यसमेत गर्भपात होजानेसे तीनों वर्णोंको एक कृच्छ्र करना उचित है यह प्रायश्चित्त गोहत्यारोंका है ॥ ४४ ॥

बंधने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ॥
संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥

यदि बांधनेसे, रोकने और पोषणकरनेसे रुग्ण होकर गौ मरजाय तौ बांधनेवालेको पाप नहीं लगता ॥ ४५ ॥

मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ॥ उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पंच दशापि वा ॥ ४६ ॥ ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥ पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥

यदि दंडके आघात लगनेसे जिस गौको मूर्छा आगई हो या गिर पडी हो, और फिर वह गौ या बैल उठकर छैः सात, पांच, अथवा दश कदम चलदे और घास आदिक खाकर जल पीले पीछे से मरजाय तौ पूर्व व्याधिसे मरेहुए उस बैल या गौका प्रायश्चित्त मनुष्यको नहीं कहाहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥ ४८ ॥ काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥

(प्रश्न—) लकडी, ढेला, पत्थर और शस्त्रसे यदि गौको मारडालें तौ वहां प्रत्येकके प्रति किसप्रकार प्रायश्चित्त करना कहा है ॥ ४८ ॥ (उत्तर—) लकडीसे मारनेवाला पुरुष सांतपन करै, ढेलेसे मारनेवाला प्राजापत्य करै पत्थरसे मारनेवाला तप्तकृच्छ्र करै और शस्त्रसे मारनेवाला अतिकृच्छ्र करै ॥ ४९ ॥

औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥ दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५० ॥ तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥ निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥

यदि गौ और ब्राह्मणको औषध, स्नेह (घी आदिके) पिलाते समयमें वा भोजन कराते समयमें यदि विपत्ति (मरण वा कष्ट) होजाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५० ॥ तेल पिलाने अथवा औषधी खिलानेके समयमें और कांटाआदि निकालनेके समयमें यदि गौको कष्ट होजाय तौ उसका भी प्रायश्चित्त नहींहै ॥ ५१ ॥

वत्सानां कंठबंधे च क्रियया भेषजेन तु ॥
सायं संगोपनार्थं च न दोषो रोधबंधयोः ॥ ५२ ॥

यदि बछडेका गला बांधनेसे या औषधीके देनेसे अथवा रक्षाके लिये संध्याको रोकते और बांधते समयमें मरजाय तो बांधनेवाला पापका भागी नहीं है ॥ ५२ ॥

पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥
त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

चौथाई कृच्छ्रमें रोमोंका मुंडन, अर्द्धकृच्छ्रमें दाढीका मुंडन, पौनकृच्छ्रमें चोटीके अतिरिक्त समस्त शिरका मुंडन और पूर्ण कृच्छ्रमें चोटीसहित सब केशोंका मुंडन पुरुषको कराना उचित है ॥ ५३ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ एवमेव तु नारीणां मुंडमुंडापनं स्मृतम् ॥ ५४ ॥ न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥ न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छंतीमनुव्रजेत् ॥ ५५ ॥

स्त्रियोंका मुंड मुंडवाना यही कहाहै कि, उनके सब बालोंको ऊपरको उभारकर दो अंगुल काटदे ॥ ५४ ॥ स्त्रियोंका मुंडन और वीरासनसे बैठना कर्तव्य नहीं और गौशालामेंभी बैठना उचित नहीं चलती हुई गौके पीछे स्त्रीको चलना उचित नहीं ॥ ५५ ॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥
अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६ ॥

राजा अथवा राजाका पुत्र या जिसने बहुत शास्त्र पढेहों वह ब्राह्मण इनका मुंडन न बताकर केवल प्रायश्चित्त बतादे ॥ ५६ ॥

केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥ द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥ द्विगुणं चेन्न दत्तं हि केशांश्च परिरक्षयेत् ॥ पापं न क्षीयते हंतुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥

बालोंकी रक्षाके निमित्त दुगुना व्रत करावे और दुगुनाव्रत करनेपर दूनीही दक्षिणा दे ॥ ५७ ॥ यदि दूनी दक्षिणाके विनादिये केशोंकी रक्षा करै तौ मारनेवालेका पाप दूर नहीं होता और प्रायश्चित्तका दाता नरकमें जाताहै ॥ ५८ ॥

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदंति ये ॥ तान्धर्मविघ्नकर्तॄंश्च राजा दंडेन पीडयेत् ॥ ॥ ५९ ॥ न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथंचि काममोहितः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥

जो प्रायश्चित्त वेद और धर्मशास्त्रमें नहीं कहाहै यदि उस प्रायश्चित्तको जो पुरुष बतावै तो उस धर्ममें विघ्न करनेवाले पुरुषको राजा दंडसे पीडित करै॥५९ ॥यदि मोहके वश होकर राजा अपनी इच्छासे उसको पीडा न दे, तौ उस राजाको सौगुना पाप लगताहै ॥ ६० ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
विंशतिं गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥

फिर राजा प्रायश्चित्त करकै वीस ब्राह्मणोंको जिमावै, और उन ब्राह्मणोंको बीस गाय और एक बैल दक्षिणामें दे ॥ ६१ ॥

कृमिभिर्व्रणसंभूतैर्मक्षिकाभिश्च पातितैः ॥ कृच्छ्रार्द्धं संप्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ सुवर्णमाषकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते ॥ ६३ ॥

यदि किसी मनुष्यके शरीरमें मक्खी बैठनेके कारण घावमें कीडे पडजांय तौ अर्द्ध कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाभी दे ॥ ६२ ॥

प्रायश्चित्त कर ब्राह्मणोंको जिमाय एक मासा सुवर्ण देनेसे शुद्धि होतीहै ॥ ६३ ॥

चंडालश्वपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥ न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्धयति ॥ ६४ ॥ अथ वसेद्यदा रात्रौ अज्ञानादविचक्षणः ॥ तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्त्तते ॥ ६५ ॥

यदि रात्रिके समयमें चांडाल अथवा श्वपच छूलें तौ स्नान करना उचित है; और फिर वहां रात्रिमें निवास न करै शीघ्र स्नान करै ॥ ६४ ॥ जो मूर्ख अज्ञानतासे रात्रिमें वहां निवास करले तौ वह पाप उसको सौ गुना लगताहै ॥ ६५ ॥

उद्गच्छंति हि नक्षत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहाः ॥
संस्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदके स्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

यदि आकाशमें टूटे हुए तारे तथा ग्रहोंकी किरणोंका स्पर्श होजाय तो जलमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥

कुडयांतर्जलवल्मीकमूषिकोत्करवर्त्मसु ॥
श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ॥ ६७ ॥

दीवारके भीतरकी, जलके बीचमें की, बँमईकी, चुहोंकी खोदी हुई; मार्गमेंकी, श्मशानकी, और शौचसे बचीहुई इन सात स्थानोंकी मट्टीको ग्रहण न करै; अर्थात् यह ग्रहण करनेके योग्य नहीं है ॥ ६७ ॥

इष्टापूर्तं तु कर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥

इष्ट (यज्ञ आदि) पूर्त (कूप आदि) ब्राह्मणको बडे यत्नसे करना उचित है; इष्टसे स्वर्ग की प्राप्ति होतीहै, और पूर्तसे मोक्ष मिलता है ॥ ६८ ॥

वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते ॥
आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥

इष्टके भेद अनेक हैं,; इष्ट द्रव्यके अनुसार होताहै, और तालाव, विशेष करके बाग और देवद्रोणी (तीर्थ अथवा प्याऊ) इन्हींको पूर्त कहतेहैं ॥ ६९ ॥

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥

कूप, बावडी, देवमंदिर, तालाव इनके टूटफूट जानेपर जो इनका उद्धार अर्थात् जो इनकी मरम्मत करताहै, वह भी पूर्त्तके फलको पाताहै ॥ ७० ॥

शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥ ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेताया दधि चोच्यते ॥ ७१ ॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥ सर्वतीर्थे नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥ आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥ प्रणवेन समालोड्य प्रणवेन तु संपिबेत ॥ ७३ ॥ पालाशे मध्यमे पर्णे भांडे ताम्रमये तथा ॥ पिबेत्पुष्करपर्णे वा ताम्रे वा मृन्मये शुभे ॥ ७४ ॥

(पंचगव्यलक्षण) सफेद गायका मूत्र, और काली गायका गोबर,लाल गायका दूध, और सफेद गायका दही ॥ ७१ ॥ और कपिला गायका घी ले, यह पंचगव्य महापातकोंका नाश करताहै, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा नदीके जलमें गोमूत्र इत्यादि द्रव्योंको पृथक् २ कुशाओंसे ॥ ७२ ॥ ॐकारको पढकर एकत्रित करै; और ॐकारको पढकर पीजाय ॥ ७३ ॥ ढाकके बीचके पत्तोंमें वा तांबेके पात्रमें या कमलके पत्तेमें तथा लाल मिट्टीके पात्रमें उस पंचगव्यका पान करै ॥ ७४ ॥

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥

एक सूतकके होतेही यदि दूसरा सूतक होजाय तौ दूसरे सूतकका दोष नहींहै पहलेके साथही वह भी शुद्ध होजाताहै ॥ ७५ ॥

जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥

जन्म सूतकके साथ जन्म सूतककी और मरणसूतकके साथ मरणसूतककी शुद्धि होतीहै;

गर्भे संस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति ॥

महीनेके गर्भ पातमें तीन दिनका अशौच होताहै ॥ ७६ ॥ जितने महीनेका गर्भ पतितहो उतनीही रात्रियोंमें उसकी शुद्धि होतीहै;

रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥

और रजस्वला स्त्रीकी शुद्धि रजकी निवृत्ति होनेपर स्नानकरनेसे होतीहै ॥ ७७ ॥

स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ॥
स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोदकक्रिया ॥ ७८ ॥

विवाह होजानेपर स्त्री सप्तपदी किये उपरान्त अपने (मातापिताके) गोत्रसे अलग होजातीहै, उसका पिंड और जलदान आदि कर्म पतिके गोत्रसे ही करना उचित है ॥ ७८ ॥

द्वे पितुः पिण्डदानं स्यात्पिंडे पिंडे द्विनामता ॥ षण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता न मुह्यति ॥ ७९ ॥ स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुङ्क्ते सदैवतम् ॥ पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥ ८० ॥

पिताको दो पिंड दे प्रत्येक पिंडोंमें दो नाम (सपत्नीक) आतेहैं, छैःको तीन पिंड देवे, इस भांति करनेसे पिंडोंका दाता मोहित नहीं होताहै ॥ ७९ ॥ माता और पितामही (दादी) और प्रपितामही (परदादी) यह तीनों अपने पतियोंके साथ श्राद्धको भोगतीहैं ॥ ८० ॥

वर्षेवर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ ८१ ॥

प्रत्येक वर्षमें पिता माताका श्राद्ध करै, देवताके (वैश्वदेवके) विना श्राद्ध जिमावै और एक पिंड देना उचित है ॥ ८१ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ॥
पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पंचविधं बुधैः ॥ ८२ ॥

नित्य, नैमित्तिक,काम्य, वृद्धिश्राद्ध, और पार्वण, यह पांच प्रकारके श्राद्ध पंडितोंको जानना उचित है ॥ ८२ ॥

ग्रहोपरागे संक्रांतौ पर्वोत्सवमहालयोः ॥
निर्वपेत्त्रीन्नरः पिंडानेकमेव मृतेहनि ॥ ८३ ॥

ग्रहणके दिन, संक्रांतिके दिन, पर्वके दिन, उत्सवमें, महालय (कन्यागतों) में मनुष्यको तीन पिंड दे; और जिसदिन माता पिताकी मृत्यु हुईहो उसदिन एकही पिंड देना उचित है ॥ ८३ ॥

अनूढा न पृथक्कन्या पिंडे गोत्रे च सूतके ॥
पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यते ततः ॥ ८४ ॥

जिस कन्याका विवाह न हुआहो उसका पिंड, गोत्र, सूतक, अलग नहीं है, विवाह होजानेपर विवाहके मंत्रोंसे अपने गोत्रसे वह अलग हो जातीहै ॥ ८४ ॥

येनयेन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ॥ तत्समं सूतकं याति तथा पिंडोदकेपि च ॥ ८५ ॥ विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेहनि रात्रिषु ॥ एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ ८६ ॥

जिस वर्णके पुरुषके साथ कन्याका विवाह हुआहो उसी वर्णके समान सूतक पिंड और जलदान कन्याको मिलताहै ॥ ८५ ॥ विवाहके होजानेपर वह कन्या चौथे दिनके रात्रिमें पिंड, गोत्र, और सूतकमें पतिकी समानताको प्राप्त होजातीहै अर्थात्जिस वर्णके पतिके साथ उसका विवाह हुआहो उसी वर्णके अनुसार उसका पिंडआदिक होताहै ॥८६॥

प्रथमेह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ॥ अस्थिसंचयनं कार्यं बंधुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ८७ ॥ चतुर्थे पंचमे चैव सप्तमे नवमे तथा ॥ अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥

हितकारी बंधु पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे दिन अस्थियोंका संचय करें (फूल-बीनें) ॥ ८७ ॥ क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको चौथे, पांचवें, सातमें, और नवमेंदिन अस्थिसंचयन करना उचित है ॥ ८८ ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥
मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥

जिसके मरनेपर ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाताहै वह प्रेत, प्रेतलोकमें नहीं जाता उसकी पूजा स्वर्गलोकमें होतीहै ॥ ८९ ॥

नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदये नानुचिंतयेत् ॥ आगच्छंतु मे पितरो गृह्णंत्वेताञ्जलांजलीन् ॥ ९० ॥ हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ॥ गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥९१ ॥ आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः ॥ पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च ॥ ९२ ॥ आपो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा ॥ तस्मादप्सु जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता ॥ ९३ ॥

मनुष्य नाभिपर्यन्त जलमें निमग्न होकर इसभांति स्मरण करै कि, मेरे पितर आकर जलकी अंजुलीको ग्रहण करै ॥ ९० ॥ दोनों हाथोंकी अंजुली बना उसमें जलको भर गायकी सींगकी समान ऊपरको हाथ ऊँचा उठाकर जलके बीचमेंही उस अंजुलीके जलको डालदे ॥ ९१ ॥ मनुष्य जलमें खडे होकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकर आकाशकी ओरको जलको फैंके, कारण कि पितरोंका स्थान आकाश और दक्षिण दिशा यह दोनों हैं ॥ ९२ ॥ देवता और पितरोंके गण जलरूपही हैं, इसकारण पितरोंकी इच्छा करनेवाला पुरुष जलमेंही तर्पण करै ॥ ९३ ॥

दिवा सूर्यांशुभिस्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ॥ संध्ययोरप्युभाभ्यां चः पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९४॥ स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि ॥ भांडस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

जल दिनमें तौ सूर्यकी किरणोंके तपनेसे और रात्रिमें नक्षत्र और पवनसे, और सन्ध्याके समय इन दोनोंसे सर्वदा पवित्र रहताहै ॥ ९४ ॥ जिसमें अपवित्र वस्तु न मिलीहों वह स्वाभाविक जल सर्वदा पवित्र है,पात्रका जल अथवा भूमिपरका जलभी सदा पवित्र है॥९५॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलीन् ॥ असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलांजलीन् ॥ ९६ ॥ श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ॥ उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ६ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजुली जलमेंही देनो उचित है; और जो विना संस्कार हुए मरगये हों उनको स्थलमें देनी उचित है ॥ ९६ ॥ श्राद्ध और होमके समयमें तौ एक हाथसे अंजुली देनी उचित है और तर्पणके समयमें दोनों हाथोंसे अंजुली देः यह धर्मकी रीति है ॥ ९७ ॥

इति यमस्मृतिभाषाटीका समाप्ता।

इति यमस्मृतिः समाप्ता ६.



श्रीः ॥

आपस्तंबस्मृतिः ७.

भाषाटीकासमेताः ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ आपस्तंबं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ॥
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥

क्रमानुसार दूषित वर्णों तथा पापियोंके हितके लिये आपस्तंब ऋषिके कहेहुए प्रायश्चित्त का निर्णय विशेषतासे करके कहताहूं ॥ १ ॥

परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ॥ विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥ अनन्यमनसं शांतं तत्त्वस्थं योगवित्तमम्॥ आपस्तंबमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोब्रुवन् ॥ ३ ॥ भगन्मानवाः सर्वे असन्मार्गे स्थिता यदा ॥ चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥ यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ॥ कृषिकर्मादिवपनं द्विजामंत्रणमेव च ॥ ५॥ बालानां स्तन्यपानादि कार्यं च परिपालनम् ॥ देयं चानाथकेऽवश्यं विप्रादीनां च भेषजम् ॥६॥ एवं कृते कथंचित्स्यात्प्रमादो यद्यकामतः ॥ गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्ब्रूहि निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मज्ञानमें तत्पर ऋषियोंमें उत्तम एकांतमें बैठे हुए, दूसरोंकी निन्दासे रहित ॥ २ ॥ एकाग्र मनसे बैठेहुए शांतस्वरूप तत्त्वमें स्थित, और अत्यन्त योगके जाननेवाले आपस्तंब ऋषिसे सम्पूर्ण मुनि कहने लगे ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जिस समय सम्पूर्ण मनुष्य धर्ममें स्थित होकर यदि किसी प्रकारका असत् कार्य करें, तौ आप उनका प्रायश्चित्त कहिये ॥ ४ ॥ जिस कारण गृहस्थीको गौका पालन अवश्य करना, कृषिआदिका कर्म, अन्नका बोना, ब्राह्मणोंको भोजन कराना, अवश्य कर्तव्य है ॥ ५ ॥ बालकोंको दूध पिलाना, बालकोंका पालन करना, अनाथको धन देना, ब्राह्मण आदिकी औषधी करनी इतने कर्म अवश्य करने उचित हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस भांति करनेपरभी यदि असावधानीसे गौ आदिका अपराध होजाय तौ उससे उद्धार होनेका प्रायश्चित्त आप हमसे कहिये ॥ ७ ॥

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः ॥
दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तंबःसुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

इस भांति पूछे जानेपर आपस्तंब मुनि क्षण काल तक ध्यान करकै प्रणामसे नीचेको शिर झुकाये ऋषियोंको देखकर यह निश्चित वचन कहने लगे ॥ ८ ॥

बालानां स्तनपानादिकार्ये दोषो न विद्यते ॥
विपत्तावपि विप्राणामामंत्रणचिकित्सने ॥ ९ ॥

यदि बालकोंको दूध पिलाते समयमें और ब्राह्मणोंको भोजन कराते समयमें तथा उनको औषधी सेवन कराते समयमें विपत्ति (मृत्यु) होजाय तौ इसमें कुछ दोष नहीं है ॥ ९ ॥

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं तृणादिषु ॥ केचिदाहुर्न दोषोत्र स्नेहं लवणभेषजे ॥ १० ॥ औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थभोजनम् ॥ प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥

यदि गौ आदि तृणादिसे मरजांय तौ उसके प्रायश्चित्तकी विधि कहताहूं, अनेकोंका यह कथन है कि स्नेह, लवण, और औषधोके देनेके समयमें यदि गौ मरजाय तौ इसमें दोष नहीं है ॥ १० ॥ औषधी, लवण, तेल, पुष्टिके लिये भोजन यह प्राणियोंकी प्राणरक्षाके निमित्त है (इस कारण इनके देनेमें यदि कोई मरजाय) तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ११ ॥

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥

परन्तु यह भोजनसे अधिक न दे, परन्तु समयपर दे; यदि अधिक देनेके कारण कोई प्राणी मरजाय तौ उसको कृच्छ्र करना कहाहै ॥ १२ ॥

अहर्निरशनं पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम्॥सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहम् ॥ प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायवर्जितम् ॥१३॥ प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥ अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ॥ १४ ॥ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ योजने पादहीनं च चरेत्सर्वं निपातने ॥ १५ ॥

तीन दिनतक भोजन न करै, यह पहला पाद है; और तीन दिन तक विनामांगे जो भोजन मिलै उसे खाय, यह दूसरा पाद है; और संध्याको तीन दिनतक न खाय यह तीसरा पाद है; और प्रातःकालमें तीन दिनतक न खाय यह कृच्छ्रका चौथा पादहै, प्रातःकाल और सायंकालको न खाय, इसे दिनार्द्ध कहतेहैं, और सायंकालको छोडकर केवल दिनमें एकही बार भोजन करै उसे पादोन कहतेहैं ॥ १३ ॥ इस विषयमें शूद्रको प्रातःपाद करना उचित है, और वैश्यको सायंपाद करना चाहिये, क्षत्रिय अयाचित करै, और ब्राह्मणको त्रिरात्र करना कर्तव्य है ॥ १४ ॥ यदि गौ रोकनेके समयमें, या बांधनेके समयमें मरजाय तो एक पाद और दोपाद क्रमसे करे योजन (जोडने वा कांजीहोद आदिमें कैदकरने) से पादोन और निपातन (गिराने) में समस्त कृच्छ्र करना उचित है ॥ १५ ॥

घंटाभरणदोषेण गौस्तु यत्र विपद्यते ॥ चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥ १६ ॥ दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥ स्तंभशृंखलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥ १७ ॥ पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ॥ निपातयंति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते ॥ १८ ॥ प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियस्तथा ॥ कृच्छ्रार्द्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १९ ॥

गौके गलेमें घंटा बांधनेके समयमें गौको विपत्ति होजाय तौ दिनार्द्ध कृच्छ्र करावै, कारण कि वह भूषणके लिये बांधाथा ॥ १६ ॥ यदि दमन करने, रोकने, योजनके लिये काष्ठघंटा (जो लकडी गौके गलेमें लटका करतीहै) बांधनेसे खूंटा, सांकल, रस्सीके डालनेसे जो गाय मरजाय तौ पादोन करै ॥ १७ ॥ जो पापी मनुष्य पत्थर लाठी तथा अन्यान्य शस्त्रोंसे गौको मारताहै उसको सम्पूर्ण कृच्छ्र करना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ ब्राह्मण सब प्रकारसे प्राजापत्य व्रतको करैं, क्षत्रिय एक पादहीन प्राजापत्य व्रत करैं वैश्यगण कृच्छ्रार्द्ध करैं, और शूद्र पादकृच्छ्र करैं ॥ १९ ॥

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ॥
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकालं यथारुचि ॥ २० ॥

ब्याई हुई गौका दूध उसके बछडेको दो महीनेतक पिलावै; और दो महीनेतक केवल दोही स्तनोंका दूध एकही समय दुहै, इसके पीछे अपनी इच्छानुसार दुहै ॥ २० ॥

दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ॥
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥

ब्यानेसे पंद्रह या दश दिनके बीचमेंही गौ मरजाय तौ शिखासहित मुंडन कराकर प्राजापत्य करै ॥ २१ ॥

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् ॥ २२ ॥

आठ बैलोंका हल जो चलाते हैं, वह धर्मात्मा हैं, और जो छः बैलोंका हल चलातेहैं, वह अपनी जीविकाके लिये करतेहैं, चार बैलोंका हल कठोरोंके लिये है, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वह हत्यारे हैं ॥ २२ ॥

अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥
नदीपर्वतसंरोहे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २३ ॥

अधिक बोझ डालनेसे, या अत्यन्त दूहनेके कारण या नासिकाके छेदनसे, नदीमें या पर्वतके चढनेपर यदि गौ मृतक होजाय तौ पादोन कृच्छ्र करै ॥ २३ ॥

न नारिकेलवालाभ्यां न मुंजेन न चर्मणा ॥ एभिर्गास्तु न बध्नीयाद्बद्धा परवशो भवेत् ॥ २४ ॥ कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्वृषभं दक्षिणामुखम् ॥

नारियलकी रस्सी, बाल, मूंज, और चमडा इनसे गौको न बांधै, कारण कि इनके बांधनेसे गौ पराधीन होजाती है ॥ २४ ॥ परन्तु कुशा और कांसोसे दक्षिण दिशाको मुखकर बैल को बांधै ॥

पादलग्नाहिदाहेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २५ ॥

पैरमें कंकड लगजाय, सर्पने काटाहो, और जलकर जो गौ मरजाय उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेपि च ॥
भिषङ्मिथ्योपचारैश्च द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ २६ ॥

घेरनेमें और वैद्यकी अन्यथा चिकित्सासे यदि गौ मरजाय तौ गोहत्याका दुगुना प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥

शृंगभंगेऽस्थिभंगे च लांगूलस्य च कर्तने ॥ सप्तरात्रं पिबेद्व्रजं यावत्स्वस्थः पुनर्भवेत् ॥ २७ ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद्द्विजः ॥ एतद्द्विमिश्रितं वज्रमुक्तं चोशनसा स्वयम् ॥ २८ ॥

जो गायका सींग वा हाड टूटजाय; अथवा गौकी पूंछ कतरी जाय तौ सात रात्रितक वज्रपान करै जबतक गौ चंगी न हो ॥ २७ ॥ द्विज गोमूत्रसे मिलाकर जौ भक्षण करै गोमूत्रसे मिलेहुए जौको उशना ऋषिने "वज्र" नाम कहाहै ॥ २८ ॥

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च ॥
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २९ ॥

तीर्थ, बावडी और प्राचीन मंदिर इन स्थानोंमें यदि गौ मरजाय तौ प्रायश्चित्त नहींहै२९॥

एका कदा तु बहुभिर्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ॥
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ३० ॥

यदि किसी समय एक गौको बहुतसे मनुष्य मारैं, तौ उन सबको गोहत्याका पाद २ पृथक् २ प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३० ॥

यंत्रणे याश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ॥
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३१ ॥

गौ बांधने या उसके उदरमेंसे मरेहुए गर्भको निकालनेके समयमें यदि यत्न करतेपरभी मरजाय, तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३१ ॥

सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुधारणम् ॥
तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने ॥ ३२ ॥

पहले पादके प्रायश्चित्तमें रोमोंको, और द्विपाद प्रायश्चित्तमें डाढीका, और तीसरे पादमें चोटी मात्र रखकर और सब शिरका मुंडन है, गौके मारडालनेवाले पुरुषको शिखासमेत मुंडन कहाहै ॥ ३२ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥
एवमेव तु नारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सम्पूर्ण केशोंको ऊपरको उभारकर दो दो अंगुल काटदे यह मुंडन स्त्रियोंके केशोंका कहाहै ॥ ३३ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

कारुहस्तगतं पण्यं यच्च पात्राद्विनिःसृतम् ॥
स्त्रीबालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचि स्मृतम् ॥ १ ॥

कारीगरके हाथकी बनाईहुई वस्तु, और जो वस्तु बेचनें योग्य हो; और जिसको पात्रसे बाहर निकाल लियाहो, स्त्री, बालक, वृद्ध, इनका आचरण सब शुद्ध है ॥ १ ॥

प्रपास्वरण्येषु जलेषु वै गिरौ द्रोण्यां जलं केशविनिःसृतं च ॥
श्वपाकचण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥ २ ॥

प्रपा, (प्याऊ) का जल वनका जल, पर्वतका जल, द्रोणी या मशकका जल, बालोंका निचुड़ता हुआ श्वपाक और चांडालके घरका जो मनुष्य जल पीताहै वह पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥

न दुष्येत्संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यंति कदाचन ॥ ३ ॥

निरन्तर निकलती हुई जलकी धारा, पवनसे उडी हुई धूलि, स्त्री, बालक, वृद्ध यह कभी दूषित नहीं होते ॥ ३ ॥

आत्मशय्या च वस्त्रं च जायापत्यं कमंडलुः ॥
आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ४ ॥

अपनी शय्या, अपनी स्त्री, अपने वस्त्र, अपनी सन्तान और अपनेही पात्र पवित्र हैं, दूसरे मनुष्योंके कभी शुद्ध नहीं हैं ॥ ४ ॥

अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च ॥
एषु स्नात्वा च पीत्वा च पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

दूसरोंके बनवायेहुए कूप अथवा तालावादिके जलमें स्नान करनेसे पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥

उच्छिष्टमशुचित्वं च यच्च विष्ठानुलेपनम् ॥ सर्वं शुद्ध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुद्ध्यति ॥ ६ ॥ सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ॥ गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

(प्रश्न-) उच्छिष्ट (जूंठा) अशुद्धि और जिनमें मल लगाहो इनकी शुद्धि केवल जलसेही होतीहै, वह जल किसके द्वारा शुद्ध होताहै? ॥ ६ ॥ (उत्तर-) सूर्यकी किरणोंके पडनेसे अथवा पवनके संयोगसे पवित्र होताहै, अथवा गोमूत्र और गोबरसे वह जल पवित्र होताहै ॥ ७ ॥

अस्थिचर्मादियुक्तं तु खरश्वानोपदूषितम् ॥
उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ ८ ॥

हड्डी और चमडेके पडनेसे जो जल अपवित्र होगयाहो, या गधे तथा कुत्तेने जिसमें मुह डालकर दूषित करदियाहो; तौ उस जलको पात्रमें से निकालकर पात्रको भली भांतिसे मांजे ॥ ८॥

कूपो मूत्रपुरीषेण यवनेनापि दूषितः ॥ श्वसृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः ॥ ९ ॥ उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिंडान्समुद्धरेत् ॥ पंचगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ॥ १० ॥

कुएका जलभी मूत्र, विष्ठा, पडनेसे और यवनके जलभरनेसे तथा कुत्ता, गधा, गीदड, ऊंट और मांस खानेवालोंसे अपवित्र हो जाताहै ॥ ९ ॥ उस कुएके समस्त जलको निकलवाडाले, पीछे सात मिट्टीके (ढेले) पिंड कुएमेंसे निकाले; और पंचगव्य तथा पवित्र मट्टीको कुएके भीतर डालदे तब वह कुआ पवित्र होताहै ॥ १० ॥

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥
कुंभानां शतमुद्धृत्य पंचगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ११ ॥

यदि बावडी, कुए, तालाव, यह अपवित्र होजांय; तौ सौ घडे जल निकालकर पंचगव्यके डालनेसे इनकी शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

यच्च कूपात्पिबेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात् ॥ कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥ १२ ॥ अक्लिन्नेन च भिन्नेन केवलं शवदूषिते ॥ नीत्वा कूपादहोरात्रं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥ क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् ॥ शुद्धिश्चांद्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ १४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मुरदेसे स्पर्श हुए दूषित कुएके जलको पीकर ब्राह्मण किस प्रकारसे शुद्ध होताहै, यह हमें संदेह उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ जिस मुरदेका शरीर रुधिरसे भीगा न हो, और जिसका कोई अंगही टूटाहो, ऐसे मुरदेसे दूषितहुए कुएके अशुद्ध जलको पीनेवाला अहोरात्रि उपवास करकै पंचगव्यके पीनेसे पवित्र होताहै ॥ १३ ॥ यदि जिस कुएमें रुधिरसे भीगाहुआ और टूटे फूटे अंगवाला मुरदा पडाहो उस कुएके जलको पीनेवाला चांद्रायण अथवा तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ॥ तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वंत्यनुग्रहम् ॥ १ ॥ चांद्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्राजापत्यं तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥ यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ॥ तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके घरमें विना जानेहुए अंत्यज जातिका मनुष्य निवास करै और कुछ काल पीछे वह जानलिया जाय, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह उस पर कृपाकर उसे दंड न दें ॥ १ ॥ तौ ब्राह्मणोंको चांद्रायण अथवा पराक व्रत करना उचित है; और शूद्र प्राजापत्य तथा अन्त्यजातियोंका अपनी २ जातिके अनुसार प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ २ ॥ जिन्हों-

ने वहां पकान्न खायाहो उनको कृच्छ्र व्रत करना उचित है, और वहां पकान्न खानेवालोंके यहां का अन्न जिन्होंने खायाहो उनको कृच्छ्र पाद करावै ॥ ३ ॥

कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ॥
तेषामेकोपवासेन पंचगव्येन शोधनम् ॥ ४ ॥

यवनके स्पर्शके दोषसे एक कुएका जल पीनेसे जो अशुद्ध हैं उनकी शुद्धि एकवार उपवास करने और पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ४ ॥

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता ॥
तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥

बालक, वृद्ध, रोगी और वायुकी पीडावाली गर्भवती स्त्री इनको नक्तव्रत बतावै, और बालकोंको दो पहरका उपवास कहाहै ॥ ५ ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥

अस्सी वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध और सोलह वर्षकी अवस्थासे कम अवस्थाका बालक, रोगी, स्त्री, इन सबका प्रायश्चित्त आधा कहाहै ॥ ६ ॥

न्यूनैकादशवर्षस्य पंचवर्षाधिकस्य च ॥ चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ७ ॥ अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते ॥ शेषसंपादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥

ग्यारह वर्षसे कम और पांच वर्षसे अधिक अवस्थावाले बालककी शुद्धि गुरु अथवा मित्र करै ॥ ७ ॥ यदि यह बालकही अपना प्रायश्चित्त करै और इस बीचमें इनको कष्ट होजाय तौ शेष प्रायश्चित्तको गुरुआदि करले; अथवा जिस भांति इन्हें कष्ट न हो उसी भांति यह अपना प्रायश्चित्त करले ॥ ८ ॥

क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ॥
ये न रक्षंति वक्तारस्तेषां तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ९ ॥

प्रायश्चित्तके करनेसे जिन रोगियोंको क्षुधासे पीडा होजाय, अथवा मरनेकी शंका उपस्थित होजाय तौ धर्मके उपदेश करनेवाले उनके प्राणोंकी रक्षा नहीं करते अर्थात् उन्हें शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्त नहीं बताते तौ उस पापके भागी वह उपदेशही करनेवाले होते हैं; ॥ ९ ॥

पूर्णेपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ॥ अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयंति द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ॥ विप्रसंपादनं कर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥ ११ ॥ संपादयंति ये विप्राः स्नानं तीर्थफलप्रदम् ॥ सम्यक्कर्तुरपापं स्याद्व्रती च फलमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

समयका नियम पूरा होजानेपरभी ब्राह्मणोंके विना उसकी शुद्धि नहीं होती, और कालका नियम विना पूरा हुएही ब्राह्मण शुद्ध करदेतेहैं, अर्थात् ब्राह्मणोंके वचनमात्रमेंही शुद्धि है॥ १०॥

कारण कि जिस समय प्राणसंकट उपस्थित होताहै उससमय कर्मका संपादन ब्राह्मणही करसकताहै, इसमें तीनों वर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के विषयमें कभी भी कोई पुरुष किसीके कर्मको समाप्त होगया ऐसा न कहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण स्नान और तीर्थके फल देनेवाले कर्मको किसी और की शुद्धिके लिये दूसरों से करवातेहैं, उन भलीभांतिसे करनेवालोंको पाप नहीं होता, और व्रती उसके फलको पाताहै ॥ १२ ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

चंडालकूपभांडेषु योऽज्ञानात्पिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ॥ १ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २ ॥

(प्रश्न-) चांडालके कुए अथवा उसके बरतनका अज्ञानसे जो मनुष्य जल पीताहै उसका प्रायश्चित्त चारों वर्णोंमें किस प्रकारसे कहाहै? ॥ १ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मण सांतपन व्रत करे क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत करे, वैश्य आधा प्राजापत्य करे, और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतको करै ॥ २ ॥

भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥ प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥ ३ ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ जपंस्त्रिरात्रमनश्नन्पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

भोजन करनेके पीछे विना आचमन किये यदि उच्छिष्ट अवस्थामें अज्ञानतासे ब्राह्मण श्वपचको छूले तो उसको प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३ ॥ आठहजारवार गायत्रीका जप करै या एकसौवार द्रुपदामंत्रको जपकर तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४ ॥

चंडालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे कुरुते द्विजः ॥
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको विष्ठा और मूत्र करनेके पीछे चांडाल छूले तो वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास करै, और भोजन करनेके उपरान्त उच्छिष्टको छूले तो छैः रात्रितक उपवास करै ॥ ५ ॥

पाने मैथुनसंपर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ संपर्के यदि गच्छेत्तु उदक्या चांत्यजैस्तथा ॥ एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ भोजने च त्रिरात्रं स्यात्पाने तु त्र्यहमेव च ॥ मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ७ ॥ दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥ एकाहं तत्र निर्दिष्टं दंतधावनभक्षणे ॥ ८ ॥

(प्रश्न-) यदि ऋतुमती स्त्री, अंत्यजके साथ जलपान, मैथुन, मूत्र, विष्ठा इनकास्पर्श हो जाय अथवा यह छूले तो इनका प्रायश्चित्त किसप्रकारसे होताहै? ॥ ६ ॥ (उत्तर-)

इनके यहांका अन्न भोजन करनेमें तीन रात्रि उपवास करना कर्तव्य है, और जलका पीनेवाला तीन दिन उपवास करै, मैथुनके समयमें स्पर्श होनेपर पाद कृच्छ्र करै इसी भांति विष्ठा मूत्र करनेके समयमें ॥ ७ ॥ क्रमसे एक दिन और तीन दिन उपवास कहाहै, दतौन करनेमें एक दिन उपवास करै ॥ ८ ॥

वृक्षारूढे तु चंडाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ॥ फलानि भक्षयंस्तस्य कथं शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ एकरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥

(प्रश्न-) जिस वृक्षके ऊपर यदि चांडाल चढाहो उसी वृक्षके ऊपर ब्राह्मण चढकर फल खाले तौ उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे कहाहै? ॥ ९ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वस्त्रोंसहित स्नान करै और एक रात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १० ॥

येन केनचिदुच्छिष्टोऽप्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट अवस्थामें किसी अपवित्र वस्तुको छूले तो अहोरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

चंडालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ॥ अनभ्युक्ष्य पिबेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥ अहोरात्रं तु वैश्यस्य पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

(प्रश्न-) यदि कदाचित् ब्राह्मण चांडालको छूकर विना स्नान किये ही जलपीले तौ उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ १ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मण तीन रात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं, क्षत्री दो दिनतक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ २ ॥ और वैश्यगण अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं ॥

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥ व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥ पंचगव्यं न दातव्यं तस्य मंत्रविवर्जनात् ॥ ख्यापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

(प्रश्न-) चौथे वर्ण (शूद्र) का प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ ३ ॥ कारण कि शूद्रजातिको व्रत नहीं, होम नहीं, तप नहीं, पंचगव्यभी नहीं दिया जासकता, कारण कि उसको वेदका अधिकार नहीं है, (उत्तर-) परन्तु शूद्र अपने अपराधको ब्राह्मणोंसे कहकर यथाशक्ति दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥ उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥ शंखपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६ ॥

यदि ब्राह्मणने अज्ञानतासे ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खालिया है वह अहोरात्र उपवास करनेके पीछे गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे वैश्यकी उच्छिष्टको खाले तौ त्रिरात्रि उपवास कर शंखपुष्पी (औषधी विशेष) के जलको पीकर शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥
न तत्र दोषं मन्यंते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण कदाचित् अपनी ब्राह्मणीके साथ भोजन करले, तौ विद्वान् मनुष्य उसमें दोष नहीं मानते ॥ ७ ॥

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात्स्पृशतेऽपि वा ॥
प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानंगिराब्रवीत् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणीके अतिरिक्त किसी अन्यजातिकी स्त्रियोंकी उच्छिष्ट खाने अथवा छूनेवालेको प्राजापत्य व्रतसे शुद्धि होतीहै यह भगवान् (पड्विध[1] ऐश्वर्यवाले) अंगिरा ऋषिने कहाहै॥८॥

अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥
चांद्रायणं तदर्धार्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥ ९ ॥

अंत्यजोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करताहै वह चांद्रायणका एक पाद व्रत करै अर्द्धकृच्छ्र, पादकृच्छ्र, क्षत्रिय वैश्यादि क्रमानुसार करै ॥ ९ ॥

विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥
श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ १० ॥

विष्ठा और मूत्रके भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करै. कुत्ता, काक और गौकी उच्छिष्टका भोजन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्य व्रतको करै ॥ १० ॥

उच्छिष्टं स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ॥ शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभांडं तथैव च ॥ ११ ॥ पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण अज्ञानसे कुत्ते, मुरगे, शूद्र, मदिराके पात्र ॥ ११ ॥ और जिसपर पक्षी बैठाहो ऐसी अपवित्र वस्तुको छूले तौ अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उस की शुद्धि होतीहै ॥ १२ ॥

वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्यांते विशुद्ध्यति ॥ १३ ॥

ब्राह्मणको यदि कोई उच्छिष्ट वैश्य छूलै, तो त्रिकाल स्नान करके गायत्री मंत्रका जप करै, इस प्रायश्चित्तसे एकदिनके अन्तमें शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥

---

१ "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ १ ॥"

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
स्नानांते च विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ १४ ॥
इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको अन्य उच्छिष्ट ब्राह्मण छूले तो स्नानके अन्तमें उसकी शुद्धि होतीहै यह आपस्तम्बमुनिका वचन है ॥ १४ ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः ॥ स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १ ॥ पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ पंचयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥ ३ ॥ नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोंगेषु धारयेत् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥ रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित् ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥ नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरकम् ॥ शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ६ ॥ नीलीमध्ये यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः कचित् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ॥ अभोज्यं तद्द्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ८ ॥ भक्षयेद्यश्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः कचित् ॥ चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ९ ॥ यावत्यां वापिता नीली तावती वाशुचिर्मही ॥ प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ १० ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इसके पीछे नीले वस्त्रके धारणकरनेकी विधि कहताहूं, स्त्रियोंकी क्रीडाके समय, संभोगके समय और शय्याके ऊपर नीले वस्त्रका दोष नहीं है ॥ १ ॥ जो ब्राह्मण नीलको पालताहै, जो बेचताहै और जो उससे अपनी जीविका निर्वाह करताहै वह पतित होताहै, इस कारण तीन कृच्छ्र व्रत करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २ ॥ जो नीले रंगके वस्त्रको धारण कर स्नान, दान, तपस्या, होम, वेदका पाठ, पितरोंका तर्पण और पंचयज्ञ करता है उसका वह सब निष्फल होजाताहै ॥ ३ ॥ यदि ब्राह्मण नीले रंगे हुये वस्त्रोंको शरीरपर धारण करै तौ अहोरात्रि उपवास करनेके पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मणके रोमोंसे नीलका रंग जाकर शरीरमें पहुंचजाय तौ ब्राह्मण पतित होताहै, तब तीन कृच्छ्र व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ यदि नीलके काष्ठसे ब्राह्मणके शरीरमें घाव होजाय और उस घावसे रक्त निकलने लगे तो चान्द्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानसे नीलके खेतमें चलाजाय तौ अहोरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध

होताहै ॥ ७ ॥जो नीले वस्त्रको पहनकर अन्न परोसताहै वह खाने योग्य नहीं है, जो ब्राह्मण उसे भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानसे नीलको खाजाय तौ चांद्रायण व्रत करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै, यह आपस्तंब मुनिका वचन है, ॥ ९ ॥ जहांतक पृथ्वीमें नील बोयागयाहो वहांतककी पृथ्वी बारह वर्षतक अशुद्ध रहतीहै इसके पीछे शुद्ध होजातीहै ॥ १० ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते ॥
वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ॥ १ ॥

रजस्वला स्त्रीको चौथे दिन स्नान करना श्रेष्ठ है, स्त्रियें रजनिवृत्ति होजानेपर स्वामीके साथ संभोग करने योग्य होतीहैं, विना रजकी निवृत्ति हुए नहीं होती ॥ १ ॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको मदः ॥ २ ॥ साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्त्तते ॥ वृत्ते रजसि साध्वी स्याद्गृहकर्मणि चेंद्रिये ॥ ३ ॥ प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

यदि किसी रोगसे स्त्रियोंके रजकी निवृत्ति न हो तौ उस रजसे स्त्रियें अशुद्ध नहीं होतीं कारण कि उनका वह रज विकारयुक्त है ॥ २ ॥ जबतक रज रहै तब तक उत्तम आचरण (पाठ पूजा आदिक) न करै; कारण कि रजकी निवृत्ति होनेपर ही स्त्रियें घरके काम काज करने और पतिके संग करने योग्य होतीहैं ॥ ३ ॥ ऋतुमती होनेके पहले दिन स्त्री चांडालिनीकी समान है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोबन, और चौथे दिनमें पवित्र होती है ॥ ४ ॥

अंत्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ॥ अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्यं विशोधनम् ॥ निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकरां च कामयेत् ॥ ६ ॥ रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ॥ त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ प्रथमेहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहस्तथा ॥ तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥

यदि रजस्वला स्त्रीको अन्त्यज और श्वपाक छूले, तौ रजोदर्शनके दिनको बिताकर प्रायश्चित्त करै ॥ ५ ॥ तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै फिर उसी शुद्ध होनेकी रात्रिमें पुरुषका संसर्ग करै ॥ ६ ॥ कुत्ता, अंत्यज और श्वपच यदि रजस्वला स्त्रीको छूले तौ उसकी शुद्धि तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥ ७ ॥ यदि रजोदर्शनके पहलेही दिन अंत्यज आदि छूलें तौ छैः रात्रि और दूसरे दिन छूलें तौ तीन दिनतक और तीसरे दिन छूलैं तौ एक दिन उपवास करे, और चौथे दिन छूलै तौ अग्निके देखनेसेही उसकी शुद्धि होती है ॥ ८ ॥

विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा ॥ रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥ ९ ॥ स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलंकृताम् ॥ पुनर्मध्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥

(प्रश्न-) विवाहके समयमें यज्ञ (होम) होताहो और कुछ संस्कार भी होचुका हो इसी अवसरमें यदि कन्या ऋतुमती होजाय तौ शेष संस्कार किस भांति हो? ॥ ९ ॥ (उत्तर-) उस कन्याका स्नान कराकर उसी समय अन्य वस्त्रोंसे शोभायमान करै, और पीछे पवित्र आहुति देकर शेष कर्मको करै ॥ १० ॥

रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः ॥
सा त्रिरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको वानर, मुरगा, कौआ छूलै तौ वह त्रिरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि ॥
तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि परस्परमें दो रजस्वला स्त्री छूलैं तौ शुद्धिके दिनतक उपवासी रहैं और पीछे स्नान करनेसे शुद्ध होतीहैं ॥ १२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विप्रा शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

कदाचित् उच्छिष्ट पुरुष रजस्वला स्त्रीको छूले तौ ब्राह्मणी कृच्छ्रके करनेसे और शूद्रजातिकी स्त्री केवल दान करनेसेही शुद्ध होजातीहै ॥ १३ ॥

एकशाखां समारूढश्चंडालो वा रजस्वला ॥
ब्राह्मणश्च समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १४ ॥

एकही वृक्षकी शाखाके ऊपर चांडाल, रजस्वला, और ब्राह्मण बैठेहों तौ यह तीनों एक वार वस्त्रोंसहित स्नान करैं ॥ १४ ॥

रजस्वलायाः संस्पर्शः कथंचिज्जायते शुना ॥ रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य विशुद्ध्यति ॥ १५ ॥ अशक्ता चोपवासेन स्नानं पश्चात्समाचरेत्॥ तथाप्यशक्ता चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि किसी भांतिसे रजस्वला स्त्रीको कुत्ता छूजाय तौ रजके शेष दिनोंमें उपवास करनेसे ही वह शुद्ध होतीहै ॥ १५ ॥ सामर्थ्यके न होनेपर एक उपवास कर स्नान करने और सामर्थ्यवान् होनेपर एक उपवास और पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १६ ॥

उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ॥
मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत्कृच्छ्रं तदर्धं तु रजस्वलाम् ॥ १७ ॥

यदि मदिरा, तथा रजस्वला स्त्रीको उच्छिष्ट ब्राह्मण छूले तौ वह क्रमानुसार कृच्छ्र और अर्ध कृच्छ्र व्रत करै ॥ १७ ॥

उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ॥
कृच्छ्रार्द्धं तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ १८ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ऐसी रजस्वला को छूले जिसके बालक उत्पन्न हुआहो तौ ब्राह्मण कृच्छ्रार्द्ध करै, कारण कि प्रायश्चित्तसे ही शुद्धि होतीहै ॥ १८ ॥

चंडालः श्वपचो वापि आत्रेयीं स्पृशते यदि ॥
शेषाहा फालकृष्टेन पंचगव्येन शुद्धयति ॥ १९ ॥

चांडाल, श्वपच, रजस्वला को छूले तौ रजोदर्शनके शेष दिनमें पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १९ ॥

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ॥ अहोरात्रोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २० ॥ एवं तु क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ॥ सचैलं प्लवनं कृत्वा दिनस्यांते घृतं पिबेत् ॥ २१ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी यदि शूद्रकी रजस्वला स्त्रीको छूले तौ अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २० ॥ ब्राह्मणी रजस्वला स्त्रीको क्षत्रिय अथवा वैश्यकी स्त्री छूले तौ वस्त्रोंसहित स्नानकर एक दिन उपवास कर संध्याको घीका भोजन करै॥२१॥

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ॥
एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अपने वर्णकी रजस्वला स्त्रीके छूजानेसे स्नानकरनेसेही उसकी शुद्धि होतीहै यह आपस्तंब मुनिने कहाहै ॥ २२ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

भस्मना शुद्धयते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ॥सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्धयते तापलेखनैः ॥ १ ॥ गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु॥ दश भस्मानि शुद्धयंति श्वकाकोपहतानि च ॥ २ ॥

काँसीके पात्र अशुद्ध होजानेपर वह भस्मके मांजनेसे ही शुद्ध होजाताहै, मदिरासे अशुद्ध हुआ पात्र भस्मसे शुद्ध नहीं होता, मदिरा और विष्ठा मूत्रसे अशुद्धहुआ पात्र अग्निमें तपाने और रितवानेसे शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ गौके सूंघे, और शूद्रके झूंठे और कुत्ते या कौएने जिसमें मुंह डाला हो यह अपवित्र कांसीके पात्र दश बार भस्मके मांजनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥२॥

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्येंदुरश्मिभिः ॥ रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं तु प्रदुष्यति ॥ अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्धयति ॥ ३ ॥

सुवर्ण आर स्त्रीकी शुद्धि वायु सूर्य और चंद्रमाकी किरणोंसे होतीहै और शुक्र तथा शवके स्पर्श होजानेसे जो वस्त्र अशुद्ध होगयाहै उसकी शुद्धि जल रेते और मट्टीके मांजने धोनेसे होती है ॥ ३ ॥

शुष्कमन्नमवेद्यस्य पंचरात्रेण जीर्यति ॥ अन्नं व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ॥ ४ ॥ पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥ संवत्सरेण तैलं तु कोष्ठे जीर्यति वा नवा ॥ ५ ॥

शूद्रके यहांका सूखा अन्न पांच दिनमें पचताहै; और व्यंजनसहित अन्न पंद्रह दिनमें पचताहै ॥ ४ ॥ दूध और दही एक महीनेमें पचताहै, तेल एक वर्षमें पचे या नभी पचै इस बातका निश्चय नहीं है ॥ ५ ॥

भुंजते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं जायंते ते: मृताः शुनि ॥ ६ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ७ ॥ आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ॥ तथा तस्य प्रणश्यंति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥ शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः॥स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले॥ १०॥

जो ब्राह्मण एक महीनेतक बराबर शूद्रके यहांके अन्नको खातेहैं, वह इस जन्ममेंही शूद्र होजातेहैं, और मरनेके पीछे उनको कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ६ ॥ शूद्रके यहांका अन्न भोजन, शूद्रके साथ एक आसन पर बैठना, शूद्रसे विद्या पढना, यह सम्पूर्ण कार्य तेजस्वी पुरुषको भी पतित करतेहैं ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण नित्य होमके लिये अग्नि स्थापन करताहै, वह यदि शूद्रके यहां अन्न भोजन करना न छोडैं तौ उसकी आत्मा वेद और तीनों अग्नि नष्ट होजातीहैं ॥ ८ ॥ शूद्रके अन्नको भोजन कर जो स्त्रीसंगकर उसमें पुत्रादि उत्पन्न करताहै वह पुत्र शूद्रके ही हैं, कारण कि अन्नसे ही शुक्र उत्पन्न होताहै ॥ ९ ॥ शूद्रका अन्न पेटमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाताहै, वह उस जन्ममें गाँवका सूकर होताहै, अथवा उस शूद्रकेही कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोंका अन्न सर्वदा भोजन करनेयोग्य है; पर्वके समयमें क्षत्रियोंका अन्न भोजनकर यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर वैश्यका अन्न भोजनकरै; और शूद्रका अन्न किसी समयमें भ भोजन करना उचित नहीं ॥ ११ ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम्॥वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥ वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ १३ ॥व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ॥ क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ॥ १४ ॥ स्वकर्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्य शक्तितः ॥ खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम्॥ १५ ॥ अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्य च ॥ रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमंत्रविवर्जितम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है, क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है; वैश्यका अन्न अन्न मात्र है, और शूद्रका अन्न रुधिरकी समान है ॥ १२ ॥ वैश्वदेवके निमित्त दान, होम, देवताओंकी पूजा और जपसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्रोंसे शुद्धहुआ ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है ॥ १३ ॥ व्यवहारके अनुकूल धर्मसे छलनारहित क्षत्रियका अन्न प्राणियोंका पालन करताहै, इस निमित्त क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार अपने कर्मसे पशुओंकी रक्षासे और खरियानके आतिथ्यसे शुद्धिको प्राप्तहुआ वैश्यका अन्न अन्नही है ॥ १५ ॥ अज्ञानरूपी अंधकारसे अंधेहुए और मदिरा पीनेमें तत्पर शूद्रोंका अन्न विधि और मंत्रोंसे रहित है इसी कारण उसको रुधिरकी समान जानें ॥ १६ ॥

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥
गुडस्तक्रं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥

कच्चा मांस, सहत, घी, अन्न और दूध, गुड, मट्ठा, रस, यह सब वस्तुएं शूद्रके घरकी होनेपर भी मनुष्यको लेलेनेमें दोष नहींहै ॥ १७ ॥

शाकं मांसं मृणालानि तुंबुरुः सक्तवस्तिलाः ॥
रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ॥ १८ ॥

शाक (तरकारी) मांस, कमलकी विस, तुंबी, सत्तू, तिल, रस, फल, पिण्याक (खल वा अंडके फल) यह सम्पूर्ण द्रव्य सब जातियोंसे लेने योग्य हैं ॥ १८ ॥

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥
मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ १९ ॥

विपत्तिके आजानेपर भी यदि ब्राह्मण शूद्रके यहांका अन्न भोजन करताहै तौ उसकी शुद्धि मनके पश्चात्तापसे तथा सौ बार "द्रुपदा" मंत्रके जपनेसे होतीहै ॥ १९ ॥

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ॥
तद्द्विजेन न भोक्तव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २० ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मणके हाथमें किसी द्रव्यके स्थित होनेपर उच्छिष्ट शूद्र उस ब्राह्मणको छूले तौ वह वस्तु ब्राह्मण न खाय, यह आपस्तंब मुनिका वचन है ॥ २० ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥ उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वं शौचं तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥ अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ प्रसृतं यवसस्येन पलमेकं तु सर्पिषा ॥ पलानि पंच गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥

(प्रश्न) कदाचित् ब्राह्मणके भोजन करते समयमें अधोवायु अथवा मलत्याग होजाय तौ उच्छिष्ट अवस्थामें उस अशुद्ध ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा? ॥ १ ॥ (उत्तर-) प्रथम शौच करकै पीछे आचमन करै, इसके अनन्तर अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्धि होतीहै ॥ २ ॥ देहको विना शुद्ध किये यदि अज्ञानतासे जिसने समस्त भोजन खालियाहो तौ वह तीन रात्रि जौको पीकर भलीभांति शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ एक प्रसृति जौ एक पल (टके भर) घी, पांच पल गोमूत्र, इन सबको मिलाकर पीसकताहै इससे अधिक नहीं ॥ ४ ॥

अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ॥ रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ५ ॥ पद्मोदुंबरबिल्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः ॥ एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥ ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु ॥ अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षिताः ॥ ७ ॥ चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि वा ॥ जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः ॥ तेषां सांतपनं कृच्छ्रं चांद्रायणमथापि वा ॥ ८ ॥

(प्रश्न) भक्षणके, चाटनेके, पीनेके, और खानेके अयोग्य वीर्य, मूत्र, विष्ठा इनके भक्षण करनेपर किस प्रकार प्रायश्चित्त होताहै? ॥ ५ ॥ (उत्तर) गूलर, वेल, कुशा, ढाक, इनके जलको छैः रात्रितक पीकर शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थ धर्मको त्यागकर संन्यास धर्मका आश्रय कर अग्नि और तर्पणको देहत्याग करनेकी इच्छासे उनसे निवृत्त होकर फिर गृहस्थ धर्ममें रहना चाहतेहैं ॥ ७ ॥ वह ब्राह्मण तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन चांद्रायण व्रत करैं, और जातकर्मसे लेकर उनका संस्कार फिर कराना उचित है अथवा उनको सांतपन कृच्छ्र तथा चांद्रायण व्रत कराना चाहिये ॥ ८ ॥

यद्विष्ठितं काकबलाकयोर्वा अमेध्यलिप्तं च भवेच्छरीरम् ॥
श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक्स्नानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

जिसका शरीर कौए, बगलेसे युक्त हो अथवा जो विष्ठासे लिप्तहो, कान या मुखमें अशुद्ध वस्तुने प्रवेश कियाहो और जिसके शरीरमें अपवित्र वस्तु लगी हो उसकी भली भांति स्नान करनेसे शुद्धि होतीहै ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदंगमुपहन्यते ॥
ऊर्ध्वं स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

हाथोंके अतिरिक्त नाभिसे ऊपर जो अशुद्ध वस्तु शरीर पर लगजाय, तौ ऊपरके भागमें हो तो स्नान करनेसे और नाभिसे नीचे अंगमें हो तौ शौचसे ही शुद्धि हो जाती है ॥ १० ॥

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ॥
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पंचगव्यं विशोधनम् ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके मुखमें जूते अथवा किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्शहोजाय तौ वह मनुष्य शरीरपर मट्टी मलकर स्नान करने और पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११ ॥

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ॥
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥ १२ ॥

ब्राह्मण अपनी जातिके जन्म मरणके अशौचमें दश दिनमें शुद्ध होताहै; और क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रजातियोंमें क्रमानुसार अशौच छैः दिन, तीन दिन, और एक दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥
अपीतवत्समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १३ ॥

भोजनके निमित्त, भोजन करनेवालेके निमित्त जो अन्न रक्खाजाताहै, यदि उस अन्नको खानेवाला न खाकर वैसेही छोडदे तौ वह अन्न मृतकके अन्नकी समान है ॥ १३ ॥

अन्ने भोजनसंपन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ॥
अनंतरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ १४ ॥

यदि भोजनके लिये बनायेहुए अन्नपर मक्खी पडजाय या बाल पडजाय तौ जलसे आचमन करके उस अन्नमें भस्म डालदे ॥ १४ ॥

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ १५ ॥

सूखा मांस अथवा बढई और शूद्रके यहांके अन्नको जो ब्राह्मण अज्ञानतासे खालेताहै वह एक कृच्छ्र करै, और जिसने जानकर खायाहो वह तीन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै १५॥

अभुक्तो मुच्यते यश्च भुक्तो यश्चापि मुच्यते ॥ भोक्ता च मोचकश्चैव पश्चाद्ध-
रति दुष्कृतम् ॥ १६ ॥ यस्तु भुंजति भुक्तं वा दुष्टं वापि विशेषतः ॥ अहो-
रात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

जो मनुष्य विना खायेही अथवा भोजन करकै उठजाय, उस स्थानपर जो भोजन करताहै और जो भोजन कराताहै यह दोनों मनुष्य पापके भागी होतेहैं ॥ १६ ॥ जो मनुष्य खाईहुई वस्तुको भोजन करताहै वह अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ॥ पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्यो-
भयतः शुचिः ॥ १८ ॥ उत्तीर्याचामेदुदकादवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ एवं तु श्रेयसा
युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥ १९ ॥

जल और स्थलमें बैठाहुआ पुरुष शुद्ध है, और दोनों स्थानोंपर बैठाहुआ पुरुष दोनों स्थानोंपर पैर रखकर आचमन करनेसे ही शुद्ध होताहै ॥ १८ ॥ जलमें यदि पैर रक्खाहो तौ किनारा पर पैर निकालकर आचमन करै, ऐसे कल्याणकारी पुरुषकी पूजा वरुणभी करतेहैं ॥ १९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ २० ॥

अग्निशाला, गोशाला और ब्राह्मणोंके निकट, वेद पढनेके समय और भोजनके समयमें खडाऊंओंका त्याग करदे ॥ २० ॥

जन्मप्रभृति संस्कारे स्मशानांते च भोजनम् ॥
असपिंडैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥ २१ ॥

जन्मआदि संस्कारोंमें, या प्रेतकार्यमें विशेष करके चूडाकर्मके समयमें, असपिंड ब्राह्मण भोजन न करै ॥ २१ ॥

याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ॥
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥

यज्ञ करानेवालेका अन्न, नवश्राद्ध संग्रहमें भोजन [जो मरनेपर ग्यारहवें दिन होताहै] और जो स्त्रियोंके पहले गर्भाधानमें भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतको करै ॥ २२ ॥

ब्रह्मौदनेवसाने च सीमंतोन्नयने तथा ॥
अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २३ ॥

ब्रह्मौदन (जो भात यज्ञोपवीतके समयमें होताहै) अवसान (जिस समय ब्राह्मण भोजन करचुकेहों) और सीमन्तोन्नयन, अन्नका श्राद्ध, मरनेका श्राद्ध, इनमें जो मनुष्य भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २३ ॥

अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद्गृहे ॥
अथ भुंजीत मोहाद्यः पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥

जिस स्त्रीके सन्तान न होती हो उसके घर भोजन न करै, इन स्त्रियोंके घरमें अज्ञानसे जो मनुष्य खाताहै, वह मनुष्य पूय नामक नरकमें जाताहै ॥ २४ ॥

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ॥ २५ ॥

जो पिता कुछ भी धन लेकर कन्याको दान करताहै वह मनुष्य बहुत वर्षोंतक रौरव नरकमें निवास करके विष्ठा मूत्रको खाता रहताहै ॥ २५ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः ॥
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ २६ ॥

जो स्त्रीका धन है ऐसे सुवर्ण और वस्त्रोंसे जो बंधु बांधव लोग अपनी जीविका निर्वाह करतेहैं वह सब पापी मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ २६ ॥

राजान्नमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
असंस्कृतं तु यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ २७ ॥

राजाका अन्न बलको नष्ट करताहै; और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरण करताहै; जो मनुष्य अपवित्र वस्तुको भोजन करताहै, वह पृथ्वीका मल भोजन करताहै ॥ २७ ॥

मृतके सूतके चैव ग्रहणे शशिभास्करे ॥
हस्तिच्छायां तु यो भुंक्ते स पापः पुरुषो भवेत् ॥ २८ ॥

मरणसूतकमें और जन्मसूतकमें, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें और गजच्छा- यामें जो पुरुष भोजन करताहै वह पापी है ॥ २८ ॥

पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधाः कामचारिणी ॥
आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्॥ २९ ॥

दो वार वियाही हुई पुनरेता और रेतोधा, जो जहां तहांसे वीर्यको धारण करतीरहै वह व्यभिचारिणी है; इन सब स्त्रियोंके यहांका अन्न पहिले गर्भाधानके संस्कारमें जो मनुष्य खाताहै वह चांद्रायण करै ॥ २९ ॥

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥
विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ३० ॥

माताका मारनेवाला, पिताका मारनेवाला, ब्राह्मणका मारनेवाला; और गुरुकी स्त्रीके संग रमण करनेवाला इनके यहांका जो मनुष्य अन्न खाताहै वह चान्द्रायणका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३० ॥

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥
भुक्त्वैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥ ३१ ॥

धोबी, व्याध, नट, बांस,और चामसे जीनेवाले इनके यहांके अन्नका ब्राह्मण भोजन करता है, वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ॥ सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत् ॥ ३२ ॥ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३३ ॥

यदि उच्छिष्ट मनुष्यको उसी जातिका उच्छिष्ट छूले तो उसी समय उठ केवल आचमन करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है ॥ ३२ ॥ यदि जिस ब्राह्मणको उच्छिष्टने छूलियाहो उसे कुत्ता अथवा शूद्र छूले तो एक रात्रि उपवास करकै पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै॥३३॥

ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणकी आज्ञाको पालन करनेवाले शूद्रको पृथ्वीपर ही अन्न खानेके लिये देना उचित है; कारण कि जिस भाँति कुत्ता है वैसा ही यह भी है ॥ ३४ ॥

अनुदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुले पथि ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥ ३५ ॥ भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः ॥ उत्संगे गृह्य प-

(१) जिस समय कृष्णपक्षकी त्रयोदशी हो और सूर्य हस्तनक्षत्र पर स्थित हो और चन्द्रमा मघा- नक्षत्रके ऊपर हो उसे गजच्छाया योग कहतेहैं ।

कान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥ मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥

(प्रश्न) जलहीन स्थानोंमें, वनमें, चोर और सिंह जिसमें हों उन मार्गोंमें भोजन हाथमें लियेहुए जो मनुष्य मल मूत्र त्याग करताहै और उस वस्तुको खालेताहै उसकी शुद्धि किस प्रकार होतीहै? ॥ ३५ ॥ (उत्तर) वह मनुष्य पृथ्वीपर अन्नको रखकर और यथार्थ शौच करके गोदीमें पक्वान्न लेकर आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मूत्र करके विना शौच किये हुए अज्ञानसे भोजन करलेता है वह तीन रात तक भलीभांति पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३७ ॥

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥
चांद्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥

मदसे मोहितहुआ ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करले तौ चांद्रायण व्रत करै और बहुतसे ब्राह्मणोंके भोजन करानेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥ प्रमादाद्यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥ स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४० ॥

भोजनके उपरान्त विना ही आचमन किये उच्छिष्ट अवस्थामें यदि ब्राह्मणको अज्ञानसे श्वपच या चांडाल छूले ॥ ३९ ॥ तौ त्रिकाल स्नान और ब्रह्मचारी हो, नित्य पृथ्वीपर शयन करताहो तौ वह तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४० ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुद्ध्यति ॥४१ ॥ सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥ सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥ ४२ ॥ दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ॥ प्रायश्चित्तं लघुष्वेतत्पापेषु तु यथार्हतः ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य चांडालको छूकर जल पीताहै वह अहोरात्र उपवास करके त्रिकाल स्नान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४१ ॥ अहोरात्र (एक दिन) सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करै इसको पादकृच्छ्र कहतेहैं; और एक दिन सायंकाल अथवा प्रातःकालमें भोजन न करै, और दो दिन विना मांगे जो मिले उसे भोजन करै ॥ ४२ ॥ और दो दिन उपवास करै उसे कृच्छ्रार्द्ध कहतेहैं लघु पापोंमें यह प्रायश्चित्त उचित है ॥ ४३ ॥

कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानां च विक्रयी ॥
प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

काली मृगछाला, और तिल इनका दान लेनेवाला, हाथी और घोडेको बेचनेवाला और मृतकदेहका मोललेकर उठानेवाला पुरुष इनकी गणना पुरुषोंमें नहीं होती॥ ४४ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

आचांतोप्यशुचिस्तावद्यावन्नोद्ध्रियते जलम् ॥ उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावद्भूमिर्न लिप्यते ॥ १ ॥ भूमावपि च लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ॥ आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्नाक्रमते महीम् ॥ २ ॥

आचमन करनेके पीछे मनुष्य तबतक अशुद्ध रहताहै जबतक पृथ्वीपर से वह जल न उठाया जाय, और पृथ्वी विना लिपे अशुद्ध रहती है ॥ १ ॥ पृथ्वीके लीपेजानेपरभी जबतक अशुद्ध रहताहै जबतक कि आचमनके आसनसे उठकर उस लीपीहुई पृथ्वीपर न बैठे ॥२॥

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते ॥
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥

यमराजको यम कहकर नहीं पुकारते परन्तु अपनी आत्माको ही यम कहतेहैं; जिस मनुष्यने मनको अपने वशमें कर लियाहै, यमराज उसका क्या कर सकताहै ॥ ३ ॥

न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥
यथा क्रोधो हि जंतूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥

खड्गभी ऐसा तीक्ष्ण नहीं है, और सर्पभी ऐसा भयंकर नहींहै जैसा कि प्राणियोंके शरीरमें क्रोध उनका नाश करनेवाला है [इस कारण सब भांतिसे क्रोधको त्यागदे] ॥ ४॥

क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः॥ एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥ यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ५ ॥

मनुष्योंमें क्षमाही एक गुण है, वह इस लोक और परलोकमें सुखकी देनेवालीहै क्षमावान् मनुष्योंमें एक दोषके अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता (वह दोष क्या है उसे कहतेहैं) क्षमाशील मनुष्यको मूर्खजन असमर्थ विचारतेहैं ॥ ५ ॥

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥ न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ६ ॥ एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवेत्प्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यङ्मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य ॥७॥

व्याकरण शास्त्रमें जिसका मन लवलीन होजाय उसकी और जिसका प्यारा रमणीक घर है उसकी और भोजन वस्त्रमें तत्पर हैं उनकी, और जो संसारके मनको वश करनेमें रत हैं उनकी मोक्ष नहीं होती ॥ ६ ॥ परन्तु जो एकान्तमें निवास करै और जो दृढ व्रतसे रहै और सबकी प्रीतिसे दूर रहै; जो दूसरेकी हिंसा न करै, और जो अध्यात्मयोगमें तत्पर रहै ऐसे मनुष्यकी मोक्ष होजातीहै ॥ ७ ॥

क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥
सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥ ८ ॥

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करताहै, होम करताहै, जो पूजा करताहै वह कच्चे घडेकी समान नष्ट होजातेहैं अर्थात् जैसे कच्चे घडेमें जल नहीं ठहरता ॥ ८ ॥

अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसः क्षयः ॥ अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ॥ ९ ॥ आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥ १० ॥

अपमानसे तपस्याकी वृद्धि होतीहै, और सन्मानसे तपस्याका नाश होताहै पूजित और सन्मानित ब्राह्मण अवसन्न होजाताहै; जिस भांति दुधारू गौ प्रतिदिन दुहनेसे खिन्न होजाती है ॥ ९ ॥ जिस भांति वही गौ जलसे उत्पन्नहुई घासादिको खाकर पुष्टता पातीहै उसी भांति ब्राह्मण भी जप होम और पुण्य कार्यके करनेसे फिर उन्नतिको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥

जो मनुष्य माताकी समान पराई स्त्रीको देखता, और पराये द्रव्यको लोष्ट (डेले) की समान देखताहै और जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी समान देखताहै वह मनुष्यही यथार्थ देखनेवाला है ज्ञानवान् है ॥ ११ ॥

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ॥
यो भुंक्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १२ ॥

धोबी, व्याध, नट और बांस तथा जो चमडेसे जीविका निर्वाह करतेहैं, जो मनुष्य इनके यहांके अन्नको भोजन करताहै वह प्राजापत्यका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥
शुद्धिं चांद्रायणं कृत्वा अथवान्ते तथैव च ॥ १३ ॥

गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन, भक्षण करने अयोग्य के अर्थात् जो बढई आदि के यहांका अन्न खाताहै उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतसे होतीहै ॥ १३ ॥

अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥
तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चांद्रायणादृते ॥ १४ ॥

जो मनुष्य अग्निहोत्रको त्यागताहै; उस मनुष्यको वीरहत्याका पाप लगताहै, विना चांद्रायणके करनेसे उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ १४ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥ सद्यः शुद्धिं विजानीयात्पूर्वसंकल्पितं च यत् ॥ १५ ॥ देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रततेषु च ॥ कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥ १६ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

विवाह, उत्सव, यज्ञकार्यके होनेपर यदि जन्मसूतक अथवा मरणसूतक होजाय तो उसी समय शुद्धि होजातीहै; कारण कि उस अन्नका संकल्प पहलेही कर दियाथा ॥ १५ ॥ देवद्रोणी, विवाह और बडे यज्ञमें, मरण और जन्मसूतकमेंका बनाया हुआ पकान्न अशुद्ध नहीं होता ॥ १६ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आपस्तंबस्मृतिः समाप्ता ७.

श्रीः ॥

अथ संवर्त्तस्मृतिः ८.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ संवर्त्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम् ॥ ऋषयस्तमुपागम्य पप्रच्छुर्धर्मकांक्षिणः ॥ १ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम् ॥ २ ॥ वामदेवादयः सर्वे तं पृच्छंति महौजसम् ॥ तानब्रवीन्मुनीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

इकले बैठेहुए, सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंके पारको जाननेवाले संवर्त्तमुनिके निकट आकर धर्मके सुननेकी अभिलाषा करनेवाले मुनि पूछने लगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! ब्राह्मणोंके धर्मके साधनको हम सुननेकी इच्छा करतेहैं; जिससे शुभ और अशुभका पृथक् २ ज्ञान हमें होजाय ऐसे यथार्थ धर्मको विचारकर कहिये ॥ २ ॥ इस भांति वामदेवादि ऋषियोंके कहनेपर महातेजस्वी ऋषिश्रेष्ठ संवर्त्तमुनि प्रसन्नहोकर बोले कि, तुम श्रवण करो ॥ ३ ॥

स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः ॥
धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥

काला मृग जिस देशमें सदा अपनी इच्छानुसार विचरण करै वह देश धर्मदेश है, और ब्राह्मणोंके धर्मसाधनके लिये योग्य स्थान है ॥ ४ ॥

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् ॥ स्रग्गंधमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥ ५ ॥ संध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्द्धास्तमितभास्करे ॥ ६ ॥ तिष्ठन्पूर्वं जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ आसीनः पश्चिमां संध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥ अग्निकार्यं च कुर्वीत मेधावी तदनंतरम् ॥ ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥ प्रणवं प्राक् प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥ गायत्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥ हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ ॥ गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥ १० ॥ सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥ निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥

यज्ञोपवीत होजाने पर ब्राह्मण प्रतिदिन गुरुदेवका हितकारी कार्य करै, ब्रह्मचारी माला, गंध, मद्य, मांस, इनका त्याग करदे ॥ ५ ॥ नक्षत्रोंके विना छिपेहुए प्रातःकालकी संध्या करै; और सूर्यदेवके आधे अस्त होजाने पर सायंकालकी संध्या करै ॥ ६ ॥ जबतक सूर्यका दर्शन भली भाँतिसे न होजाय तबतक खडा होकर बराबर गायत्रीका जप करतारहै; और

जबतक नक्षत्र भली भांतिसे उदय न होजायँ तबतक सायंकालमें बैठकर जप करता रहै॥७॥ इसके पीछे ज्ञानवान् पुरुष अग्निहोत्रको करै, फिर होमकार्यके समाप्त होनेपर गुरुदेवके मुखको देखता हुआ वेदको पढै, ॥ ८ ॥ सबसे आगे ओंकारका उच्चारण करै, इसके अनन्तर सात व्याहृति पढै, इसके उपरान्त गायत्रीको पढकर पीछे वेदका पढना प्रारंभ करै ॥ ९ ॥ दोनों गोडोंके ऊपर सावधानी से हाथ रखकर एकाग्र मनसे अनन्यबुद्धि हो गुरुदेवकी आज्ञा-अनुसार वेदको पढै, पढते समय बुद्धिको दूसरी ओर न लगावै ॥ १० ॥ ब्रह्मचारी नियम अवलम्बनपूर्वक प्रातःकाल और सायंकालमें भिक्षा मांगे; इसके उपरान्त उस भिक्षाको गुरुदेवको निवेदन कर पूर्वमुख हो मौनको धारणकर पवित्रभावसे भोजन करै ॥ ११ ॥

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ॥
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥

ब्राह्मणोंको सायंकाल और प्रातःकाल दिनमें दो समय भोजन करना वेदने कहाहै, इसमें सावधान मनुष्य बीचमें भोजन नहीं करै ॥ १२ ॥

आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्द्विजः ॥ अनाचांतस्तु योऽश्नीयात्प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥ १३ ॥ अनाचांतः पिबेद्यस्तु योऽपि वा भक्षयेद्द्विजः ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥ अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा ॥ विना यज्ञोपवीतेन त्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥

भोजनके पहले आचमन करै, भोजनके पीछे आचमन करै; और जो आचमन के विना किये हुए भोजन करतेहैं, उनको प्रायश्चित्त करना होगा ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण विना आचमन किये हुए भोजन करता है या जल पीताहै वह मनुष्य आठ हजार गायत्रीका जप करने से शुद्ध होता है ॥ १४ ॥ पैरोंके विना धोये, अथवा चोटी में विना गांठबांधे यज्ञोपवीतके विना जो मनुष्य आचमन करताहै वह अशुद्ध रहताहै ॥ १५ ॥

आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन चोपवीती ह्युदङ्मुखः ॥ उपवीती द्विजो नित्यं प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ १६ ॥ जले जलस्थश्चाचांतः स्थलाचांतो बहिः शुचिः ॥ बहिरंतःस्थ आचांत एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ आमणिबंधाद्धस्तौ च पादावद्भिर्विशोधयेत् ॥ परिमृज्य द्विरास्यं तु द्वादशांगानि च स्पृशेत् ॥ १८ ॥ स्नात्वा पीत्वा तथा क्षुत्वा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥ अनेन विधिना सम्यगाचांतः शुचितामियात् ॥१९॥ शूद्रः शुद्ध्यति हस्तेन वैश्यो दंतेषु वारिभिः॥ कंठागतैः क्षत्रियस्तु आचांतः शुचितामियात् ॥ २० ॥

उत्तरकी ओरको मुख करकै यज्ञोपवीतको धारणकर ब्रह्मतीर्थसे (यह अंगूठेकी जडमें होताहै) आचमन करै; पूर्वकी ओरको मुख करकै बैठा हुआ यज्ञोपवीतको धरे हुए मौनधारी ब्राह्मण नित्य शुद्ध होताहै ॥ १६ ॥ जलमें स्थितहुआ पुरुष जलमें आचमनकरै; और स्थलमें बैठाहुआ पुरुष स्थलमें बैठकर आचमन करनेसे शुद्ध होताहै, इस भांति बाहिरे और जलमें आचमन करनेसे शुद्धि प्राप्त होतीहै ॥ १७ ॥ मणिबंधतक हाथ पैरको जलसे धोवे,

पीछे दोवार मुखको पोंछकर बारह अंगोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ स्नानके अनन्तर जलपान, छींक, भोजन और अपवित्र वस्तुका स्पर्श करके ब्राह्मण इस भांति आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९ ॥ शूद्र जलसे हाथ धोनेसे शुद्ध होताहै, और वैश्य दांतोंतक जलजानेसे शुद्ध होताहै; क्षत्रिय कंठतक जलके जानेसे (आचमनसे) शुद्ध होताहै ॥ २० ॥

आसनारूढपादस्तु कृतावसक्थिकस्तथा ॥
आरूढपादुको वापि न शुद्धयति कदाचन ॥ २१ ॥

आसनपर पैर रखकर, घुटनोंको उठाये हुए, जो खडाऊंपर चढकर आचमन करताहै; उसकी कभी शुद्धि नहीं होती ॥ २१ ॥

उपासीत न चेत्संध्यामग्निकार्यं न वा कृतम् ॥
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यने संध्या और अग्निहोत्र न कियाहो; वह सावधान होकर अष्टोत्तरसहस्र वार गायत्रीका जप करै ॥ २२ ॥

सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ॥
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयात्त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ॥ २३ ॥

जो ब्रह्मचारी सूतकका अन्न, नवश्राद्ध और मासिक श्राद्धका अन्न खाता है उसकी शुद्धि त्रिरात्रमें होतीहै ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयंत्रितः ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी कामदेवसे मोहित होकर स्त्रीका संग करताहै; वह सावधान होकर एक प्राजापत्य कृच्छ्र करै ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥
प्राजापत्यं तु कृत्वासौ मौंजी होमेन शुद्धयति ॥ २५ ॥

कदाचित् किसी ब्रह्मचारीने मद्य और मांसको खालिया हो तौ वह प्राजापत्यव्रत करके मौंजी (मूंजकी कौंधनी)[1] के पहरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

निर्वपेत्तु पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि ॥
मंत्रैः शाकलहोमांगैरमावाज्यं च होमयेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी पर्वके दिन पुरोडाश दे, और शाकल होमके अंगभूत मंत्रोंसे घृतका हवन करै ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्रमात्मनः ॥
अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्धयेदकामतः ॥ २७ ॥

---

१ वह यज्ञोपवीतके समान प्रवर ग्रंथिसहित यज्ञोपवीतके समय पहराई जातीहै; कहीं २ इसे गलेमें जनेऊकी तरह पहरातेहैं सो भूलसे, कारण कि "कटिप्रदेशे त्रिवृतम्" इस गृह्यसूत्रमें कौंधनी करकेही उसका पहरना लिखाहै; भूलका कारण यज्ञोपवीतके समान होनाही है।

जो ब्रह्मचारी जानकर अपने वीर्यको निकाले तौ अवकीर्णिनामक (ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजानेपर के) प्रायश्चित्तसे शुद्ध होताहै; और यदि अज्ञान (स्वप्नादिक) से वीर्य निकलजाय तौ स्नान करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २७ ॥

भिक्षाटनमटित्वा तु स्वस्थो ह्येकान्नमश्नुते ॥
अस्नात्वा चैव यो भुंक्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ २८ ॥

जो भिक्षा मांगकर अपनी स्वस्थ (आरोग्य) अवस्थामें एकहीके यहांका अन्न खाताहै; या जो विना स्नानही किये खाताहै वह आठसौ गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होताहै ॥ २८ ॥

शूद्रहस्तेन योऽश्नीयात्पानीयं वा पिबेत्क्वचित् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २९ ॥ भुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केशदूषितम् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥ शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥

जो कभी भी शूद्रके हाथसे भोजन करताहै, या उसके हाथसे पानी पीताहै; उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥२९॥ वासी, उच्छिष्ट और जिसमें वालआदि पडेहों ऐसे अन्नको खानेवाला मनुष्य अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होत है ॥ ३० ॥ जिसने शूद्रके यहांके बरतनमें अथवा टूटेहुए बरतनमें भोजन कियाहै उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ३१ ॥

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन ॥
स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥

कदाचित् ब्रह्मचारी दिनके समयमें सोजाय तौ स्नानकरनेके उपरांत सूर्यदेवको दर्शनकर आठसौ गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥
एवं संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥

प्रथमआश्रमवासियोंका (ब्रह्मचारियोंका) यह धर्म कहागया, जो इसके अनुसार वर्ताव करताहै वह परम गतिको पाताहै ॥ ३३ ॥

अतो द्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत ॥ कुले महति संभूतां लक्षणैस्तु समन्विताम् ॥ ३४ ॥ ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ॥

जो ब्राह्मण इस ब्रह्मचर्य आश्रमसे विमुख होगया हो वह ऐसी स्त्रीके साथ अपना विवाह करै जो अपने वर्णकी और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुईहो; और शुभ लक्षणवाली हो ॥ ३४ ॥ और रूप, शील, गुण यहभी सम्पूर्ण लक्षण उसमें विद्यमान हों ऐसी स्त्रीके साथ ब्राह्मविवाह करै;

---

१ उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाकर विद्वान् और सुशील लडकेको बुलाकर जो कन्यादीजाती है उसे ब्राह्म विवाह कहतेहैं ।

अतः पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः ॥ ३५ ॥ न हापयेत्तु तान्छक्तः श्रेयस्कामः कदाचन ॥ हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥

इसके उपरांत ब्राह्मण प्रतिदिन पंच महायज्ञ करै ॥ ३५ ॥ कल्याणकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण उनका त्याग कभी न करै, परन्तु जिस समय जन्म मरणका सूतक होजाय उससमय उनको न करै ॥ ३६ ॥

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ॥ क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ ३७ ॥ शूद्रः शुद्धयति मासेन संवर्त्तवचनं यथा ॥ प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥

उस सूतकमें ब्राह्मण दान और पढनेसे रहित दश दिनतक, क्षत्रिय बारह दिनतक, और वैश्य पंद्रह दिनतक रहैं ॥ ३७ ॥ और शूद्रकी शुद्धि संवर्त ऋषिके वचनके अनुसार एकही महीने में होतीहै सम्पूर्ण सगोत्री मिलकर प्रेतको अन्न और जल दै ॥ ३८ ॥

प्रथमेह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥ चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥ ३९ ॥ ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥ अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥

ब्राह्मण पहले, तीसरे, सातवें, नवमें अथवा चौथे दिन अस्थिसंचयन करैं ॥ ३९ ॥ अस्थिसंचयनके उपरान्त देहका किसीके साथ स्पर्श न करै, अर्थात् पहले किसीको न छुए, ब्राह्मण का चौथे दिन में और क्षत्रियका छटे दिनमें ॥ ४० ॥ वैश्यका आठवें दिनमें और शूद्रका दसवें दिनमें स्पर्शकरना कहा है.

जातस्यापि विधिर्दृष्ट एप एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥

जन्मके सूतकमें बडे २ ऋषियोंने यही विधि देखी है ॥ ४१ ॥

दशरात्रेण शुद्धयेत विप्रो वेदविवर्जितः ॥

जिस ब्राह्मणने वेद न पढाहों वह दशरात्रिमें शुद्ध होताहै,

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥ माता शुद्धयेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ४३ ॥ पंचयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥ दशाहात्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ॥ ४४ ॥

जिस समय पुत्र पैदाहो उस समय पिताको वस्त्रसहित स्नान करना कहाहै ॥ ४२ ॥ माताकी शुद्धि दशदिन में होतीहै, और पिताका स्पर्श स्नानकरनेसे भी उचित है, सूके अन्न वा फलसे जन्मसूतकमें हवन करै ॥ ४३ ॥ पंच यज्ञ को जन्म और मरणसूतक में न करै, दशदिनके उपरान्त धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण भली भांतिसे पढै ॥ ४४ ॥

दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं भवेत् ॥ ४५ ॥ तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ नानाविधानि द्रव्याणि

धान्यानि सुबहूनि च ॥ ४६ ॥ समुद्रे यानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ॥ दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ गंधमाभरणं माल्यं यः प्रयच्छति धर्मवित ॥ स सुगंधः सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥ ४८ ॥ श्रोत्रियाय कुलीनायाभ्यर्थिने हि विशेषतः ॥ यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ ४९ ॥ आहूय शीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ॥ शुचिं विप्रं महाप्राज्ञं हव्यकव्यैस्तु पूजयेत् ॥ ५० ॥ नानाविधानि द्रव्याणि रसवंतीप्सितानि च ॥ श्रेयस्कामेन देयानि तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥

पापोंका नाशकरनेहारा अनेक भांतिका दान दे और संसारमें इस मनुष्यको जो २ इष्ट और प्यारा है अपने अक्षय पुण्यकी इच्छा करनेवाला पुरुष वही वह वस्तु विद्यवान् मनुष्यको दे; अनेक भांतिके द्रव्य और बहुतसे अन्न, मुद्रा और रत्न जो पापरहित मनुष्य इन्हें गुणवान् ब्राह्मणको देताहै; उसको महालक्ष्मी प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य गंध, भूषण, फूल इनको देताहै, वह सुगंधसहित सर्वदा प्रसन्न हो जहां तहां उत्पन्न होताहै ॥४८॥ वेद पढनेवाले कुलवान् और विशेष करके अभ्यागतोंको जो दान दियाजाता है, वह महाफल का देनेवाला होताहै ॥ ४९ ॥ शीलवान्, कुलवान, वेदके जाननेवाले शुद्ध और अत्यन्त बुद्धिमान् ब्राह्मणकी हव्य (देवताओंके अन्न) से और कव्य (पितरोंके अन्न) से पुरुष पूजा करै ॥ ५० ॥ उत्तम रसयुक्त ऐसे नाना प्रकारके सम्पूर्णद्रव्य अक्षय स्वर्गकी कामना करनेवाले मंगलप्रार्थी मनुष्यको दान करनाउचित है० ॥ ५१ ॥

वस्त्रदाता सुवेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च॥ हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विंदति ॥ ५२ ॥ भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥ धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमेधते॥ अलंकृतस्त्वलंकारं दाताप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥ फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥ तांबूलं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ॥ मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते॥५६॥ पादुकोपानहौ छत्रं शयनान्यासनानि च॥ विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥ दद्याद्यः शिशिरे वह्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ॥ कायाग्निदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥५८॥ औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशांतये ॥ दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५९ ॥ इंधनानि च यो दद्याद्विप्रेभ्यः शिशिरागमे ॥ नित्यं जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीप्यते ॥ ६० ॥

जो मनुष्य वस्त्रदान करताहै, वह सुन्दर वस्त्रोंसे शोभायमान होताहै, चांदीका देनेवाला मनुष्य रूपवान् होताहै, सुवर्णके देनेवालेकी बडी आयु होतीहै, और धनकी वृद्धि होतीहै ॥ ५२ ॥ प्राणियोंको अभयदान देनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होतेहैं अथवा दीर्घायु और सुखी होताहै ॥ ५३ ॥ अन्न, जल और घीके दान करनेसे मनुष्य सुख भोगताहै और भूषणोंके दान करनेसे भूषणवाला बडे फलको प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य फल, मूल तथा

नाना प्रकारके शाक और सुगंधवाले फूल इनको दान करताहै वह पंडित होताहै ॥ ५५ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणको ताम्बूल (पान) का दान करताहै वह विद्वान् और दर्शनीय तथा भाग्यवान् होताहै ॥ ५६ ॥ खडाऊं, जूता, छत्री, शय्या आसन और अनेक भांतिकी सवारी इनका देनेवाला धनवान् होताहै ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य शीतकालमें अग्नि और बडे यत्नसे काष्ठ देताहै, वह जठराग्निकी समान कांतिवाला, पंडित तथा रूपवान् और भाग्यशाली होताहै ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य रोगियोंके रोगको दूर करनेके लिये औषधी, स्नेह (घृत) इनको मिलाकर भोजन देताहै, वह रोगरहित होकर सुखी और चिरंजीवी होताहै ॥ ५९ ॥ शीतकालमें मनुष्य ब्राह्मणोंको काष्ठ (ईंधन) देताहै; वह मनुष्य युद्धके समय शत्रुओंको जीतताहै, और लक्ष्मीवान् होकर दीप्तिमान् होताहै ॥ ६० ॥

अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ॥ ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तां तु सुपूजिताम् ॥ ६१ ॥ स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विंदति पुष्कलम् ॥ साधुवादं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ६२ ॥ ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणीकृतम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममंत्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥ तां दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ॥ पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥ ६४ ॥ रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्तेऽथ कन्यकाम् ॥ रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वाः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः ॥ ६५ ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥ तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥ विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य भूषण वस्त्रादि पहराकर भली भांतिसे पूजितहुई कन्याको योग्य वरके हाथमें ब्राह्म विवाहकी रीतिके अनुसार देताहै ॥ ६१ ॥ वह कन्याके दानकरनेसे महाकल्याणको प्राप्त होताहै; और सज्जनोंमें बडाई पाकर उत्तम कीर्तिमान् होताहै ॥ ६२ ॥ होमके मंत्रोंसे संस्कार कीहुई कन्याके दानकरनेपर मनुष्य दश सहस्र ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ वस्त्र, अलंकारोंसे जो मनुष्य कन्याकी पूजा, उत्सव और वृद्धि (पुत्रादिके जन्मसमयमें) करता है वह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ (अविवाहित कन्याके) रोमोंके निकल आनेके समयमें कन्याको चंद्रमा भोग करतेहैं और ऋतुमती होनेके समयमें गंधर्व भोगतेहैं, दोनों स्तनोंके ऊंचे होनेपर अग्नि भोगताहै ॥ ६५ ॥ आठवर्षतक कन्या गौरी है नवमें वर्षमें रोहिणी और दसवर्षमें कन्याको कन्या कहाहै, इसके उपरान्त कन्याकी संज्ञा रजस्वला होजातीहै ॥ ६६ ॥ कन्याको ऋतुमती हुआ देखकर बडा भाई, माता, पिता यह तीनों नरकमें जातेहैं ॥ ६७ ॥ इस कारण रजोदर्शनके विनाहुएही कन्याका विवाह करना श्रेष्ठ है, और आठ वर्षकी कन्याका विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥

तैलामलकदाता च स्नानाभ्यंगप्रदायकः ॥
नरः प्रहृष्टश्चासीत सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥

तैल, आंवले, स्नानके निमित्त जल, और उबटन इनका दान जो मनुष्य करताहै; वह सर्वदा आनन्दित होकर भाग्यवान् होताहै ॥ ६९ ॥

अनड्वाहौ तु यो दद्याद्द्विजे सीरेण संयुतौ ॥ अलंकृत्य यथाशक्त्या धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥७०॥ सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ॥ वर्षाणि वसते स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य उत्तम लक्षणवाले, जोतने योग्य दो बैलोंको अलंकृत कर हलके साथ ब्राह्मणको देताहै ॥ ७० ॥ वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर सब कामनाओंके साथ जितने रोम बैलोंके शरीरपर हैं उतनेही वर्षोंतक स्वर्गमें वासकरताहै ॥ ७१ ॥

धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् ॥
कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥

काँसीके पात्र और वस्त्रोंसे अलंकृतकर दूध देनेवाली गौको जो मनुष्य ब्राह्मणको दान करताहै, वह स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ ७२ ॥

भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे॥ गां दत्त्वार्द्धप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥ ७३ ॥ यावंति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः ॥ नरस्तावंति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥ यो ददाति शफै रौप्यैर्हेमशृंगीमरोगिणीम् ॥ सवत्सां वाससा पीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५॥ तस्यां यावंति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः ॥ तावंति वत्सरांतानि स नरो ब्रह्मणोंतिके ॥७६॥

अन्न उत्पन्नहुई पृथ्वी और आधी ब्याई गौ इन्हें वेदके पार जाननेवाले ब्राह्मणको देनेसे मनुष्य स्वर्ग लोकमें पूजित होताहै ॥ ७३ ॥ जितने अन्नके पौदोंकी जड दान की हैं और जितने गौके शरीरपर रोम हैं उतनेही वर्षतक वह मनुष्य स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७४ ॥ चांदीके खुरोंवाली, सुवर्णके सींगवाली, बछडे अथवा बछियावाली, रोगरहित, वस्त्रसे ढकीहुई, दूध देतीहुई सुशीला गौको जो दान करताहै ॥ ७५ ॥ उस गौ और बछडेके शरीरपर जितने रोम हैं उतनेही वर्षोंतक वह मनुष्य ब्रह्माके निकट निवास करताहै ॥ ७६ ॥

यो ददाति बलीवर्दमुक्तेन विधिना शुभम् ॥
अव्यंगगोप्रदानेन दत्तं दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥

पूर्वोक्त विधिके अनुसार जो मनुष्य बैलको दान करताहै वह सविधान गौके दानसे दशगुने फलको प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥ लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ॥७८ ॥ सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥ हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ७९ ॥

प्रथम पुत्र अग्निका सुवर्ण है और पृथ्वी वैष्णवी (विष्णुकी पुत्री) है, और सूर्यकी पुत्री गौ है; इसकारण जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, पृथ्वी इनको दान करताहै, वह त्रिलोकीके दानके फलको पाताहै ॥ ७८ ॥ सम्पूर्ण दानोंका फल तौ केवल दूसरे जन्ममेंही मिलताहै; और सुवर्ण पृथ्वी, गौ इनका फल सात जन्मतक मिलताहै ॥ ७९ ॥

अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा॥ अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥८०॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्॥ सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥८१॥ यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत्प्रभुः ॥ तस्मादन्नात्परं दानं विद्यते न हि किंचन ॥ अन्नाद्भूतानि जायंते जीवंति च न संशयः ॥८२॥

जो मनुष्य अन्नका दान करताहै वह नित्य पुष्ट और तृप्त रहताहै, जलका दान करनेवाला सुखी और सम्पूर्ण कर्मोंसे युक्त रहताहै ॥ ८० ॥ सम्पूर्ण दानोंमें अन्नका दानही श्रेष्ठ है; कारण कि सब प्राणियोंका जीवन अन्नसेही है ॥ ८१ ॥ इसी कारणसे ब्रह्माजीने कल्प २ में सम्पूर्ण प्रजा अन्नसेही रचीहै, इससे उत्तम और कोई दान नहीं है; कारण कि अन्नसेही प्राणियोंकी उत्पत्ति है और अन्नसेही उनका जीवन है इसमें किंचित्भी सन्देह नहीं ॥ ८२ ॥

मृत्तिकागोशकृद्दर्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥
दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥ ८३ ॥

मिट्टी, गोबर, कुशा और यज्ञोपवीत उत्तम है इनको जो मनुष्य बहुतसे गुणवान् ब्राह्मणको दान करताहै वह बडे कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ ८३ ॥

मुखवासं तु यो दद्याद्दंतधावनमेव च ॥
शुचिर्गंधसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् ॥ ८४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको मुखवास (पानसुपारी इलायची) देताहै, या दतौन देताहै, वह शुद्ध गंधवाला होताहै; और कभी भी वाग्दुष्ट (तोतला) नहीं होता ॥ ८४ ॥

पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदालिंगयोः ॥
यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत् ॥ ८५ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको पैर, गुदा और लिंग इनके शौचके लिये जल देताहै उसकी बुद्धि सर्वदा शुद्ध होतीहै ॥ ८५ ॥

औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ॥
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्व्याधिवर्जितः ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य रोगियोंको औषधी, पथ्य, भोजन, तेलका उबटन, रहनेके लिये स्थान देताहै, वह रोगरहित रहताहै, अर्थात् उसे कभी कोई रोग नहीं होता ॥ ८६ ॥

गुडमिक्षुरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥
सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ ८७ ॥

गन्नेका रस, गुड, लवण और व्यंजन, वा सुगंधित पान इनका दान जो मनुष्य करताहै वह अत्यन्त सुखी रहताहै ॥ ८७ ॥

दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ॥

यह अनेक प्रकारके दानोंका फल कहा;

विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य विद्याका दान करताहै, वह श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें पूजनीय होता है ॥ ८८ ॥

अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥
अन्योन्यं प्रतिगृह्णंति तारयंति तरंति च ॥ ८९ ॥

परस्परमें अन्नके देनेवाले, और परस्परमें पूजाके करनेवाले, और परस्परमें दान लेनेवाले ब्राह्मण दूसरोंको उद्धार करतेहैं और आपभी पार हो जातेहैं ॥ ८९ ॥

दानान्येतानि देयानि तथान्यानि विशेषतः ॥
दानार्द्धं कृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥ ९० ॥

यह दान पूर्वोक्त (रीतिसे) देना उचित है और विशेष करके अन्य दानभी दे, दीन और अभ्यागतोंको कल्याणकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य अर्द्ध (शास्त्रमें कहेसे आधा) दे॥९०॥

ब्रह्मचारियतिभ्यस्तु वपनं यस्तु कारयेत ॥
नखकर्मादिकं चैव चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी और संन्यासीका मुंडन करवाताहै, या इनके नखोंको कटवाताहै,वह मनुष्य नेत्रोंवाला होताहै ॥ ९१ ॥

देवागारे द्विजातीनां दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥
मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्मान्स सदा भवेत् ॥ ९२ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिरोंमें दीपक देताहै, जो ब्राह्मणोंके मंदिर तथा चौराहोंमें दीपक देताहै, वह ज्ञानवान् बुद्धिमान् तथा नेत्रोंवाला होताहै ॥ ९२ ॥

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान्दत्त्वा स्वशक्तितः ॥
प्रजावान्पशुमांश्चैव धनवाञ्जायते नरः ॥ ९३ ॥

जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्ममें अपनी शक्तिके अनुसार तिलोंका दान करताहै, वह मनुष्य प्रजा, पशुवाला और धनवान् होता है ॥ ९३ ॥

यो यदाभ्यर्थितो विप्रैर्यद्यत्संप्रतिपादयेत् ॥
तृणकाष्ठादिकं चैव गोप्रदानसमं भवेत् ॥ ९४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मांगनेपर जिस समय जो वस्तु देताहै, तृण वा काष्ठ इत्यादि उसके वह सभी गोदानकी समान होतेहैं ॥ ९४ ॥

न वै शयीत तमसा न यज्ञे नानृतं वदेत् ॥
अपवदेन्न विप्रस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥ ९५ ॥

अंधकारमें शयन करै; यज्ञमें झूंठ न बोले; ब्राह्मणकी निन्दा न करे, और देकर उसे कहे भी नहीं ॥ ९५ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ ९६ ॥

झूंठ बोलनेसे यज्ञ नष्ट होताहै अभिमानसे तपस्या नष्ट होतीहै, ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे अवस्थाका नाश होजाताहै, और कहनेसे दान नष्ट होजातेहैं ॥ ९६ ॥

चत्वार्येतानि कर्माणि संध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥
आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥ ९७ ॥

आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्र मैथुनात् ॥
निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९८ ॥

ज्ञानी मनुष्य संध्याके समयमें इन चार कामोंको न करै, भोजन, मैथुन, शयन और पढना ॥ ९७ ॥ भोजन करनेसे रोग उत्पन्न होताहै, मैथुनसे भयंकर गर्भ रहताहै, शयन करनेसे दरिद्रता आतीहै, और पढनेसे अवस्थाका नाश हो जाताहै ॥ ९८ ॥

ऋतुमतीं तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ॥
तस्या रजसि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ ९९ ॥

जो मनुष्य ऋतुवाली स्त्रीके समीप नहीं जाताहै उस मनुष्यके पितर उस महीनेमें ही इस स्त्रीके रजमें शयन करतेहैं ॥ ९९ ॥

कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे रतः ॥
ऋतुकालाभिगामी च प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १०० ॥

जो मनुष्य गृहस्थके कर्मोंके करतेहुए अपनी स्त्रीका पोषण भली भांतिसे करतेहैं, और ऋतुके समयमें स्त्रीके संग गमन करतेहैं, उनको परम गति मिलतीहै ॥ १०० ॥

उषित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात्परम् ॥
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयं तु समाश्रयेत् ॥ १०१ ॥

इस भांति दूसरे आश्रममें तत्पर हुआ पुरुष घरमें निवास कर वली (देहके चर्म लटक आनेपर) और पलित (सफेद बालोंके होनेपर) तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ) का आश्रय ग्रहण करै ॥ १०१ ॥

वनं गच्छेत्ततः प्राज्ञः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥ गृहीत्वा चाग्निहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् ॥ १०२ ॥ कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्भक्ष्यैर्यथाविधि ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥ १०३ ॥ कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥ इष्टिं पार्वायणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ॥ १०४ ॥

फिर इकला या स्त्रीके साथ वनको चलाजाय; और वनमें जाकर अग्निहोत्रको ग्रहण कर हवनका त्याग न करै ॥ १०२ ॥ और वनमें विधिसहित वनके कंदमूलोंसे पुरोडाशको बनाकर शाक मूल और फलादिकी भिक्षा भिखारीको दे ॥ १०३ ॥ निरन्तर हवन करनेमें रत होकर नित्य अध्ययन करै सब पर्वोंमें (पर्व अमावस आदि) में करने योग्य इष्टि (यज्ञ वा श्राद्ध) करै ॥ १०४ ॥

उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेज्जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥ १०५ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंकी विधिको जाननेवाला ब्राह्मण इसभांति वनमें निवास करकै क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर चौथे आश्रम (संन्यास) को ग्रहण करै ॥ १०५ ॥

अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥ वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ १०६ ॥ अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पंच वा ॥ अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भुंजीत सुसमाहितः ॥ १०७ ॥ अरण्ये निर्जने तत्र पुन-

रासीत मुक्तवत् ॥ एकाकी चिंतयेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ १०८ ॥ मृत्युं च नाभिनंदेत जीवितं वा कथंचन ॥ कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥ १०९ ॥ संसेव्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्द्विजः ॥ ११० ॥

आत्मामें अग्निको स्थापित करके संन्यासी हो जाय; सदा वेदके अभ्यास और आत्मविद्यामें तत्पर रहे ॥ १०६ ॥ विचारवान् संन्यासी आठ वा सात या पांच भिक्षाओं को ग्रहण करै, और फिर उस भिक्षापर जल छिडककर सावधानीसे भोजन करै ॥ १०७ ॥ फिर निर्जन वनमें मुक्तकी समान संन्यासी बैठे, और फिर मन, वचन, कर्मसे इकलाही नित्य ब्रह्मका विचार करता रहै ॥ १०८ ॥ मरने और जीनेकी प्रशंसा कभी न करै, इस भांतिसे इतनी अवस्था समाप्त हो जाय, इस कारण समयकी प्रतीक्षा करता रहै ॥१०९॥ जितेन्द्रिय हो क्रोधको जीतकर चारों आश्रमोंका सेवन करके वेद और शास्त्रके अर्थको जाननेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ११० ॥

आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्तोऽयं प्राश्निको विधिः ॥

यह चारों आश्रमोंके प्रश्न (जो तुमने पूछे थे) उनकी विधि कही;

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १११ ॥

इसके आगे प्रायश्चित्तकी शुभ विधि कहता हूं (श्रवण करो) ॥ १११ ॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥ ११२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोर, गुरुकी शय्या (स्त्री) में गमन करनेवाला यह चारों महापातकी होते हैं और जो इनका संगी है वह भी महापातकी होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मघ्नश्च वनं गच्छेद्वल्कवासा जटी ध्वजी॥ वन्यान्येव फलान्यश्नन्सर्वकामविवर्जितः ॥ ११३ ॥ भिक्षार्थी विचरेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ॥ चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष्यं बद्धाङ्गी संयतः सदा ॥ ११४ ॥ भिक्षास्त्वेवं समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ॥ वनवासी स पापः स्यात्सदाकालमतंद्रितः ॥ ११५ ॥ ख्यापयन्मुच्यते पापाद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥ अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतं चरेत् ॥११६॥ सन्नियम्येंद्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्बिषात् ॥ ११७ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला महापातकी मनुष्य वल्कलको धारण करके शिरपर जटा धारण कर ध्वजा (एक हत्यारेका चिह्न इस) को लेकर वनको चला जाय, और सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकरके वनके फल मूलकाही भोजन करै ॥ ११३ ॥ यदि वनफलोंसे जीविका निर्वाह न हो तौ भिक्षा मांगनेके लिये गांवमें विचरण करै; यह मनुष्य हत्याके चिह्नका धारण कर चारों वर्णोंमें भिक्षा मांगै और अपने मनको सर्वदा वशमें रक्खै ॥११४॥

फिर भिक्षाको लेकर वनमें चला जाय;और वह पापी सर्वदा आलस्यको छोडकर सर्वदा वनमें निवास करै ॥ ११५ ॥ महापापी भी अपने पापको प्रसिद्ध करताहुआ पापोंसे छूटजाताहै; इस भांति बारह वर्षतक व्रत करै ॥ ११६ ॥ इन्द्रियोंको रोककर सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहै ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये पूर्वोक्त आचरण करै; तब पापसे मुक्त होजाता है ॥ ११७ ॥

अतः परं सुरापस्य निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ ११८ ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ सुरापस्तु सुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ॥ ११९ ॥ गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोमयं वा तथाविधम् ॥ घृतं वा त्रीणि पेयानि सुरापो व्रतमाचरेत् ॥ १२० ॥ मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ अरण्ये वा वसेत्सम्यक्सर्वकामविवर्जितः ॥ १२१ ॥ चांद्रायणानि वा त्रीणि सुरापव्रतमाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः सुरापस्य भवेदिति न संशयः ॥ १२२ ॥

इसके उपरान्त मदिरापीनेवालेका प्रायश्चित्त श्रवण करो; मदिरा तीनप्रकारकी होती है, गौडी (गुडकी) माध्वी (सहत या महुएकी) तीसरी पैष्टी (पिसी दवा तथा चून आदिकी होती है) ॥ ११८ ॥ गौडी सुराके पीनेसे जो पाप होता है अन्य सुराओंके पीनेसेभी वैसाही पाप होता है; इसकारण ब्राह्मण कभी भी किसी मदिराको न पियै; यदि मदिरा पीकर ब्राह्मण उसके पापसे छूटनेकी इच्छा करै ॥ ११९ ॥ तौ तपाईहुई मदिराको पियै वा अग्निसे तपाये गोमूत्र या गोबरको पीवै, या गरम घीको पियै यह तीन वस्तुही पीनेके योग्य हैं; इसके पीछे फिर मदिरा पीनेका व्रत करै ॥ १२० ॥ मनुष्य इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त पापसे छूटजाता है अथवा भली भांतिसे सब कामोंको छोडकर वनमें निवास करै, ॥ १२१ ॥ अथवा मदिरा पीनेके तीन चांद्रायण व्रत से प्रायश्चित्त करै, मदिरा पीनेवालेकी शुद्धि इस प्रकारसे होती है; इसमें किंचित् भी संदेह नहीं ॥ १२२ ॥

मद्यभांडोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

जो मनुष्य मदिराके पात्रमें जल पीता है वह फिर संस्कारके योग्य होता है;

स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत् ॥ १२३ ॥ ततो मुशलमादाय स्तेनं हन्यात्सकृन्नृपः ॥ यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ १२४ ॥ अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तवचनं यथा ॥ १२५ ॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य उस चुराई हुई वस्तुको राजाको दे दे ॥ १२३ ॥ राजा मूशल लेकर उस चोरको एकवारही मारै; यदि वह चोर उस आघातसे जीवित रह जाय तौ अपने पापसे छूट जाता है ॥ १२४ ॥ या वनमें जाकर वल्कल पहरकर ब्रह्महत्याका व्रत करै, संवर्त्त ऋषिके वचनानुसार इस प्रकारसे इनकी शुद्धि कही है ॥ १२५ ॥

गुरुतल्पे शयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ समालिंगेत्स्त्रियं वापि दीप्तां कार्ष्णायसीकृताम् ॥ १२६॥ चांद्रायणानि कुर्याच्च चत्वारि त्रीणि वा द्विजः ॥ मुच्यते च ततः पापात्प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ १२७ ॥

गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला मनुष्य तपायेहुए लोहेके शय्यामें शयन करे या लोहेकी स्त्री बना उसे अग्निमें तपाकर स्पर्श करे ॥ १२६ ॥ और ब्राह्मण तीन अथवा चार चांद्रायण करै, इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त उस पापसे छूट जाता है ॥ १२७ ॥

एभिः संपर्कमायाति यः कश्चित्पापमोहितः ॥
तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ॥ १२८ ॥

जो मनुष्य पापसे मोहित होकर इनका संबंध करता है; वह भी उसी २ पापकी शुद्धिके लिये उसी २ पापका प्रायश्चित्त करै ॥ १२८ ॥

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृच्छ्राणि संयतः ॥ १२९ ॥ वैश्यहत्यां तु संप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः ॥१३० ॥ कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि ॥ एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा ॥ १३१ ॥

जो ब्राह्मण क्षत्रियको मारताहै वह तीनों कृच्छ्रोंके करनेसे भली भांति शुद्ध होताहै, और क्रमानुसार तीन कृच्छ्रोंको मनुष्य सावधान होकर करै ॥ १२९ ॥ जो मनुष्य कामसे मोहित होकर यदि वैश्यकी हत्याकरै तौ वह तीनकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १३० ॥ शूद्रके मारनेवाला ब्राह्मण विधिसहित तप्त कृच्छ्र करै, तब संवर्त्त मुनिके वचनके अनुसार इस प्रकारसे शुद्ध होता है ॥ १३१ ॥

गोघ्नस्यातः प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः शुभाम् ॥ १३२ ॥ गोघ्नः कुर्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरूपसन्निधौ ॥ तत्रैव क्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेंद्रियः ॥१३३ ॥स्नानं त्रिषवणं कुर्यान्नखलोमविवर्जितः ॥ सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिशकृन्नरः ॥ १३४ ॥ एतानि क्रमशोऽश्नीयाद्द्विजस्तत्पापमोक्षकः ॥ गायत्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ १३५॥पूर्णे चैवार्द्धमासे च स विप्रान्भोजयेद्द्विजः॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु गां च दद्याद्विचक्षणः॥१३६ ॥व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेऽपि वा ॥ भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥१३७ ॥

अब गोहत्याके करनेवालेका यथार्थ उत्तम प्रायश्चित्त कहता हूं ॥ १३२ ॥ गौका मारनेवाला मनुष्य गौशाला और गौके समीप रहकर अपना संस्कार करै और पंद्रहदिनतक इन्द्रियोंको वशमें करके गौशालामेंही शयन करै ॥ १३३ ॥ इसके पीछे तीन समयमें स्नान करै, और नख, लोम इनको न रक्खै, सत्तू, जौ, दूध, दही, गोबर ॥ १३४ ॥ क्रमानुसार इनको गौहत्याके पापसे छूटनेकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण भोजन करै; और अपनी शक्तिके अनुसार गायत्री आदि पवित्र मंत्रोंको निरंतर जपतारहै ॥ १३५ ॥ आधे महीनेके समाप्त होनेपर वह

ब्राह्मण ब्राह्मणोंको भोजन करावै; जिस समय ब्राह्मण भोजन करते हों उस समय गोदान भी करना उचित है ॥ १३६ ॥ रोकने, बांधने, या उलटी चिकित्सा करनेसे यदि बहुतसी गो मरजायँ तौ हत्याका दूना व्रत करै ॥ १३७ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ॥
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥

यदि कभी एक गौको बहुतसे मनुष्योंने मारडालाहो तौ वह पृथक् २ गोहत्याके चौथाई प्रायश्चित्त करनेसें शुद्ध होंगे ॥ १३८ ॥

यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ॥ यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥ औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥ दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ १४० ॥

चिकित्साके निमित्त वश करनेके समयमें अथवा मरेहुए गर्भ निकालनेके समयमें यदि किसीसे गौ मरजाय, तौ उसको पाप नहीं लगता ॥ १३९ ॥ यदि गौ और ब्राह्मण इनकी चिकित्सा करते समय औषधी, तथा घीको दे और वह तौ उस औषधादिसे न बचै किंतु मरजाय तौ उसका पाप नहीं होता वरन औषधादि चिकित्सा करनेसे पुण्यही होताहै॥१४०॥

प्रायश्चित्तस्य पापं तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ॥ द्वौ पादौ बंधने चैव पादोनं यंत्रणे तथा ॥ १४१ ॥ पाषाणैर्लगुडैर्दंडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ॥ निपातने चरेत्सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ १४२ ॥

यदि गौ रोकनेसे मरजाय तौ चौथाई प्रायश्चित्त करै, और बांधनेसे मरजाय तौ आधा करै, और वशमें करनेसे मरजाय तौ पौन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १४१ ॥ यदि पत्थर, सोंटा, दंड और शस्त्र इनसे गौ मरजाय तौ तीन दिनतक पूरा प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४२ ॥

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपींस्तथा ॥
एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥

जो ब्राह्मण हाथी, घोडा, भैंस, ऊंट, वानर इनको मारताहै वह सातदिनतक भोजन न करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १४३ ॥

व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च ॥
एतान्हत्वा द्विजो मोहात्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यने अज्ञानतासे व्याघ्र, कुत्ता, गधा, सिंह, रीछ, सूकर इनको माराहै वह तीन रात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १४४ ॥

सर्वासामेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम् ॥
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४५ ॥

जो मनुष्य वनमें विचरण करते हुए सम्पूर्ण जातिके मृगोंको मारताहै वह अहोरात्र उपवास करै और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप करताहुआ स्थित रहै ॥ १४५ ॥

हंसं काकं बलाकां च बर्हिकारंडवावपि ॥ सारसं चाषभासौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥ १४६ ॥ चक्रवाकं तथा क्रौंचं सारिकाशुकतित्तिरीन् ॥ श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥ १४७ ॥ टिट्टिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं तथा ॥ एषां वधे नरः कुर्यादेकरात्रमभोजनम् ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः ॥ अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥

जो मनुष्य हँस, कौआ, मोर, कारंडव, सारस, चाप, भास इनको मारताहै वह तीनदिन उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४६ ॥ जो मनुष्य चकवा, कूंज, मैना, तोता, तीतर, शिखरा, गीध, उल्लू, कबूतर, ॥ १४७ ॥ टटीरी, जालपाद (हंसभेद) कोयल, मुरगा, इनको मारताहै वह मनुष्य एक रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्त कहे हुए सम्पूर्ण जीव और विशेष करके हंसआदिके मारनेवाला अहोरात्र उपवास कर 'जादवेदसे' मन्त्रका जप करता हुआ स्थित रहै ॥ १४९ ॥

मंडूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जारमूषकान् ॥
त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १५० ॥

जो मनुष्य मंडूक, सांप, बिलाव, मूसा, इनको मारताहै वह तीन उपवास कर ब्राह्मण भोजन करानेसे शुद्ध होताहै ॥ १५० ॥

अनस्थ्नो ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥
अस्थिमतां वधे विप्रः किंचिद्दद्याद्विचक्षणः ॥ १५१ ॥

विना हड्डीके जीवोंको मारनेवाला ब्राह्मण प्राणायामके करनेसेही शुद्ध होताहै; और हड्डीवाले छोटे २ जीवोंका मारनेवाला कुछ एक दान करनेसेही शुद्ध होताहै ॥ १५१ ॥

यश्चण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः॥ त्रिभिः कृच्छ्रैस्तु शुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ॥ १५२ ॥ पुंश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोपि वा ॥ कृच्छ्रचांद्रायणे तस्य पावनं परमं स्मृतम् ॥ १५३ ॥ शैलूषीं रजकीं चैव वेणुचर्मोपजीविनीम् ॥ एता गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ १५४ ॥ क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ॥ तस्य सांतपनः कृच्छ्रो भवेत्पापापनोदनः ॥ १५५ ॥ शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा ॥ गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥ विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ स्वजनां तु द्विजो गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५७ ॥ क्षत्रियां क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत्॥नरो गोगमनं कृत्वा कुर्याच्चांद्रायणं व्रतम्॥१५८॥ मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च ॥ एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण विशुद्ध्यति ॥ १५९ ॥ गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ॥ तस्या दुहितरं चैव चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १६० ॥ पितृव्यदारगमने भ्रातुर्भार्यागमे तथा ॥ गुरुतल्पव्रतं कुर्यान्निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ १६१ ॥ पितृभार्यां समारुह्य मातृ-

वर्जा नराधमः ॥ भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६२ ॥ एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ कुमारीगमने चैतद्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १६३ ॥ पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ सखिभार्यां समारुह्य श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६४॥ मातरं योधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ॥ न तस्य निष्कृतिर्गच्छेत्स्वां चैव तनुजां तथा ॥ १६५ ॥ नियमस्थां व्रतस्थां वा योभिगच्छेत्स्त्रियं द्विजः॥स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥ १६६॥ रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा ॥ तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रो विधीयते ॥१६७॥ वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥

जो ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो चांडालीके संग गमन करताहै वह क्रमानुसार प्राजापत्यआदि तीन कृच्छ्रोंके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५२ ॥ जो मनुष्य जानकर या विना जानेहुए व्यभिचारिणी स्त्रीके संग संभोग करताहै वह कृच्छ्र और चांद्रायण इन दोनोंके भलीभांति करनेसे शुद्ध होताहै॥१५३॥जो ब्राह्मण मोहित होकर,नटनी, धोबिन,बांस और चमडेसे जीविका करनेवाली स्त्रियोंके संग गमन करताहै,वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै॥१५४॥ जो ब्राह्मण क्षत्रियकी अथवा वैश्यकी स्त्रीके संग कामदेवसे मोहित होकर गमन करताहै; वह सांतपन कृच्छ्रके करनेसे उसके पापसे छूटसकताहै ॥ १५५ ॥ जो मनुष्य एक महीने अथवा पंद्रह दिनतक शूद्रकी स्त्रीके साथ गमन करताहै; वह पंद्रह दिनतक गोमूत्र और जौको खानेसे शुद्ध होताहै ॥ १५६ ॥ जो मनुष्य अन्य कुटुम्बकी ब्राह्मणीके साथ गमन करता है वह प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; और अपने कुटुम्बकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्यके करनेसे ही शुद्ध होता है ॥ १५७ ॥ क्षत्रिय क्षत्री स्त्रीके साथ गमन करनेसे प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; जो मनुष्य गौके साथ गमन करता है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै; ॥ १५८ ॥ मामाकी स्त्री; (मांई) सास, मामाकी पुत्री, जो मनुष्य अज्ञानसे इनके साथ गमन करताहै वह पराक व्रतके करनेसे भली भांति शुद्ध होताहै ॥ १५९ ॥ जो मनुष्य गुरुकी पुत्री, बुआके साथ, और बुआकी बेटी के साथ गमन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६० ॥ चाचा, और भाईकी बहूके साथ गमन करनेवाला मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साथ गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ इसके अतिरिक्त उसके पापकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १६१ ॥ माताके अतिरिक्त पिताकी अन्य स्त्री और माताकी शीलवती वहिन, और दूसरी माताम उत्पन्न हुई सौतेली बहिन ॥ १६२ ॥ इन तीनों स्त्रियोंके साथ जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य गमन करताहै वह तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै; और जो कुमारी (विना विवाही हुई) के साथ गमन करनेवाला मनुष्य यही तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १६३ ॥ जो मनुष्य पशु और वेश्याके साथ गमन करताहै वह प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होताहै, मित्रकी स्त्री, सास, सालेकी स्त्री॥१६४ ॥ माता, बहन, और अपनी लडकी, जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य इनके साथ गमन करताहै उसका प्रायश्चित्तही नहीं है ॥ १६५ ॥ जो ब्राह्मण नियम व्रतमें स्थित हुई स्त्रीके

साथ गमन करताहै वह प्राकृत कृच्छ्रके करनेसे और दूध देतीहुई गौके दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १६६ ॥ जो मनुष्य रजस्वला, गर्भवती और पतित स्त्रीके साथ गमन करताहै वह अतिकृच्छ्रके करनेसे अपने पापसे मुक्त होताहै ॥ १६७ ॥ वैश्यकी कन्याके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण एक कृच्छ्रके करनेसे संवर्त्त मुनिके वचनके अनुसार शुद्ध होताहै ॥१६८॥

कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १६९ ॥

कदाचित् क्षत्रिय, और वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करैं, तौ एक महीनेतक गोमूत्र और जौके खानेसे शुद्ध होतेहैं ॥ १६९ ॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १७० ॥

यदि शूद्र कामदेवसे मोहित हो कदाचित् ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ गमन करै तो गोमूत्र और जौके खानेसे एकमहीनेमें शुद्ध होताहै ॥ १७० ॥

ब्राह्मणी शूद्रसंपर्के कदाचित्समुपागते ॥ कृच्छ्रचांद्रायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥ १७१ ॥ चण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा ॥ एताञ्छ्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्युश्चांद्रायणत्रयम् ॥ १७२ ॥

यदि ब्राह्मणकीही स्त्री कदाचित् शूद्रका संग करै तौ उस ब्राह्मणकी स्त्रीकी शुद्धि कृच्छ्र चांद्रायणके करनेसे होतीहै ॥ १७१ ॥ और जो श्रेष्ठ ब्राह्मण आदि उत्तम जातिकी स्त्री चांडाल, पुल्कस, श्वपाक इनके साथ गमन करैं तौ वह तीन चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होतीहैं ॥ १७२ ॥

अतः परं प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥ संन्यस्य दुर्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥ १७३ ॥ कुर्यात्कृच्छ्रं समानं तत्षण्मासांस्तदनंतरम् ॥ विषाग्निश्यामशबलास्तेषामेवं विनिर्दिशेत् ॥ १७४ ॥ स्त्रीणां तथा च चरणे ह्यधिमासगमे तथा ॥ पतनेष्वप्ययं दृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७५ ॥ नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ॥

इससे आगे अत्यन्त दुष्टोंका प्रायश्चित्त श्रवण करो, यदि कोई दुष्टबुद्धि पुरुष संन्यास लेकर संतानके निमित्त स्त्रीका संग करताहै ॥ १७३ ॥ वह निरन्तर छैः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करै, और विष, और अग्निसे जो काले और कबरे हो जांय वहभी पूर्वोक्त कृच्छ्र व्रतके करनेसेही शुद्ध होतेहैं ॥ १७४ ॥ स्त्रियें भी संन्यास लेकर यदि संतानकी इच्छासे फिर गृहस्थकी इच्छामें रत होजांय तो वहभी एक महीनेसे अधिक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करैं ॥१७५॥ मनुष्योंकी सम्पूर्ण विपत्तियोंमें पूर्वोक्त कृच्छ्रही इसलोक और परलोकमें पवित्र करने वालाहै;

गोविप्रप्रहतं चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७६ ॥
नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः ॥

जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणसे माराहो, या जो आत्मघातसे माराहो ॥ १७६ ॥ इनके मरजानेपर अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष न रोवैं;

एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७७॥ कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ॥ १७८ ॥पूर्वकेष्वप्यकारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥ महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥ ॥ १७९ ॥ उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥ नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८० ॥

और यदि कोई मनुष्य प्रेमके वश होकर श्मशानमें प्रेतको लेजाय अथवा जलादे॥१७७॥ तौ वह जलदान करके चांद्रायणव्रत करै; और केवल इन्ही शवोंका स्पर्श करै जिनको कोई न रोयाहो ॥ १७८ ॥ और यदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ हो तो एकदिन उपवास करै, महापातकी और आत्मघाती ॥ १७९ ॥ इन मनुष्योंको जो जलदान पिंडदान और जो श्राद्ध किया जाताहै, वह सब इनको नहीं मिलता,वरन उसे राक्षस नष्ट करदेतेहैं॥१८०॥

चण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ॥ श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदंडहताश्च ये ॥ १८१ ॥ कृत्वा मूत्रपुरीषे तु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥ श्वादिस्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥

जो ब्राह्मण कुत्तेके काटनेसे मराहो, या जो सर्पके काटनेसे मराहो अथवा जो ब्राह्मणके शापसे मराहो उसके लिये श्राद्धकरना उचित नहीं ॥ १८१ ॥ यदि भोजनसे उच्छिष्ट ब्राह्मणको, और जिसने लघुशंका और मलका त्याग कियाहो उसको यदि कुत्ता आदि छूजाय तौ वह स्नान कर एक हजार वार गायत्रीका जप करै ॥ १८२ ॥

चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च ॥
उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥

जो मनुष्य चांडाल, पतित, शव, अंत्यज, रजस्वला और सूतिका स्त्रीका स्पर्श करताहै वह वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८३ ॥

स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ १८४ ॥

इनके स्पर्श करनेवालेने यदि जिसका स्पर्श कियाहो वह स्नानही करके फिर आचमन करै, और सम्पूर्ण वस्त्रादिकोंको जलसे छिडकदे ॥ १८४ ॥

चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्द्विजोत्तमः ॥
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥

यदि चांडाल आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणको छूलें तौ गोमूत्र और जौके खानेसे तीन रात्रिमें उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १८५ ॥

शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा ॥
शेषाण्यहान्युपवसेत्स्नात्वा शुद्ध्येद्घृताशनात् ॥ १८६ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्तेका अथवा अन्य रजस्वला स्त्रीका स्पर्श हुवाहो वह बाकी रहे रजोदर्शनके दिनोंतक उपवास करै और स्नानकर घीके खानेसेही शुद्ध होतीहै ॥ १८६ ॥

चण्डालभांडसंस्पृष्टं पिबेत्कूपगतं जलम् ॥
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

जिस कुएमें चांडालके पात्रका स्पर्श हुआहो उस कुएके जलको जो मनुष्य पीताहै वह गोमूत्र, और जौको खाकर तीनरात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १८७ ॥

अंत्यजैः स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ॥ शुद्ध्यते पंचगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ॥ १८८ ॥ सुराघटप्रपातोयं पीत्वा नालीजलं तथा ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्यं पिबेद्द्विजः ॥ १८९ ॥ कूपे विण्मूत्रसंस्पृष्टाः प्राश्य चापो द्विजातयः ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यंति कुंभे सांतपनं स्मृतम् ॥ १९० ॥

जो मनुष्य अज्ञानसे अंत्यजोंके स्वीकृत किये तीर्थ, तालाव, नदी इनके जलको पीता है वह पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १८८ ॥ मदिराके घडे प्याउ इनका और नालीसे जो ब्राह्मण जलको पीताहै, वह अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥१८९॥ जो ब्राह्मण विष्ठा, अथवा मूत्र मिलेहुए कुए अथवा घडेके जलको पीताहै वह क्रमानुसार तीन दिन उपवास कर सांतपन कृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९० ॥

वापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् ॥
अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १९१ ॥

कुए, तालाव, बावडी यदि इनका जल अशुद्ध होजाय तौ उनमेंसे सौ घडे जल निकाल कर उनमें पंचगव्य डाल दे तब उनकी शुद्धि होतीहै ॥ १९१ ॥

स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा संधिन्याश्चैव गोः पयः ॥
तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षणे ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य स्त्री, भेड और संधिनी (जो गर्भवती गौ दूध देनेवाली हो) गौ इनके दूधको पीताहै वह त्रिरात्र उपवास कर ब्राह्मणोंको भोजन करावै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥१९२॥

विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः॥ १९३ ॥ बिडालमूषिकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिबेद्द्विजः ॥ शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १९४ ॥

जो मनुष्य विष्ठा और मूत्रका भक्षण करताहै वह प्राजापत्य व्रत करे; और कुत्ता, कौआ, गौ इनकी उच्छिष्ट जिस ब्राह्मणने खाई हो वह तीन दिनतक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९३ ॥ जो ब्राह्मण बिलाव, चुहे इनकी उच्छिष्ट खाता है वह पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै; और शूद्रकी उच्छिष्ट खानेवाला तीन रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९४ ॥

पलांडुं लशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् ॥
छत्राकं विड्वराहं च चरेत्सांतपनं द्विजः ॥ १९५ ॥

जो ब्राह्मण प्याज, लहसन, और ग्राममेंका मुरगा, छत्री, और विष्ठा खानेवाले सूकर को जो खाताहै वह सांतपन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९५ ॥

श्वविडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः ॥
प्राश्य मूत्रपुरीषं वा चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य कुत्ता, बिलाव, गधा, ऊंट, बानर, गीदड, कौआ इनके मूत्र व विष्ठाको खाताहै वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९६ ॥

अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ॥
पतितैः प्रेक्षितं वापि पंचगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९७॥

जो ब्राह्मण बासी अन्न, बालपडे हों, अथवा जिसे पतितोंने देखाहो उस अन्नको खाने वाला पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९७ ॥

अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदक्याभाजने तथा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥

जो मनुष्य अंत्यज स्त्रीके या रजस्वलाके पात्रमें खाताहै वह गोमूत्र और जौके खानेसे पंद्रह दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १९८ ॥

गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहृतम् ॥
अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥

जो मनुष्य गौका मांस और मनुष्यका मांस तथा कुत्तेके द्वारा आयेहुए ऐसे अभक्षणीय मांसको खाता है वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९९ ॥

चंडाले संकरे विप्रः श्वपाके पुल्कसेपि वा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥

जो मनुष्य चांडाल, वर्णसंकर, श्वपाक, और पुल्कस इनके यहांका भोजन करताहै उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०० ॥

पतितेन तु संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥

जो मनुष्य पंद्रह दिन या एक महीनेतक पतितका संसर्ग करै तो गोमूत्र और जौको खाकर उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होतीहै ॥ २०१ ॥

पतिताद्द्रव्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ २०२ ॥

पतितके द्रव्यको जो ब्राह्मण लेताहै अथवा उसके यहां जो भोजन खाता है वह वमन करके अतिकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०२ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥ तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥ एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥

ब्राह्मण जिन २ कर्मोंमें अपने को पतित विचारै तौ वह उन्हीं २ कर्मोंमें गायत्री और तिलोंसे प्रतिदिन हवन करताहै ॥ २०३ ॥ मैंने यह प्रायश्चित्तकी उत्तम विधि सुनाई,

अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥

अब जो पाप शास्त्रमें नहीं कहे हैं उनका प्रायश्चित्तभी नहीं कहा है ॥ २०४ ॥

दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥ पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥ २०५ ॥ सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥ नाशयत्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि॥ २०६ ॥ तिलं धेनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजातये ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

ब्राह्मण दान, हवन, जप, प्राणायाम और वेदपाठ इनके करनेसे सर्वदा पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २०५ ॥ सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, इनके दान करनेसे दूसरे जन्मके किये हुए पापभी शीघ्र नष्ट हो जातेहैं ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्राह्मणको तिल वा गौदान करताहै वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह छूटजाताहै ॥ २०७ ॥

माघमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०८ ॥ उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां तु कार्त्तिके ॥ हिरण्यं वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥ २०९॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥ २१० ॥अमावास्यां द्वादश्यां च संक्रांतौ च विशेषतः ॥ एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च॥ २११॥ तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेन्नरम् ॥ २१२ ॥

माघके महीनेकी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके तिलदान करताहै; वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २०८ ॥ कार्त्तिककी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके सुवर्ण, वस्त्र और अन्न इनका दान करताहै, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जातेहैं ॥ २०९ ॥ उत्तरायण, और दक्षिणायन, और विषुव (तुला मेष) की संक्रान्ति, व्यतिपात, तिथिकी हानि, चन्द्रमा और सूर्यग्रहणके समयमें जो मनुष्य दान करताहै उसका वह दान अक्षय होजाताहै ॥ २१० ॥ अमावस्या, द्वादशी, संक्रांति, रविवार विशेष करके यह तिथिही अति उत्तम हैं ॥ २११ ॥ इनमें जो जप, हवन, स्नान, ब्राह्मणोंका भोजन, उपवास और दान कियाजाय वही मनुष्यको पवित्रताका देनेवाला है ॥ २१२ ॥

स्नातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेंद्रियः ॥ सात्त्विकं भावमास्थाय दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ २१३ ॥ सप्तव्याहृतिभिः कार्यो द्विजैर्होमो जितात्मभिः ॥ उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१४ ॥ महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१५ ॥

ज्ञानवान् मनुष्य स्नान करके शुद्धहो धुले हुए सफेद वस्त्रोंको पहन कर शुद्धमन हो इन्द्रियोंको जीत शीलवान् होकर दान करै ॥ २१३ ॥ मनको जीतनेवाले ब्राह्मण उस पातककी शुद्धिके निमित्त एक हजार सात व्याहृतियोंसे हवन करें ॥ २१४ ॥ और महापातकी ब्राह्मण एक लाख गायत्रीसे हवन करै, कारण कि गायत्रीसेही पवित्र होकर सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ २१५ ॥

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ॥ गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥ २१६ ॥ स्नात्वा आचम्य विधिवत्ततः प्राणान्समापयेत् ॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेद्द्विजः ॥ २१७ ॥ अक्लिन्नवासाः स्थलगः शुचौ देशे समाहितः ॥ पवित्रपाणिराचांतो गायत्र्या जपमाचरेत् ॥ २१८ ॥ ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः ॥ पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति ॥ २१९ ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥ महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥ २२० ॥ ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ॥ गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२१ ॥ अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२२ ॥ अहन्यहनि योऽधीते गायत्रीं वै द्विजोत्तमः ॥ मासेन मुच्यते पापादुरगः कंचुकाद्यथा ॥ २२३ ॥ गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत नियतः सदा ॥ स याति परमं स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥

मनुष्य वनमें जाकर सम्पूर्ण पापोंकी शुद्धिके लिये वेदोंकी माता और पवित्र गायत्रीका जप नदीके किनारेपर करे ॥ २१६ ॥ ब्राह्मण स्नान और आचमन करके प्राणोंको स्थिर करै पहले तीन प्राणायाम करके पवित्र हो गायत्रीका जप करे ॥ २१७ ॥ गीले वस्त्रोंको न पहरे और पवित्र स्थानमें बैठ, इसके पीछे सावधान होकर कुशाओंकी पवित्री पहनकर आचमनके उपरान्त गायत्रीको जपै ॥ २१८ ॥ जो मनुष्य पांच रात्रियों तक बराबर गायत्रीको जपता रहताहै, उसके इस जन्म और दूसरे जन्मके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ २१९॥ गायत्रीसे परे पापियोंकी शुद्धि नहीं है; इसी कारण महाव्याहृति और ॐकारके साथ गायत्रीका जप करता रहै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी भोजनको त्याग कर सबके कल्याणके हितके निमित्त गायत्रीका एक लाख जपताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ २२१ ॥ जो मनुष्य यज्ञकराने अयोग्य पुरुषको यज्ञकराता है अथवा जो निन्दित अन्नको खाताहै उसकी शुद्धि आठ हजार गायत्री के जपकरनेसे होतीहै ॥ २२२ ॥ जो ब्राह्मण प्रतिदिन गायत्रीका जप करता रहताहै; वह पापोंसे साँपसे छोडी हुई कैंचलीकी समान छूटजाताहै ॥ २२३ ॥ जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय होकर सर्वदा गायत्रीका जप करताहै वह वायु और आकाशरूपहो वैकुण्ठको जाताहै ॥ २२४ ॥

प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥ गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पिबेद्द्विजः ॥ २२५ ॥ निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥ प्राणायामत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥ मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च यत्कृतम् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ब्राह्मण ॐकार सहित सात व्याहृति और शिरस मंत्रके साथ गायत्रीको तीनवार सर्वदा पढै वायु पीवै ॥ २२५ ॥ प्राणोंको वशमें करनेहीका नाम प्राणायाम है, इसकारण मनुष्य सावधान होकर प्रतिदिन तीन प्राणायाम करे ॥ २२६ ॥ मन, वाणी और देहसे किये हुए सम्पूर्ण पाप प्राणायामके प्रभावसे नष्ट होजातेहैं ॥ २२७ ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥ सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥ पावमानीं तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥ जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत सपित्र्यं माधुच्छंदसम् ॥ २२९ ॥ मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहद्यथा ॥ वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३० ॥

जो मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेदकी शाखा और रहस्यसहित सामवेदका पाठ करताहै वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २२८ ॥ जो मनुष्य पावमानी और कौत्सी ऋचा, पुरुषसूक्त, पितरोंके मंत्र, माधुच्छंदस मंत्र इनका जप करताहै वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २२९ ॥ मंडल ब्राह्मण, रुद्रसूक्तकी ऋचा, बृहत् वामदेवके बृहत्सामवेदका जप करनेवाला मनुष्यभी सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ॥ २३० ॥

चांद्रायणं तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ॥ कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥ २३१ ॥ धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्तेन तु भाषितम् ॥ अधीत्य ब्राह्मणो गच्छेद्ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥ २३२ ॥

इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र करनेवाले उत्तम चांद्रायणव्रतको करताहै; उसको उत्तम स्थान प्राप्त होताहै ॥ २३१ ॥ जो ब्राह्मण संवर्त ऋषिके कहेहुए धर्मशास्त्रको पढताहै वह सनातन ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ २३२ ॥

इति संवर्तस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।

संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥



॥ श्रीः ॥

कात्यायनस्मृतिः १.

भाषाटीकासमेता।

प्रथमखंडः १.

श्रीगणेशायनमः॥ अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ १ ॥

इसके पीछे गोभिल ऋषिकी कहीहुई अन्यान्य कर्मोंकी विधि दीपकके समान प्रकाशमान भलीभांति से दिखाताहूं ॥ १ ॥

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ॥ त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ॥ २ ॥ पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विंदते कटिम् ॥ तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लंबं न चोच्छ्रितम्॥ ३ ॥सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च॥ विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥

त्रिवृत् तीनवार एक डोरेके ऊपरको और तीनों त्रिवृत् नीचेको बनावै, तब यह यज्ञोपवीत होताहै और फिर उसमें एक ग्रंथि लगावै ॥ २ ॥ जनेऊ न बहुत लम्बा और न बहुत छोटा हो इतना लम्बा हो जो कि पीठके वांस और नाभिपर रक्खाहुआ कमरतक आजाय, ऐसा जनेऊ पहरना उचित है ॥ ३ ॥ सर्वदा यज्ञोपवीतको पहरे रहै, और चोटीमें गांठ लगी रहै, जो (ब्राह्मण) विना यज्ञोपवीत पहरे, या चोटीमें विना गांठ लगाये हुए जो कार्य करताहै; उसके वह कार्य न कियेकी समान होते जातेहैं ॥ ४ ॥

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥ आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षःशिरोंसकान् ॥ ५ ॥ संहताभिस्त्र्यंगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ ७ ॥ सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥

तीनवार आचमनकर दोवार मुख पोंछकर मुख नासिका, दोनों नेत्र, कान, नाभि, हृदय, शिर, और कंधे इनका स्पर्श करै ॥ ५ ॥ बीचकी तीनों मिलीहुई अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श करै, इसी भांति अंगूठे और प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्श करै ॥ ६ ॥ अंगूठे और अनामिकासे वारंवार नेत्र और कानोंका स्पर्श करै, कनिष्ठा और अंगूठेसे नाभिका स्पर्श करै और हथेलीसे हृदयका स्पर्श करै ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण अंगुलियोंसे शिरका स्पर्श करै, इसके उपरान्त हाथोंके अग्रभागसे दोनों भुजाओंका स्पर्श करना उचित है,

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते ॥ ८ ॥
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

जिस स्थानपर कर्म शास्त्रकी आज्ञा हो, और करनेवालेका अंग न कहाहो ॥ ८ ॥ उस स्थानपर दहिना हाथ जो सम्पूर्ण कर्मोंको पूर्ण करताहै इसको जानना उचित है;

यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्म्मसु ॥ ९ ॥
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्रीसौम्यापराजिताः ॥

जिस स्थानपर जप हवन आदि कर्मोंमें दिशाका नियम न हो ॥ ९ ॥ उस स्थानपर तीन दिशा कहीहैं, पूर्व, उत्तर, पश्चिम;

तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ॥
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥ १० ॥

और फिर यह नियमभी नहींहै कि खडाहुआ, या बैठकर या झुककर बैठके उस कर्मको करै वहां उस कर्मको बैठकर करै, खडे होकर या नीचेको शिरकर बैठकर न करना ॥ १० ॥

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ ११ ॥ धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥ गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥ १२ ॥कर्म्मादिषु तु सर्व्वेषु मातरः सगणाधिपाः ॥ १३ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयंति ताः ॥ प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ॥ अपि वाक्षतपुंजेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः॥१४॥ कुड्यलग्नां वसोर्द्धारां सप्तधारां घृतेन तु ॥ कारयेत्पंचधारां वा नातिनीचां नचोच्छ्रिताम् ॥ १५ ॥ आयुष्याणि च शांत्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥ षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥ १६ ॥

गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातर, लोकमातर, ॥ ११ ॥ धृति, पुष्टि, तुष्टि, और आत्मदेवता, जिनमें अधिक गणेश हैं इन सोलह मातृकाओंको वृद्धि (नांदीमुखश्राद्ध) जो पुत्रके जन्म आदिकर्मे किया जाताहै उसमें पूजै ॥ १२ ॥ और यत्नपूर्वक सम्पूर्ण कर्मोंमें इन मातृकाओंकी पूजा करै; कारण कि यह पूजाको प्राप्त होकर स्वयं पूजनेवालेकी पूजा करवातीहैं ॥ १३ ॥ इनकी पूजा सफेद मूर्त्तियोंमें या पट्टेपर लिखकर, अक्षतोंसे, और पृथक् नैवेद्यसे करै॥ १४ ॥ दीवारपर लगीहुई घीसे सात धारा वा पांच धारा करवावै वह धारा न बहुत नीची और न बहुत ऊँची हो ॥ १५ ॥ उन कर्मोंकी शान्तिके लिये सावधानीसे आयुके बढानेवाले मंत्रोंको जंप, इसके उपरान्त भक्तिपूर्वक छैः पितरोंके उद्देश्य से श्राद्ध प्रारंभ करै ॥ १६ ॥

अनिष्ट्वा तु पितॄञ्छ्राद्धे न कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥ तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ वासिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीकात्यायनस्मृतौ प्रथमखंडः समाप्तः ॥ १ ॥

श्राद्धमें पितरोंकी विना पूजा किये हुए वेदोक्त कर्मको न करै, यहांभी यत्नसहित सबसे प्रथम माता (षोडश मातृका) पूजनीया हैं ॥ १७ ॥ इस (श्राद्धमें) वशिष्ठ ऋषिकी कहीहुई (अर्थात् वशिष्ठस्मृत्युक्त) सम्पूर्ण विधि जानलेनेपर आमिष (मांस) को वर्जदेवै, इसके उपरान्त इसके विषयमें जो विशेष होगा उसे (दूसरे खंडमें) कहूंगा ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमखण्डः समाप्तः॥ १ ॥

द्वितीयखण्डः २.

प्रातरामन्त्रितान्विप्रान्युग्मानुभयतस्तथा ॥ उपवेश्य कुशान्दद्यादृजुनैव हि पाणिना ॥ १ ॥ हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ॥ समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥ २ ॥ हरिता वै सपिञ्जूलाः शुष्काः स्निग्धाः समाहिताः ॥ रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तृताः ॥ ३ ॥ पिंडार्थं ये स्तृता दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ॥ धृतैः कृते च विण्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयते ॥ ४ ॥

प्रातःकालही निमंत्रण दियेहुए दो दो ब्राह्मणोंको दोनों पक्ष (पिता आदिक तीन, मातामह आदिक तीन) में बैठालकर कोमल हाथोंसे कुशाओंको देवै ॥ १ ॥ हरे रंगकी कुशा सामान्य यज्ञमें, पीले वर्णकी कुशा पाकयज्ञमें, पितर और देवताओंके लिये जडसहित कुशा होनी उचित है; और विश्वदेवताओंके निमित्त काली कुशा होनी ॥ २ ॥ हरी, पीली, सूकी, चिकनी, सावधानतासे रक्खीहुई रत्नि (मुट्ठी बंधे हाथ) के बराबर और पितृतीर्थसे (अंगुष्ठ तर्जनीके मध्यमें होकर) रक्खीहुई ॥ ३ ॥ पिंड और तर्पणके निमित्त कुशाओंको रखकर यदि विष्ठा और लघुशंका करै तो उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४ ॥

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ॥ पातयेदितरं जानुं पितॄन्परिचरन्नपि ॥ ५ ॥ निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित् ॥ सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄनप्यत्र देववत ॥ ६ ॥

देवताओंकी पूजा करनेके समयमें मनुष्य दहिनी जंघाको नवावै; और पितरोंकी पूजा करनेके समयमें बाई जांघको झुकावै ॥ ५ ॥ परन्तु वाम जंघाका झुकाना कहींभी नहीं है अतः पितरोंकाभी देवताओंकीही समान पूजन करै ॥ ६ ॥

पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ॥ गोत्रनामभिरामंत्र्य पितॄनर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ७ ॥ नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥ पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कारयेत् ॥८॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् ॥ कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ ९ ॥

"पितृभ्य इदं कुशासनं स्वधा" इस मंत्रसे दीहुई कुशाओं पर बैठाकर नाम और गोत्रसे बुलाकर पितरोंके निमित्त अर्घ दे ॥ ७ ॥ पात्रोंके पूरण आदि कर्म दैवतीर्थके द्वाराही करै, इनमें अपसव्य करना नहीं है, और पितृतीर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ दहिना हाथ आगेकर और दोनों हाथ तथा हाथोंके आगे पवित्री करके अर्घ दे, एक हाथसे अर्घ देना उचित नहीं ॥ ९ ॥

अनंतर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ॥ प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥ १० ॥ एतदेव हि पिंजूल्या लक्षणं समुदाहृतम् ॥ आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ॥ ११ ॥ एतत्प्रमाणामेवैके कौशीमेवार्द्रमंजरीम् ॥ शुष्कां वा शीर्णकुसुमां पिंजूलीं परिचक्षते ॥ १२ ॥

विना गर्भवाली कुशा, और अग्र भागवाली दो दलकी कुशा बनीहुई केवल बिलस्त भरकी पवित्रीका अनेक कर्मोंमें व्यवहार करै ॥ १० ॥ पिंजूली कुशाकी भी यही पहचान है; और घृतको पवित्र करनेवाली कुशाकी भी यही पहचानहै ॥ ११ ॥ कोई २ ऋषि कहतेहैं कि इतनेही प्रमाणकी कुशाओंकी पवित्री होती है, कुशा गीली हो या सूकी हो, परन्तु उनके फल गिरगये हों, उसकोही पिंजूली कहाहै ॥ १२ ॥

पित्र्यमंत्रानुद्रवण आत्मालंभेऽधमेक्षणे ॥ अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥ १३ ॥ मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसंभवे ॥ निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीय खण्डः ॥ २ ॥

पितरोंके मंत्रोंसे अनुद्रवण (जिन मंत्रोंको सुनकर पितर मग्न न हों) आत्मालंभन हो, या कोई नीच देखले, अथवा अधोवायु होजाय या झूंठही बोलदे ॥ १३ ॥ बिलाव, चूहा, यही छूलें, या कोई गाली कहीजाय या क्रोधही आजाय, यदि यह उपद्रव होजाय तौ सब स्थानोंमें कर्मोंको करनेवाला मनुष्य जलका स्पर्श करले ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयखंडः समाप्तः ॥ २ ॥

तृतीयखण्डः ३.

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्म्मकारिणाम् ॥
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥ १ ॥

विद्वानोंने कर्म करनेवालोंकी अक्रिया तीन प्रकारकी कहीहै, पहली अक्रिया (कर्मका न करना) दूसरी परोक्त (किसीके कहनेसे कर्म करना) ३ तीसरी अयथाक्रिया (जिसप्रकार होनी उचितहो उसभांति न करना) ॥ १ ॥

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं च यः ॥
कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥

जो कुबुद्धि मनुष्य अपनी शाखाके कहेहुए कर्मोंको छोडकर दूसरेकी शाखाके कर्मोंको करनेमें प्रवृत्त होताहै, उसके सम्पूर्ण कार्य निष्फल हो जातेहैं ॥ २ ॥

यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ॥
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्म्मवत् ॥ ३ ॥

जो अपनी शाखामें न कहाहो और जो अपने कर्मका विरोधी न हो, ज्ञानी मनुष्य दूसरेकी शाखामें कहेहुए उस कर्मको अग्निहोत्रआदिके सामान करै ॥ ३ ॥

प्रवृत्तमन्यथा कुर्य्याद्यदि मोहात्कथंचन ॥ यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥ ४ ॥ समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ॥ तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्व्वकर्म्मणः ॥ ५ ॥ प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः ॥ तदंगस्याक्रियायां च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥ ६ ॥

यदि जिस कर्मको प्रारंभ कियाहो और विना पूराहुएही बीचमें अन्यथा होजाय तौ जिस स्थानसे वह कर्म अन्यथा हुआहै वहांसेही फिर उस कार्यको आरंभ करके समाप्त करै ॥४॥ यदि कार्यके समाप्त होजानेपर यह विदित होजायकि यह कार्य मैंने अन्यथाही कियाथा; तौ उतनाही उस कार्यको फिर करदे किन्तु सम्पूर्ण कार्यको फिर न करै ॥ ५ ॥ जहां प्रधान कर्म नहीं कियाहो, वहां फिर सांग (सब) कर्मको करना उचित है, यदि उस कर्मका कोई अंग न कियाहो तौ वहां सम्पूर्ण कार्य का प्रारंभ न करै ॥ ६ ॥

मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ॥
गायत्र्यनंतरं सोऽत्र मधुमंत्रविवर्जितः ॥ ७ ॥

मधु, मधु, मधु, यह भोजन करनेवालोंका जो तीनवार जप है वह यहां (श्राद्धमें) गायत्रीके पीछे 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्रके विना करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

न चाश्नत्सु जपेदत्र कदाचित्पितृसंहिताम् ॥
अन्य एव जपः कार्य्यः सोमसामादिकः शुभः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें, श्राद्धके समयमें पितृसंहिताका जप न करै, अर्थात् उसका पाठ न करै; अन्यकाही सोम और सामआदिका शुभ पाठ करै ॥ ८ ॥

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा ॥
उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥ ९ ॥

तिल और जौके समान जो अन्नका प्रकर (विकिरपिंड) है वह उच्छिष्टके समीप दे, और ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर जहां उच्छिष्ट नहो उस स्थानपर देना उचित है ॥ ९ ॥

संपन्नमिति तृप्ताःस्थ प्रश्नस्थाने विधीयते ॥
सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ १० ॥

सम्पन्न, (भली भांतिसे किया) तृप्तहुए यह तौ यजमानके पूछनेके समय कहैं, जब ब्राह्मण (भलीभांति तृप्तहुए) कहदे, तौ शेष अन्नको यजमान दे दे ॥ १० ॥

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामंत्र्य पूर्ववत् ॥ अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति पात्रतः ॥ ११ ॥ द्वितीयं च तृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोः ॥ मातामहप्रभृतींस्त्रीन्नेतेषामेव वामतः ॥ १२ ॥ सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यंजनैरुपसिच्य च ॥ संयोज्य यवकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥ अवनेजनवत्पिण्डान्दत्त्वा बिल्वप्रमाणकान् ॥ तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

पूर्वकी ओरको अग्रभागवाली कुशाओंके ऊपर आद्य (पिता) का पूर्वके समान आमंत्रण करके पात्रमें 'अवनेनिक्ष्व' इस मंत्रसे कुशाओंकी जडमें जल डाले ॥ ११ ॥ पितामहको कुशाओंके मध्यमें जलदे, और प्रपितामहको कुशाओंके अग्र भागमें जलदे । मातामह (नाना) आदि तीनोंको भी इनकी बाईं ओर जल दे ॥ १२ ॥ सब अन्नमेंसे निकालकर व्यंजनसे युक्त कर, जौ, बेर, दही मिलाकर, पीछे पूर्व की ओर को मुख करके ॥ १३ ॥ बेलकी समान प्रमाणवाले पिंडोंको अवनेजन जहां २ दियाथा वहां २ देकर अवनेजनके पात्रको धोकर प्रत्यवनेजन दे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयखण्डः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थः खण्डः ४.

उत्तरोत्तरदानेन पिंडानामुत्तरोत्तरः ॥ भवेदधश्चाधराणामधरः श्राद्धकर्मणि ॥ १॥ तस्माच्छ्राद्धेषु सर्व्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ॥ मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्च निर्वपेत् ॥ २ ॥ गन्धादीन्निःक्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेद्द्विजान् ॥ अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः ॥ ३ ॥ दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य च ॥ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥ ४ ॥

क्रमानुसार उत्तर २ पिंडोंके देनेसे पिछला, नीचेको पतित होताहै, इस कारण श्राद्ध कर्ममें निचलोंको नीचे २ स्थानोंपर पिंड देने उचित हैं ॥ १ ॥ इस कारण वृद्धिके श्राद्ध वा इतर श्राद्धोंमें कुशाकी जडके अग्रभागमें कुछएक लगेहुए पिंड दे ॥ २ ॥ मंत्रोंके विनाही गंध आदि दे और इसके पीछे ब्राह्मणोंको आचमन करावे, इतर श्राद्धों (पार्वणआदि) में जौके विना यही विधि होतीहै ॥ ३ ॥ जो देश दक्षिणकी ओरको नीचाहो उस देशमें यजमानभी दक्षिणको मुख करके बैठे; और दक्षिणाग्रही कुशाओंके ऊपर पिंड आदि दे, यह विधि इतर श्राद्धोंमें कही गई है ॥ ४ ॥

अथाग्रभूमिमासिंचेत्सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ॥ शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥ ५ ॥ सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥ अक्षतं चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान्प्रतिपादयेत् ॥ ६ ॥ अक्षय्योदकदानं तु अर्घ्यदानवदिष्यते ॥ षष्ठ्यैव नित्यं तत्कुर्य्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन ॥ ७ ॥ अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ॥ तंत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ ८ ॥ प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्व्वास्वेव द्विजोत्तमैः ॥ पवित्रांतर्हितान्पिंडान्सिंचेदुत्तानपात्रकृत् ॥ ९ ॥ युग्मानेव स्वस्तिवाच्यमङ्गुष्ठाग्रग्रहं सह ॥ कृत्वा धुर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥ १० ॥

फिर यजमान अपने आगेके पृथ्वीको जलसे "सुसंप्रोक्षितमस्तु" इससे और "शिवा आपः सन्तु" इस मंत्रसे सींचे, और वार २ ब्राह्मणोंको ॥ ५ ॥ "सौमनस्यमस्तु" इस मंत्रसे पुष्प दे "अक्षतं चारिष्टमस्तु" इस मंत्रसे अक्षत दे ॥ ६ ॥ अर्घ देनेके समान अक्षय जलका देना कहाहै, और उस अक्षय्योदकको षष्ठी (पितुः आदि) विभक्ति बोलकर दे, और चतु-

र्थी (पित्रे) बोलकर कभी न दे ॥७ ॥ अर्घ, अक्षय्योदक, पिंडदान, अवनेजन, और स्वधाके वचन इन कर्मोंमें तन्त्र (एक संकल्पमें सबको अर्घ आदि देने) को त्याग दे ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंनें जो यजमानकी प्रार्थनाका उत्तर दियाहै उसके उपरान्त अर्घके पात्रोंको सीधा करके पवित्रियोंसे ढके हुए पिंडोंको सींचै ॥ ९ ॥ दो दो पिंडोंको सींचकर स्वस्तिवाचन करै और अंगूठोंका ग्रहण कर प्रथम मुख्य ब्राह्मणका करै, इसके अनंतर नमस्कार करकै ब्राह्मणोंके पीछे चले ॥ १० ॥

एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ॥ ये विन्दंति न मुह्यंति श्राद्धकर्मसु ते क्वचित् ॥ ११ ॥ इदं शास्त्रं च गुह्यं च परिसंख्यानमेव च ॥ वसिष्ठोक्तं च यो वेद स श्राद्धं वेद नेतरः ॥ १२ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

यह श्राद्धकी सम्पूर्ण विधि मैंने संक्षेपसे तुमसे कही, जो मनुष्य इस विधिको जानतेहैं, वह कभीभी श्राद्धके कर्ममें मोहित नहीं होते ॥ ११ ॥ इस शास्त्रको और शास्त्रकी गुप्त विधिको तथा वशिष्ठजीके कहे शास्त्रको जो जानताहै वह श्राद्धको जानताहै दूसरा नहीं॥ १२ ॥

इति कात्यायनस्मृतिभाषाटीकायां चतुर्थखण्डः समाप्तः ॥ ४ ॥

पञ्चमः खण्डः ५.

असकृद्यानि कर्म्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥ प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्ध मेव च ॥ १ ॥ आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ॥ बलिकर्म्माणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च ॥ २ ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ॥ न सोष्यन्तीजातकर्म्म प्रोषितागतकर्म्मसु ॥ ४ ॥

कर्म करनेवाले जिन कर्मोंको वारंवार करतेहैं, उन प्रत्येक कर्मोके समयमें यह षोडश मातृका और श्राद्ध (नांदीमुख) यह नही होता ॥ १ ॥ गर्भाधान, होम, बलिवैश्वदेव, बलिके देनेमें तथा अमावस और पूर्णमासीके कर्ममें ॥ २ ॥ और नवयज्ञमें यज्ञके जाननेवाले पंडित कहतेहैं कि एकही श्राद्ध होताहै, पृथक् २ नहीं होता ॥ ३ ॥ अष्टकाओंके समयमें एक और श्राद्धकेसमयमें दूसरा श्राद्ध नहीं होता; जो परदेशमें सोष्यंती (जिसके बालक उत्पन्न हुआहो) रहतीहो तो उसे जातकर्म करना उचित नहीं; पूर्व होआए कर्मोंमेंभी न करै ॥ ४ ॥

विवाहादिः कर्म्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ॥
विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्म्मणः कर्म्मणः स्यात्॥५॥

विवाह आदि कर्मोंका जो समूह कहाहै उसे और गर्भाधान इसको हमने सुना, इसके उपरान्त विवाहकी आदिमें एकही श्राद्ध होताहै प्रतिकर्मकी आदिमें नहीं होता ॥ ५ ॥

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद्गोनिष्कामप्रवेशयोः ॥ न श्राद्धे युज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिकर्म्माणि ॥ ६ ॥ हलाभियोगादिषु तु षट्सु कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥ प्रतिप्रयोगमप्येषामादावेकं तु कारयेत् ॥ ७ ॥

एकही श्राद्ध प्रदोषमें होताहै; और गौके निकालने और प्रवेश करनेके समयमें भी प्रथम पुष्टिके लिये जो कर्म किया जाताहै उसमें श्राद्ध न करै ॥ ६ ॥ हलके जोतने आदि छैः कर्मोंमें पृथक् २ श्राद्ध होताहै, इसकारण प्रत्येक कर्मकी आदिमें एक श्राद्ध करावै ॥ ७ ॥

बृहत्पत्रक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतोः ॥ सूर्य्येन्द्वोः कर्म्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥ ८ ॥ न दशाग्रंथिके चैव विषवद्दष्टकर्म्माणि ॥ कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शेषेषु विद्यते ॥ ९ ॥

बडे २ पक्षी, और छोटे २ पशु इनके कल्याणके निमित्त कियेहुए, और सूर्य तथा चन्द्रमाके परिवेषके समयमें किये हुए कर्ममें श्राद्ध न करै ॥ ८ ॥ दशा ग्रंथिक कर्ममें, विषैले जन्तुके डसनेपर जो कर्म होताहै उसमें अथवा कीडेके डसेकी चिकित्सामें जो कर्म शेषहों उनमें श्राद्ध नहीं है ॥ ९ ॥

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ॥ सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥ १० ॥ यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ॥

एकवारही बहुतसे किये हुए कर्मोंमें षोडश मातृकाओंका पूजन और कर्मकी आदिमें एकवारही श्राद्ध होताहै पृथक् २ कर्मोंकी आदिमें नहीं होता जिस स्थानपर श्राद्ध होताहै उस स्थानपर सोलह मातृकाऐं होतीहैं,

प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

यहांतक तौ प्रसंगमें आयाहुआ कहा; और अब प्रकृत अर्थात् जिसका प्रकरण था उसे कहते हैं ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चमः खंडः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठः खण्डः ६.

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाग्नियोनयः ॥
तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥ १ ॥

जो अग्निके आधानके समय हैं, और जो अग्निके कारण हैं, उन्हीमें अग्निहोत्री बडा भाई अग्निहोत्रको ग्रहण करै ॥ १ ॥

दारादिगमनाधाने यः कुर्य्यादग्रजाग्रिमः ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्व्वजः ॥ २ ॥ परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् ॥ अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥

बडे भाईसे पहले जो छोटा भाई विवाह और अग्निहोत्र करताहै वह परिवेत्ता होताहै, और बडा भाई परिवित्ति कहाताहै ॥ २ ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता यह दोनों निश्चयही नरकमें जातेहैं; यदि यह दोनों जने प्रायश्चित्त करलें तो पादोन (तीनभाग) फलके भागी होतेहैं ॥ ३ ॥

देशांतरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् ॥ वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ४ ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुंडकान् ॥ अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥५॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ॥ कुलटोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥ ६ ॥

यदि बडा भाई परदेशमें चलागयाहो, अथवा नपुंसक हो या जिसके एकही वृषण (अंडकोश) हो,या अपना सगाभाई न हो; वेश्यामें गमन करता हो, पतित हो, शूद्रके समान हो, अत्यन्त रोगी हो ॥४॥ महाअज्ञानी हो, गूंगा हो,अंधा हो, बहिरा हो,कुबडा हो,वामन (विलंदिया) हो वा कुंडक (पिताके जीतेहुए जारसे उत्पन्न हुआहो,) वा अत्यन्त वृद्ध हो, जिसके स्त्री न हो, या जो राजाकी खेती करताहो ॥५॥ धनके बढानेमें जो तत्पर हो; अपनी इच्छानुसार कर्म करनेवाला वा कुलटं (घर २ में फिरनेवाला) वा उन्मत्त तथा चोर हो, ऐसे बडे भाईके होते हुए परिवेदन (प्रथम अपना विवाह करनेमें या अग्निहोत्र ग्रहण करनेमें) छोटे भाईको दोप नहीं लगता ॥ ६ ॥

धनवार्धुषिकं राजसेवकं कर्म्मकं तथा ॥ प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥ ७ ॥ प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत ॥ आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं तच्छुद्धये चरेत् ॥ ८ ॥

यदि बडाभाई व्याजके द्वारा धनके बढानेमें रतहो राजाका सेवक हो, अथवा परदेशमें रहताहो तो विवाहके लिये शीघ्रता करनेवालाभी छोटाभाई ऐसे भाईकी तीन वर्षतक प्रतीक्षा करतारहै ॥ ७ ॥ यदि बडे भाईके परदेशमें रहने पर उसका कुछ समाचार न मिलताहो तौ छोटाभाई एक वर्षके उपरान्त विवाह आदि करसकताहै; और फिर यदि बडाभाई आजाय तौ उस पापके लिये चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ ८ ॥

लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशांगुलम् ॥ तन्मूलसक्ता योदीची तस्या एतन्नवोत्तरम् ॥ ९ ॥ उदग्गतायाः संलग्नाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः ॥ सप्तसप्तांगुलांस्त्यक्त्वा कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥ १० ॥

पूर्व कह आयेहैं कुशाओंके लक्षणोंको इसकी परीक्षामें बारह अंगुलका प्रमाण है; और कुशाओंकी जडमें फटी उदीची जो उत्तरकी ओर कुशा है उसका प्रमाण अधिकसे अधिक नौ अंगुलका है ॥ ९ ॥ उस उदीचीसे लगीहुई जो और शेप कुशा हैं उनका प्रमाण प्रादेश तक हो, सात अंगुलकी कुशाओंके अतिरिक्त कुशासे उल्लेखन करना उचित है ॥ १० ॥

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ॥
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥ ११ ॥

जहां क्रियाका प्रमाण कहाहो, और प्रमाणके करनेवालेको न कहाहो, उस स्थानपर विद्वानोंका यह कथन है कि प्रमाणका कर्त्ता तौ यजमानही होता है इसकारण यजमानकी अंगुलियोंसे कुशाको नांपले ॥ ११ ॥

पुंण्यवानादधीताग्निं स हि सर्वैः प्रशस्यते ॥
अनर्द्धकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥ १२ ॥

पवित्र पुरुष अग्निमें हवन करै, कारण कि सभी अग्निकी प्रशंसा करते हैं, और उस अग्निके अनर्थकताकों (संपूर्णताको) कामनाके समस्त कर्मोंसे शांत कियाजाताहै ॥ १२ ॥

यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् ॥ सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नाद-धीतैव नान्यथा ॥ १३ ॥ अनूढैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ॥ न तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्वहेत् ॥ १४ ॥ अथ चेन्न लभेतान्यां याच-मानोऽपि कन्यकाम् ॥ तमग्निमात्मसात्कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

यदि किसी मनुष्यने सत्यवचनसे किसीको कन्या दानकी हो अर्थात् उसके साथ सगाई करदी हो; और फिर वही (वर) पिछली समिधोंका आधान (विवाहके हवन) करनेकी इच्छा करै तौ वह दूसरी स्त्रीके साथ नहीं करसकता अर्थात् जिसके साथ सगाई हुई थी उसी स्त्रीके साथ हवन कर सकता है ॥ १३ ॥ यदि वह कन्या विवाह होनेके पहलेही मरजाय, तौ इस पुरुषका व्रत लोप नहीं हो सकता वह उसी अग्निकी सहायतासे दूसरी स्त्रीके साथ विवाह करसकताहै ॥ १४ ॥ यदि मांगनेपरभी दूसरी कन्या न मिले तौ उस अग्निको आत्मामें लीनकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥ ६ ॥

सप्तमः खंडः ७.

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ॥ तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्द्धगापि वा ॥ १ ॥ अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ॥ सारवद्दारवं चात्रमोविली च प्रशस्यते॥ २ ॥संसक्तमूलो यः शम्याः स शमी-गर्भ उच्यते ॥ अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३॥ चतुर्विंशतिरंगुष्ठ-दैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ॥ चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥ अष्टांगुलः प्रमन्थः स्याच्चक्रं स्याद्द्वादशांगुलम् ॥ ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मं-थनयंत्रकम् ॥ ५ ॥ अंगुष्ठांगुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ॥ तत्र तत्र बृहत्पर्व-ग्रंथिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ६ ॥ गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ॥ व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥

पवित्र भूमिमें उत्पन्नहुए अश्वत्थ (पीपल) शमीके गर्भसे युक्त उसकी जो पूर्व उत्तरकी ओरको गईहुई शाखा है ॥ १ ॥ उसकी नीचली और ऊपरकी अरणी (जिसमें दरमेंको दबा-कर बरमा फरते हैं सो) होती है, और दृढकाष्ठका चात्र और ओविली, यही श्रेष्ठ कहेहैं॥२॥ पीपलमें लगीहुई शमी (जंट) की मूल (जड) है उसे शमी गर्भ कहते हैं; कदाचित् शमी-गर्भ न मिले तौ विना शमीगर्भके पीपलमेंसे अरणीके निमित्त शाखाको शीघ्र ग्रहण करले ॥ ३ ॥ दोनों अरणियोंका प्रमाण चौवीसअंगुलका लम्बा और छैः या चारअंगुलका मोटा कहा है ॥ ४ ॥ "प्रमंथ" (वर्मा) आठअंगुलका "चात्र" बारहअंगुलका और ओविलीभी बारहअंगुलकी होती है, इन सबके मिलनेसे मथनेका यंत्र होताहै ॥ ५ ॥ जिस जिस

स्थानपर अंगूठे और अंगुलका प्रमाण कहाहै, उसी स्थानको बृहत्पर्वसे सर्वदा नांपले ॥ ६ ॥ शणमिलेहुए गौके बालोंसे त्रिवृत्त करकै निर्मल स्वरूप व्याम (३ हाथ) प्रमाणवाले नेत्र (नतना) बनावै इसीसे अग्निको मथै ॥ ७ ॥

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ॥ अंगुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यंगुष्ठं वक्ष उच्यते ॥ ८ ॥ अंगुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् ॥ एकांगुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ वस्तिर्द्वे च गुह्यके ॥ ९ ॥ ऊरू जंघे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् ॥ अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥ यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते ॥ अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥ ११ ॥

शिर, नेत्र, कान, मुख, कंधरा (नाड) यह पांचों अंगूठेकी समान हो, और दो अंगूठेकी बराबर छातीहो ॥८॥ एक अंगूठेके बराबर हृदय, तीन अंगूठेकी बराबर उदर, एक अंगूठेकी बराबर कमर, दो अंगूठेकी बराबर वस्ति और गुह्य (उपस्थ और गुदा) होनी उचित हैं ॥९॥ ऊरू, जंघा, पाद, यह तीनों क्रमानुसार चार, तीन या एक अंगुलभरके होतेहैं इन सबोंको यज्ञकर्त्ताओंने अरणीके अवयव कहा है ॥ १० ॥ जो पूर्व गुह्य(उपस्थ) कहा है उसे अग्निकी योनि (कारण) कहते हैं इसमें जो अग्नि है उसीको कल्याण करनेवाला कहा है ॥ ११ ॥

अन्येषु ये तु मथ्नन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः ॥ प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्तरेषु च ॥ १२ ॥ उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमंथः सर्वदा भवेत् ॥ योनिसंकरदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥ १३ ॥

अन्य स्थानपर जो मनुष्य अग्निका मथन करते हैं उनको रोग और भयकी प्राप्ति होती है, इनमें पहले मथनेकाही नियम है; वह चाहे जैसा क्यों न हो, दूसरीबार मथनेका नियम नहीं है ॥ १२ ॥ प्रमंथ सर्वदाही ऊपरकी अरणीसे उत्पन्नहुएका बनता है, जो अन्य प्रमंथसे करता है उसे योनिसंकरके दोषसे दूषित होना पडता है ॥ १३ ॥

आर्द्रा सशुषिरा चैव घूर्णांगी पाटिता तथा ॥
न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

गीली सशुषिरा (छिद्रसहित)घुनी घूर्णांगी (गठीली) पाटिता (फटी) यह दोनों (पूर्व और उत्तर) अर्थात् नीचे और ऊपरकी अरणी इनको यजमान बनावै; तौ यह उसके हितकारी नहीं होतीं ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥ ७ ॥

अष्टमः खंडः ८.

परिधायाहतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ॥ बिभृयात्प्राङ्मुखो यंत्रमावृता वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥ चात्रबुध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ॥ कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद्बुध्नमुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥ चक्राधः कीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्र-

काम् ॥ विष्टंभाद्धारयेद्यंत्रं निष्कम्पं प्रयतः शुचिः ॥ ३ ॥ त्रिरुद्वेष्ट्याथ नेत्रेण चक्रं पत्न्योहतांशुकाः ॥ पूर्वं मथ्नंत्यरण्यन्ताः प्राच्यग्नेः स्याद्यथा च्युतिः ॥ ४ ॥

नवीन वस्त्रोंको पहनकर यथाविधि यंत्रकी प्रदक्षिणाकर पूर्वकी ओरको मुख करके, जिसका वर्णन आगे करैंगे उसी आवृत्तसे यंत्रको धारण करै, ॥ १ ॥ चात्र और बुध्न तथा प्रथम का अग्रभाग इन सबको जोरसे पकडकर ऊपरको अग्रभागवाला अरणीको उस करके उस बुध्नके ऊपर रखदे ॥ २ ॥ चात्रके नीचेकी कीलके अग्रभागमें स्थित ऊपरको अग्रभागवाली ओविलीको रक्खै, इसके अनन्तर सावधानहोकर यजमान यत्नपूर्वक निष्कंपित हो यंत्रको पकडे ॥ ३ ॥ नवीन वस्त्रोंको पहनकर (यजमानकी) स्त्री चात्रको तीनवार नेत्र (नेता) से लपेटकर जिससे अरणीके अग्रभागसे पूर्वदिशामें अग्निगिरै इसभांति यजमानसे प्रथम मथै ॥ ४ ॥

नैकयापि विना कार्य्यमाधानं भार्य्यया द्विजैः ॥ अकृतं तद्विजानीयात्सर्वान्वा चारमन्ति यत् ॥ ५ ॥ वर्णज्यैष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ॥ कार्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ॥ ६ ॥ नात्र शूद्रीं प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् ॥ न चैवाव्रतस्थां नान्यपुंसा च सह संगताम् ॥ ७ ॥ ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापि वा ॥ उपेतानां वान्यतमा मन्थेदग्निं निकामतः ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मणके एकभी स्त्री नहो तौ वह अग्निका आधान न करे, और यदि करै तौ वह करेकी समान है, जिस कारणसे स्त्री सब मनुष्योंको अपनी वाणीसेही वशमें करलेती है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणकी यदि सवर्णा और असवर्णा बहुतसी स्त्रियैंहो तौ जो अवस्थामें बडीहो वही अग्निका आधान करै, यदि मथनकरते समयमें अग्नि नष्ट होजाय, तौ साधुस्वभाववाली स्त्रियां फिर उसका मथन करैं ॥ ६ ॥ शूद्री, हिंसा और द्रोहकरनेवाली, अन्यपुरुषके साथ संगमकरनेवाली, व्रतमें युक्त न हो इन स्त्रियोंको अग्निके मथनमें नियुक्त न करै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर स्त्रियोंमें अत्यन्त सामर्थ्यवती स्त्री चाहै कोईसी हो, यज्ञमें प्राप्तहुई वह स्त्री इच्छानुसार अग्निको मथे ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ॥
आधाय समिधं चैव ब्राह्मणं चोपवेशयेत् ॥ ९ ॥

उत्पन्नहुई अग्निके लक्षण प्रगटकर उसे अग्निशालामें लावै इसकेपीछे प्रज्वलित करके और समिध (ढाककी लकडी) रखकर वहां ब्राह्मणोंको बैठालदे ॥ ९ ॥

ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्व्वमंत्रसमन्विताम् ॥
गां दद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण मंत्रोंका पाठ करके पूर्णाहुति देकर यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणको गौ और दो वस्त्र (दक्षिणामें) दे ॥ १० ॥

होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः ॥
पाणिरेवेतरस्मिंस्तु स्रुचैवात्र तु हूयते ॥ ११ ॥

जहां कोई पात्र न कहाहो वहां होमका जहां घी आदि द्रव्य कहेहों तैं वहांपर स्रुव समझना, और इतर साकल्यमें हाथसे होमकरना ऐसा समझलेना और यज्ञमें होम स्रुक् (स्रुचि) सेही होताहै ॥ ११ ॥

खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः ॥ स्रुग्बाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥ स्रुवाग्रे घ्राणवत्खातं द्व्यंगुष्ठपरिमंडलम् ॥ जुह्वाः शराववत्खातं सनिर्व्वाहं षडंगुलम् ॥ १३ ॥ तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्रमार्गो जुहूषता ॥ प्रतापनं च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥ प्राश्चं प्राश्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः॥तत्तथाऽऽसादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥

दो बिलस्तका स्रुव खैर अथवा ढाकका कहा है; और एकभुजाकी स्रुक् होती है; इन दोनोंके पकडनेका स्थान गोल होता है ॥ १२ ॥ स्रुवके अग्रभागमें नासिकाकी समान गड्ढा अंगूठेकी बराबर करना और होमके पात्रके अग्रभाग में शराव (शरवे) के समान सनिर्वाह (पतनालेके समान) छैः अंगुलका गड्ढा करना उचित है ॥१३॥उनके पहिलेभागमें कुशाओंसे प्रमार्ग (साफ) हवन करनेवाला करै; यदि यह तीनों घृतआदिसे लिपे हों तो उष्णजलसे धोकर इनको तपाले ॥ १४ ॥ अग्निके समीप उत्तरदिशामें पूर्व २ द्रव्यको इस भांतिसे रक्खै कि जिस २ क्रमसे वह द्रव्य नियुक्त किया जायगा ॥ १५ ॥

आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥
मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥

यदि सम्पूर्ण होमोंमें जहां किसी हव्य (हवन करनेके) द्रव्यका नाम नहीं कहाहै, वहां घृतकोही हव्य कहाहै; जहां किसी मंत्रका देवता नहीं कहा, वहां प्रजापतिको ही समझना उचितहै यही मर्यादा है ॥ १६ ॥

नांगुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित्॥न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥ १७ ॥ प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशाखिका ॥ न सपर्णा न निर्व्वीर्य्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥ प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥

होमके कार्यमें अंगूठेसे अधिक मोटी और जिसपर त्वचा नहो, कीडे हों, फटी हो ऐसी समिधको लेना उचित नहीं ॥ १७ ॥ जो अंगूठे और तर्जनीके प्रमाणसे अधिक वा न्यून हो; और जिसकी डाली न हो, और जिसके पत्ते हों और जो घुनीहो, ज्ञानवान् मनुष्य ऐसी समिधाको हवनमें न ले ॥ १८ ॥ दो उक्त प्रादेश ईंधनका प्रमाण कहाहै,सब कर्मोंमें ऐसीही समिधैं होतीहैं ॥ १९ ॥

समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः ॥ २० ॥ समिदादिषु होमेषु मंत्रदैवतवर्जिता॥ पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥ २१ ॥

विद्वान् मनुष्य अमावस और पूर्णमासीके होममें (इध्म ईंधन) की अठारह समिध कहतेहैं और अन्यकर्मोंमें बीसको कहाहै ॥ २० ॥ जो होम समिधोंसे किया जाताहै

उनके पहले अथवा पीछे ईंधनके लिये जो समिध होतीहैं उसका मंत्र और देवता कोई भी नहीं होता ॥ २१ ॥

इध्मोऽप्येधार्थमाचार्य्यैर्हविराहुतिषु स्मृतः ॥

ईंधनके लिये इध्म (अठारह समिध) को भी आचार्यने कहा है कि यहभी आहुतियोंमें हवि (साकल्य) है ॥

यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥ अंगहोमसमित्तंत्रसोष्यन्त्याख्येषु कर्म्मसु ॥ येषां चैतदुपर्य्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥ अक्षभंगादिविपदि जलहोमादिकर्म्मणि ॥ सोमादितिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधीयते ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

और जिस कर्ममें यह इध्म नहीहै उसको मैं स्पष्ट करताहूं ॥ २२ ॥ अंगहोम (बडे यज्ञमें कर्तव्य छोटा यज्ञ जो होताहै) समित्तंत्रनामक कर्म गर्भाधान आदि संस्कार, प्रथम कह आये हुए कर्मोंमें, और उनके समान कर्मोंमें ॥ २३ ॥ नेत्रके भंग (फूटना) आदि विपत्तिमें जल (वृष्टि) के निमित्त जो होम किया जाताहै उसमें और सम्पूर्ण सोम (सोमलतासे साध्य) और अदितियज्ञोंमें इध्म नहीं कहाहै ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमः खण्डः समाप्तः ॥ ८ ॥

नवमखंडः ९.

सूर्येऽन्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदांगुलैः ॥ प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च दर्शनात् ॥ १ ॥ हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद् गिरिं हित्वा न गच्छति ॥ तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥ यावत्सम्यङ्न भाव्यंते नभस्यृक्षाणि सर्वतः ॥ नच लौहित्यमापैति तावत्सायं च हूयते ॥ ३ ॥

सूर्यके अस्ताचल जानेके समयमें जिस समय सूर्य छत्तीस अंगुल ऊपरहो उस समय सन्ध्याको और प्रातःकालकी किरणोंके दीखनेपर (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, इन तीन अग्नियोंको प्रज्वलित करै ॥ १ ॥ सूर्योदयपर होमकरनेवालोंकी होमविधि जबतक भ्रष्ट नहीं होती कि जबतक उदयाचलसे हाथसे ऊपर सूर्य न पहुचजांय, अर्थात् एकहाथ सूर्यके चढनेपरभी उदयकालही रहताहै ॥ २ ॥ आकाशमें नक्षत्र जबतक भलीभांतिसे न दीखैं और जबतक आकाशकी लाली दूर न हो तबतक सन्ध्याका होम करै ॥ ३ ॥

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ ॥
संध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्धुतमस्य न लुप्यते ॥ ४ ॥

यदि सूर्य धूलि,कोहल, धूम, मेघ, वृक्ष इनसे ढक रहाहो तौ जो मनुष्य सन्ध्या समझकर हवन करैगा, उस करनेवालेका हवन नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् ॥
वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण क्षिप्र (शीघ्रताकी) होमोंमें परिसमूहन (कुशाओंसे वेदीकी स्वच्छता) न करै; और विरूपाक्ष मंत्रका जप न करै, और प्रारंभभो न करै; अर्थात् उतनी आहुतिमात्रही अग्निमें देदेवै ॥ ५ ॥

पर्य्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽन्विति ॥
अंते च वामदेव्यस्य गानं कुर्य्यादृचस्त्रिधा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण होमोंकी आदिमे "ओं अदितेनु०"इत्यादि मंत्रसे पर्युक्षण (होमकी वस्तुओंको कुशाओंसे छिडके)और अंतमें "ओंकयानश्चित्र०"इत्यादिसे वामदेव ऋचाका तीनवार गान होताहै ६

अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चंद्रदर्शनम् ॥ वामदेव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ ७ ॥ यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ॥ एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥ बर्हिःपर्य्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ॥ कृत्वाहुतिषु सर्व्वासु त्रिकर्म तत्र विद्यते ॥ ९ ॥

जिन पूर्णिमाओंमें हवन नहीं होता उनमें चंद्रमाओंका दर्शन जिस भांति होताहै इसी भांति सब यज्ञोंके अंतमें और बलि वैश्वदेवके अंतमें वामदेवसूक्त (सामवेदके मंत्रों) का जप होताहै ॥७॥ अधस्तरणके अंततक जितने कर्म हैं उनमें स्मरण नहीं होता, एक कार्यके होनेसे परिधियों (जो कुंडके चारों तरफ मर्यादा की जातीहै उस) को भी उन कर्मोंमें न करै॥८॥ बर्हिः (१६ कुशा) पर्युक्षण और वामदेव्यका जप, यह तीन कर्म सम्पूर्ण यज्ञोंकी आहुति में नहींहोते, अर्थात् कहीं होतेहैं कहीं नहीं होते ॥ ९ ॥

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ॥
माषकोद्रवगौरादि सर्व्वालाभेऽभिवर्जयेत् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण हविष्यो में जौ मुख्यहैं यदि वह न मिलें तौ व्रीहि (सट्ठी के धान) होतेहैं यदि यह भी न मिलें तौ उडद, कोदो, गेहूं इनको वर्जदे और तिलआदिकी आहुति देदे ॥ १० ॥

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्व्वपूरिका कंसादिना चेत्स्रुवमात्रपूरिका ॥
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वंगारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके॥११॥

हाथसे आहुति दे जिससे बारहपर्व्व चारों अंगुलियोंके भरजांय इस भांतिसे आहुतिका द्रव्य ले, यदि पात्रसे आहुतिको दे तो स्रुवेको भरकर दे; और उस साकल्यको दैवतीर्थ (जो उंगलियोंके अग्रभागमें होताहै उस) से अग्निमें इस भांति आहुति दे, जिसमें अंगारे और ज्वाला भलीभांतिसे होजाय ॥ ११ ॥

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः ॥ मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १२ ॥ तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥ आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यंतिकीं पराम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य ज्वाला और अंगारोंसे हीन अग्निमें हवन करताहै, वह मंदाग्नि, रोगी, और दरिद्री होताहै ॥१२॥ इसकारण, आरोग्य, अवस्था और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी इच्छाकरनेवाला पुरुष भलीभांतिसे जलती हुई अग्निमें हवन करै; और विना जलती हुई अग्निमें हवन कभी न करै ॥ १३ ॥

होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ॥ न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥ १४ ॥ मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ॥ नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

जिस अग्निमें हवन करनाहो वा कियाहो, उसको हाथ-सूप, स्फ्या, (खैरका खड्गाकार हस्त परिमित वेदीमें रेखाकरनेके अर्थ होताहै) काठ इनसे अग्निको प्रज्वलित न करै वरन बीजने आदिसेही करै ॥ १४ ॥ कोई २ मुखसेही अग्निको प्रज्वलित करतेहैं कारण कि यह अग्नि मुखसेही उत्पन्न हुईहै; और कोई २ यहभी कहतेहैं कि मुखसे अग्निको न जलावै, उनका यह कहना लौकिक अग्निके विषयमें है, यज्ञकी अग्निके विषयमें नहीं ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां नवमःखण्डः समाप्तः ॥९॥

दशमः खंडः १०.

यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ॥
दन्तान्प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥

जिस भांतिसे रोगरहित मनुष्य दिन (मध्याह्न) में स्नान करै उसी भांतिसे प्रातःकालमें भी करै, नदी आदिमें दांतोंको धोकर और जो घरमें स्नान करै तौ विना मन्त्रोंके करै ॥१॥

नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टांगुलमपाटितम् ॥ सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ॥ २ ॥ उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दंतधावनम् ॥ ३ ॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशून्वसूनि च ॥ ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ४ ॥

दतौनके काष्ठको नारदादि ऋषियोंने (अपनी २ स्मृतियोंमें) जिस वृक्षका कहाहै उन वृक्षकी आठ अंगुलकी विना फटी त्वचासहित दतौन बनावै; और उसके अग्रभागसे भलीभांति दांतोंको धोवै ॥ २ ॥ उठकर नेत्रोंको जलसे धोकर सावधानीसे शुद्ध हो मन्त्रको जपकर दतौन करै ॥ ३ ॥ दतौनका मन्त्र यह है कि "हे वृक्ष ! तू मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा (सन्तान), पशु, धन, वेद, और उत्तम बुद्धि आदिको दे" ॥ ४ ॥

मासद्वयं श्रावणादि सर्व्वा नद्यो रजस्वलाः ॥ तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ ५ ॥ धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते॥न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ६ ॥

श्रावण, भादों इन महीनोंमें सम्पूर्ण नदियें रजस्वला होजातीहैं; इसकारण समुद्रमें मिलनेवाली नदियोंके अतिरिक्त अन्य रजस्वला नदियोंमें स्नान न करै ॥ ५ ॥ जो नदियें आठ हजार धनुषतक नहीं जातीहैं वह नदी शब्दसे बहनेवाली नहींहैं इस कारण वह नदी नहीं कहातीं, वरन उन्हें गर्त्त (गड्ढा) कहतेहैं ॥ ६ ॥

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ ७॥ वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ॥ जलार्थिनोऽथ पि-

तरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ ८ ॥ उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ॥ पिपासूननुगच्छंति संतुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥ समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्या-दयो मलाः ॥ नूनं सर्व्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥

उपाकर्म[1], और उत्सर्ग में प्रेतके निमित्त स्नानकरनेमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें नदीका रजस्वलाहोना दोष नहींहै ॥ ७ ॥ वेद, सम्पूर्णछंद, ब्रह्मादि देवता, और जलकी इच्छा करनेवाले पितरगण और मरीचि आदि ऋषि ॥ ८ ॥ ये सब उससमय उनके पीछे चलतेहैं जिस समय सन्तोषी ब्रह्मके ज्ञाता देहके धारणकरनेवाले उपाकर्म और उत्सर्गके स्नानकरनेके लिये जातेहैं ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें इन वेदादिकोंका समागम है, उस स्थानमें ब्रह्महत्या इत्यादि सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं फिर नदीका रजदोष क्यों न नष्ट होगा ॥ १० ॥

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ॥ संपिबेद्यः शरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥ ११ ॥ विद्यादीन्ब्राह्मणः कामान्वरादीन्कन्यका ध्रुवम् ॥ आमुष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात्स न संशयः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य सींचे जाते (हुए) ऋषियोंके मध्यमें स्थित अपने शरीरके द्वारा पर्षद् छुटीहुई जलकी छटाओंको पीताहै ॥ ११ ॥ वह यदि ब्राह्मण होय तौ विद्या आदि सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होताहै और कन्या वरको पातीहै; और मनुष्य निश्चयही परलोकके सुखोंको प्राप्त होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्नं जलादिना ॥
अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३ ॥

(किसी सपिंड वा सगोत्र) के मरनेके उपरान्त दशदिनके भीतर अशुद्ध (उसके सपिंड वा सगोत्र) पुरुषसे दियाहुआ आम (अपक्व चावल आदिकभी) अन्न और जलादि हैं; वह अशुद्धही होते हैं, इसी कारण उसको प्रेत और राक्षस भोगतेहैं ॥ १३ ॥

स्वर्धुन्यंभःसमानि स्युः सर्व्वाण्यम्भांसि भूतले ॥
कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

इति कर्म्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

चंद्रमा और सूर्य ग्रहणके समयमें सम्पूर्ण पृथ्वीपरके कुओंका जल गंगाजलकी समान हो जाताहै ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां दशमः खण्डः समाप्तः ॥ १० ॥

इति कात्यायनके निर्माण किये हुये कर्मप्रदीपमें प्रथम प्रपाठ पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

एकादशः खंडः ११.

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि संध्योपासनकं विधिम् ॥
अनर्हः कर्म्मणां विप्रः संध्याहीनो यतः स्मृतः ॥ १ ॥

---

१ उपाकर्म और उत्सर्ग दोनों कर्म श्रावणी कहे जातेहैं।

इसके उपरान्त संध्यावंदनकी विधि कहताहूँ, जिसकारण ब्राह्मणोंको संध्याहीन होनेपर सम्पूर्ण कर्मोंका अनधिकारी कहाहै ॥ १ ॥

सव्ये पाणौ कुशान्कृत्वा कुर्य्यादाचमनक्रियाम् ॥ ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु बर्हिषः ॥ २ ॥ दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः संध्यादिकर्म्मणि ॥ सव्यः सोपग्रहः कार्य्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥ ३ ॥

बाँये हाथमें कुशाओंको लेकर आचमन करै,छोटी कुशा होनी चाहिये, बडी २ कुशाओं-को बर्हि कहतेहैं (वो यथासम्भव त्याज्य हैं) ॥२॥ इसकारण संध्याआदि कर्ममें कुशाओंको पवित्र कहाहै; बांये हाथमें उपग्रह (सामवेदीको ९ कुशका यजुर्वेदीको ३ कुशका वेणीरूप उपयमनकुश होताहै उसे) ले, और दहिने हाथमें पवित्री पहरे ॥ ३ ॥

रक्षयेद्वारिणात्मानं परिक्षिप्य समंततः ॥ शिरसा मार्जनं कुर्य्यात्कुशैः सोदक-बिन्दुभिः ॥ ४ ॥ प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च सावित्री च तृतीयका ॥ अब्दैवत्यं त्र्यृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥

चारोंओरको जल फेंककर अपने शरीरकी रक्षाकरै; और जलको लेकर कुशाओंसे (गायत्रीको अभिमंत्रितकर) शिर का मार्जन करै॥४॥ॐकार, भूः भुवः स्वः तीसरी गायत्री जल है देवता जिनका ऐसी तीन ऋचा (आपोहिष्ठाआदि) यह चौथा मार्जन है[1] ॥ ५ ॥

भूराद्यास्तिस्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥ महर्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥ ६ ॥ आपोज्योतीरसोऽमृतंब्रह्मभूर्भुवः स्वरिति शिरः॥ प्रतिप्रती-कं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥ ७ ॥ एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह ॥ त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ८ ॥

भूः भुवः स्वः ये तीन अव्यय (नष्ट न हो) महाव्याहृती हैं महाः जनः तपः, सत्य, और गायत्री और शिरः ॥ ६ ॥ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म, भूर्भुवः स्वः यह शिरमंत्र है, प्रत्येक मन्त्रके आगे और शिरः मन्त्रके पीछे ॐकारका उच्चारण करै ॥ ७ ॥ यह सात व्याहृति और गायत्री यह शिरःमन्त्र है ॐकारको और इन दशोंको प्राणोंको रोककर जो जप किया जाताहै उसे प्राणायाम कहतेहैं ॥ ८ ॥

करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च ॥
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥ ९ ॥

हाथसे जल लेकर और नासिकासे लगाकर तीनवार या एकवार प्राणोंको रोककर वा न रोककर अघमर्षण (ऋतं च सत्यम् इत्यादि) मन्त्रको जपै ॥ ९ ॥

उत्थायार्कं प्रतिप्रोहेत्त्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः ॥

इसके पीछे उठकर जलकी अंजलिसे सूर्यके सन्मुख खडाहो अर्थात् अंजुली अर्घ्य दे,

---

१ यह चार मार्जन सामवेदीके अनुसार लिखाहै; यजुर्वेदीको तीन यह और ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः ॐ तान ऊर्जे दधात न, इस क्रमसे ९ मिलाकर १२ मार्जन होतेहैं उसमें ११ वां भूमिमें और शिरपर जानना ।

ओं चित्रमृग्द्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥ संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ॥ मध्ये त्वह्न उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥ तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्द्धपादपि ॥ कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्द्धबाहुरथापि वा ॥१२॥ यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ॥ भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥ १३ ॥

फिर ॐ चित्रं इत्यादि दो ऋचाओंसे सूय भगवान्की स्तुति करै ॥ १० ॥ दोनों संध्याओंके समयमें यही सूर्यका उपस्थान (स्तुति) है यह मनीषी (ज्ञानवान्) कहतेहैं; और मध्याह्नके समयमें इस स्तुतिके उपरान्त अपनी इच्छानुसार विभ्राड् इत्यादिको जपै॥११॥इस स्तुतिके समयमें पृथ्वीपर ऐंडी न लगने पावै अथवा एकही पैरसे खडा रहै; या अर्द्धचरणसे खडा रहै इसके पीछे हाथ जोडकर ऊपरको दोनों भुजा उठाय सूर्यकी स्तुतिकरै ॥ १२ ॥ जिस कर्मके करनेमें अधिक कष्ट होताहै; उस कर्ममें कल्याणभी अधिक होताहै ॥ १३ ॥

तिष्ठेदुदयनात्पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः ॥
आसीन उद्गमाच्चान्त्यां संध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥ १४ ॥

प्रातःकालकी संध्या उदयसे पूर्व, और मध्याह्नकी संध्या अपनी शक्तिके अनुसार करै, अर्थात् मध्याह्नमें अथवा प्रातःकाल खडा होकर और सायंकालकी सूर्यास्त होनेपर बैठके तीनों सूर्यकी स्तुतिके मन्त्रको जपताहुआ करै ॥ १४ ॥

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति ॥
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥

यह तीन संध्या कहीं; ब्राह्मण्य इन्हींमें स्थित है, जिनका इनमें आदर नहींहै वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता ॥ १५ ॥

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ॥
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥

जो संध्याके न करनेसे भय करतेहैं और जो सदा नियमित स्नान करतेहैं सर्प जिस भांति गरुडके सामने नहीं जाते, उसी भांति सम्पूर्ण दोष इनके समीप नहीं आते ॥ १६ ॥

वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ॥ उपतिष्ठेत्ततो रुद्रं सर्वाद्वा वैदिकाज्जपात् ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतवेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

प्रतिदिन प्रथमसे आरंभ करकै यथाशक्ति वेदका विचार करै; उसके पीछे वा पहिले महादेवजीकी स्तुति करै ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशःखंडः समाप्तः ॥ ११ ॥

द्वादशःखंडः १२.

अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितॄनपि ॥
नमस्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आदिमें ॐ और अंतमें नमस्तर्पयामि (ॐ ब्रह्माणे नमस्तर्पयामि इत्यादि) कहता हुआ मनुष्य जलसे देवताओंका तर्पण करे, और तिलसहित जलसे पितरोंका तर्पण करे ॥ १ ॥

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दांस्यृषीन् पुराणाचार्यान् गंधर्वानितरान्मासं संवसरं सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान् सागरान्पर्वतान् सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरान्मनुष्यान् यक्षान्रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान् पृथिवीमोषधीः पशून्वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्विधमित्युपवीत्यथ प्राचीनावीती यमं यमपुरुषान् कव्यवाहमनलं सोमं यममर्य्यमणमग्निष्वात्तान् सोमपीथान् बर्हिषदोऽथ स्वान् पितॄन् सकृत सकृन्मातामहांश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्ज्येष्ठभ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलांश्च पितृवंशमातृवंशौ ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति तांस्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोकाः ॥ २ ॥

क्रम उसका यह है-ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, वेद, देव, छंद, ऋषि,पुराणाचार्य, गंधर्व, इतर, मास, सावयव, संवत्सर, देवी, अप्सरा, देवानुग, नाग, सागर, पर्वत, सरित्, दिव्यमनुष्य, इतरमनुष्य, यक्ष, रक्षः, सुपर्ण, पिशाच, पृथ्वी, औषधी, पशु, वनस्पति, भूतग्राम, चतुर्विध, इनका तर्पण सव्य होकर (सीधे बांये कन्धेपर जनेऊ रखकर) करे; फिर अपसव्य हो (दहिने कंधेपर जनेऊ रख) कर यम, यमपुरुष, कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, सोमपीथ, बर्हिषद इनके अनंतर अपने पितरों (पिताः पितामह प्रपितामह) का और मातामहों (मातामहों, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह) का एक २ बार तर्पण करे; और पितरोंका नामले ज्येष्ठभ्राता, श्वशुर, पितृव्य, (चचा) मातुल (मामा) फिर जो पिता माताके वंशमें उत्पन्नहुए हैं अथवा जो मृत्युको प्राप्तहोकर जलकी इच्छा करते हैं उनको तृप्तकरताहूं, यह कहकर सबसे पीछेकी अंजुली दे, इसके उपरान्त अब श्लोक कहतेहैं ॥ २ ॥

छायां यथेच्छेच्छरदातपार्तः पयः पिपासुः क्षुधितोऽन्नमन्नम् ॥ बालो जनित्रीं जननी च बालं योषित्पुमांसं पुरुषश्च योषाम् ॥ ३ ॥ तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥ ४ ॥ तस्मात्सदैव कर्त्तव्यमकुर्वन्महतैनसा ॥ युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्विश्वमेतद्बिभर्त्ति हि ॥ ५ ॥

जिस भांति शरदऋतु (कारकार्तिक) में यह मनुष्य धूपसे दुःखितहो छायाकी इच्छा करताहै उसी भांति तृषावाला मनुष्य जलकी, क्षुधावाला मनुष्य अन्नकी, बालक माताकी, और माता बालककी, स्त्री पुरुषकी और पुरुष स्त्रीकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥ इसी प्रकार स्थावर और जंगम यह सम्पूर्ण प्राणी ब्राह्मणसे जलकी इच्छा करतेहैं; कारण कि ब्राह्मण सभीके अभ्युदयकरने (बढाने) वाले हैं ॥ ४ ॥ इसकारण ब्राह्मण सर्वदा तर्पण करै; जो तर्पण नहीं करताहै वह महापापका भागी होताहै; और जो करताहै; वह इस जगत् को पालन करताहै ॥ ५ ॥

अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्म्मणः ॥
प्रातर्न तनुयात्स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

हवनका समय बहुत थोडा है; और स्नानका कर्म अधिक है; इसकारण होमके पहले प्रातःकालमें विस्तार भावसे स्नान न करै कारण कि होमका लोप होना निंदित है ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशः खंडः समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः खंडः १३.

पञ्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ॥
यैरिष्ट्वा सततं विप्रः प्राप्नुयात्सद्म शाश्वतम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त उत्तम पांच यज्ञोंकी विधि कहताहूं; जिनके निरन्तर करनेसे ब्राह्मण सनातन (वैकुंठ) स्थानको जाताहै ॥ १ ॥

देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ॥
महासत्राणि जानीयात एवेह महामखाः ॥ २ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ, क्रमानुसार इन पांच यज्ञोंको महासत्र जानना उचित है; और यही पांच इस गृहस्थआश्रममें महायज्ञ कहेहैं ॥ २ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३ ॥ श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिरथापि वा ॥ यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥ स चार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ॥ वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रतो निमित्तिकात् ॥ ५ ॥ अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥ अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥ ६ ॥ अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किंचिदन्नं यथाविधि ॥ पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥ ७ ॥ पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ॥ हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्धे निनयेदपः ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञ पढाना है,पितृयज्ञ तर्पण है,दैवयज्ञ हवन है,बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और मनुष्ययज्ञ अतिथिका पूजन है ॥ ३ ॥ अथवा श्राद्धकी वा पितरोंकी बलिको पितृयज्ञ कहाहै; और जो कि श्रुतिका जप कहा है उसको ब्रह्मयज्ञ कहतेहैं ॥ ४॥ ब्रह्मयज्ञको तर्पणसे पहले करै, अथवा प्रातःकालके हवनसे और वैश्वदेवके पीछे करै; किसी विशेषकारणके विना अन्यसमयमें न करै ॥ ५ ॥ यदि (एकसे) अन्यभी (द्वितीयादिक ब्राह्मण) श्राद्धान्नका भोजनकर्ता वा भोजनकी सामग्रीही न मिलै तौ विश्वेदेवोंके विनाही एक ब्राह्मणको पितृयज्ञकी सिद्धिके निमित्त अवश्य भोजन करावै ॥६॥ (यदि इतनाभी न होसकै तौ) तो अपनी शक्तिके अनुसार थोडासाभी अन्न निकालकर विधिसहित पितर और मनुष्योंके निमित्त ब्राह्मणको प्रतिदिन दे ॥ ७ ॥ "पितृभ्य इदम्" यह कहकर "स्वधा" शब्दका प्रयोगकरै; फिर उस अन्नमेंसे आधाअन्न हंतकारके लिये जलसे मनुष्योंको दे ॥ ८ ॥

मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम्॥अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्ध प्रथमयामान्तः ॥ ९ ॥ सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म्म च ॥ अनश्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १० ॥

मुनियोंने भूलोकवासी ब्राह्मणोंको दो समय (दिन और रात्रिमें) भोजन करना कहाहै; एक वार तौ डेढपहर दिन चढे तक दिनमें, और एकवार डेढपहर रात गयेतक ॥ ९ ॥ यदि भोजन न करै तौ भी सायंकाल और प्रातःकालको बलिवैश्वदेव करै, जो इसभांति नहीं करताहै वह महापापका भागी होताहै ॥ १० ॥

अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते ॥ बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः ॥ ११ ॥ स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम् ॥ स्वधाकारः पितॄणां च हन्तकारो नृणां कृतः ॥ १२ ॥ स्वधाकारेण निनयेत्पित्र्यं बलिमतः सदा ॥ तदप्येके नमस्कारं कुर्व्वते नेति गौतमः ॥ १३ ॥

"अमुष्मै" (जिसको दान दिया जाताहै उसके नामका उल्लेख है) नमः कहकर बलि दैनेकी विधि कहीहै, कारणकि बलिके लिये नमस्कार किया गयाहै ॥ ११ ॥ देवताओंको (दैनेके समयमें) स्वाहा, वषट्, नमस्कार, और पितरोंको (देते समय) स्वधा और मनुष्योंको (देते समय) में हंतकार करना कहाहै ॥ १२ ॥ इस कारण स्वधा कहकर पितरोंको सर्वदा बलिदे, उसके पीछे नमस्कार करै कोई ऋषि तौ यह कहतेहैं; और गौतम ऋषि यह कहतेहैं कि न करै ॥ १३ ॥

नावराद्ध्र्या बलयो भवंति महामार्जारश्रवणप्रमाणात् ॥
एकत्र चेदविकृष्टा भवंतीतरेतरसंसक्ताश्च ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

बलि अपनी ऋद्धिसे कम नहीं होती, सनातन मार्गका जो श्रवण (श्रुति) है, इसमें वही प्रमाण है; यदि विना व्यवधान हुए अथवा परस्पर सम्बन्ध हो तौ एक स्थानपरही बलि देदे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशः खंडः समाप्तः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः खंडः १४.

अतस्तद्विन्यासो वृद्धिपिंडानिवोत्तरांश्चतुरो बलीन्निदध्यात् ॥ पृथिव्यै वायवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः प्रजापतय इति सव्यत एतेषामेकैकमद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्य आकाशाय कामायेत्येतेषामपि मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येतेषामपि रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्य इति चतुर्दश नित्या आशास्यप्रभृतयः काम्याः सर्वेषामुभयतोऽद्भिः परिषेकः पिंडवच्च पश्चिमाप्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त बलि दैनेके क्रमको कहतेहैं; नांदीमुखके पिंडोंके समान चार बलि उत्तरदिशामें दे; पृथ्वी, वायु, विश्वेदेवा, प्रजापति ४ इनके दक्षिणमें जल, औषधि, वनस्पति,

आकाश, काम, और मन्यु, इन्द्र, वासुकि, ब्रह्मा और रक्षोजन, और सबसे दक्षिणदिशामें पितरोंके लिये यह १४ सबही बलि नित्य (आवश्यक) है; और आकाश इत्यादि बल इच्छाकी देनेवाली हैं सम्पूर्ण बलियोंके दोनों पार्श्वोंको जलसे सींचे इससे पिछले कर्मको पिंडकी समान जानैं ॥ १ ॥

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्म्मणी ॥ पूर्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोतिबलिकर्म्मणोः ॥ २ ॥ काममंते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ॥ नैकस्मिन्कर्मणि तते कर्म्मान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥ अग्न्यादिर्गौतमाद्युक्तो होमः शाकल एव च ॥ अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥ ४ ॥

हवन और बलिकर्म यह सामान्य कर्ममें नहीं होते; कारण कि हवन और बलिकर्म को नित्यकर्मसे विशेष कहाहै ॥ २ ॥ यदि इच्छा हो तौ इन्हें मनुष्य कर्मके अंतमें कर सकताहै, परन्तु बीचमें कभी नहीं कर सकता; कारण कि एक कर्मके प्रारंभ होनेपर दूसरे कर्मको प्रारंभ करनेकी विधि नहीं है ॥ ३ ॥ गौतमआदि ऋषिका कहा अग्नि, और शाकलऋषिका कहा हवन और बलि वैश्वदेव इनको जो ब्राह्मण अग्निहोत्री न हो तो वहभी कर सकताहै ॥ ४ ॥

स्पृष्ट्वा यो वक्ष्यमाणोऽग्निं कृतांजलिपुटस्ततः ॥ वामदेव्यजपात्पूर्वं प्रार्थयेद्द्रविणोदयम् ॥ ५ ॥ आरोग्यमायुरैश्वर्य्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ॥ ओजो वर्चः पशून्वीर्य्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च ॥ ६ ॥ सौभाग्यं कर्म्मसिद्धिश्च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम् ॥ सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोदरिरीहि नः ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त आचमनकर अग्निका दर्शन करता हुआ हाथ जोडकर वामदेवके सूक्तके जपसे प्रथम ऐश्वर्यकी वृद्धिकी प्रार्थना करै ॥ ५ ॥ "आरोग्य, ऐश्वर्य, आयु, बुद्धि, धैर्य्य, मंगल, बल, यश, ओज, तेज, पशु, वीर्य, वेद, ब्राह्मणत्व ॥ ६ ॥ सौभाग्य, कर्मकी सिद्धि, उत्तमकुल, उत्तमकर्त्तव्यता यह सम्पूर्ण पदार्थ सबके साक्षी कुबेर हमें दे" ॥ ७ ॥

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्प्रदानात्परमस्ति दानम् ॥
सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदाना नान्तो दृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञसे अधिक यज्ञ नहीं है और उसके दानसे अधिक दान नहीं है; इसकारणसे इन दोनोंके अंतको किसीने भी नहीं देखा ॥ ८ ॥

ऋचः पठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ॥ घृतामृतौघकुल्याभिर्यजूंष्यपि पठन्सदा ॥ ९ ॥ सामान्यपि पठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ॥ मेदःकुल्याभिरपि च अथर्वांगिरसः पठन् ॥ १० ॥

नित्य ऋग्वेदका पाठकर शहत और दूधकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करताहै यजुर्वेदके पढनेसे घृत और अमृतकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करताहै ॥ ९ ॥ प्रतिदिन सामवेदके पढनेसे सोम और घृतकी कुल्याओंसे अथर्वाङ्गिरसके पढनेसे मेदाकी कुल्याओंसे ॥ १० ॥

मांसक्षीरोदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ॥ वाकोवाक्यपुराणानि इतिहासानि चान्वहम् ॥ ११ ॥ ऋगादीनामन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ॥ पठन्मध्वा-

ज्यकुल्याभिः पितॄनपि च तर्पयेत् ॥ १२ ॥ ते तृप्तास्तर्पयंत्येनं जीवंतं प्रेतमेव च ॥ कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसद्मसु ॥ १३ ॥ गुर्वप्येनो न तं स्पृशेत्पंक्तिं चैव पुनाति सः ॥ यं यं क्रतुं च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ॥ १४ ॥ वसुपूर्णावसुमतीत्रिर्दानफलमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्मदानमेवातिरिच्यते ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खंडः ॥ १५ ॥

प्रतिदिन वाकोवाक्य पुराण और इतिहास इनके पढनेसे मांस, दूध, और ओदन, मधु इनकी कुल्याओंसे मनुष्य देवताओंको तृप्त करताहै ॥ ११ ॥ ऋग्वेद इत्यादि इन सबके बीचमें प्रतिदिन यथाशक्ति जो कोई शास्त्रके पढनेसे सहत घीकी कुल्याओंसे पितरोंको भी तृप्त करता है ॥ १२ ॥ उस्से देवता और पितृगण इस भांति तृप्त होकर तृप्त करानेवाले मनुष्यको जीवित अवस्थामें और मृतक अवस्थामेंभी तृप्त करतेहैं; और वह मनुष्य अपनी इच्छानुसार सम्पूर्ण देवताओंके (स्वर्गो) में जानेवाला होताहै ॥ १३ ॥ इसको कोई महापापभी स्पर्श नहीं करसकता; और जिस पंक्तिमें बैठताहै उसको भी पवित्र करदेताहै; और जिस २यज्ञको वह पढताहै वह पाठकारी मनुष्य उसी २ यज्ञके करनेका फल प्राप्त करताहै ॥ १४ ॥ धनसे भरी हुई पृथ्वीके तीनवार दानकरनेके फलको पाताहै; ब्रह्मयज्ञसे अधिक एक ब्रह्म (विद्या) काही दान है ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥ १४ ॥

पंचदशः खंडः १५.

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता॥ कर्मांतेऽनुच्यमानापि पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥ १ ॥ यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ॥ नावराद्ध्यमतः कुर्यात्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ २ ॥

जिस कर्ममें जो दक्षिणा कही गईहै, कर्मके अन्तमें ब्रह्माको वही दक्षिणा दे, यदि किसी कर्मके अन्तमें नभी हो तौ वह दक्षिणा पूर्णपात्रकी होतीहै ॥ १ ॥ जितने अन्नसे बहुत खानेवाले मनुष्यकी तृप्ति हो उतनेही अन्नसे पात्रको पूर्णकरै; इससे कम न करै यह नियम है ॥ २ ॥

विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरो भवेत् ॥
स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥

यदि यह समझा जाय कि आधी दक्षिणा ब्रह्मा लेगा, और आधी होताकी होगी तौ होताको ही ब्रह्मा, बनाले; यदि होता और ब्रह्माका कर्म स्वयंही करले तौ किसी औरको दक्षिणारूप पूर्णपात्र देदै ॥ ३ ॥

---

१ जिसमें "किंस्विदावपनं महत्" (स्थान कौनसा बडा है) "भूमिरावपनं महत्" (भूमि बडा स्थान है) इस प्रकारका प्रश्नोत्तर है उस ग्रन्थका नाम वाकोवाक्य है ॥

कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ॥
नातिक्रमेत्सदा दित्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥

अपने हितकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य वेदपाठी कुलपुरोहित और धोरे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तौ कुलगुरुको त्यागकर दूसरेको दान न दे; अर्थात् इन्हींको दे ॥ ४ ॥

अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ॥ नैतावपृष्ट्वा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥ ५ ॥ दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ॥ इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥ ६ ॥

दान देनेके समयमें "मैं इनको देताहूं" यह कहकर दान दिया जाताहै इन (पूर्वोक्त) दोनोंके विनापूछे हुए जो दान सुपात्रकोभी दियाजाय तो उसका फल दाताको नहीं होता ॥ ५ ॥ इन दोनोंके परदेशमें रहने पर उत्तम वस्तुको मनही मनमें इन दोनोंको अर्पणकरके पीछे दूसेर मनुष्यको दान करदे यह श्रेष्ठ दानकी विधि है ॥ ६ ॥

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणो यो व्यतिक्रमेत् ॥
यद्ददाति तमुल्लंघ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥

पढनेमें चतुर धोरे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तो ऐसे ब्राह्मणको त्यागकर जो मनुष्य दूसरेको दान देताहै; उस द्रव्यको जितना दियाहै उतनेही द्रव्यको चोरीके फलको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥ गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणाभिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते ॥ ९ ॥

मूर्ख जिसके घरमें है, और गुणी पुरुष दूर देशमें है, तौ वह गुणवान् मनुष्यकोही दान करै, कारण कि मूर्खके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं कहा है॥८॥वेदसे रहित ब्राह्मणके उल्लंघन करनेमें दोष नहींहै,कारणकि प्रज्वलित अग्निको छोडकर कोईभी भस्ममें आहुति नहीं देता॥९॥

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसंभवा ॥ महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥ १० ॥ आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥ सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

घृतकी सम्पूर्ण आहुतियोंमें तैजस द्रव्य (सुवर्ण आदि) की वा मिट्टीकी आज्यस्थाली (घीका पात्र) करना चाहिये ॥ १० ॥ आज्यस्थालीका प्रमाण अपनीइच्छानुसार करले परन्तु जो छिद्रहीन दृढ है उसेही विद्वान् आज्यस्थाली कहतेहैं ॥ ११ ॥

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ॥ मृन्मय्यौदुंबरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥ १२ ॥ स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः ॥ नचातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥

जो तिरछी और ऊँची समिधकी समानहो और दृढ हो, और मुख चौडा न हो वह चरुस्थाली (साकल्यपात्र) श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जिसे अपनी शाखा में कहा है;

जिसमें जल न टपकै; जला न हो, कडा न हो, देखनेमें सुन्दर हो, बहुतगीला न हो, और रसयुक्त हो, ऐसे चरुको पकावै ॥ १३ ॥

इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत् ॥ वृत्तं चांगुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥ एषैव दर्व्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ॥ दर्व्वी द्व्यंगुलपृथ्वग्रा तुरीयोनं तु मेक्षणम् ॥ १५ ॥

जिस काष्ठका इध्म हो उसी काष्ठके इध्मकी बराबर गाल और अंगूठेकी समान मोटे अग्रभागवाला चरुके चलानेमें सामर्थ्यवान् हो ऐसा मेक्षण (कलछी)होताहै ॥ १४ ॥ इसीको दर्वी कहतेहैं, जो दर्वीमें विशेष है उसेभी मैं कहताहूं, दर्वीका अग्रभाग दो अंगुल मोटा होताहै; और मेक्षण उससे मुटाईमें आधा अंगुल कम होताहै ॥ १५ ॥

मुसलोलूखले वार्क्षे स्वायते सुदृढे तथा ॥ इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च ॥ १६ ॥ दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च ॥ करं करस्य कुर्वीत करणेन्यच्च कर्मणः ॥ १७ ॥

काठके मूसल और ओखल होतेहैं; इन्हें चौडा और दृढ अपनी इच्छानुसार प्रमाणका बनाले; और सूप बांसका होताहै ॥ १६ ॥ दहिने हाथको बांये हाथसे आगे अपने सन्मुख रक्खै; इन्हींको कर्मोंमें करना चाहिये ॥ १७ ॥

कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ॥ प्रदक्षिणं तथासीनः कुर्यात्परिसमूहनम् ॥ १८ ॥ बाहुमात्रा परिधय ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः ॥ त्रयो भवन्ति शीर्णाग्रा एकेषां तु चतुर्दिशम् ॥ १९ ॥ प्रागग्रावभितः पश्चादुदगग्रमथापरम् ॥ न्यसेत्परिधिमन्यं चेदुदगग्रः सपूर्वतः ॥ २० ॥

पूर्वोक्त रीतिके अनुसार यथावत् स्थित हुए सावधान हो दोनोंहाथ अग्निके सन्मुख करकै दक्षिण दिशामें बैठकर परिसमूहन करै (वुहारै) ॥ १८ ॥ भुजाकी बराबर, वक्कलसहित विनाघुनी हुई आगेसे फटी कोमल तीन परिधि होतीहैं; किन्हीं २ ऋषियोंके मतके अनुसार चारों दिशाओंमें चार होतीहैं ॥१९॥ एक बलिसे पीछे ऐसी परिधि होतीहै जिसका अग्रभाग पूर्वदिशामें हो; और उत्तरको दूसरीका अग्रभाग होताहै; और तीसरी परिधिका अग्रभागभी उत्तरकी ओर को होताहै; और यह पूर्वमें रक्खी जातीहै; अर्थात् दक्षिणदिशामें नहीं होती ॥ २० ॥

यथोक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ॥
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

यदि शास्त्रमें कहीहुई वस्तु न मिलै तौ उसके समानकोही ग्रहण करै, जैसे कि जौके समान गेहूं है, और धानके समान सफेद चावल होतेहैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशःखण्डः समाप्तः ॥ १५ ॥

षोडशः खंडः १६.

पिंडान्वाहार्य्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥
वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥

पिंडान्वाहार्यक (जो अमावसके दिन होताहै) क्षीणचंद्रमाके दिन और दिनके तीसरे पहरमें होताहै अति संध्याके समीप कालमें न करै ॥ १ ॥

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ॥ अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥ यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ॥ अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ ३ ॥ यच्चोक्तं दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ॥ अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत् ॥ ४ ॥

जिसदिन चतुर्दशी तीनपहर वा तीन पहरसे कुछ अधिककालतक स्थित रहै; और अमावस्याकी हानि हो; उसीदिन श्राद्धकरना कहाहै ॥ २ ॥ जिसदिन चंद्रमा न दीखे इसी (पूर्वोक्त) चतुर्दशीके दिन अमावसके अनुरोधसे क्षीण चन्द्रमाके दिन श्राद्धकरना उचित है, यह भी जानना कर्तव्य है ॥ ३ ॥ और किसीनें ऐसाभी कहाहै कि जिसदिन चन्द्रमा दिखाई न दे तौभी श्राद्धकरे, यह अनुरोध चतुर्दशीके अनुरोधसे है; परन्तु अमावसकी प्रतीक्षा देखे; अथवा चतुर्दशीके अंतमेही पिंडदे ॥ ४ ॥

अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ॥
अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥ ५ ॥

जिस समय चतुर्दशीका आठवां भाग होताहै उसी समय चन्द्रमा क्षीण होताहै, और अमावस्याके आठमें भागमें अणु (सूक्ष्म) रूप होजाता है ॥ ५ ॥

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥ विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ ६ ॥ अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो न कलावशिष्टः ॥ तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ॥ ७ ॥ यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्तस्मिंस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते ॥ एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ॥ ८ ॥

चंद्रमाकी गतिके जाननेवाले कहतेहैं कि अगहन और ज्येष्ठकी अमावस इन दोनोंमें चंद्रमाकी गति विशेष होतीहै ॥ ६ ॥ (परन्तु) इन दोनों (अमावसों) में पहलेपहरमें तौ चंद्रमा रहताहै; और एककलाका चौथा भाग रहताहै, इसके उपरान्त सम्पूर्णक्षय होजाताहै, ऐसा ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले कहतेहैं ॥ ७ ॥ तेरहमहीने जिस संवत् में हों उसमें तीसरे पहरके उपरान्त चौदसके दिन चंद्रमा दिखाई न दे तब इसभांति चंद्रमाकी गति जानकर क्षीण चंद्रमाके समयमें मध्याह्नके उपरान्त पिंड दे ॥ ८ ॥

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत्क्वचित् ॥ खर्विता तां विदुः केचिद्गताध्वामिति चापरे ॥ ९ ॥ वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ॥ यामांस्त्रीन-

धिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥ पक्षादावेव कुर्व्वीत सदा पक्षादिकं चरुम् ॥ पूर्वाह्ण एव कुर्वन्ति विद्धेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥ ११ ॥

यदि कदाचित् अमावस में चतुर्दशीका मेल होजाय तौ उसे कोई तौ खर्विता और कोई गताध्वा कहतेहैं ॥ ९ ॥ यदि दूसरे दिन तीन पहर वा उससे भी अधिक अमावस हो, तौ उस दिन पितृयज्ञ (श्राद्ध) होताहै ॥ १० ॥ पक्षकी आदिका चरु (गोदुग्धमें पकाया सट्टीका चावल) पक्षकी आदि में मध्याह्नके समयमें पूर्वविद्धमें करै, यह किन्ही मनस्वी ऋषिका कथन है ॥ ११ ॥

सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते ॥
न जीवन्तमतिक्रम्य किंचिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

वेदमें ऐसा लिखाहै कि मनुष्य पिताके जीवित रहतेहुए पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है जीवित पिताको अन्नादि दान छोडके अन्य कुछभी पितृकर्म न करै ॥ १२ ॥

पितामहे जीवति च पितुः प्रेतस्य निर्व्वपेत् ॥ पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्प्रपितामहः ॥ १३ ॥ पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ॥ कुर्य्यात्पिण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः ॥ १४ ॥

पिता, पितामह, प्रपितामह इनतीनोंको तीन पिंड देने उचितहैं; और यदि पिताकी मृत्यु होगईहो और प्रपितामह जीवितहो ॥ १३ ॥ तौ वृद्धपितामह और पितामह, तथा अपना पिता इनके लिये वह मनुष्य तीन पिंड दान करै कि जिसका प्रपितामह मरगयाहो ॥ १४ ॥

जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः ॥
पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः ॥ १५ ॥

यह दूसरी श्रुति है कि जीतेहुएका उल्लंघनकर ब्राह्मण मरेहुएको अन्न और जलदे, और जीवत्पितृकपुरुष अपने पिताके पितरोंको दे, कारण कि वे मरेहुएभी उसके पिता (रक्षाकरनेवाले) हैं ॥ १५ ॥

पितामहः पितुः पश्चात्पंचत्वं यदि गच्छति ॥ पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ १६ ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥

यदि पितामह पितासे पीछे मरै तौ पोता एकादशाह आदि सोलह श्राद्धकरै, ॥ १६ ॥ परन्तु पितामहके यदि कोई और पुत्र हो तौ पोता नहीं करै,

पितुःसपिण्डनं कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम् ॥ १७ ॥

पिताकी सपिंडीकरके पुत्रही प्रत्येक महीने २ में मासिक श्राद्धकरै ॥ १७ ॥

असंस्कृतौ न संस्कार्य्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः ॥ पितरं तत्र संस्कुर्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा ॥ पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः ॥ १९ ॥

यदि पितामह आदि संस्कारहीन हों तौ पोते प्रपोते उनका संस्कार न करै, यदि पिता संस्कारहीन हो तो पुत्रको उसका संस्कार करना उचित है यह कात्यायन ऋषिका वचन है ॥ १८ ॥ यह तौ निश्चयही है कि पापीभी शुद्धकी संगतिसे शुद्धहोताहै, इसकारण यदि

पितामह पापीभी होंय तौ उनके संगही पिताका संस्कार (श्राद्धआदि) करना पुत्रको उचित है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते ॥
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ २० ॥

यदि पिता ब्राह्मण आदिसे मराहो, पतित हो वा संगसे हीन हो, या फाँसीखाकर मराहो तौभी उन्है और जिनको वह देतेहों उन्ही सबको दे ॥ २० ॥

मातुः सपिंडीकरणं पितामह्या सहोदितम् ॥
यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत्सुतः ॥ २१ ॥

माताकी सपिंडी शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दादीके साथही करनी उचित है; यदि कन्याका (जो कि इस प्रतिज्ञासे विवाही जातीहै कि इसके जो लडका होगा उसे मैं लूंगा) उसका पुत्र नहो ॥ २१ ॥

न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते ॥
स्वभर्तृपिंडमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥ २२ ॥

मृत्युके अतिरिक्त स्त्रियोंको पतिसे पृथक् (पिंडादि) न दे कारण कि अपने २ पतिके भागसेही उनकी तृप्ति होतीहै ॥ २२ ॥

मातुःप्रथमतः पिंडं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

पुत्रिकापुत्र पहिला पिंड माताको दूसरा नानाको और तीसरा पिंड पडनानाको दे ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशःखंडः समाप्तः ॥ १६ ॥

सप्तदशः खंडः १७.

पुरतो यात्मनः कुर्यात्सा पूर्वा परिकीर्त्यते ॥ मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तद्दक्षिणत उत्तमा ॥ १ ॥ वाय्वग्निदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धांगुलान्तराः ॥ तीक्ष्णान्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥ २ ॥

अपने सन्मुख जो कुशा रक्खी जातीहै उसे पूर्वा कुशा कहतेहैं; और जो पूर्वासे दक्षिणकी ओरको रक्खी जातीहै उसे मध्यमा कहतेहैं; और जो मध्यमासे दक्षिणकी तरफ रक्खी जाती हैं उन्हैं उत्तमा कहतेहैं ॥ १ ॥ इन तीनोंको इसभांति क्रमानुसार रक्खै, वायव्यदिशामें जड, और अग्निदिशामें अग्रभाग हो; और डेढ अंगुलका बीच रहै; अग्रभाग तौ इन तीनोंका पैना, और बीचका भाग जौके समान हो; जिसभांति नावका आकार होताहै ॥ २ ॥

शंकुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ॥
शंकुश्चैवोपवेशश्च द्वादशांगुल इष्यते ॥ ३ ॥

खैरका शंकु बनावै, फिर उसे चांदीसे भूपित करै, शंकु और उपवेश (पितृवेश पितरोंके बैठनेकी कुशा) का प्रमाण बारह अंगुलका है ॥ ३ ॥

अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्य्यं कर्षूणां स्तरणं घनैः ॥
दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥ ४ ॥

कुशाओंका अग्रभाग अग्निदिशाकी ओर करकै कुशाओंसे कर्षुओंको बिछावै और दक्षिणको अग्रभागवाली कुशाओंका कर्षु (कुशाओंका बिछौना) पितरोंके श्राद्धमें बिछावे ॥ ४ ॥

स्वगरं सुरभि ज्ञेयं चंदनादिविलेपनम् ॥
सौवीरांजनमित्युक्तं पिंजलीनां यदंजनम् ॥ ५ ॥

सुगंधित चन्दन आदिका लेपन अगर और पिंजलियोंके अंजनको सौवीरांजन कहते हैं ॥५॥

स्वस्तरे सर्वमासाद्य यथावदुपयुज्यते ॥
देवपूर्व्वं ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥ ६ ॥

जो वस्तु श्राद्धमें उपयुक्त हैं उन सम्पूर्ण वस्तुओंको अच्छे आसनपर रखकर शीघ्रताको विना कियेहुए देवताओंका पूजनआदि शुद्धतापूर्वक कर श्राद्धका प्रारंभ करै ॥ ६ ॥

आसनाद्यर्घपर्यन्तं वसिष्ठेन यथेरितम् ॥ कृत्वा कर्माथ पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥ तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ॥ गन्धोदकं च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥ ८ ॥

वशिष्ठजीकी कहीहुई विधिके अनुसार आसनआदि अर्घ्यपर्यन्त कर्मोंको करकै पात्रोंमें प्रथम तिलोदक दे ॥ ७ ॥ प्रथम मौन धारणकर पृथक् २ जल दे फिर तिल और जल दे, इसके पीछे समीपताके क्रमसे फिर गन्धोदक दे ॥ ८ ॥

आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ॥ पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षाणि पंच च ॥ ९ ॥ कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम् ॥ तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥

जो मनुष्य आसुर पात्रमें करकै तिलोदक देताहै, पितृगण उसके यहां पंद्रहवर्षतक भोजन नहीं करते ॥ ९ ॥ कुलालके चाकसे बनायेहुए मिट्टीके पात्रका नामही आसुरपात्र है; और हाथसे बनायेहुए मिट्टीके पात्र स्थालीआदिका नाम दैविकपात्र है ॥ १० ॥

गंधान्ब्राह्मणसात्कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानि च ॥ धूपं चैवानुपूर्व्येण ह्यग्नौ कुर्यादनन्तरम् ॥११॥ अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना ॥ प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिः श्रुता ॥ १२ ॥ अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च॥निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै नहि हूयते ॥ १३ ॥ स्वाहाकुर्यान्न चात्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः ॥ स्वाहाकारेण हुत्वाग्नौ पश्चान्मंत्रं समापयेत् ॥ १४ ॥ पित्र्ये यः पंक्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान् ॥ हुत्वा मंत्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ॥ १५ ॥नो कुर्याद्धोममंत्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ॥ अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥ १६ ॥

क्रमानुसार गन्ध और ऋतुमें उत्पन्नहुए फलपुष्प और धूपादि ब्राह्मणोंको देकर इसके उपरान्त "अग्नौकरण" (एक अग्निहोत्र) करै ॥ ११ ॥ अग्नौकरण होम सव्य होकर करै;

और पूर्वकी ओरको मुख करके देवताओंके निमित्त हवन करै, यही वेदकी श्रुति है ॥ १२ ॥ अथवा दक्षिणको मुख करके अपसव्य होकर करै; और साकल्य एकके निमित्त देकर दूसरेको न दे ॥ १३ ॥ इस स्थानमें मन्त्रके अंतमें स्वाहा शब्दका प्रयोग न करै; और हविः का होम न करै केवल प्रथम स्वाहा कहकर पीछे मंत्रको पढै॥१४॥ पितरोंके कर्ममें जो मनुष्य पंक्तिमें मुख्य है, उसके हाथमें मंत्र पढकर आहुति दे;और जो मनुष्य अग्निहोत्री न हो वह शेषोंके पात्रोंमें विना मंत्रके हविको रक्खै ॥ १५ ॥ कहीं २ होमके मंत्रोंकी आदिमें पृथक् ॐ न कहै, और अन्यान्यमनुष्य जो समीपमें हों उनके आचमनआदिसे ॥ १६ ॥

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ॥ परिग्रहणमात्रं तत्सव्यस्यादिशति व्रतम् ॥ १७ ॥ पिंजल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ॥ अन्वारभ्य च सव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥ यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ॥ चरुणा सह सन्नीय पिंडान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥ पितुरुत्तरकर्ष्वंशे मध्यमे मध्यमस्य तु ॥ दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणि निर्वपेत् ॥ २० ॥ वाममावर्तनं केचिदुदगंतं प्रचक्षते ॥ सर्वं गौतमशांडिल्यौ शांडिल्यायन एव च ॥ २१ ॥ आवृत्य प्राणमायम्य पितॄन्ध्यायन्यथार्थतः ॥ जपंस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं प्रमोचयेत् ॥ २२ ॥

जो सव्य हाथसे कर्मकरना यहां कहाहै उसे दक्षिणहाथसे ग्रहण करकै वह कर्म करै, यही निश्चय है ॥ १७॥ पिंजलीआदि कुशाओंको दाहिनेहाथसे पकडकर, फिर बांयेहाथसे पकडकर उल्लेखनकरै (वेदीपर स्रुवेसे कुछ लकीरें खैंचे) ॥ १८ ॥ प्रयोजनके अनुसार थोडी २ सी हविको लेकर उसे चरुके साथ मिलाकर पिंडदेना प्रारंभ करै ॥ १९ ॥ पर्वके दिनोंमें उत्तर कर्षुमें पिताको और मध्यम कर्षुमें पितामहको, और दक्षिणकर्षुमें प्रपितामहको पिंडदान करै ॥ २० ॥ वामावर्तको उत्तरदिशातक करना (दक्षिणदिशासे प्राणोंको रोककर उत्तरतक लेजाना) यह गौतम शांडिल्य और शांडिल्यायन आदि सम्पूर्ण ऋषि कहतेहैं ॥ २१ ॥ प्रदक्षिणा करकै पितरोंका ध्यान करताहुआ प्राणायाम और मनही मनमें प्राणायामके मंत्रको जपताहुआ फिर उस मार्गसे लौटकर श्वासको त्यागै ॥ २२ ॥

शाकं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत्॥ यस्तु शाकादिको होमः कार्योऽपूपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥ अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ ॥ वार्कखंडिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेष्टकासु च ॥ २४ ॥

फाल्गुन मासकी अष्टमीके दिन स्वयं वा स्त्रीभी शाकको पकावै;और जो शाकआदिका हवन है उसे अपूपाष्टका श्राद्धमें करै ॥ २३ ॥ गौतम और गोभिलने मध्यम अष्टकामें अन्वष्टका श्राद्ध करनेके लिये कहाहै; और वार्कखण्डि तथा कौत्सऋषिका यह मत है कि सब अष्टकाओंमें करै ॥ २४ ॥

स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ॥
श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोपयस्यनु ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खंडः ॥ १७ ॥

और जिस स्थानपर पशुका लेख हो वहां पशुके स्थानपर स्थालीपाक (भातआदि) करै और बछडेवाली नई गौके दूधमें सिद्ध करै ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥ १७ ॥

अष्टादशः खंडः १८.

सायमादिप्रातरंतमेकं कर्म प्रचक्षते ॥ दर्शांतं पौर्णमास्याद्यमेकमेव मनीषिणः ॥ १ ॥ ऊर्द्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि वाग्रिमः ॥ य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतिः ॥ २ ॥ ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात्सायं होमादनंतरम् ॥ वैश्वदेवं तु पाकांते बलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादभिरूपान्स्वशक्तितः ॥ यजमानस्ततोऽश्नीयादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

बुद्धिमानोंने सायंकालसे प्रातःकालतक कर्मोंको एकही कहाहै; और पूर्णमासीसे अमावसपर्यन्तके जो कर्म हैं उन्हें भी कोई २ एकही कहतेहैं ॥ १ ॥ विवाहकी पूर्णआहुतिके उपरान्त जो अमावस या पूर्णिमा आवै उसीमें हवन करै; कारण कि वेदमें इसीको आदि कहाहै ॥२॥ जब सायंकालके हवनसे पीछे पूर्णाहुति दे चुके तौ पाक होनेपर बलिवैश्वदेव करै ॥ ३ ॥ फिर अपनी शक्तिके अनुसार पंडित ब्राह्मणोंको भोजन करावै; इसके पीछे यजमान स्वयं भोजन करै, यह कात्यायन ऋषिका मत है ॥ ४ ॥

वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत सायंप्रातस्त्वतंद्रितः ॥
चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाट्यायनैर्मतम् ॥ ५ ॥

विवाहकी अग्निमें चतुर्थी कर्मको करकै आलस्यरहित हो बलिवैश्वदेव करै, यह शाट्यायन ऋषिका मत है ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः प्रातर्हुत्वा तां सायमाहुतिम् ॥
प्रातर्होमस्तदेव स्यादेष एवोत्तरो विधिः ॥ ६ ॥

उस सायंकालकी आहुति देनेके उपरान्त प्रातःकालकी पूर्णाहुतिसे पीछे बलिवैश्वदेव करै तभी प्रातःहवन होताहै; प्रतिदिन यही विधि जाननी उचितहै ॥ ६ ॥

पौर्णमास्यत्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत ॥ तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ॥ ७ ॥ अहूयमानेऽनश्नंश्चेन्नयेत्कालं समाहितः ॥ सम्पन्ने तु यथा तत्र हूयते यदिहोच्यते ॥ ८ ॥

अमावस पौर्णमासीके पीछे जिस दिन हव्य द्रव्य वा उत्तम होता मिलै उसीदिन हवनकरले ॥ ७ ॥ यदि होम होनेसे पहले मनुष्य उपवासी रहाहो, अर्थात् उतने समयको विनाभोजन करे बितायाहो, तब ऐसा करै, और जो भोजनकर लियाहो, तौ उसकी विधि कहताहूं ॥ ८ ॥

आहुत्यः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ॥
मंत्रेण विधिवद्धुत्वाधिकमेवापरा अपि ॥ ९ ॥

जितनी आहुति दीगई हैं, उतनीही गिनकर पात्रमें रक्खें और पीछे मन्त्रद्वारा विधिपूर्वक देकर और आहुति दे ॥ ९ ॥

यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ॥ चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ॥ १० ॥ अप्यनाज्ञातमित्येषा: प्राजापत्यापि वाहुतिः ॥ होतव्यात्र विकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

जहां प्रायश्चित्तके निमित्त हवन व्याहृतियोंसे[1] हो वहां और विवाहके समयमें चार आहुतियें देनी उचितहैं; ऐसा जानना ॥ १० ॥ अथवा "अनाज्ञातं०" इस मन्त्रसे आहुति दे वा प्रजापतिके मन्त्रसे आहुति प्रदान करै, यहां इतनाही भेद है; और प्रायश्चित्तकी विधिभी यही कहीहै ॥ ११ ॥

यद्यग्निरग्निनान्येन संभवेदाहितः क्वचित् ॥ अग्नये त्वविविचय इति जुहुयाद्वा घृताहुतिम् ॥ १२ ॥ अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्वै घृतेन चेत् ॥ अग्नये शुचये चैव जुहुयाच्च दुरग्निना ॥ १३ ॥

यदि हवनकी अग्नि कभी दूसरी अग्निके साथ मिलजाय तौ"अग्नये विविचये" इस मंत्रसे या केवल घृतसेही आहुति दे ॥ १२ ॥ यदि घृतसेही अग्नि बुझजाय तौ "अग्नयेऽप्सुमते" इस मन्त्रसे आहुति दे, और दूसरी बुरी अग्निसे ढकीजाय तौ "अग्नये शुचये" इस मंत्रसे हवन करै ॥ १३ ॥

गृहदाराग्निनाग्निस्तु यष्टव्यः क्षामवान्द्विजैः ॥ दावाग्निना च संसर्गे हृदयं यदि तप्यते ॥ १४ ॥ द्विर्भूतो यदि संसृज्येत्संसृष्टमुपशामयेत् ॥ असंसृष्टं जागरयेद्गिरिशर्म्मैवमुक्तवान् ॥ १५ ॥

घरमें अग्निके लगजानेपर शांत होजाय तौ ब्राह्मण अग्निका पूजन करै; और यदि दावाग्निसे अग्निका संसर्ग होजाय और उससे हृदय दुःखी हो तौ ॥ १४ ॥ दो बार संसर्ग करके अग्निकी शांति करादे; और यदि संसर्ग न हुआ हो तौ अग्निको जगाले, यह गिरिशर्माका वचन है ॥ १५ ॥

न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् ॥
स्वर्गवासक्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥ १६ ॥

अपनी अग्निमें अन्यका केवल एक समिधके अतिरिक्त हवन नहीं होता जितने दिनोंतक अपने स्वर्गवास योग्य सत्कर्म अग्निमें न हों ॥ १६ ॥

अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्व्वत्र लौकिकः ॥
नहि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥ १७ ॥

सर्वत्र नामकरण आदि संस्कारोंमें लौकिक अग्नि होतीहै, और जिस अग्निको पिता लावै वह पुत्रकी नहीं होसकती ॥ १७ ॥

---

१ ॐभूःस्वाहा ॐ भुवःस्वाहा ॐ स्वःस्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वःस्वाहा, इस भांतिसे ।

यस्याग्नावन्यहोमः स्यात्सः वैश्वानरदैवतम् ॥
चरुं निरुप्य जुहुयात्प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥ १८ ॥

यदि जिस अग्निहोत्रीकी अग्निमें दूसरे मनुष्यका हवन होजाय तौ उस अग्निमें देवताके चरुको बनाकर हवन करै उसका यही प्रायश्चित्त है ॥ १८ ॥

परेणाग्नौ हुते स्वार्थं परस्याग्नौ हुते स्वयम् ॥ पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च ॥ १९ ॥ अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ २० ॥

दूसरेका अग्निहोत्र आपकरै अथवा दूसरा अपना अग्निहोत्र करले, या पितृयज्ञका नाश होजाय अथवा दौनो विश्वेदेवाओंका यज्ञ नष्ट होजाय ॥ १९ ॥ जो नवयज्ञ नवीन अन्नप्राशनमें न करै, या जो पतितके अन्नका भोजन करले इन कर्मोमें वैश्वानर चरु होताहै, अर्थात् उससे हवन करै ॥ २० ॥

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु ॥
पिंडनोद्वहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ २१ ॥

पिता अपने पुत्रके नामकरणआदि कर्मोमें अपने पितरोंको पिंड दे; कारण कि वह उनके पिंडोंका दाताहै; यदि पिता न हो तौ पिताके क्रमसे जो अधिकारी हौं वही पिंड दें ॥ २१ ॥

भूतिप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत् ॥ रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वंति याज्ञिकाः ॥ २२ ॥ महानसेऽन्नं या कुर्यात्सवर्णा तां प्रवाचयेत् ॥ प्रणवाद्यपि वा कुर्यात्कात्यायनवचो यथा ॥ २३ ॥

(प्रश्न) यदि भूतिप्रवाचन (ऋत्विजोंसे आशिर्वादआदि लैंने) में यदि स्त्री ऋतुमती या रोगग्रसित होनेके कारण समीप न आसकै तौ यज्ञकरनेवाले मनुष्य किसभांति यज्ञकरैं॥२२॥ (उत्तर) जो स्त्री रसोईमें अन्नपकावै, और वह अपनी जातिकी हो तौ उससे भूतिप्रवाचन कराले, या कात्यायनमुनिके वचनके अनुसार ॐकारआदि करले ॥ २३ ॥

यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तंबे दर्भबटौ यथा ॥
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

यज्ञके घरमें, कुशमुष्टिमें, स्तंबमें दर्भके बटुमें और विष्टरके आस्तरणमें कुशाओंकी गिनती नहींहै ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशः खण्डः समाप्तः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः खंडः १९.

निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यर्त्विजं तथा ॥ प्रवसेत्कार्य्यवान्विप्रो वृथैव न चिरं क्वचित् ॥ १ ॥ मनसा नैत्यकं कर्म्म प्रवसन्नप्यतंद्रितः ॥ उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुव्रजेत् ॥ २ ॥

साग्निक ब्राह्मण विशेष प्रयोजनके होनेपर अपनी स्त्रीको अग्नि सौंपकर एक ऋत्विज नियतकर प्रवास (परदेश) को जाय, परन्तु वृथा चिरकाल कहीं भी नहीं रहै ॥ १ ॥ (परंतु) प्रवासमेंभी यह आलस्य रहितहो यह अपने नित्यकर्मको करनेके निमित्त शुद्धहोकर स्थित-रहै, और ठीक समयपर सम्पूर्ण कर्म मानस करै ॥ २ ॥

पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ॥ सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया भर्तृभक्तया ॥ ३ ॥ या वा स्याद्वीरसूरासामाज्ञासंपादिनी प्रिया ॥ दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

पतिमें भक्ति करनेवाली, स्त्रीभी सौभाग्य और धन सम्पत्तिकी और पतिसे अवियोगको चाहनेवाली नम्रभावसे अग्निकी सेवाकरै ॥ ३ ॥ बहुतसी स्त्रीवाला पुरुष जो वीरसू (पुत्रवाली) आज्ञाकारिणी, प्यारी, प्रिय वचन कहनेवाली, चतुर और पवित्र ऐसी स्त्रीको अग्निकी सेवामें नियुक्त करै ॥ ४ ॥

दिनत्रयेण वा कर्म्म यथाज्यैष्ठं स्वशक्तितः ॥ विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञानं च शास्त्रवत् ॥ ५ ॥ स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ॥ नहि ख्यात्या न तपसा भर्ता तुष्यति योषिताम् ॥ ६ ॥ भर्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमा बहुभिर्व्रतैः ॥ अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ विनयावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत् ॥ अमुत्रोमाग्निभर्तॄणामवज्ञातिः कृता तया ॥ ८ ॥

अथवा सब स्त्री तीन २ दिनमें बडी स्त्रीके क्रमसे अपनी शक्तिके अनुसार विभाग कर वा एकही साथ (मिलकर) अग्निकी सेवा करलैं, या जैसा उनको शास्त्रका ज्ञानहो उसीभांति सब करलें ॥ ५॥ सौभाग्यसेही स्त्रियोंकी बडाई है, विद्याके द्वारा ब्राह्मणोंकी बडाईहै; कारण कि केवल लोकप्रसिद्धि और तपसेही स्वामी स्त्रियोंपर प्रसन्न नहीं होते ॥ ६ ॥ जिस पतिकी आज्ञाकारिणी स्त्रीने बहुतसे व्रतकरकै पार्वती और अग्निको प्रसन्न कियाहै वही स्त्री परलोकमें सौभाग्यको प्राप्त करतीहै ॥ ७ ॥ जो स्त्री प्रेमसहित पतिमें नवतीहै, और देखनेमें पतिको सुन्दर नहीहै उसने निश्चयही पूर्वजन्ममें वा परलोकमें पार्वती, अग्नि और अपने पतिका तिरस्कार कियाहै ॥ ८ ॥

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितिं तथा ॥
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

जो मनुष्य प्रातःकालही उठकर वेदपाठी,सुहागिनीस्त्री, गौ अग्निहोत्र इनका दर्शन करताहै, वह सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥

पापिष्ठं दुर्भगामन्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् ॥
प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलैरुपयुज्यते ॥ १० ॥

और जो मनुष्य प्रातःकालही उठकर पापी, दुर्भागिनी (विधवा) अन्य नग्नपुरुष, या नकटे-को देखताहै, वह कलहको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

पतिमुल्लंघ्य मोहास्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ॥
कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥

स्त्री अज्ञानतासे पतिका उल्लंघन करकै किस २ नरकमें नहीं जाती, इसके पीछे बडे कष्टोंको पाकर मनुष्य योनि मिलतीहै उसमें वह किस २ दुःखको नहीं भोगती ॥ ११ ॥

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते ॥
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥

स्त्री केवल पतिकी शुश्रूषा करकैही सम्पूर्ण स्वर्गके सुखोंको भोगतीहै; और स्वर्गसे पुनर्वार भूलोकमें आकर सुखोंका समुद्र होजातीहै ॥ १२ ॥

सदारोऽन्यान्पुनर्दारान्कथंचित्कारणांतरात् ॥ य इच्छेदग्निमान्कर्तुं क होमोऽस्य विधीयते ॥ १३ ॥ स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्मालौकिकेग्नौ विधीयते ॥ १४ ॥ षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद्ध्रुवदर्शनात् ॥ न ह्यात्मनोऽर्थं स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥ १५ ॥

यदि साग्निक मनुष्य किसी कारणसे अन्य स्त्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छाकरले तौ उसका हवनमें अधिकार नहीं रहता ॥ १३ ॥ अपनी अग्निमेंही होम होताहै, कदापि लौकिक अग्निमें हवन नहीं होता, कारण कि अग्निहोत्रीका निजकर्म लौकिक अग्निमें नहीं होताहै ॥ १४ ॥ ध्रुवके दर्शन होनेपर जबतक छैः आवश्यक आहुति अन्य अग्निमें भी दे; और जबतक विवाह न करै तबतक अपने लिये न दे ॥ १५ ॥

पुरस्तात्त्रिविकल्पं यत्प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ॥
ततः षडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

पहिले जो त्रिविकल्प प्रायश्चित्त कहाहै उसकोही यज्ञके जाननेवाले षडाहुतिक कहतेहैं ॥॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनविंशः खंडः समाप्तः ॥ १९ ॥

(कात्यायनके निर्माण किये हुए कर्मप्रदीपमें दूसरा प्रपाठक पूर्णहुआ) ॥ २ ॥

विंशः खंडः २०.

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ॥
द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद्धुतमनर्थकम् ॥ १ ॥

स्त्री और पुरुषके सान्निध्य (उपस्थितहुए) के विना ऋत्विक् आदि हवन न करैं, कारण कि उन दोनोंके विना हवन निष्फल होताहै ॥ १ ॥

विहायाग्निं सभार्यश्चेत्सीमामुल्लंघ्य गच्छति ॥
होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥ २ ॥

यदि अग्निको छोडकर स्त्रीसहित अग्निहोत्री पुरुष ग्रामकी सीमाको लांघकर चलाजाय और जो उसके हवनका समय वीतजाय तौ वह फिर अग्निका आधान करै ॥ २ ॥

अरण्योः क्षयनाशाग्निदाहेष्वग्निं समाहितः ॥
पालयेदुपशांतेऽस्मिन्पुनराधानमिष्यते ॥ ३ ॥

अरणियोंके नाश और अग्निके दाहमें सावधान होकर अग्निकी रक्षाकरै, यदि अग्नि शांत होजाय तौ अग्निका आधान फिर करले ॥ ३ ॥

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति ॥
पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥ ४ ॥

जिसके बहुतसी स्त्री हों यदि वह मनुष्य सबसे बडी स्त्रीको उलंघनकर गमन करै, तौ उस मनुष्यको कोई २ पुनर्वार अग्निका आधान करनेके लिये कहते हैं, और गौतम ऋषि नहीं कहते ॥ ४ ॥

दाहयित्वाग्निभिर्भार्य्यां सदृशीं पूर्वसंस्थिताम् ॥ पात्रैश्चाथाग्निमादध्यात्कृतदारोऽविलंबितः ॥ ५ ॥ एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारणीम् ॥ दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥

अपने समानवर्णकी स्त्रीके पहले मरजाने पर उसको अग्निसे दग्ध करै पीछे शीघ्रही विवाह करके अग्निका आधान करै ॥ ५ ॥ ऐसे आचरणवाली अपनी जातिकी स्त्री और पहले मरीहुईको धर्मज्ञ पुरुष अग्निहोत्रकी अग्निसे और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करै ॥ ६ ॥

द्वितीयां चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकाग्निभिः ॥
जीवंत्यां प्रथमायां तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥ ७ ॥

जो पुरुष दूसरी स्त्रीको भी हवनकी अग्निसे दग्धकरताहै, अथवा प्रथमस्त्रीके जीतेहुए दूसरीको होमकी अग्निसे जलाताहै, वह ब्रह्महत्याके समान है ॥ ७ ॥

मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ॥
ब्रह्मोज्झितं विजानीयाद्यश्च कामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

दूसरी स्त्रीके मरजानेपर जो मनुष्य अग्निहोत्रका त्याग करताहै उसको वेदका त्यागनेवाला जानो ॥ ८ ॥

मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकाग्निं नहि त्यजेत् ॥ उपाधिनापि तत्कर्म्म यावज्जीवं समापयेत् ॥ ९ ॥ रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ॥ ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ १० ॥ यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्यां कथंचन ॥ सा स्त्री संपद्यते तेन भार्या चास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥

भार्याके मरजानेपर भी वैदिकाग्निका त्याग न करै, अपने जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र कर्मको पूरा करै ॥ ९ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजीने भी यशस्विनी सीताजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनाकर भाइयों सहित बडे २ यज्ञोंसे भगवान्की पूजा कीथी ॥ १० ॥ जो मनुष्य अपने हवनकी अग्निसे कभी भी अपनी स्त्रीको दग्ध करताहै, वह स्त्री उसकीस्त्री होतीहै, और वह स्त्री उसका दहन करै तौ वह जन्मांतरमें पुरुष होतीहै ॥ ११ ॥

भार्य्या मरणमापन्ना देशांतरगतापि वा ॥
अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥ १२ ॥

यदि स्त्री मरगई हो या परदेशको चलीगई हो, अथवा अग्निहोत्री भी हो और उसे महापातक लगगया हो तौ उसका पुत्र अग्निहोत्रका अधिकारी होताहै ॥ १२ ॥

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्या पतिविमानिता ॥
त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥ १३ ॥

यदि निर्दोष माननीया स्त्री स्वामीसे अपमानित हो मरजाय तौ यह स्त्री तीन जन्मतक पुरुष होतीहै और वह पुरुष स्त्री होताहै ॥ १३ ॥

पूर्वेव योनिः पूर्वावृत्पुनराधानकर्माणि ॥ विशेषोत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥ १४ ॥ कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेत पावकम् ॥ अध्यायः केवलाग्नेयः कस्तेजामिरमानसः ॥ १५ ॥ अग्निमीडे अग्नआयाह्यग्नआयाहिवीतये॥ तिस्रोऽग्निर्ज्योतिरित्यग्निं दूतमग्नेमृडेति च ॥ १६ ॥ इत्यष्टावाहुतीर्हुत्वा यथाविध्यनुपूर्वशः ॥ पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत्पूर्ववदाचरेत ॥ १७ ॥

दूसरेबार अग्निके आधान (स्थापन करने) में पहलेही योनि (नीचेकी अरणी) और आवृत् (ऊपरकी अरणी) होतेहैं, केवल (इसमें) अग्निकी स्तुति और आठ आहुतियोंका विशेष कार्य होताहै ॥ १४ ॥ व्याहृतियोंसे हवन करके अग्निकी स्तुति करे और उस स्तुतिमें आग्नेय (अग्निका) अध्याय और कस्तेजामिरेमानसः ॥ १५ ॥ अग्निमीडे, अग्न आयाहि, अग्न आयाहि वीतये तीन ये और अग्निर्ज्योतिः अग्निं दूतं और अग्नेमृड, ॥ १६ ॥ इन आठ आहुतियोंको क्रमानुसार विधिपूर्वक देकर पूर्णाहुतिआदि सम्पूर्ण कर्मोंको पर्वके समान करै ॥ १७ ॥

अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावत्तिष्ठति पूर्वयोः ॥ न तावत्पुनराधानमन्याऽरण्योर्विधीयते ॥ १८ ॥ विनष्टस्रुक्स्रुवं न्युब्जं प्रत्यक्स्थलमुदर्चिषि ॥ प्रत्यगग्रंच मुसलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥

जबतक पहली अरणियोंका कुछभी अंग शेष रहै तबतक अन्य दो अरणियोंका फिर आधान (स्थापन) न करै ॥ १८ ॥ नष्ट (घिसकर कुछही शेष दशामें वर्तमान अथवा टूटे) हुए स्रुक् और स्रुवेको कुछ एक औंधा करके और नष्ट हुए मूसलको सीधा करके अच्छी जलतीहुई अग्निमें डालदे अर्थात् जलादे ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां विंशः खण्डः समाप्तः ॥ २० ॥

एकविंशः खंडः २१.

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ॥
तत्राप्यशक्तस्य ततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥

(यदि पीडाके वशसे) स्वयं हवन करनेकी सामर्थ्य न हो तौ अग्निके निकटही जा बैठे; और जो इसमेंभी असमर्थ हो तौ शय्यासे नीचेही उतर बैठे ॥ १ ॥

हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् ॥
प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चेच्छ्वः पुनर्न वा ॥ २ ॥

यदि सायंकालके हवन होजानेके उपरान्त गृहस्थी दुर्बल (मरनेके समान) होजाय तौ प्रातःकालका हवन उसी समय होगा कि जब वह जीवित होजायगा, नहीं तौ नहीं होगा॥२॥

दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ॥ दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ ३ ॥ घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥ हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु ॥ मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ ५ ॥ आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् ॥ एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पर्य्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥ अर्द्धमादहनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः ॥ सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥ ७ ॥

दुर्बल (जो मरनेके समीपहो उस) को स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनादे, इसके उपरान्त कुश बिखरे हुए पृथ्वीमें दक्षिण दिशाकी ओर शिर करके ॥ ३ ॥ घीका उबटन कर स्नान करावै, और वस्त्र जनेऊ पहरावै, सब अंगपर चन्दन छिडक कर उसको पुष्पोंसे शोभायमान करै ॥ ४ ॥ और सातों छिद्रोंमें सुवर्णके टुकडे डाल कर उस शवके मुखको ढककर पुत्र आदि श्मशान भूमिमें लेजांय ॥ ५ ॥ एक मनुष्य मिट्टीके कच्चे पात्रमें अन्न लेकर पीछे २ चले, और अग्निको आगे करकै प्रेतको पीछे ले जाय; और उस अन्नमेंसे आधे अन्नको पुत्र मार्गके अर्ध भागमें पृथ्वीपर डालदे ॥ ६ ॥ जिस समय शव श्मशानभूमिके आधे भागमें पहुंच जाय तब (पुत्र) दक्षिणको मुख करके बैठे; और बांये घुटनेको पृथ्वीमें टेक कर धीरे २ तिल सहित उस अन्नको पिंडदानकी विधिसे दे ॥ ७ ॥

अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्य्याद्दारुचयं महत् ॥ भूप्रदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥ ८ ॥ तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णां स्रुचं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि स्रुवम् ॥ ९ ॥ पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥ मुसलेन सहन्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥ चात्रे विलीकमत्रैवमनश्नुवतो विभोः ॥ ११ ॥ अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ॥ अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ १२ ॥ अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥ एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥ यश्चैनं दाहयेत् सोपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

जो चिता बनानेके योग्यहो उस शुद्ध पृथ्वीमें इसके उपरान्त पुत्रआदि स्नान करकै चिता बनावै ॥ ८ ॥ उस चितामें दक्षिणकी ओरको शिर करकै अग्निहोत्रीको सीधा रक्खै, और दक्षिणको अग्रभागवाली घीसे भरकर स्रुक्को मुखमें और स्रुवको नासिकामें रखदे ॥ ९ ॥ पैरोंमें नीचेकी अरणीको और छातीपर ऊपरकी अरणीको, और सूप और चमसको

बाँये दाँये करवटमें रखदे ॥ १० ॥ और निर्भयहो रोदनको त्यागकर पुत्र मूशल और ओखल तथा चत्र और ओविलीको जंघाओंके बीचमें रखदे ॥ ११ ॥ मौन धारण कर दक्षिणकी ओरको मुख करकै अपसव्य हो पूर्वोक्त कर्मोंको कर बांये घुटनेको नवाकर चितामें दक्षिण दिशाकी ओर धीरे २ अग्नि जलावे ॥ १२ ॥ और उस समय इस यजुर्वेदके मंत्रको पढै कि हे अग्नि ! तू इस देहसे उत्पन्न हुआथा, और हे अग्नि ! अब तुझसेही यह देहआदि फिर उत्पन्नहो; इस कारण इस प्रज्वलित अग्निमें इस प्राणीको स्वर्गलोककी प्राप्तिके निमित्त यह स्वाहा है ॥ १३ ॥ गृहस्थीके इस भांति करनेपर वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै, और जो मनुष्य उसे दाह करताहै वह उत्तम संतानको पाताहै ॥ १४ ॥

यथा स्वायुधधृक् पांथो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः ॥ अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थानमिष्टं च विन्दति ॥ १५ ॥ एवमेषोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषितः ॥ लोकानन्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकविंशतितमः खंडः ॥ २१ ॥

जिस भांति पथिक अपने शस्त्रोंको साथमें लेकर निर्भय हो वनोंको लांघकर अपने अभिलषित स्थानपर पहुंचजाताहै ॥ १५ ॥ उसी भांति यह साग्निक मनुष्यभी अपने यज्ञपात्ररूप शस्त्रोंसे शोभायमान हो स्वर्ग आदि लोकोंको लांघ कर परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः खंडः २२.

अथानवेक्ष्य च चितां सर्व एव शवस्पृशः ॥ स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥ १ ॥ गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनंतरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक्पृथक् ॥ २ ॥ एवं कृतोदकान्सम्यक्सर्वान्शाड्वलसंस्थितान् ॥ आप्लुत्य पुनराचान्तान्वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

इसके उपरान्त चिताको न देखकर शवके स्पर्श करनेवाले सभी जन वहांसे चलकर वस्त्रसहित स्नान कर आचमन करें, प्रेतको स्थल (जहां जल न हो उस पृथ्वीपर) जल दें ॥ १॥ प्रेतके गोत्र और नामके अंतमें "तर्पयामि" कहै और दक्षिणको कुशाओंका अग्रभाग करकै तिलसहित जल पृथक् २ दें ॥ २ ॥ सब जने इस भांति तर्पण करकै फिर स्नान और आचमन करनेके उपरान्त घासवाली पृथ्वीपर बैठकर प्रेतके सब कुटुम्बी जो श्मशानमें गयेथे वह ऐसा कहैं कि ॥ ३ ॥

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधर्माणि ॥ धर्म्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥ मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम् ॥ यः करोति

---

१ यहांसे २२ खण्डसमाप्तितक गृहस्थी निरग्नि साग्नि साधारणके विषयमें व्यवस्था करतेहैं, साग्निमें जो कुछ विशेष है वह कह चुकेहैं उसकी सूचना स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थ अग्रिम २३ खण्डारम्भमें करेंगे, "एवमेवाहिताग्नेस्तु" इत्यादि श्लोकोंसे ॥

स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥ गंत्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च ॥ केन प्रलयः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥ पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः ॥ कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥ सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥ संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् ॥ ८ ॥ श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥ अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्य्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

"सम्पूर्ण प्राणी अनित्य हैं" इस कारण तुम शोक मत करो, यत्नपूर्वक धर्म कार्यको करो, यह धर्मही तुम्हारे साथ चलैगा ॥ ४ ॥ केलेके पिंडीके समान असार और जलके बुल्बुलेकी समान मनुष्यलोकमें जो मनुष्य सार ढूंढताहै वह अत्यन्त मूर्ख है ॥ ५ ॥ पृथ्वी, समुद्र, देवता, सभीका नाश है, तौ इस मृत्युलोकमें किसका नाश न होगा ॥ ६ ॥ पांच भूतोंसे बनाहुआ यह देह यदि देहधारण जनित कर्मोंके फलमें पंचत्वको प्राप्त होजाय, तौ इसमें शोक क्या है ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण संचयोंका अंतमें क्षय है, उन्नतिका शेष पतन है, संयोगका शेष वियोग है, और जीवनका शेष मरण है ॥ ८ ॥ जो "बंधु बांधव" रोदनके समय नेत्रोंसे आंसू डालतेहैं; प्रेत अवश होकर उनका भोजन करताहै, इस कारण रोदन करना उचित नहीं वरन यत्नपूर्वक कर्म करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृहाँल्लघुपुरःसराः ॥
स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरेतरैः ॥ १० ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥

इस प्रकार कहकर वह छोटे २ को आगे करकै घरको चलैं; और बंधु बांधवोंसे अन्य मनुष्य स्नान और अग्निके स्पर्शसे और आज्य (घृत) प्राशन करनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥१०॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः खंडः २३.

एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ॥
कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥ १ ॥

इसी भांति आहिताग्नि (अग्निहोत्री) काभी सब काम होताहै, केवल इसमें पात्र (स्रुक्-स्रुव) आदिका रखना, और सूत्रमें कहीहुई काली मृगछाला आदिक इस (अग्निहोत्रीके दाह) में अधिक होतीहै ॥ १ ॥

विदेशमरणेऽस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ॥ दाहयेदूर्णयाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ २ ॥ अस्थामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ॥ भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ३ ॥

यदि कोई विदेशमें मरजाय तौ उसकी अस्थियोंको लाकर घीसे छिडक ढककर दाह करै, और उसपर होमके पात्रोंको पूर्वकी समान रखदे ॥ २ ॥ यदि कदाचित् अस्थि न मिलैं

तौ अस्थियोंकी समान पत्ते लेकर पूर्वोक्तरीतिसे अर्थात् नराकृति बनाकर उसे[1] जलादे; अर्थात् पुत्तलैदहन करै, उसीदिनसे सूतकका आरंभ होताहै ॥ ३ ॥

महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि ॥
पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ ४ ॥

यदि अग्निहोत्री मनुष्यको दैववशसे महापातक लगजाय तौ उसका पुत्र जबतक उसके पापका नाश न होजाय तबतक सावधान होकर अग्निकी रक्षा करतारहै ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि ॥ गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥ सादयेदुभयं वाप्सु ह्यद्भ्योऽग्निरभवद्यतः ॥ पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥ ६ ॥

जो महापातकी मनुष्य प्रायश्चित्त न करै अथवा करते २ ही मरजाय तौ गृह्य गार्हपत्याग्निको निर्वाप करै, और श्रुतिमें कही सकलसामग्रीसहित अग्निहोत्रको जलमें फैंकदे ॥ ५ ॥ अथवा अग्नि और[1] पात्र दोनोंहीको जलमें सिरादे, कारण कि अग्नि जलसेही उत्पन्न हुआहै, और सम्पूर्ण पात्र ब्राह्मणोंको देदे, या जलादे, वा जलमेंही गेरदे ॥ ६ ॥

अनयैवावृता नारी दग्धव्या व्यवस्थिता ॥
अग्निप्रदानमंत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ ७ ॥

इसी रीतिसे अग्निहोत्रीकी स्त्रीके मरजानेपरभी उसका दाहकरै, केवल अग्निदेनेके समयमें मंत्र न पढै, यही मर्यादा है ॥ ७ ॥

अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतंत्रा पतिता न चेत् ॥
तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगंतिके ॥ ८ ॥

स्त्री यदि स्वाधीन हो और पतित न हो तौ अग्निहोत्रकी अग्निसेही उसका दाहकरै इसके उपरान्त होमके सम्पूर्ण पात्र उस स्त्रीके समीप उत्तरदिशामें पृथक् रखदे ॥ ८ ॥

अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थ्नां संचयनं भवेत् ॥ यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोऽधुनोच्यते ॥ ९ ॥ स्नानांतं पूर्ववत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः ॥ सिंचेदस्थीनि सर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥ १० ॥ शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य भस्मनः ॥ आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयद्गंधवारिणा ॥ ११ ॥ मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्य च ॥ श्वभ्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेद्दक्षिणामुखः ॥ १२ ॥ पूरयित्वावटं पंकपिंडशैवालसंयुतम् ॥ दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्यात्पूर्वाह्णकर्मणा ॥ १३ ॥

दूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचयन (अस्थीका इकट्ठा करना) होताहै; ऋषियोंने इस कार्यमें जो विधि वर्णन कीहै, उसे अब कहतेहैं ॥ ९ ॥ पूर्वकी समान स्नानतक कर्मकरके दक्षिणको मुखकर अपसव्य हो मौन धारणकर गायके दूधसे सम्पूर्ण अस्थियोंको छिडकै १०॥

१ इसीको पर्णनरदाहभी कहतेहैं इसमें पत्तेकी संख्या अन्यत्र लिखीहै जिस २ अंगमें जितने पत्ते लगाना चाहिये ।

शमी और ढाककी शाखाकी भस्मसे अस्थियोंको निकालकर गौके घी और सुगंधित जलसे उन्हें छिडके ॥ ११ ॥ मिट्टीके पात्रको संपुट (एकनीचे १ ऊपर बीचमें अस्थि) करके उसमें अस्थियोंको रखकर सूतसे लपेटदे फिर पवित्रभूमिमें गढा खोदकर दक्षिणको मुखकर उन्हें गाडदे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त उस गढेको पाट उसपर पङ्क-शैवाल रखकर उसको एकसार करदे यहांका सब कार्य पूर्वाह्णमें करै ॥ १३ ॥

एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ॥
स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्रमुच्यते ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोविंशतितमः खण्डः ॥ २३ ॥

अग्निहोत्रसे हीन मनुष्यकी दाहविधिभी इसी प्रकार है, स्त्रियोंकी समान उसको अग्नि दीजातीहै इसके उपरान्त न कहीहुई विधिको कहतेहैं ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः खण्डः २४.

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते॥होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥ १ ॥ अकृतं होमयेत्स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥ कृतं वा होमयेदन्नमन्वारंभविधानतः ॥ २ ॥

सूतकके होजानेपर सन्ध्या इत्यादि नित्यकर्मोंको न करै, यह नियम है और सूके अन्न वा फलसे वेदमें कहेहुए हवनको करै ॥ १ ॥ स्मृतिमें कहेहुए कर्ममें अकृतकी, और यदि अकृत न मिलै तौ कृताकृतकी, अथवा कृतअन्नकी आहुतिदे परन्तु अन्वारंभ[1] (ब्रह्मासे मिलकर) यह विधिसे करै ॥ २ ॥

कृतमोदनसक्त्वादि तंडुलादि कृताकृतम् ॥
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥

ओदन (भात) सत्तू आदिको कृत कहतेहैं, और तंदुल आदिको कृताकृत कहाहै; और व्रीहिआदिको अकृत कहतेहैं विद्वानोंने यह तीनप्रकारका हव्य कहाहै ॥ ३ ॥

सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥
एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति याजयेत् ॥ ४ ॥

सूतकमें, परदेशमें, असामर्थ्यमें, और श्राद्धके भोजनमें इन तीनों हव्योंसे आहुति दे ॥४॥

न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्॥ न दीक्षणात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ ५ ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥ अशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥

[1] उन्नीस वा दो कुशा ब्रह्मासनसे यजमानासनपर्यन्त एक लगाकर रखदेनेकाही नाम अन्वारंभ है ।

ब्रह्मचारी सूतकमें भी कभी अपने कर्मोंको न छोड़े; और दीक्षालैनेसे प्रथम यज्ञमें और कृच्छ्रआदि तपस्यामें भी न छोड़े ॥ ५ ॥ पिताके मरजाने परभी इनको कदापि दोष नहीं होता; ब्रह्मचारीको कर्मके अन्तमें तीनदिन अशौच होताहै ॥ ६ ॥

श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि ॥ प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्व्वदा ॥ ७ ॥ द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा ॥ सपिंडीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ८ ॥

अग्निहोत्री मनुष्यका श्राद्ध दाहसे ग्यारहवें दिन करना कर्तव्य है; और फिर प्रत्येक वर्षमें भी मरनेके दिन सर्वदा श्राद्ध करै ॥ ७ ॥ और प्रत्येक महीनेके बारह (मासिक) श्राद्ध और आद्य श्राद्ध (एकादशाह श्राद्ध) दो षाण्मासिक (छमासी) और सपिंडी करण यह सोलह श्राद्ध होतेहैं ॥ ८ ॥

एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ॥ न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा ॥ ९ ॥ यानि पंचदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ॥ एकस्मिन्नह्नि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥ १० ॥ न योषायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥ न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥ ११ ॥

यह दो षाण्मासिक श्राद्ध उस समय होतेहैं जब कि छैः महीने वा एक वर्षमें एक वा तीनदिन कमहों तब छठे महीनेमें दो श्राद्ध करने उचित हैं॥९॥ पुत्रहीन मनुष्यके लिये प्रथम-कहे जो पंद्रह श्राद्ध हैं उनको एकही दिनमें करदे, और पुत्रवान् मनुष्यके श्राद्ध सर्वदा(पृथक् २ प्रतिमास विधिसे) करै ॥ १० ॥ पुत्रहीन स्त्रीका स्वामी कभी श्राद्ध में उसे पिंड न दे, और पिता पुत्रको न दे, बडा भाई छोटे भाईको न दे ॥ ११ ॥

एकादशेऽह्नि निर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्यथाविधि ॥ प्रकुर्वीताग्निमान्पुत्रो मातापित्रोः सपिंडताम् ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् ॥ एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः ॥ १३ ॥ कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिंडाःस्युः षडिति स्थितिः ॥ १४ ॥

ग्यारहवें दिन अग्निहोत्रीपुत्र यथाविधि श्राद्ध करके अमावससे पहले कर्मको निवृत्तकर मातापिताकी सपिंडीकरणकरै ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणके उपरान्त एकोद्दिष्टकी विधिके अनुसार प्रत्येक महीनेमें पिंड न दे यह गौतमऋषिकाभी कथनहै कि श्राद्ध न करै ॥ १३ ॥ कर्षू (अर्घा) सहित आद्य और सोलह श्राद्ध और प्रत्याब्दिक (क्षयी) इतने श्राद्धोंके अतिरिक्त शेष श्राद्धोंमें छै पिंड होतेहैं यह मर्यादा है ॥ १४ ॥

अर्घेऽक्षयोदके चैव पिंडदानेऽवनेजने ॥ तंत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ १५ ॥ ब्रह्मदंडादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया ॥ श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्विंशतितमः खंडः ॥ २४ ॥

---

१ इसको ऊनषाण्मासिक और ऊनवार्षिक कहतेहैं; षाण्मासिक और वार्षिक तो बारहमेंही आगयाहै, ऐसे १४ एकादशाह और सपिंडी मिलाकर षोडश श्राद्ध होतेहैं उसीको षोडशी कहतेहैं ।

अर्घ, अक्षय्योदक, पिंडदान, अवनेजन, और स्वधावाचन इतने काम तंत्र(अर्थात् सभीको एकवार अर्घआदि देना इसविधि) से नकरै अर्थात् प्रत्येक २ दे ॥ १५ ॥ जिन मनुष्योंका ब्रह्मदंड (शाप) आदिसे युक्त होनेके कारण संस्कार नहीं कियागया; वह श्राद्धआदि सत्कर्मके भागी इसलोकमें कभी नहीं होसकते ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्विंशतितमःखण्डः समाप्तः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः खण्डः २५.

मंत्राम्नायेऽग्न इत्येतत्पंचकं लाघवार्थिभिः ॥ पठ्यते तत्प्रयोगे स्यान्मंत्राणामेव विंशतिः ॥ १ ॥ अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्या बहुवदूह्य च ॥ समस्य पंचमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥ २ ॥ प्रथमे पंचके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ॥ अपि पंचसु मंत्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥ ३ ॥ द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके ॥ चतुर्थे त्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥ ४ ॥ धृतिहोमे न प्रयुंज्याद्गोनामसु तथाष्टसु ॥ चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद्गोनामसु हि हूयते ॥ ५ ॥

वेदके मंत्रोंमें जो अग्निइत्यादि पांच मंत्र लाघवकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंने पढे हैं; उन मंत्रोंके प्रयोगमें बीस मंत्र होतेहैं ॥ १ ॥ कारण कि "अग्ने" इस पदके स्थानमें वायु, चंद्रमा, सूर्य इनको पढकर पंचमी सूत्रमें सब स्थान चार २ पर आहुति हुई इस श्रुतिसे ॥२ ॥ प्रथम पंचकमें पापी लक्ष्मी पद पांचों मंत्रोंमें होताहै. यज्ञके जाननेवाले ऐसा जानतेहैं ॥ ३ ॥ दूसरे पंचकमें "पतिघ्नी"पद और तीसरे पंचकमें "अपुत्रा" और चौथे पंचकमें "अपसव्या" पद होताहै, यही बीस आहुति हैं ॥४ ॥ धृतके होममें और आठों गोनामके होमोंमें इसका प्रयोग नहीं होता चौथे और गोनामोंमें "अघ्न्ये" इस मंत्रसे आहुति दीजातीहै ॥ ५ ॥

लताग्रपल्लवो गूढः शुंगेति परिकीर्त्यते ॥ पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबंधुस्तथाऽश्रुतः ॥ ६ ॥ शलाटुर्नीलमित्युक्तं ग्रंथः स्तबक उच्यते ॥ कपुष्णिकाभितः केशा मूर्ध्नि पश्चात्कपुच्छलम् ॥ ७ ॥ श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ॥ तिलतंडुलसम्पक्वः कृसरः सोऽभिधीयते ॥ ८ ॥

लताके आगेका जो गुप्त पत्ताहै उसे शुंगा कहतेहैं, और पतिव्रताको व्रतवती और जिसने वेद न पढाहो उसे ब्रह्मबंधु कहतेहैं ॥६ ॥ नीलकी शलाटु और गुच्छेको ग्रन्थ कहते हैं, स्त्रीके शिरपरके दोनों ओरके केशोंको कपुष्णिका और पीछेके केशके जुडेको कपुच्छल कहतेहैं ॥७॥ सेहीको श्वाविन् और शलाका और बाणको वीरतर कहतेहैं इकट्ठे पके तिल और चावलोंको कृसर कहते हैं ॥ ८ ॥

नामधेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा ॥ यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यातिथिदेवताः ॥ ९ ॥ आग्नेयाद्येऽथ सर्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ॥ आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥ १० ॥ द्वंद्वान्येतानि बहुवद्दक्षाणां जुहुयात्सदा ॥

द्वंद्वद्वयं द्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ॥ ११ ॥ देवतास्वपि हूयंते बहुवत्सार्वपित्तयः ॥ देवाश्च वसवश्चैव द्विषद्देवाश्विनौ सदा ॥ १२ ॥

मुनि, वसु, पिशाच, यक्ष, पितर, देव, और अतिथि देवता इनका पूजन बहुवचनांत नामसे लेकर करे (जैसे मुनिभ्यो नम इति) ॥ ९ ॥ कृत्तिका, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वाषाढा, और अश्विनी ॥ १० ॥ यह सब नक्षत्रद्वंद्व (दो २) हैं इनको सर्वदा बहुवचन पदसे (यथा कृत्तिकाभ्यः स्वाहा इत्यादि) आहुति दे; और शेष दो द्वंद्वोंको द्विवचनांत पदसे और बाकी नक्षत्रोंको एकवचनांत पदसे आहुति दे ॥ ११ ॥ देवताओंमेंभी सबापितर और देव, वसु, द्विपदेव अश्विनीकुमार इनको बहुवचनांत पदसे ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ॥
बाढमोमिति वा ब्रूयात्तथैवानुपपालयेत् ॥ १३ ॥

गुरु जिस व्रतके कर्ममें ब्रह्मचारी को आज्ञा दे उसमें "सत्य है" अथवा "ॐ" (अंगीकार है) इस भांति कहे और वैसेही करके आज्ञाका पालनभी करे ॥ १३ ॥

सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणा ॥ आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्य्यं न चेद्भवेत् ॥ १४ ॥ न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन ॥ जलक्रीडामलंकारान्व्रती दंड इवाप्लुवेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिका स्नान जबतक न करै तबतक क्षौरके समय शिखासहित मुंडन करावै, यह मुण्डन आदि जब करै जबकि शरीरके मरणपर्यन्त उसका ब्रह्मचर्य्य न हो ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी बिना आपत्तिके आये कदापि शरीरपर उबटना न करै; और जलक्रीडा वा भूषण इत्यादिकोभी धारण न करै और मुसलवत् (गोता मारकर) स्नान करै ॥ १५ ॥

देवतानां विपर्य्यासे जुहोतिषु कथं भवेत् ॥
सर्वं प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥

यदि किसी समय हवनमें देवताओंका विपर्यास (आगेका पीछे पछिका आगे) होजाय तौ प्रायश्चित्तकी सब आहुति देकर फिर क्रमसे हवन करे ॥ १६ ॥

संस्कारा अतिपत्येरन्स्वकालाच्चेत्कथंचन ॥
हुत्वा तदेव कर्तव्या ये तूपनयनादधः ॥ १७ ॥

यदि यज्ञोपवीतसे पहले संस्कारोंकी अतिपत्ति होजाय तौ प्रायश्चित्तकी सब आहुति देकर करै ॥ १७ ॥

अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नं योऽन्यकामतः ॥
वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचविंशतितमः खंडः ॥ २५ ॥

जो मनुष्य नवयज्ञके बिना किये हुए अज्ञानतासे नवान्नका भोजन करताहै उसका प्रायश्चित्त वैश्वानर (अग्निका) चरु है, अर्थात् उससे हवन करै ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चविंशः खंडः ॥ २५ ॥

षड्विंशः खण्डः २६.

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि ॥ वृषभोत्सर्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥ १ ॥ श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्यारंभे तथैव च ॥ कथमेतेषु निर्वापाः कथं चैव जुहोतयः ॥ २ ॥ देवतासंख्यया ग्राह्या निर्वापास्तु पृथक्पृथक् ॥ तूष्णीं द्विरेव गृह्णीयाद्धोमश्चापि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्वा यत्र कीर्तिता ॥ शेषं चैव भवेत्किंचित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥ चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ यथा ॥ होतव्यं मेक्षणे वान्य उपस्तीर्याभिघारितम् ॥ ५ ॥ कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ॥ वृषोत्सर्गो यतो नात्र गोभिलेन तु भाषितः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) जो समशनीय (खानेयोग्य) चरु है, गोयज्ञकर्ममें, वृषोत्सर्गमें, अश्वमेधमें ॥ १ ॥ और श्रावणीमें, प्रदोषमें, कृषिके आरंभमें इतने स्थानोंपर निर्वाप आहुति किस भांति होतीहै ? ॥ २ ॥ (उत्तर) देवताओंकी संख्याके अनुसार उतनेही निर्वाप पृथक् २ ग्रहण करै, और आहुतिभी तूष्णीं (मन्त्रके विना) दो पृथक् २ देनीं ॥ ३ ॥ जहां जितने होमको कहाहो, अथवा जितनेसे हवन होसकै और उनमेंसे कुछ शेष रहजाय तौ उतनाही चरु बनावे ॥ ४ ॥ समशनीय चरुमें और होमके चरुमें तो मेक्षणसे हवन करैं; और अन्य चरुमें घीसे संयुक्तकरकै उपस्तीर्णकिये (एकत्रकिये) से हवन करै ॥ ५ ॥ कात्यायन ऋषिनें काल और विधि संक्षेपसे कहीहै, वृषोत्सर्गमें गोभिल ऋषिनें नहीं कही॥६॥

पारिभाषिक एव स्यात्कालो गोवाजियज्ञयोः ॥ अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपाल्येऽह्नि कालो गोयज्ञकर्मणः ॥ नीराजनेऽह्नि वाश्वानामिति तन्त्रान्तरे विधिः ॥ ८ ॥ शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ॥ धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥ ९ ॥ आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्मणि याज्ञिकाः ॥ यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥ १० ॥

गौ और अश्वके यज्ञमें वही समय है जो पारिभाषिक हो (अर्थात् जिसका समय स्वयं नियत कियाहो) यह स्वस्तर और आरोहणमेंभी अन्यऋषिके उपदेशसे होताहै ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपालीदिनमें गोयज्ञकर्म और नीराजनके दिनमें अश्वमेधका काल होताहै, यह शास्त्रान्तरोंकी विधि है ॥ ८ ॥ कोई २ ऋषि शरद और वसंतऋतुमें नवयज्ञ कहतेहैं; और कोई अन्नके पकनेपर कहतेहैं; और वानप्रस्थको श्यामाक (समा) पकनेपर कहाहै ॥ ९ ॥ आश्विनकी पूर्णिमा, कृषि; और वास्तुकर्म इनमें यज्ञके तत्त्वके जाननेवाले ऋषि इसप्रकारके होम करनेको कहतेहैं ॥ १० ॥

द्वे पंच द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ॥
शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

दो २, पांच ५ फिर दो २ क्रमानुसार इतनीही आहुति हविकी और शेष आहुति घीकी देनी, यह कात्यायनऋषिका वचन है ॥ ११ ॥

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत्पृषातकमुच्यते ॥
दध्येके तदुपासाद्य कर्त्तव्यः पायसश्चरुः ॥ १२ ॥

घीमिलेहुए दूधको पृषातक कहतेहैं, और किसीका यहभी कथन है कि उसमें दधि मिलाकर पायसचरु बनाले ॥ १२ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्रा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः ॥
यवाश्चौषधयः सप्त विपदं घ्नंति धारिताः ॥ १३ ॥

व्रीहि, वा शालि, मूंग, गेहूं, सरसों, तिल, जौ यह सात औषधी धारण करनेंसे सम्पूर्ण विपत्ति दूर होजातीहैं ॥ १३ ॥

संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्य्यंते गौतमादिभिः ॥
अतोष्टकादयः कार्य्याः सर्वकालप्रमोदिनाम् ॥ १४ ॥

गौतमआदि ऋषियोंनें पुरुषके संस्कार इसभांति कहेहैं, इसकारण अष्टका आदि सम्पूर्ण कर्म जिस समयमें कहेहैं उसीमें करने उचित हैं ॥ १४ ॥

सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणि यो द्विजः ॥
स पंक्तिपावनो भूत्वा लोकान्प्रैति घृतश्च्युतः ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण अष्टका आदिकर्मोंको एकवारभी करताहै, वह पंक्तिका पवित्र करनेवाला होकर घृतसे सींचेहुए लोकों (स्वर्गादिकों) को प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकः शुचिः ॥
नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥ १६ ॥

जो मनुष्य कर्ममें स्थितहोकर एकदिनभी पवित्रहोकर अग्निकी सेवा करताहै, वह उस समयसे एकसौ दिनतक स्वर्गमें सुख भोगताहै ॥ १६ ॥

यस्त्वाधायाग्निमाशास्य देवादीन्नैभिरिष्टवान् ॥
निराकर्त्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षड्विंशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य अग्निका आधानपूर्वक देवताओंके आशीर्वादकी आज्ञासे इन यज्ञोंमें उनका पूजन करताहै, और फिर देवताओंका तिरस्कार करताहै उस मनुष्यको निंदित जानना ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां षड्विंशः खंडः समाप्तः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः खण्डः २७.

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् ॥
अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्यं तदुच्यते ॥ १ ॥

जो श्राद्धकर्मकी आदिमें होताहै और जो दक्षिणाकर्मके अंतमें होताहै और अमावसको जो दूसरा श्राद्ध होताहै उसे अन्वाहार्य्य कहतेहैं ॥ १ ॥

एकसाध्येषु बर्हिःषु न स्यात्परिसमूहनम् ॥
नोदगासादनं चैव क्षिप्रहोमा हि ते मताः ॥ २ ॥

एक दिनके हवनमें बर्हि और भिन्न २ कुशाओंमें परिसमूहन और उत्तर २ पात्रोंका रखना नहीं होता, कारणकि इसको क्षिप्रहोम कहतेहैं ॥ २ ॥

अभावे व्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा ॥
तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ॥ ३ ॥

व्रीहि और जौके अभावमें दही और दूधसे, और उनकेभी न मिलनेपर लपशी वा जलसेही हवन करे ॥ ३ ॥

रौद्रं तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिसारिकम् ॥
उक्त्वा मंत्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥ ४ ॥

भयंकर मन्त्र, राक्षसोंके मन्त्र, पितरोंके मन्त्र, असुरोंके मन्त्र, अभिचारके मन्त्र, मनको रोककर इनका उच्चारण करकै आचमन करै ॥ ४ ॥

यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते ॥
तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्द्विजातये ॥ ५ ॥

चन्द्रमा वा अमृतवल्ली यदि यज्ञके दिन वरुण दिशामें दीखजाय तौ वहां व्याहृति (भूः आदि) योंसे हवनकरकै द्विजातियोंको दंडदे अर्थात् प्रायश्चित्त करावै ॥ ५ ॥

लवणं मधु मांसं च सारांशो येन हूयते ॥
उपवासेन भुञ्जीत नोरु रात्रौ न किंचन ॥ ६ ॥

लवण, सहत, मांस, सारका भाग इनका जो हवन करताहै वह दिनमें उपवास करै और रात्रिमें अधिक न खाय, ॥ ६ ॥

स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होतृहव्ययोः ॥ प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥ ७ ॥ प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ॥ प्राक्पौर्णमासादर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥ ८ ॥ वैश्वदेवे त्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ॥ प्रायश्चित्तमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद्व्रतम् ॥ ९ ॥ होमद्वयात्यये दर्शपौर्णमासात्यये तथा ॥ पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥ १० ॥

यदि होता और हव्य सायंकालको समयपर न मिलै तौ प्रातःकालही प्रायश्चित्तकी आहुतिके पीछे आहुति दे ॥ ७ ॥ और सायंकालकी आहुतिसे पहलेभी प्रायश्चित्तकी आहुति दे, इस भांति करनेसे हवनका समय उलंघन नहीं होता, पूर्णमासीसे प्रथम और अमावससे पहले पूर्णिमाके ॥ ८ ॥ यदि वैश्वदेवका उलंघन होजाये तौ अहोरात्र भोजन न करै फिर प्रायश्चित्तकी आहुति देकर व्रतका प्रारंभ करै ॥ ९ ॥ यदि दो हवनका उलंघन होजाय या अमावस वा पूर्णमासीका उलंघन होजाय तौ फिर अग्निका आधान करै, यह शिक्षा भार्गवकी है ॥ १० ॥

अनूचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः ॥
रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तंबलः शोण उच्यते ॥ ११ ॥

अनूच माणवक को कहते हैं एण काले मृगको और गोरेको रुरु और लाल को तम्बल कहतेहैं ॥ ११ ॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासांतिको विशः ॥ १२ ॥ ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरा नॄणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणका केशोंतक, क्षत्रियका मस्तकतक, नासिकातक वैश्यका दंड प्रमाणसे होताहै ॥ ॥ १२ ॥ और वह दंड ऐसेहों कि सीधेदेखनेमें अच्छे और घुने न हों, और मनुष्योंको डरानेवाले न हों ॥ १३ ॥

गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥ न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥ १४ ॥ येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥ वरस्तत्र भवेद्दानमपि वाऽऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंने गौको वेदोंमें भी उत्तम कहाहै; इसी कारण गौसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, इसी से गौको वर कहतेहैं ॥ १४ ॥ जिन व्रतोंके अंतमें दक्षिणा नहीं कहीहै वहां वर (गौ) दक्षिणा दे, अथवा गुरुको वस्त्रोंसे ढकदे ॥ १५ ॥

अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥ प्रमादिकं श्रुतौ यस्स्यायातयामत्वकारि तत् ॥ १६ ॥ प्रत्यब्दं यदुपाकर्म्म सोत्सर्गं विधिवद्द्विजैः ॥ क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥ १७ ॥ अयातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म्म क्रियते द्विजैः ॥ क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥ गायत्रीश्च सगायत्रां बार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥ शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुर्य्यात्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥

इनमें वेद अयातयाम (जिसमें सार न हो ऐसा) होजातेहैं वह यह हैं कि अस्थान(जिस स्थानसे बोलना चाहिये उससे वर्णका नहीं बोलना) ऊँचे श्वाससे बोलना, विच्छेदसे बोलना, बडे शब्दसे बोलना, यदि यह प्रमादसे होजांय तो सारहीन होताहै ॥ १६ ॥ प्रतिवर्षमें जो उपाकर्म वा उत्सर्ग (जो श्रावणीमें होताहै) इनको ब्राह्मण करतेहैं, उससे फिर वेदोंकी आप्यायन (सारता) होतीहै ॥ १७ ॥ ब्राह्मण जो कर्म क्रीडासहित अयातयाम वेदोंसे करतेहैं वह कर्म उनकी सिद्धि करनेवाले होतेहैं ॥ १८ ॥ तीनों व्याहृतिसहित गायत्री और गायत्र (पवमानसूक्त) और बार्हस्पत्य (बृहस्पतिका सूक्त इन तीनोंको शास्त्रके अनुसार शिष्योंको उपदेश देकर फिर वेदका उपाकर्म करै ॥ १९ ॥

छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ॥ तच्छन्दस्काभिरेवर्ग्भिराद्याभिर्होम इष्यते ॥ २० ॥ पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः ॥ अङ्गेषु चर्चामन्त्रेषु इति षड्जुहोतयः ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

संहिताके क्रमसे इक्कीस प्रकारके छंद हैं उन्हीं छंदोंकी ऋचाओंके मन्त्रोंसे होम करनेकी विधि है ॥ २० ॥ गानभाग, (सामवेद) ब्राह्मण[1] भाग अंग और चर्चामंत्रोंके उत्तरादि पर्वोंसे हवनकरै, उपाकर्ममें यह छः हवन किये जाते हैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २७ ॥

१ "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" ऐसा पूर्वमीमांसामें जैमिनिका सूत्र है.

अष्टाविंशः खंडः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥
भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥

जौका नाम अक्षतहै व भुनेहुए जौके होनेपर उसे धाना कहतेहैं और भुने व्रीहियोंको लाजा कहतेहैं और घडोंका नाम खांडिक है ॥ १ ॥

नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥ नचोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षिणायनात् ॥ २ ॥ उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्म्मवित् ॥ उत्सर्गश्चैक एवैषां तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य व्यवधान (दूर बैठकर) रहस्यों और उपनिषदोंको न पढै और छः महीनेतक दक्षिणायनमेंभी इनको न पढै ॥ २ ॥ धर्मका जाननेवाला मनुष्य उपाकर्मको करकै उत्तरायणमें वेदोंको पढै, और इनके उत्सर्ग कर्ममें ब्राह्मणोंके लिये तैषी (पौषी पूर्णिमा) में वा भाद्रपदमें एकही कहाहै ॥ ३ ॥

अजातव्यञ्जनाऽलोम्नी न तया सह संविशेत् ॥
अयुगूः काकवन्ध्याया जाता तां न विवाहयेत् ॥ ४ ॥

जिसको यौवनका चिह्न उत्पन्न नहीं हुआ हो और जिसके शरीर गुह्यस्थानमें लोम उत्पन्न नहीं हुए हों उस स्त्रीके साथ भोग न करै; और जो स्त्री अयुगू हो अथवा जिसकी माता काकवंध्या हो,अर्थात् उसको वही एक कन्या सन्तान हुई हो और उसके पीठपर दूसरी सन्तान उत्पन्न हुई न हो. तो ऐसे उस काकवन्ध्या माताकी कन्याके साथ विवाह न करै ॥ ४ ॥

संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ॥
स्मार्त्ते कर्म्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥ ५ ॥

मिले हुए पदोंका उच्चारण यह त्रिपद प्रक्रम (प्रारंभ) जो सब स्मृतिमें कहेहैं उनमें होताहै और जो कर्म श्रुतिमें कहेहैं उनमें अध्वर्युके कथनके अनुसार होताहै ॥ ५ ॥

यस्यां दिशि बलिं दद्यात्तामेवाभिमुखो विशेत् ॥ श्रवणाकर्म्माणि भवेयच्च कर्म्म न सर्वदा ॥ ६ ॥ बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ॥ प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकन्तु भवेत्सदा ॥ ७ ॥

जिस दिशामें बलि दे उसी दिशाकी ओरको मुख करकै बैठे, और जो कर्म सर्वदा नहीं होते ऐसे कर्मोंको श्रावणीमेंही करले ॥ ६ ॥ बलिके शेषका हवन और अग्निका प्रणयन (स्थापन) यह प्रतिदिन नहीं होते परन्तु उल्मुक (उल्का) तो प्रतिदिनही होताहै ॥ ७ ॥

---

१ जिसके एक वार सन्तान होगई हो; और फिर गर्भ न रहाहो उसे काकवंध्या कहतेहैं ।

२ यह निषेध जिन जातियोंमें परपूर्वा (अर्थात् पुनर्विवाह कराना धर्म शास्त्रसे अनुमत होताहै उन)के अर्थ है, कन्यासे यहां अत्यन्त बालक ५।६। वर्षकी लेना, कारणकि आठवें वर्ष गर्भसुधा विवाहके योग्य माना गयाहै ।

पृषातकप्रेषणयोर्नवस्य हविषस्तथा ॥ शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिणः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ॥ अवेक्षेद्धविषः शेषं नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥ ९ ॥

पृषातक और प्रेषणमें, नवीन हविमें और हविके शेषके भोजनमें मंत्रोच्चारणके सभी अधिकारी हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मणके समीप न होनेपर स्वयंही पृषातकका दर्शन करले; और नवयज्ञमें शेष हविःको भी भक्षण करै ॥ ९ ॥

सफला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते ॥ घना विसिकताशंकाः स्मृता जातशिलास्तु ताः ॥ १० ॥ नष्टो विनष्टो मणिकः शिलानाशे तथैव च ॥ तदैवाहृत्य संस्कार्यो नापेक्षेदाग्रहायणीम् ॥ ११ ॥

जिस बेरीकी शाखापर फल लगेहों उसे फलवती कहते हैं; और जिन घन, और जिन पर रेतका संदेहभी न हो उन बेरकी शाखाको जातशिला कहते हैं (?) ॥ १० ॥ जो मणिक (पूर्वोक्त पात्र मटका) नष्ट (अदर्शन) हो गयाहो अर्थात् नहीं मिलताहो अथवा विनष्ट (फूटा) हो गयाहो, या वैसेही शिलाका नाश हो गयाहो तौ उसी समय उसे संस्कार करले, आग्रहायणी (अगहन सुदी १५) की प्रतीक्षा न करै ॥ ११ ॥

श्रवणाकर्म्म लुप्तंचेत्कथञ्चित्सूतकादिना ॥
आग्रहायणिकं कुर्य्याद्बलिवर्जमशेषतः ॥ १२ ॥

यदि किसी प्रकार सूतक आदिसे श्रावणीका कर्म न हुआ हो तौ बलिकर्मको छोडकर सम्पूर्ण कर्म आग्रहायणीको करले ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वंस्वस्तरशायी स्यान्मासमर्द्धमथाऽपि वा ॥ सप्तरात्रं त्रिरात्रं वा एकां वा सद्य एव वा ॥ १३ ॥ नोर्द्ध्वं मंत्रप्रयोगः स्यान्नाग्न्यगारं नियम्यते ॥ नाहतास्तरणं चैव न पार्श्वं चापि दक्षिणम् ॥ १४ ॥ दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्त्या वापि कर्म्मणः ॥ कुंभं मंत्रवदासिंचेत्प्रतिकुंभमृचं पठेत् ॥ १५ ॥

इसके पीछे एकमहीना, वा पन्द्रहदिन, वा सातरात्रि या तीनरात्रि, वा एक दिन अथवा उसी समय अपनी शक्तिके अनुसार साफ बिस्तर पर शयन करै ॥ १३ ॥ बिस्तर पर सोनेके उपरान्त मन्त्रका प्रयोग, अग्निशालाका नियम श्रेष्ठ बिछौना और दहिनी करवट नहीं लेनी चाहिये ॥ १४ ॥ यदि मनुष्यने दृढहोकर भी आग्रहायणीके दिन कर्मको न करा हो तो दो घडे मन्त्रसे सींचै और प्रत्येक घडे पर ऋचाको पढै ॥ १५ ॥

अल्पानां यो विघातः स्यात्स बाधो बहुभिः स्मृतः ॥ प्राणसम्मित इत्यादि वसिष्ठबोधितं यथा ॥ १६ ॥ विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ॥ तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

छोटे कर्मोके विघातको बहुतसे ऋषि 'बाध' कहतेहैं, जिस भांति प्राणसंमित (शक्तिके अनुसार) इत्यादि वशिष्ठ ऋषिका कहा बाधित (बाध) है ॥ १६ ॥ जिस स्थानपर वचनोंका परस्परमें विरोध हो, वहां बहुतसे ऋषियोंका वचन प्रामाणिक होताहै, और जहां दोनोंमें समान प्रमाण हो वहां यह न्याय कहाहै ॥ १७ ॥

त्रैयंबकं करतलमपूपा मंडकाः स्मृताः ॥ पालाशगोलकाश्चैव लोहचूर्णं च चीवरम् ॥ १८ ॥ स्पृशन्ननामिकाग्रेण क्वचिदालोकयन्नपि ॥ अनुमंत्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमंत्रयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः ॥ २८ ॥

कि त्रैयंबक हाथके तलको, और मंडक अपूर्पोको, और गोलक ढाकोंको और लोहके चूर्णको चीवर कहतेहैं ॥ १८ ॥ किसी स्थानमें अनामिकाके अग्रभागसे स्पर्श करके वा किसी कर्ममें इनको देखकरही सम्पूर्ण कर्ममें मन्त्र पढ और इसी भांतिसे सर्वदा पढै ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशः खंडः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः खंडः २९.

क्षालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ॥
तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्थे प्राणदारुणि ॥ १ ॥

पशुके स्रोतोंको दर्भ (कुशा) के कूर्च (कूंची) से धोवै और मौन धारणकर विना मन्त्रके अपनी इच्छानुसार क्रमसे अर्थात् चाहै जिस स्रोतको पहले धोले, वपाके लिये जो वपा प्राणोंका काठ है (?) ॥ १ ॥

सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ॥
नाभिः श्रोणिरपानं च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥ २ ॥

गौके चौदह स्रोत हैं सात शिरमें और चार स्तन नाभी (डोंडी) योनी और गुदाके ॥ २ ॥

क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ॥
वपामादाय जुहुयात्तत्र मंत्रं समापयेत् ॥ ३ ॥

मांसके निकालनेका जो छुरा है ॥ और कृत्स्ना स्विष्टकृत् और आवृत कहतेहैं उस आवृत्से वपाको लेकर हवन करै; और उस समय मन्त्रको समाप्त करै अर्थात् फिर न पढै ॥ ३ ॥

हृज्जिह्वाक्रोडसक्थीनि यकृद्वृक्कौ गुदं स्तनः ॥ श्रोणिस्कंधसटापार्श्वं पश्वंगानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥ एकादशानामंगानामवदानानि संख्यया ॥ पार्श्वस्य वृक्कसक्थ्नोश्च द्वित्वाद्द्वाश्चतुर्दश ॥ ५ ॥

हृदय, जिह्वा, छाती, हाड, यकृत्, वृक्क, गुदा, स्तन, श्रोणी, स्कंध और सटा (ठांट) के दोनों पार्श्व यह पशुके अंग हैं ॥ ४ ॥ इन ग्यारह अंगोंकी संख्यासे ग्यारह अवदान होतेहैं, और पार्श्व वृषण (अंडकोश) और सक्थि (जांघ) यह दो २ होतेहैं इसीकारणसे पशुके चौदह अंग कहेहैं ॥ ५ ॥

चरितार्था श्रुतिः कार्या यस्मादप्यनुकल्पशः ॥
अतोऽष्टर्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥

त्रमें श्रुतिको चरितार्थ करनाहै; तौ छागकी चरुमेंभी आठ ऋचाओंसे

ते क्रियेरन्प्रस्तरे पशोः ॥ तावंतः पायसान्पिंडान्पश्वभावेऽपि ऊहनव्यंजनार्थं तु पश्वभावेऽपि पायसम् ॥ सद्रवं श्रपयेत्तद्दणे ॥ ८ ॥

अवदान कियेजायँ, यदि पशु न होय तौ उतनेही पायस खीरके है न होनेपर ऊहन व्यंजनके अर्थ पायस चरुको करै और अन्वष्टकाके कर्ममें उसी पायसको द्रव्यसहित ढीला पकावै ॥ ८ ॥

प्राधान्यं पिंडदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ गयादौ पिंडमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥ ९ ॥ भोजनस्य प्रधानत्वं वदंत्यन्ये महर्षयः ॥ ब्राह्मणस्य परीक्षायां महायत्नप्रदर्शनात् ॥ १० ॥ आमश्राद्धविधानस्य विना पिंडैः क्रियाविधिः ॥ तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥ ११ ॥ विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्धृदि स्थितम् ॥ प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥ १२ ॥

कोई २ पंडित पिंडदानकोही प्रधान कहतेहैं, कारण कि गयाआदि तीर्थोंमें पिण्डही दिया जाताहै ॥ ९ ॥ कोई २ ऋषि भोजनकोही प्रधान कहतेहैं; कारण कि ब्राह्मणकी परीक्षाके विषयमें शास्त्रमें अनेक यत्न देखे गयेहैं ॥ १० ॥ आमश्राद्धकी विधिका अनुष्ठान विना पिण्डके होताहै कारण कि यदि ब्राह्मण मिलभी जाय तौ भी अनध्यायकी विधि शास्त्रसे सुनीहै ॥ ११ ॥ विद्वानोंके मतको संग्रह करके मैंने यह स्थिर कियाहै कि दोनों कार्यही प्रधान कहेजांय जिससे यह समुच्चय अर्थात् भोजन और श्रेष्ठ ब्राह्मण यह दोनोंही होने उचित हैं ॥ १२ ॥

प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः ॥ दक्षिणोद्वासनान्तं च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥ १३ ॥ सन्नयश्चावदानानां प्रधानार्थो नहीतरः ॥ प्रधानं हवनं चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥ १४ ॥

पितरोंके कर्ममें पशुका प्रोक्षण (मंत्रोंसे छिडकना) अपसव्य होकर (दक्षिण कंधेपर जनेऊ रखकर) करै ॥ १३ ॥ अवदानोंका संनय भी और प्रधान होम यही दोनों प्रधान प्रधान कर्मके लिये हैं अन्य नहीं हैं, और शेष कर्म प्रकृति यज्ञके समान होताहै ॥ १४ ॥

द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता ॥
कीलिनं सजलं प्रोक्तं दूरखातोदको मरुः ॥ १५ ॥

ऊँचे स्थानका नाम द्वीप है, और इष्टका ईटोंका सादा है, और जलसहित स्थानका नाम कीलिन है; और जहां दूरतक खोदनेसे जल निकलताहै उसे मरु (मारवाड) कहतेहैं ॥ १५ ॥

द्वारे गवाक्षस्तम्भैः कर्दमभित्त्यन्तकोणवेधैश्च ॥
नेष्टं वास्तुद्वारं विद्धमनाक्रांतमार्य्यैश्च ॥ १६ ॥
वशं गमाविति व्रीहींश्चक्षन्नश्चेति यवांस्तथा ॥
असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात्क्षिप्रहोमवत् ॥ १७ ॥

जिसमें गवाक्ष खिडकी हों और जिसकी दीवारें कर्दम गारेकी हों और कोनोंमें जिस के वेध हो, और जिसमें सज्जनोंका निवास नहो उस घरका वह दरवाजा अच्छा नहीं होता ॥ १६ ॥ "वशंगमौ" इस मंत्रसे व्रीहि और "शंखश्च" इस मंत्रसे जौ का क्षिप्रहवनके समान होम करै, परन्तु जो मंत्रमें 'असौ' पद है वहां जो नामहो उसे कहै ॥ १७ ॥

साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ॥ अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्को विधीयते ॥१८॥ कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमंजलौ ॥ कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनत्रिंशत्तमः खण्डः ॥ २९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः समाप्तः ॥ ३ ॥

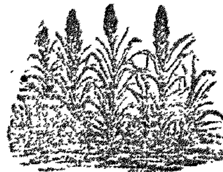
समाप्तेयं कात्यायनसंहिता ॥ ९ ॥

अक्षत, फल, जल, दही यह जिसमें हों वह अर्घ होताहै, और जिसमें दही दूध हों उसे मधुपर्क कहतेहैं ॥ १८ ॥ जिसमें अपने पूजनीयको अर्घ देना हो उसकी अंजुलीमें कांसीके पात्रसे अर्घ देना उचित है; और मधुपर्कको कांसीके पात्रसे ढककर कांसीके पात्रमें रखकर दे ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनत्रिंशः खण्डः समाप्तः ॥ २९ ॥

(कर्मप्रदीपके परिशिष्ट वा तीसरा प्रपाठ समाप्त हुआ)

इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥ ९ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ बृहस्पतिस्मृतिः १०.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारंभः ॥ इष्ट्वा क्रतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ॥ भगवंतं गुरुं श्रेष्ठं पर्यपृच्छद्बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ॥ यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महत्तम ॥ २ ॥ एवमिंद्रेण पृष्टोऽसौ देवदेवपुरोहितः ॥ वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ह ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्रने जिनकी श्रेष्ठ दक्षिणा हुई है ऐसे सौ यज्ञोंको समाप्त करके भगवान् उत्तमगुरु बृहस्पतिजीसे पूछा ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! किस २ वस्तुके दान करनेसे सर्वदा सुखकी वृद्धि होतीहै और जिस वस्तुके दानका अक्षय और महान्‌फल है उस दानकोभी हे तपोधन ! मुझसे कहिये ॥ २ ॥ इन्द्रसे इस प्रकार पूछेजाकर देवराज पुरोहित पंडितश्रेष्ठ, वाणीके पति बृहस्पति बोले कि ॥ ३ ॥

सुवर्णदानं भूदानं गोदानं चैव वासव ॥
एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

हेइन्द्र ! सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदानका करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ४ ॥

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वासव ॥ सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥ फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यमालिनीम् ॥ यावत्सूर्यकृता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥ यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः ॥ अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडान्निवर्त्तनम् ॥ दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥ सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतंद्रितम् ॥ बालवत्साप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥ विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेंद्रियाय ॥ यावन्मही तिष्ठति सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनंतम् ॥ १० ॥ यथा बीजानि रोहंति प्रकीर्णानि महीतले ॥ एवं कामाः प्ररोहंति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥ यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिंदुः प्रसर्पति ॥ एवं भूम्याः कृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति ॥ १२ ॥ अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥ स नरः सर्वदो भूप यो ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥ यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥ स्वयं दत्ता सहस्राक्ष भूमिर्भरति भूमिदम् ॥ १४ ॥ शंखं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ॥ भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ १५ ॥ आदित्यो वरुणो

वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥ शूलपाणिश्च भगवानभिनंदंति भूमिदम् ॥ १६ ॥ आस्फोटयंति पितरः प्रवल्गंति पितामहाः ॥ भूमिदाता कुले जातः स च त्राता भविष्यति ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान कियाहै मानों उसने सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, मणि, रत्न इन सबका दान करलिया ॥ ५ ॥ हलसे जुती बीजयुक्त और जिसमें खेत शोभायमान हो ऐसी पृथ्वीके दान करनेंवाला मनुष्य जबतक सूर्यका प्रकाश त्रिलोकी में रहैगा तबतक वह स्वर्गमें निवास करैगा ॥ ६ ॥ जो मनुष्य आजीविकासे दुःखी होकर कोईसा पाप करता है वह गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ दश हाथ के दंडसे तीस दंडभर लंबी और चौडी पृथ्वीको गोचर्म कहाहै, यह महान् फलकी देनेंवाली होतीहै ॥ ८ ॥ जहां हजार गौ और बैल आनंदसहित स्थित हों उन गौओंमें जो प्रसूता हो उसके बछिया बछडेभी ठहरैं, उसे गोचर्म कहते हैं ॥ ९ ॥ जो इस पृथ्वीको गुणवान्, तपस्वी, जितेन्द्रिय, ऐसे ब्राह्मणको दान करताहै, उस पुरुषपर यह ससागरा पृथ्वी जबतक स्थिर रहैगी ऐसे ब्राह्मणको दानका अनंत फल तबतक भोग करना होगा ॥ १० ॥ पृथ्वीके तलपर बोयेहुए बीज जिसभांति जम आतेहैं; उसी प्रकार पृथ्वी दानके द्वारा संचय कियेहुए सम्पूर्ण काम (इच्छा) जमतेहैं ॥ ११ ॥ हेइन्द्र ! जिसभांति जलमें पडतेही तेलकी बूंद उसी समय फैल जातीहै, उसीभांति भूमि दान खेत २ में जम जाताहै ॥ १२ ॥ अन्नका दान करनेंवाला मनुष्य सर्वदा सुखी रहताहै, वस्त्रका दान करनेंवाला रूपवान् होताहै और जो मनुष्य पृथ्वी दान करताहै वह सर्वदा राजा होता है ॥ १३ ॥ जिसभांति दूधवाली गौ दूध को छोडकर बच्चेका पालन करतीहै उसी प्रकारसे हेइन्द्र ! अपने हाथसे दीहुई पृथ्वीभी अपने दाताको पुष्ट करतीहै ॥ १४ ॥ हेइन्द्र ! पृथ्वी दान करनेवालेको शंख, भद्रासन, (राजगद्दी) छत्र, चमर, श्रेष्ठहाथी यह पृथ्वीदानके पुण्यसे प्राप्त होते हैं और फल स्वर्ग है ॥ १५ ॥ सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, होमकी अग्नि, शिव और विष्णु यह पृथ्वीके देनेंवालेकी प्रशंसा करतेहैं ॥ १६ ॥ पितर अपने हाथोंसे अपनी भुजाओंको मल्लोंकी समान बजातेहैं; और पितामह भली भांति आनंदित हो कहतेहैं कि हमारे कुलमें पृथ्वीका देनेवाला उत्पन्न हुआहै वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ १७ ॥

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥
तारयंतीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥

गोदान, भूमिदान और विद्यादान इन तीन दानोंकोही श्रेष्ठ कहाहै, यह तीनोंदान दाताको क्रमानुसार दुहना, बोना, और जप करना, इनमें तार देतेहैं ॥ १८ ॥

प्रावृता वस्त्रदा यांति नग्ना यांति त्ववस्त्रदाः ॥
तृप्ता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यनन्नदाः ॥ १९ ॥

वस्त्रका दाता वस्त्रोंसे आच्छादित होकर (परलोकमें जाताहै) जिसने वस्त्रदान नहीं किये वह मनुष्य नंगा रहताहै; अन्नका देनेंवाला तृप्त होताहै; और जिसने अन्नदान नहीं किया वह क्षुधित होकर जाताहै ॥ १९ ॥

कांक्षंति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ २० ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥

नरकसे भयभीत हुए पितर सर्वदा यह अभिलाषा करते रहतेहैं कि जो पुत्र गयामें जायगा; वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ २० ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छाकरै; यद्यपि उनमेंसे एक तौ अवश्य गयाको जाय वा एक अश्वमेध यज्ञको करै या नीले बैलसे वृषोत्सर्ग करै ॥ २१ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पांडुरः ॥ श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥ २२ ॥ नीलः पांडुरलांगूलस्तृणमुद्धरते तु यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥ २३ ॥ यस्य शृंगगतं पंकं कलात्तिष्ठति चोद्धृतम् ॥ पितरस्तस्य चाश्नंति सोमलोकं महाद्युतिम् ॥ २४ ॥ पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥ अन्येषां च नरेंद्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥ २५ ॥

जिसका रंग लाल वर्ण हो, और पूंछका अग्रभाग पीला हो, दोनों सींग सफेद हों उसे नील बैल कहतेहैं ॥ २२ ॥ जिसका रंग नीला हो, पूंछ पीली हो, और जो तृणोंको उखाडले ऐसे बैलके दान करनेसे पितर साठ हजार वर्षतक तृप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ जिस बैलके सींगपर नदीकूलसे उखाडा हुआ पंक (कीचड) स्थित रहै ऐसे बैलके दान करनेवालेके पितर प्रकाशमान चन्द्रमाके लोकको भोगतेहैं॥ २४ ॥पृथु, यदु, दिलीप, नृग, नहुष, और अन्यान्य राजाओंमें फिरकर मरनेके उपरान्त अन्यही राजा होताहै ॥ २५ ॥

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥ यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य तथा फलम् ॥ २६ ॥ यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥ गवां शतसहस्राणां हंता भवति दुष्कृती ॥ २७ ॥

बहुतसे सगर आदि राजाओंनें पृथ्वीको भोगा, जिस २ की जैसी २ पृथ्वीहुई उस २ को वैसाही फल हुआ ॥ २६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्या करनेवाला और स्त्रीकी हत्या करनेवाला है वह पापी लाख गौओं को मारनेवाला होताहै ॥ २७ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥ श्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ २८ ॥ आक्षेप्ता चानुमंता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥ भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः ॥ ऊर्ध्वं चाधोऽवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २९ ॥

जो मनुष्य अपनी दीहुई, अथवा दूसरेकी दीहुई पृथ्वीको छीनलेताहै वह कुत्तेकी विष्ठामें कीडा होकर अपने पितरों सहित पकाया जाताहै ॥ २८ ॥ मारनेवाला और अनुमति देनेवाला यह दोनों एकही नरकमें जातेहैं; पृथ्वीका दाता और पृथ्वीका हरनेवाला अपने २ पुण्य वा पापसे क्रमानुसार स्वर्ग और नरकमें प्रलयपर्यन्त स्थित होतेहैं ॥ २९ ॥

---

१ "लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥" जिसका लाल रंग हो, मुख और पूंछ पांडुवर्ण हों और खुर तथा सींग श्वेतवर्णके हों उसेही नीलवृष (बैल) कहतेहैं । ऐसा स्मृत्यन्तरका पाठ है ।

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥
लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात्॥३०॥

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी विष्णुकी पुत्री है और गौ सूर्यकी पुत्री है, जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, मही इनका दान करताहै उसने मानों तीनों लोक दान करलिये ॥ ३० ॥

षडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥
स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यने छयासी (८६) हजार योजन पृथ्वी स्वयं दान कीहै वह पृथ्वी उसके सब मनोरथ पूर्ण करतीहै ॥ ३१ ॥

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियत स्वर्गगामिनौ ॥ ३२ ॥

जो पृथ्वीका दान लेताहै, और जो पृथ्वीको देताहै वह दोनों पुण्यात्मा निरन्तर स्वर्गमें जातेहैं ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥

एकही जन्ममें सम्पूर्ण दानोंका फल मिलताहै और सात जन्मतक सुवर्ण, पृथ्वी, गौरी इनका फल मिलताहै ॥ ३३ ॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥
तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य "मैं सबका आत्मा हूं" यह जानकर, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, इन चार प्रकारके भूतोंको दुःख नहीं देता उस जीवात्माको देहसे पृथक् होनेपरभी कभी भय नहीं होता ॥ ३४ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता ॥ हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमं कुलम् ॥ ३५ ॥ हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोवृतः ॥ स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ३६ ॥ अश्रुभिः पतितैरेतेषां दानानामवकीर्तनम् ॥ ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हंति त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३७ ॥ वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमंगुलम् ॥ हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ हुतं दत्तं तपोधीतं यत्किंचिद्धर्मसंचितम् ॥ अर्धांगुलस्य सीमायां हरणेन प्रणश्यति ॥ ४० ॥ गोवीथीं ग्रामरथ्यां च श्मशानं गोपितं तथा ॥ संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४१ ॥

जिन मनुष्योंने अन्याय करके पृथ्वी छीनलीहै, या भूमिके छीननेकी जिसने अनुमति दीहै; वह छीननेवाले और अनुमति देनेवाले दोनोंही अपने सात कुलोंको नष्ट करतेहैं ॥३५॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य भूमिको छीनताहै वा छिनवाताहै वह वरुण फाँसमें बँधकर तिर्यग्योनिमें

उत्पन्न होते है ॥ ३६ ॥ कारण कि, उनके आँशू गिरनेसे सब दान भी नष्ट होजातेहैं। ब्राह्मणके खेतको हरण करनेवाले मनुष्यकी तीन पीढी नष्ट होजातीहैं ॥ ३७ ॥ पृथ्वीका हरनेवाला हजार बावडी और कुओंको बनाकर, सौ अश्वमेध यज्ञ करके एक करोड गौके दान करनेसेभी शुद्ध नहीं होता ॥ ३८ ॥ एक गौ, एक अशरफी, और अर्ध अंगुल पृथ्वी इनका हरनेवाला मनुष्य प्रलयतक नरकमें जाताहै ॥ ३९ ॥ हवन, दान, तपस्या, पढना, और धर्मसे इकट्ठा कियाहुआ वह सभी आध अंगुलकी सीमा हरनेसे नष्ट होजाते है ॥ ४० ॥ गौओंका मार्ग, ग्रामकी गली, श्मशान और गोपित (गुप्त रक्खाहुआ) इनके तोडनेसे मनुष्य प्रलयतक नरकमें जाताहै ॥ ४१ ॥

ऊषरे निर्जले स्थाने प्रास्तं सस्यं विवर्जयेत् ॥
जलाधारस्य कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४२ ॥

ऊपर और जलहीन पृथ्वीमें खेतको न बोवै, और जलवाली पृथ्वीमें व्यासजीके वचनके अनुसार खेत करना उचित है ॥ ४२ ॥

पंच कन्यानृतं हंति दश हंति गवानृतम् ॥ शतमश्वानृतं हंति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥ ४३ ॥ हंति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृतं हंति मास्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ४४ ॥

कन्याके सम्बन्धमें झूंठ बोलनेसे पांचको, गौके सम्बन्धमें झूंठ बोलनेसे दशको, घोडेके निमित्त झूंठ बोलनेसे सौको और पुरुषके निमित्त झूंठ बोलनेमें हजारको मारनेवाला होताहै ॥ ४३ ॥ सुवर्णके सम्बन्धमें जो झूंठ बोलताहै, उसके कुलमें जो उत्पन्न हैं और जो उत्पन्न होगा वह उन सबको नष्ट करदेगा; और पृथ्वीके निमित्त झूंठ बोलनेमें सबको मारताहै. अतएव पृथ्वीके विषयमें झूंठ बोलना उचित नहींहै ॥ ४४ ॥

ब्रह्मस्वे न रतिं कुर्यात्प्राणैः कंठगतैरपि ॥ अनौषधमभैषज्यं विषमेतद्धलाहलम् ॥ ४५ ॥ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ ४६ ॥ लोहचूर्णमश्मचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ४७ ॥

चाहें प्राणभी कंठतक आजांय परन्तु ब्राह्मणके धनकी इच्छा कभी न करै अर्थात् उसको लेनेकी इच्छा न करै, ब्राह्मणका धन हलाहल विषकी समान है; इसकी न चिकित्सा है और न औषधीही है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमानोंका कथन है कि विष विष नहीं हैं परन्तु ब्राह्मणका धनही विष है कारणकि विषको खाकर तौ एकही मनुष्य मरताहै परन्तु ब्राह्मणके धनको खाकर बेटे पोतेतक मृतक होजाते हैं ॥ ४६ ॥ लोहेका चूर्ण, पत्थरका चूर्ण और विष कदाचित् इनको तौ मनुष्य एकवार पचाभी सकताहै परन्तु त्रिलोकीके बीचमें ऐसा कोई पुरुषभी सामर्थ्यवाला नहीं जोकि ब्राह्मणके धनको पचा सके ॥ ४७ ॥

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ॥ शस्त्रमेकाकिनं हंति ब्रह्ममन्युः कुलत्रयम् ॥ ४८ ॥ मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥ चक्रात्तीव्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत्॥ ४९ ॥ अग्निदग्धाः प्ररोहंति सूर्यदग्धास्त-

थैव च ॥ मन्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ॥ ५० ॥तेजसाग्निश्च दहति सूर्यो दहति रश्मिना ॥ राजा दहति दंडेन विप्रो दहति मन्युना ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणोंका क्रोध अस्त्र है, राजाओंके शस्त्र खड्ग इत्यादि हैं, इन दोनोंमें खड्ग तौ एकही मनुष्यको मारता है और ब्राह्मणका क्रोध तीनों कुलोंको नष्ट कर देता है ॥४८॥ क्रोध ब्राह्मणोंका प्रहरण है, चक्र विष्णुका प्रहरण है, चक्रसे क्रोध बडा तीक्ष्ण है; इस कारण ब्राह्मणको क्रोध न उत्पन्न करावै ॥ ४९ ॥ (वृक्षादि) कदाचित् अग्निसे दग्ध होकर या सूर्यकी किरणोंसे भस्म होकर जम आतेहैं, परन्तु ब्राह्मणोंके क्रोधसे दग्धहुए (मनुष्यों) का अंकुरतकभी नहीं जमता ॥ ५० ॥ अग्नि अपने तेजसे दग्ध करतेहैं, और सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके द्वारा दग्ध करतेहैं; राजा दंडसे दग्ध करतेहैं और ब्राह्मण केवल अपने क्रोध के द्वाराही दग्ध करते हैं ॥ ५१ ॥

ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥ तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥ गुरुमित्रहिरण्यं च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥ प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥ ५४ ॥ ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ॥ संग्रामे तानि लीयंते सिकतासु यथोदकम् ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणके धनसे जो सुख होताहै; और देवताके धनसे जो रति होती है, वह धन कुल और आत्माको नष्ट करदेता है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणका धन हरण करनेसे ब्रह्महत्या लगतीहै, दरिद्र और गुरुका धन हरण करनेसे, मित्रका धन हरण करनेसे और सुवर्णके चुरानेसे स्वर्गमें वास करनेवालाभी दुःख भोगताहै ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणके धन हरण करनेमें जो दोष है, वह किसी भांति नहीं मिटता; उसको जो किसी भांति छिपाभी ले तौभी वह प्रगट होजाताहै ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणके धनसे पुष्ट हुए साधन (कारण) और सेना यह संग्राम में इस भांति नष्ट हो जाते हैं, जिसभांति रेतेमें जल लीन होजाताहै ॥ ५५ ॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥ संतुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च ॥ ५६ ॥ वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिंद्रियाणां च संयमः ॥ ईदृशाय सुरश्रेष्ठ यद्दत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५७ ॥

हेइन्द्र ! कुलवान् और दरिद्री वेदपाठी ब्राह्मणको तथा संतोषी, विनयी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हितकारीभी हो ॥ ५६ ॥ जो वेदका अभ्यास करनेवाला हो; तपस्या करताहो; और जिसने इन्द्रियोंको रोक लिया है हेसुरश्रेष्ठ ! ऐसे मनुष्यको जो कुछ दान किया जायगा वह अक्षय होगा ॥ ५७ ॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ॥ ५८ ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ५९ ॥

जिस भांति कच्चे पात्रमें रक्खा हुआ दूध, दही, घी, सहत यह पात्रकी दुर्बलताके कारण नष्ट होजातेहैं और वह पात्रभी नष्ट होजाताहै ॥ ५८ ॥ उसी भांति गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी तिल, इनको जो मूर्ख लेताहै; वह काष्ठके समान भस्म होजाताहै ॥ ५९ ॥

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ॥
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यके घरमें मूर्ख निवास करताहै; और दूरपर विद्वान्‌का निवास है, तौ पंडित मनुष्यको दान देनेके अर्थ मूर्खके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं होता, अर्थात् वह मूर्खको दान न देकर पंडितकोही दान दे ॥ ६० ॥

कुलं तारयते धीरः सप्तसप्त च वासव ॥६१॥ यस्तडागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् ॥ स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ६२ ॥ वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च॥पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ॥६३॥

हे इन्द्र ! वह पंडितको देकर अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करताहै ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य नये तालावको बनाताहै या प्राचीनको खुदवादेताहै वह मनुष्य सम्पूर्ण कुलोंका उद्धार कर स्वर्ग लोकमें पूजित होताहै ॥ ६२ ॥ (प्राचीन) बावडी, कूप, तडाग, बाग, और उपवन (छोटाबाग) इनको जो मनुष्य फिरसे बनवाताहै, उस मनुष्यको नये बनवानेका फल मिलताहै ॥ ६३ ॥

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥ स दुर्गविषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥ एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ॥ कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥

हे इन्द्र ! जिसके यहां ग्रीष्म कालमें भी जल रहताहै वह मनुष्य किसी दुःखजनक दुरवस्थाको नहीं भोगता ॥ ६४ ॥ हे राजसत्तम ! जिसकी खोदीहुई पृथ्वीमें एक दिनभी जल स्थित रहताहै वह जल उसके अगले भी सात कुलोंको तारताहै ॥ ६५ ॥

दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवेन्नरः ॥
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विंदति ॥ ६६ ॥

दीपकके दान करनेपर मनुष्यका शरीर उत्तम होताहै और जलके दान करनेसे स्मरण और बुद्धिमान् होताहै ॥ ६६ ॥

कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ॥
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

बहुतसे निंदित कर्मके करनेपरभी यदि जो मनुष्य भिक्षुकको और विशेष करके ब्राह्मणको अन्न दान करताहै, वह मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ६७ ॥

भूमिर्गावस्तथा दाराः प्रसह्य ह्रियते यदा ॥
न चावेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥

जिस मनुष्यने बलकरके पृथ्वी, गौ और स्त्री इनको हरण कियाहै वह ब्रह्महत्यारा कहाताहै ॥ ६८ ॥

निवेदितश्च राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युदीपितैः ॥
न निवारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६९ ॥

क्रोधसे दीपितहुए ब्राह्मणोंकी प्रार्थनासे जो राजा उस हरनेवालेको निषेध नहीं करता उस राजाको ब्रह्मघाती कहतेहैं ॥ ६९ ॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य उपस्थितहुए, विवाह, यज्ञ, इनमें मोहवश हो विघ्न करताहै वह मरनेके उपरान्त कीडेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ७० ॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥
रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥

दानद्वारा धन सफल होताहै, जीवकी रक्षा करनेसे आयुकी वृद्धि होतीहै, जो मनुष्य हिंसा नहीं करता वह ऐश्वर्य और आरोग्यरूप अहिंसाके फलको भोगताहै ॥ ७१ ॥

फलमूलाशनात्पूजा स्वर्गस्सत्येन लभ्यते ॥
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वं च सुखमश्नुते ॥ ७२ ॥

नियमी होकर जो मनुष्य फल मूलका भोजन करताहै वह निश्चयही स्वर्गको प्राप्त होताहै और मरनेके निमित्त तीर्थआदिपर बैठनेसे राज्य और सम्पूर्ण सुखोंको भोगताहै ॥ ७२ ॥

गवाढ्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥
स्त्रियस्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ ७३ ॥

हेइन्द्र ! जो मनुष्य मन्त्रका उपदेश लेताहै वह गौओंसे युक्त होताहै; और जो मनुष्य तृणोंको खाताहै वह स्वर्गमें जाताहै. तीन कालमें स्नान करनेवाला बहुत स्त्रीवाला होताहै; और वायुको पीनेवाला यज्ञके फलको पाताहै ॥ ७३ ॥

नित्यस्नायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्द्विजः ॥
नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान करताहै, और जो दोनों संध्याओंमें जपकरताहै, वह सूर्यरूप होता है, और अनशन व्रत करताहै उसे नवीन राज्य और सर्वदा स्वर्गमें निवास प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥
रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विंदति ॥ ७५ ॥

अग्निमें प्रवेश करनेवाला ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै और जो अपनी जिह्वाको वशमें रखताहै वह पशु और पुत्रोंको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ॥
सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करता है वह बहुत कालतक स्वर्गमें निवास करता है; और जो मनुष्य निरन्तर एकही शय्यापर शयन करताहै अर्थात् एकही स्त्रीके साथ भोग करताहै; उसको अभिलषित गति प्राप्त होतीहै ॥ ७६ ॥

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ॥
अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युस्सर्वकामागमास्तथा ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य वीरआसन, वीरशय्या, और वीरस्थानमें स्थित रहताहै उसके सब लोक और सम्पूर्णकाम अक्षय्य होजातेहैं ॥ ७७ ॥

उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च वासव ॥
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥

हे वासव! जो मनुष्य बारहवर्षतक उपवास, दीक्षा, और अभिषेक इनको करताहै वह स्वर्गमें उत्तम होताहै ॥ ७८ ॥

अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखात्प्रमुच्यते ॥
पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥ ७९ ॥

सम्पूर्ण वेदोंका पढनेवाला शीघ्रही दुःखोंसे छूटजाताहै, और पवित्र धर्मका करनेवाला स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ ७९ ॥

बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठंति द्विजातयः ॥
चत्वारि तेषां वर्द्धंते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ८० ॥

इति श्रीबृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण बृहस्पतिके पवित्र मतको पढतेहैं; उनकी आयु, विद्या, यश, बल इन चारोंकी वृद्धि होतीहै ॥ ८० ॥

इति बृहस्पतिस्मृतौ भाषाटीका संपूर्णा ॥ १० ॥



॥ श्रीः ॥

पाराशरस्मृतिः ११.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पाराशरस्मृतिप्रारंभः ॥ अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ॥ व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥ मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ॥ शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

एकसमय पूर्वकालमें हिमाचलपर्वतके ऊपर देवदारोंके वृक्षोंसे अलंकृत वनके आश्रममें श्रीव्यासजी महाराज एकाग्रचित्तसे बैठेथे उससमय ऋषियोंने उनसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ कि हे सत्यवतीनंदन! कलियुगके समयमें जो धर्म, शौच, तथा आचार, मनुष्यों के हितका करनेवाला है वह हमसे विधिपूर्वक कहिये ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥ न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम् ॥ अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त प्रज्वलित अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी श्रुति और स्मृति शास्त्रमें पंडित श्रीव्यासजी ऋषियोंके ऐसे वचन सुनकर बोले ॥ ३ ॥ कि मैं तो सब तत्त्वोंको नहीं जानता किस प्रकार धर्मको कहूं, इसकारण मेरे पिता (पराशर) से पूछना उचित है, ऐसा उत्तर व्यासजीने दिया ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकांक्षिणः ॥ ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥ नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम् ॥ नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥ मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायतनावृतम् ॥ यक्षगंधर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ॥ सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ॥ प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत ॥ ९ ॥

तब धर्मके तत्त्वकी अभिलाषा करनेवाले वह सम्पूर्ण ऋषि यह सुनकर श्रीव्यासजीको आगे कर बदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ यह आश्रम अनेक भांति पुष्पोंकी लताओंसे पूर्ण फल पुष्पोंसे शोभायमान नदी और झरनोंसे विभूषित पवित्र तीर्थोंसे शोभायमान ॥ ६ ॥ मृग और पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान, देवमंदिरोंसे आवृत, यक्ष और गंधर्वोंके नृत्यगानसे शोभायमान और सिद्धगणों से अलंकृत था ॥ ७ ॥ उस आश्रममें शक्तिऋषिके पुत्र मुनिवर पराशरजी प्रधान २ मुनियों से युक्त होकर ऋषियोंकी सभामें सुखपूर्वक बैठेथे इस समय में ॥ ८ ॥ व्यासजीने ऋषियोंके साथ जाकर हाथ जोडकर उनकी प्रदक्षिणाकर प्रणामपूर्वक स्तुति करके पूजन किया ॥ ९ ॥

अथ संतुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ॥
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुंगवः ॥ १० ॥

इसके उपरान्त महामुनि पराशरजीने संतुष्ट मन होकर पूछा कि तुम भली प्रकार कुशलपूर्वक आये कुशल कहो ॥ १० ॥

कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनंतरम् ॥ यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्यो ह्यहं तव ॥ श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा ॥ १२ ॥ गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चौशनसाः स्मृताः ॥ अत्रेर्विष्णोश्च संवर्तादक्षादंगिरसस्तथा ॥ १३ ॥ शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यात्तथैव च ॥ आपस्तंबकृता धर्माः शंखस्य लिखितस्य च ॥ १४ ॥ कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः ॥ श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥ १५ ॥ अस्मिन्मन्वंतरे धर्माः कृतत्रेतादिके युगे ॥ सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ॥ १६ ॥ चातुर्वर्ण्यसमाचारं किंचित्साधारणं वद ॥ चतुर्णामपि वर्णानां कर्तव्यं धर्मकोविदैः ॥ १७ ॥ ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात ॥

कुशलप्रश्नके उपरान्त सबभांति कुशल है ऐसा कहकर व्यासजीने पूछा कि हे भक्तवत्सल ! आपके ऊपर मेरी कैसी भक्तिहै यदि आप इस बातको जानतेहैं अथवा मेरे ऊपर यदि आपका स्नेह है ॥ ११ ॥ तौ हे पितः ! मुझसे स्नेहपूर्वक धर्मका वर्णन कीजिये, कारण कि मैं आपकी कृपाका पात्र हूं, इस कारण मुझपर अवश्यही कृपा करनी चाहिये, कारण कि मैंने स्वायंभुवमनु, वशिष्ठ, कश्यप ॥ १२ ॥ तथा गर्गाचार्य, गौतम, शुक्राचार्य, अत्रि, तथा विष्णुऋषि, संवर्त, दक्ष, अंगिरा ॥ १३ ॥ शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तंब, तथा शंख, लिखित ॥ १४ ॥ कात्यायन, वाल्मीकि इत्यादि ऋषियोंके कहेहुए धर्मशास्त्र और आपके कहेहुए वेदोक्त धर्म श्रवण कियेहैं और वह मुझे स्मरणभी हैं ॥ १५ ॥ परन्तु इस मन्वन्तरके विषय कृतयुग और त्रेतादि युगोंके जो २ धर्म थे उन २ युगोंमें शक्तिकी विशेषता होनेके कारण वह धर्म स्थित रहे; और अब कलियुगमें शक्तिकी हानि होगई है, इस कारण वह सम्पूर्ण धर्म लोप होगये ॥ १६ ॥ इस कारण चारोंवर्णोंका पृथक् २ मुख्य धर्म तथा चारोंवर्णोंका मिश्रित धर्म वर्णन कीजिये ॥१७॥ हे धर्मस्वरूपके जाननेवाले ! चारोंवर्णोंमें जो धर्म धर्मके जाननेवालोंको करने योग्य सूक्ष्म और स्थूल है उनका वर्णन विस्तारसहित कीजिये.

व्यासवाक्यावसानेषु मुनिमुख्यः पराशरः ॥ १८ ॥
धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥

व्यासजीके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ पराशरजी ॥ १८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों धर्मोंका निर्णय विस्तारसहित कहनेलगे ॥

वक्ष्यमाणधर्मतत्त्वग्रहणाय श्रोतृसावधानतां विधत्ते ।
शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा ॥ १९ ॥

इन धर्मोंको सुननेके लिये श्रोताओंको सावधान होना उचित है। इसवास्ते प्रथमतः कहतेहैं कि, हे पुत्र ! तथा हे मुनियों ! श्रवण करो ॥ १९ ॥

कल्पे कल्पे क्षये सत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥
श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥

कल्प २ में प्रलय होनेपरभी ब्रह्मा, विष्णु, और महेश यह तीनों विद्यमान रहतेहैं ॥२०॥ और वह सर्वदा श्रुति, स्मृति और सदाचारका निर्णय करतेहैं.

न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ॥ २१ ॥
तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरेऽतरे ॥

कोई वेदका कर्ता नहींहै. कल्पकी आदिमें पूर्वकी समान वेदको स्मरणकर ब्रह्माजी चतुर्मुखोंके द्वारा प्रकाशित करतेहैं ॥ २१ ॥ और जो मनु कल्प २ में होतेहैं वह भी उसी प्रकार प्रथमकी समान धर्मोंको स्मरण कर प्रवृत्त करतेहैं;

अन्य कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ॥ २२ ॥
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः ॥

शक्तिकी वृद्धि और हानि युगोंके अनुसारही हैं. उसीकारणसे कृतयुगमें मनुष्योंका धर्म और प्रकारका रहा, त्रेतामें और प्रकारका और द्वापरमें और प्रकारका रहा ॥ २२ ॥ इस समय कलियुगमें ऋषियोंने मनुष्योंकी शक्तिके अनुसारही और प्रकारके धर्म वर्णन कियेहैं ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥

कृतयुगमें शक्ति विशेष थी इसकारण उसमें तप श्रेष्ठ रहा; त्रेतामें ज्ञान रहा ॥ २३ ॥ द्वापरमें यज्ञ अधिक रहा, और अब कलियुगमें शारीरिक शक्ति न्यून है इस कारण इसमें दानकीही अधिकता है ॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥

सतयुगमें तौ मनुजीके धर्म मुख्य थे त्रेतामें गौतमके ॥ २४ ॥ शंख और लिखित ऋषियोंके धर्म द्वापरमें मुख्य रहे; और इससमय कलियुगमें मुनि पराशरजीके कहेहुए धर्म अत्यन्तही उपयोगी हैं ॥

त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥
द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥

सतयुगमें संसर्गके दोष लगनेके कारण पाप करनेवालेके देशकोभी त्याग देतेथे; ग्रामको त्रेतामें ॥ २५ ॥ और द्वापरमें पाप करनेवालेके कुलतकको भी छोड देतेथे; अब कलियुगमें केवल पापकर्त्ताकोही छोड देवेहैं ॥

कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥ २६॥
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥

सतयुगमें तो मनुष्य पापीके साथ वार्तालाप करनेसेही पतित होजाताथा, और त्रेतामें स्पर्शसे पतित होताथा ॥ २६ ॥ अन्नके लेनेसे द्वापरमें पतित होताथा; और कलियुगमें कर्म-करनेसे पतित होताहै ॥

कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥ २७ ॥
द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥

सतयुगमें शाप तत्कालही फलताथा, दशदिनमें त्रेतामें ॥ २७ ॥ और द्वापरमें एकमहीनेमे शाप फलीभूत होताथा, और अब कलियुगमें एकवर्षमें शापका फल होताहै ॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥ २८ ॥ द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥ अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥अधमं याच-मानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

कृतयुगमें श्रद्धा अधिक थी इसकारण दान आप जाकर देतेथे, श्रद्धासहित बुलाकर त्रेतामें देतेथे ॥ २८ ॥ याचना करनेवालेको द्वापरमें श्रद्धायुक्त हो देतेथे, और अब कलि-युगमें दान सेवा करा कर देतेहैं । जो दान आप जाकर दिया जाताहै वह उत्तम है; बुलाकर जो दान दियाजाताहै वह मध्यम है ॥ २९ ॥ और जो दान याचना करनेपर दिया जाताहै वह निकृष्ट है; और जो सेवा कराकर दान दिया जाताहै वह निष्फल है ॥

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ॥ ३० ॥ जिताश्चोरैश्च राजानः स्त्री-भिश्च पुरुषा जिताः ॥ सीदंति चाऽग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ कुमार्यश्च प्रसूयते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥

कलियुगमें धर्मकी पराजय अधर्मसे होजातीहै, और सत्यकी पराजय झूंठसे होतीहै ॥ ३० ॥ बहुधा राजोंकी पराजय चोरोंसे होजातीहै; और स्त्रियें पुरुषोंका तिरस्कार करती-हैं; कलिमें अग्निहोत्र और गुरुपूजन यह नष्टहुए जातेहैं ॥ ३१ ॥ कुमारीकन्याभी कलिके प्रभावसे सन्तान उत्पन्न करतीहैं ॥

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः ॥ ३२ ॥
द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥

सतयुगमें प्राण अस्थिगत थे, मांसके आश्रयसे त्रेतायुगमें रहे ॥ ३२ ॥ द्वापरमें रुधिरमें प्राण रहतेहैं; और कलियुगमें अन्नादिकमेंही प्राण स्थिति करतेहैं, अर्थात् अन्नके विनामिले प्राण नष्ट होजातेहैं ॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ॥ ३३ ॥
तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

जो २ धर्म प्रत्येक युगमें हैं और उन युगोंमें जो २ ब्राह्मण युगानुरूप हैं ॥ ३३ ॥ उनकी निन्दा करनी उचित नहीं कारण कि आचरण करनेवाले वह ब्राह्मण युगकेही अनुसार हैं ॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ३४ ॥ पराशरेण चाप्युक्तं प्राय-श्चित्तं विधीयते ॥ अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ॥ ३५ ॥

जैसी २ सामर्थ्य जिस २ युगमें रही वैसे २ ही प्रायश्चित्तादि धर्मोंका वर्णन मनु गौतमादि मुनीश्वरोंनें किया ॥ ३४ ॥ मैं अब पराशरजीके कहेहुए सम्पूर्ण प्रायश्चित्तआदि धर्मोंको स्मरणकर तुमसे कहताहूं ॥ ३५ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वंतु ऋषिपुंगवाः ॥ पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥ चिंतितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥

हे मुनीश्वरो ! परमपवित्र सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला मुनि पराशरजीका मत चारों वर्णोंका आचार जो ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त तथा धर्मको स्थापन करनेके लिये चिंतवन किया गयाहै; उसीको श्रवण करो ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥ ३७ ॥
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

आचारही चारों वर्णोंके धर्मोंका पालन करनेहारा है. कारण कि आचारके विना किये केवल धर्मके कथनमात्रसेही धर्मका पालन नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य आचारसे भ्रष्ट हैं, और जिन्होंनें धर्माचरण करना छोडदिया उनसे धर्म विमुख होजाताहै ॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥
हुतशेषं तु भुंजानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥

और जो ब्राह्मण षट्कर्ममें निरत और नित्य देवता अतिथियोंकी पूजा करता और हवनक शेषका भोजन करताहै उसको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ ३८ ॥

संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ॥
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिनेदिने ॥ ३९ ॥

प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, हवन, वेदाध्ययन, देवताओंका पूजन, अतिथिसेवा और बलिवैश्वदेव यह छैः प्रकारके कर्म करने उचित हैं ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ॥ संप्राप्तो वैश्वदेवांते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥ दूराच्चोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपस्थितम् ॥ अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥ नैकग्रामीणमतिथिं संगृह्णीत कदाचन ॥ अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ॥ तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥ श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ॥ गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही ॥ ४४ ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ पितरस्तस्य नाश्नंति दश वर्षाणि पंच च ॥ ४५ ॥ काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा ॥ हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥ अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ॥ वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वे दिने दिने ॥ ४९ ॥ वैश्व-

देवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

मित्र हो या शत्रु हो, पंडित हो या मूर्ख हो अतिथिके लक्षणोंसे युक्त जो पुरुष बलिवैश्वदेवके अंतमें आजाय उसकी सेवाके करनेसे स्वर्ग प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥ दूरसे आयाहुआ और थकित हुआ जो पुरुष बलिवैश्वदेवके समयमें आजाय, उसको अतिथिही जानना; जो कभी पहले भी आया हो वह अतिथि नहींहै ॥ ४१ ॥ एक ग्रामके रहनेवालेको आतिथ्यमें ग्रहण कभी न करै कारण कि, पहले जिसका दर्शन कभी नहीं हुआ, इसलिये उसे अतिथि कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जो अतिथि अपने स्थानपर आवै तौ उसकी कुशल पूछकर आसन दे चरण धोकर पूजन करै ॥ ४३ ॥ जिस समय अतिथि अपने स्थानको जानेलगै तौ गृहस्थको उचित है कि, श्रद्धासहित अन्न देकर प्रेमसहित कुशल प्रश्न करै और कुछ दूरतक पहुंचा आकर प्रीति उत्पन्न करै ॥ ४४ ॥ जिसके यहांसे अतिथि निराश होकर जाताहै उसके पितर पंद्रह वर्षतक उसके दिये हुए श्राद्धसम्बन्धीय अन्नको ग्रहण नहीं करते ॥ ४५ ॥ जिसके यहांसे अतिथि निराश होकर जाताहै उसका सहस्रभार काष्ठ और सौ कलश घृतसे हवन करना निरर्थक है ॥ ४६ ॥ अच्छे खेतमें बीज बोवे और सुपात्रको धन दान करै; अच्छे क्षेत्रमें जो अन्न बोया जाताहै और सुपात्रको जो दान दिया जाताहै वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतिथिसे गोत्र आचरण तथा आपने किन २ शास्त्रोंको पढा या श्रवण कियाहै इत्यादि बातें न पूछै; कारण कि अतिथि देवस्वरूप है उसे देवताकी समान जानकर उसका सन्मान करना उचित है ॥ ४८ ॥ व्रतमें रत ब्राह्मण, और नित्य वेदाभ्यासी ब्राह्मण और अतिथि यह तीनों दिन २ अपूर्वही हैं अर्थात् इन तीनोंका सन्मान नित्य करना उचित है ॥ ४९ ॥ वैश्वदेवके आरंभ करनेके समयमें यदि कोई भिक्षुक, संन्यासी, ब्रह्मचारी और अतिथि आजाय तौ बलिवैश्वदेवके निमित्त अन्नको अलग करके शेष अन्नमेंसे भिक्षुकको भिक्षा देकर बिदाकरै ॥ ५० ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥ दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ॥ इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥ ५२ ॥

यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पक्वान्नकी भिक्षाके अधिकारी हैं, इनको बिना अन्न दिये हुए जो भोजन करताहै उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतके करनेसे होती है॥ ५१ ॥ तीन भिक्षा संन्यासी और ब्रह्मचारियोंको अवश्य देनी उचित है; यदि अधिक ऐश्वर्यवान् हो तौ निरंतर इच्छानुसार भिक्षा दे ॥ ५२ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥ यस्य छत्रं हयश्चैव कुंजरारोहमृद्धिमत् ॥ ऐंद्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ॥ ५४ ॥

प्रथम यतिके हाथमें जल दे इसके पीछे भिक्षा दे फिर जल दे, यह क्रम है, वह भिक्षाका अन्न सुमेरु पर्वतके तुल्य होजाताहै; और वह जल समुद्रके समान होजाताहै ॥ ५३ ॥

जिस संन्यासीके पास छत्र हाथी घोडा आदि वाहन हों और वह बुद्धिमान् इन्द्रके स्थानका अनुभव करताहो ऐसाभी संन्यासी हो तौ भी उसका संमान करनेयोग्यही है ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥

बलि वैश्वदेवके सम्बन्धमें जो पाप हुआहो उसको वह दूर करसकताहै; भिक्षुकके सन्मान करनेसे बलिवैश्वदेवकी विधिमें यदि कुछ त्रुटि रहजाय तौ वह पाप भिक्षुकके सन्मान करनेसे शांत होजाताहै; परन्तु यदि बलि वैश्वदेवके कारण भिक्षुकका सन्मान न होसकै तौ इस दोषको बलिवैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ५५ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुंजंते द्विजातयः ॥ तेषामन्नं न भुंजीत काकयोनिं व्रजंति ते ॥ ५६ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुंजते ये द्विजाधमाः ॥ सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतंति नरकेऽशुचौ ॥ ५७ ॥ वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः ॥ सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजंति च ॥ ५८ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विना बलिवैश्वदेवके किये भोजन करतेहैं उनको काककी योनि मिलतीहै, इसी कारण उनके अन्नका भोजन करना उचित नहीं है ॥ ५६॥ जो अधम ब्राह्मण बलिवैश्वदेवके विना किये भोजन करतेहैं उनके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं; और वह अशुचिनामक नरकमें जाकर पडतेहैं ॥ ५७ ॥ जो बलिवैश्वदेवको नहीं करते, जो अतिथिकी सेवा नहीं करते वह सम्पूर्ण मनुष्य नरकगामी होतेहैं; और इसके पश्चात् उनको कौये की योनि मिलतीहै ॥ ५८ ॥

शिरो वेष्ट्य तु यो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥
वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुंजते ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य वस्त्रादिसे शिरको ढककर तथा बॉये चरण पर हाथ धरकर दक्षिण दिशाको मुख करके भोजन करते वह राक्षसी भोजन है, अर्थात् वह भोजन तामसी होजाताहै॥५९॥

यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ॥
चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

जो दाता संन्यासीको सुवर्णआदिक धन दान करताहै, तथा ब्रह्मचारीको ताम्बूल और चोरोंको अभय देताहै वह नरक को जाताहै ॥ ६० ॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च ॥
प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥

जो संन्यासी श्वेत वस्त्र, वाहन, तांबूल तथा धन आदिका प्रतिग्रह लेते हैं, तो जिससे प्रतिग्रह लेते हैं उसके भी कुलका नाश करतेहैं ॥ ६१ ॥

चोरो वा यदि चंडालः शत्रुर्वा पितृघातकः ॥
वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥

चोर वा चांडाल, शत्रु या पितृघातीहो जो भी बलिवैश्वदेवके समयमें आजाय तौ वह अतिथि स्वर्ग प्राप्ति करानेवाला है ॥ ६२ ॥

न गृह्णाति तु यो विप्रो अतिथिं वेदपारगम् ॥
अदत्तं चान्नपात्रं तु भुक्त्वा भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ ६३ ॥

जो ब्राह्मण वेदके जाननेवाले अतिथिको अन्न जल न देकर स्वयं भोजनकरतेहैं वे पापका भोजन करतेहैं ॥ ६३ ॥

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकंटकम् ॥ वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥ ६४ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं तन्न विनश्यति ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणका मुख अनुपम कंटकादिरहित उत्तम क्षेत्र है उसमें सम्पूर्ण बीजोंको बोवै, ब्राह्मणकी मुखरूपी खेती सम्पूर्ण कामनारूप फलोंकी देनेवाली है ॥ ६४ ॥ मनुष्यको उचित है कि श्रेष्ठक्षेत्रमें बीज बोवै, सुपात्रको धनका दान करै, वह सुपात्रको धनका दान दिया और श्रेष्ठ क्षेत्रमें बीज बोयाहुआ कभी नष्ट नहीं होता ॥ ६५ ॥

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ॥
तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ ६६ ॥

जिस ग्राममें व्रतसे रहित और वेदाध्ययनसे हीन ब्राह्मण भिक्षा मांगते हैं, राजा उन ग्रामवासियोंको दंड दे, नहीं तौ वह राजाही चोरोंको भात देनेवाला है, कारण कि, जिस भांति धर्मके अनुसार प्रजा राजाको छठा अंश भाग देती है, उसी प्रकार तपस्वी ब्राह्मणोंको क्षत्रियआदिकोंसे भाग मिलना चाहिये; यदि क्षत्रिय आदिकही ब्राह्मणोंकी आजीविका और उनकी सेवा न करैंगे; तौ अवश्यही ब्राह्मण भिक्षावृत्ति करैंगे; इसकारण वह क्षत्रियादिके ग्रामके निवासी राजाके दंड देने योग्य हैं; ॥ ६६ ॥

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षञ्छस्त्रपाणिः प्रदंडवान् ॥ निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥ न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणाल्लिखिताऽपि वा ॥ खड्गेनाक्रम्य भुंजीत वीरभोग्यां वसुंधराम् ॥ ६८ ॥ पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ॥ मालाकार इवाऽऽरामे न यथांगारकारकः ६९ ॥

क्षत्रिय प्रजाकी रक्षाकरै, और हाथ में शस्त्र लेकर शत्रुओंको पराजय करै, और धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन करै ॥ ६७ ॥ जो लक्ष्मी अपने कुलके क्रमानुसार प्राप्त हुईहै वह लक्ष्मी वीरता न होनेके कारण स्थिर नहीं रहती, और क्षत्रियोंकी शोभा विना भूषण धारण किये नहीं होती, परन्तु पृथ्वी शूरवीर राजाओंके भोगने योग्य है; इसकारण खड्गसे जीतीहुई पृथ्वीको भोगै ॥ ६८ ॥ जिसभांति माली उपवनमेंसे फूल फलादिकोंको ग्रहण करता है परन्तु अग्नि लगानेवालेकी समान वृक्षोंकी जडको नहीं काटता उसी भांति राजाओंको उचित है कि अपना भाग प्रजाओंसे थोडा २ लेकर प्रजाकी रक्षा कर सर्वापहारी न हो ॥ ६९ ॥

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ॥
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

ब्याज लेना, रत्नोंका क्रय विक्रय, गौका पालन, गौओंकी रक्षा और उनके बछडे आदिकोंको बेचकर जीविका करना, खेती और व्यापार यह वैश्यकी वृत्ति है ॥ ७० ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ॥
अन्यथा कुरुते किंचित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंकी सेवासे निर्वाह करना परम धर्म है, इसके अतिरिक्त करनेमें शूद्रका अधिकार नहींहै ॥ ७१ ॥

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ॥
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

लवण, मधु, तेल, दही, मट्ठा और घृत दुग्धादि सम्पूर्ण रसोंके बेचनेका शूद्रको अधिकार है, ऐसा करनेसे शूद्रको दोष नहीं लगता ॥ ७२ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥ कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥ कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ॥ वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मदिरा, और मांसको शूद्र न बेचे, अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करै, और अगम्या स्त्रीके साथ गमन न करै, इन सम्पूर्ण कामोंके करनेसे शूद्र तत्काल पतित होताहै ॥ ७३ ॥ कपिला गौका दूध पीनेसे, ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे तथा वेदके अक्षरका विचार करनेसे शूद्र निश्चयही नरकको जाताहै ॥ ७४ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ॥ सधर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥ तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा ॥

इसके उपरान्त कलियुगमें गृहस्थके कर्म, आचार, और यथाशक्ति चारों वर्ण तथा चारों आश्रमोंका मिश्रित धर्म ॥ १ ॥ जिसभांति पराशरजीने कहाहै उसे वर्णन करतेहैं ॥

षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥२॥ क्षुधितं तृषितं श्रांतं बलीवर्दं न योजयेत् ॥ हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत्॥३॥स्थिरांगं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं षंढवर्जितम् ॥ वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

षट्कर्ममें नियुक्तहुआ ब्राह्मण खेती करताहो ॥ २ ॥ वह क्षुधा तृषासे व्याकुल हुए बैल को हलमें न जोडै; और जो बैल अंगहीन हो रोगी हो उसे भी हलमें न जोतै नपुंसक बैलकोभी हलमें न जोतै ॥ ३ ॥ जिसके अंग दृढ हों, रोगहीन, तृप्त, पुष्ट और नपुंसकतारहित ऐसे बैलको मध्याह्नतक जोतकर कार्य ले अधिक कार्य न ले इसके पीछे स्नानादिक करै ॥ ४ ॥

जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ॥ एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान्द्विजः ॥ ५ ॥ स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ॥ निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त जप, देवपूजा, होम, वेदाध्ययनका अभ्यास करता रहै; और एक दो तीन वा चार स्नातक ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ५ ॥ जो धान्य अपने जोतेहुए खेतमें उत्पन्न

हुए हों या जिन्हें अपने परिश्रमसे संचय किया हो; उन धान्योंसे पंचयज्ञोंको करै; और विशेष यज्ञादिकोंकोभी करले ॥ ६ ॥

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः ॥
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥ ॥७ ॥

ब्राह्मणोंको उचितहै कि तिल सम्पूर्ण प्रकारके रस तथा, लोह, लाक्षादिक, फल, पुष्प, नील वा रक्तवर्णके वस्त्रोंको न बेचै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ॥ अष्टागवं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥ चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ॥ द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥ षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ॥ न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥ दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥

ब्राह्मणको खेती करनेसे बडा पाप होताहै, परन्तु आठ बैलोंवाला हल धर्मपूर्वक उत्तम है, छैः बैलोंका हल मध्यम है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य चार बैलोंको हलमें जोतते हैं वह दयाहीन हैं, और जो दो बैलोंका हल जोततेहैं वह गोहिंसक हैं, दो बैलोंवाले हलको पहरभर दिन चढेतक जोतना उचित है; और चार बैलवाले हलको मध्याह्नतक जोतै ॥ ९ ॥ हलमें छैः बैलोंको जोतकर तीसरे पहरतक कार्यले; और आठ बैलवाले हलको सायंकालतक जोतै, इस भांति आचरण करनेसे ब्राह्मण नरकमें नहींजाता ॥ १० ॥ इस ब्राह्मणको दियाहुआ दान प्रशंसनीय और स्वर्गका देनेवाला है ॥

संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥ अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ॥ पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥ अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥

जो पाप वर्षदिनमें मत्स्यघात करनेसे होताहै ॥ ११ ॥ वही पाप एकही दिनमें हलके काष्ठके अग्रभागमें लोहा लगाकर जोतनेसे होताहै । जो विना अपराध फांसी देताहै, जो मत्स्यघाती मृगादिकोंकी हिंसा करताहै तथा पक्षियोंको मारताहै ॥ १२ ॥ और जो खेती करनेवाला ब्राह्मण दान न करताहो, यह पांचोंजने पापकरनेमें बराबर हैं ॥

कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥ पंच सूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्तते ॥ वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोग्रासो हंतकारकः ॥ १४ ॥ गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते ॥

ओखली, चकी, चूल्हा, तथा जलसे भरेहुए पात्रोंके स्थान बुहारी ॥ १३ ॥ इन पांचों वस्तुओंसे नित्यप्रति हिंसा होतीहै, यदि गृहस्थी, नित्य नेमसे बलिवैश्वदेव और देवताका पूजन करता रहै; अतिथियोंको भिक्षा दे, और भोजन करनेसे पहले रसोईमेंके सम्पूर्ण पदार्थोंको थोडा २ गौग्रासभी आदरसहित देतारहै, तथा देवपितरोंके निमित्तभी सोलह ग्रासकी हंतकार निकालकर सुपात्र ब्राह्मण तथा गौआदिकको दे ॥ १४ ॥ तौ उस गृहस्थको उपरोक्त हिंसाओंके दोष नहीं लगते ॥

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥
कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

खेतीकरनेसे वृक्षोंका छेदन और पृथ्वीका भेदन होताहै; और हलसे कृमिआदिक असंख्यों जीव मरतेहैं ॥१५॥ इन पापोंसे मुक्त होनेके निमित्त खेतीकरनेवालेको खलयज्ञआदि अवश्य करने चाहिये ॥

यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥
स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥

जो खेतीकरनेवाला मनुष्य अन्नके ढेरमेंसे प्रथम भाग सुपात्र ब्राह्मणको नहीं देता ॥१६॥ वह चोर, पापी, और ब्रह्महत्या करनेवालेकी समान है ॥

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥
विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

राजाको छठा भाग, और देवताओंको इक्कीसवां भाग खेती करनेवालेको देना उचित है ॥ १७ ॥ और ब्राह्मणको तीसवां भाग दे, तौ वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥

क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥
वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥

यदि खेतीकरनेवाला क्षत्रिय हो तौ वहभी इसी भांतिकरै, अर्थात् देवता ब्राह्मणादिको भाग दे ॥ १८ ॥ वैश्य और शूद्रभी खेती वाणिज्य और शिल्प कर्मको करैं ॥

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥
भवंत्यल्पायुषस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥

जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी सेवाको छोडकर निषिद्ध कर्म करतेहैं ॥ १९ ॥ उनकी अवस्था अल्प होतीहै, और वह निःसन्देह नरकको जातेहैं ॥

चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चारों वर्णोंका सनातन धर्म यही है ॥ २० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥ दिनत्रयेण शुद्ध्यंति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥ शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

इसके उपरान्त जन्ममरणके अशौचकी शुद्धि कहते हैं; मृतक आशौच में ब्राह्मण तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ बारहदिन में क्षत्रिय शुद्ध होते हैं; वैश्य पंद्रह दिन से शुद्ध होताहै; और शूद्र एकमास से शुद्ध होता है ॥ २ ॥

उपासने तु विप्राणामंगशुद्धिश्च जायते ॥
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥

आशौचकालमें ब्राह्मणोंकी अग्नि उपासनाके समयतक अंगशुद्धी होजातीहै; और जननाशौचमें ब्राह्मणोंके देहका स्पर्श कहाहै, (वह अस्पर्शनीय नहीं होता) ॥ ३ ॥

जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥ जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ॥ नामधारक विप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥ ॥

जननाशौचमें ब्राह्मण दशदिन से शुद्ध होजाताहै, क्षत्रिय बारहदिनसे शुद्धहोताहै; वैश्य पंद्रह दिनसे शुद्ध होता है, और शूद्र एकमहीनेमें शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ वेदपाठी ब्राह्मण और जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाले हैं वह एकदिनमेंही शुद्ध होजातेहैं, और जो केवल वेदकरकेही युक्त हैं वह तीन दिनमें शुद्ध होतेहैं, और जो वेद तथा अग्निहोत्र इन दोनोंको नहीं करते वह दशदिनतक अशुद्ध रहतेहैं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण जन्मसेही नित्य नैमित्तिक कर्मोंको नहीं करते, और संध्यावंदनभी नहीं करते वह नाममात्रके ब्राह्मण हैं, वह दशदिनतक अशुद्ध रहतेहैं ॥ ६ ॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ॥
दशरात्रेण संशुद्ध्येद्भूमिष्ठं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

बकरी, गाय, भैंस तथा प्रसूता स्त्री; और भूमिपर स्थित वर्षाका जल इनकी शुद्धि दश दिनमें होतीहै ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ॥ जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८॥ तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥ दायाद्विच्छेदमाप्नोति पंचमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पंचमे॥ षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥

सपिंड दायाद अर्थात् बेटे पोते धनादिका भागलेनेवाले होतेहैं, चाहें वह पृथक् २ भी रहतेहों परन्तु तौभी उनको जन्ममरणमें अशौच होताहै ॥ ८ ॥ गोत्रमें दशदिनतकही सूतक रहताहै, चौथी पीढीतककी संतान अर्थात् एक प्रपितामहतककी संतान एकगोत्र में कहलातीहै और पांचवीं पीढीका मनुष्य धनादिके भागका अधिकारी नहीं होता; इसकारण उसे दश दिनतक सूतक नहीं होता कारणकि चौथी पीढीके उपरान्त वंश संज्ञा होतीहै ॥ ९ ॥ चौथी पीढीवाला पुरुष दशदिनमें, छैः दिनमें पांचवीं पीढीवाला, छठी पीढीका पुरुष चार दिनमें और सातवीं पीढीवाला मनुष्य तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

भृग्वग्निमरणे चैव देशांतरमृते तथा ॥
बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥

जो पुरुष पर्वतसे गिरकर या अग्नि में गिरकर मरजाय या जो परदेश में मरगयाहो उसके सूतक में और बालक या संन्यासीकी मृत्यु होजानेपर शीघ्रही शुद्धि होजातीहै ॥ ११ ॥

देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ॥
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥

यदि कोई गोत्रकाही परदेशमें मरजाय तौ तीनदिनका अशौच नहा होता; परन्तु जब मृत्युका समाचार सुनले तब शीघ्र स्नान करनेसे एक दिनरातमेंही शुद्धि होजाती है ॥१२॥

देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥ देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥ कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥

यदि जो ब्राह्मण परदेशमें जाकर कालवश मृत्युको प्राप्त होगया हो और उसके मृत्युकी तिथि ज्ञात न हो ॥ १३ ॥ तौ कृष्णपक्षकी अष्टमी वा अमावस्या तथा कृष्णपक्षकी एकादशीको उसके निमित्त जलदान पिंडदान और श्राद्ध करना उचित है ॥ १४ ॥

अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥

जिन बालकोंके दांत न निकले हों और जो गर्भमें से उत्पन्न होतेही मरजांय उनका अग्निसंस्कार और अशौच तथा जलदान नहीं होता ॥ १५ ॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ॥ यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥ आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

यदि गर्भस्राव तथा गर्भपात होजाय तौ जितने महीनोंका गर्भ गिरैगा उतनेही दिनोंका सूतक होगा ॥ १६ ॥ चार महीनेका गर्भ गिरजानेपर उसे गर्भस्राव कहतेहैं, और पांच या छठेमहीनेमें गर्भ गिरनेको "गर्भपात" कहतेहैं । इसके पीछे छठे या दशमें महीनेतक प्रसव कहाताहै; प्रसवकालमें दशदिनका सूतक मानना उचित है ॥ १७ ॥

दंतजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ॥ अग्निसंस्कारणं तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १८॥ आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ॥ त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥

दांत जमनेपर या चूडाकर्म होजानेपर यदि बालक मरजाय तौ उसका अग्निसंस्कार करना चाहिये और तीनदिनतक आशौच मानना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ और विना दांतोंके जमेही यदि बालक मरजाय तौ स्नान करनेसेही शीघ्र शुद्धि होजातीहै; चूडाकरणसे प्रथमही बालक मरजाय, तौ एक दिनरातमें शुद्धि होतीहै । यज्ञोपवीत विनाहुए जिसकी मृत्यु होजाय तौ तीन दिनतक आशौच रहताहै; इसके पीछे यज्ञोपवीत होजानेपर दशदिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः ॥ संपर्कं चेन्न कुर्वंति न तेषां सूतकं भवेत्॥ २० ॥ संपर्काद्दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा ॥ संपर्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥

जिसके घरमें कोई मनुष्य ब्रह्मचारी हो और अग्निहोत्र करताहो, और वह प्रसूता स्त्रीसे स्पर्श न करताहो तौ उसे अशौच नहीं होता ॥ २० ॥ ब्राह्मणको जन्म मरणमें स्पर्श करनेसे सूतक लगताहै, और जो स्पर्श नहीं करता उसे जन्म वा मरणका सूतक नहीं होता॥२१॥

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः ॥
राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

(शिल्प कार्य करनेवाले, कारुक, हलवाई इत्यादि) वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा और वेदपाठी इन सबकी शुद्धि शीघ्र होजातीहै ॥ २२ ॥

सव्रतो मंत्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ॥
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ २३ ॥

जो ब्राह्मण पवित्रभावसे व्रत और यज्ञ करताहै, और नित्य अग्निहोत्र करताहै उस ब्राह्मणको, राजाको तथा राजा चाहे उसको सूतक नहीं लगता वह स्नानमात्रसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ २३ ॥

उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमंत्रितः ॥
तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथा कालेन शुद्धयति ॥ २४ ॥

मृत्यु और दानमें नियुक्त, दुःखार्त होकर किसीसे निमंत्रण दिया हुआ ब्राह्मण समयके अनुसार शुद्ध होताहै ऐसा ऋषियोंका वचन है ॥ २४ ॥

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्संकरं यदि ॥
दशाहाच्छुद्धयते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥

गृहस्थी ब्राह्मण अपने यहां सन्तान पैदाहोनेमें मेल (संकर) न करे अर्थात् विजातीय स्त्रीको छोडकर स्वजातीय स्त्रीसेही सन्तान उत्पन्न होनेमें उस उत्पन्नहुए बालककी माता तौ दशदिनमें शुद्ध होती है, और उस सन्तानका पिता केवल स्नान करने मात्रहीसे शुद्ध होजाताहै ॥ २५ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २६ ॥

मृतकका अशौच तौ सारे कुटुम्बको होताहै; और जन्म सूतकका अशौच माता, पिता दोनोंको होताहै; इसमें सूतक केवल माताकोही लगताहै, कारण कि पिता तौ केवल आचमन करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २६ ॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां संपर्कं कुरुते द्विजः ॥ सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडंगवित् ॥ २७ ॥ संपर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति वै द्विजे ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपर्कं वर्जयेद्बुधः ॥ २८ ॥

प्रसूता स्त्रीका संसर्ग होनेसे ब्राह्मणको अवश्य सूतक लगताहै; चाहै वह ब्राह्मण वेदोंका जाननेवालाभी हो ॥ २७ ॥ ब्राह्मणको संसर्गमात्रसे ही दोष लगताहै; संसर्गके विनाहुए दोष नहीं लगता; इसकारण सम्पूर्ण यत्नसहित विद्वानोंको संसर्गकाही त्यागकरना उचितहै॥२८॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरा मृतसूतके ॥
पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥

यदि विवाह, उत्सव, और यज्ञादिके समय किसी सपिंडादिकी मृत्यु होनेके कारण सूतक होजाय; तौ प्रथम संकल्प कियाहुआ जो द्रव्य किसीको देनेके निमित्त रक्खाहै वह दूषित नहीं होता ॥ २९ ॥

अंतरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ॥
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥

यदि दशदिनके बीचमेंही किसी दूसरे मनुष्यका जन्म वा मृत्यु होजाय तौ ब्राह्मण उसी समयतक अशुद्ध रहताहै कि जिस समयतक पहले मनुष्यके जन्ममृत्युसे अशुद्धि रहतीहै॥३०॥

ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बंदीगोग्रहणे तथा ॥
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥

जिसकी मृत्यु गौब्राह्मणके निमित्त हुईहो अथवा जो संग्राममें मराहो उनको अशौच एक दिनरातमें होताहै ॥ ३१ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ ॥
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥

संसारमें यह दो मनुष्यही सूर्य मंडलको भेदकर ब्रह्मलोकको जातेहैं; एक तौ योगी संन्यासी और दूसरा रणभूमिमें सन्मुख होकर जो मराहो ॥ ३२ ॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥
अक्षयाँल्लभते लोकान्यदि क्लीबं न भाषते ॥ ३३ ॥

शत्रुओंसे घेरे जानेपरभी जो शूरवीर नपुंसकताके वचन नहीं कहते; उनकी मृत्यु चाहै जिस स्थानमें हुईहो परन्तु वह निश्चयही अक्षय लोकोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ॥
एष मे मंडलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥

सूर्य भगवान् भी संन्यासी ब्राह्मणको देखकर अपने स्थानसे चलायमान होजातेहैं; वह यह विचारतेहैं कि, यह मेरे मण्डलको भेदन करके परमपदको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समंततः ॥
परित्राता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥

जो रणमें भागतीहुई सेनाकी रक्षा करताहै, वह यज्ञके फलको पाताहै ॥ ३५ ॥

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ॥ देवकन्यास्तु तं वीरं हरंति रमयंति च ॥ ३६ ॥ देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् ॥ त्वरमाणाः प्रधावंति मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥ यं यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणो वात्र

यथैव याति ॥ क्षणेन यांत्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजंति ॥ ३८ ॥ जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि वरांगना ॥ क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन्का चिंता मरणे रणे ॥ ३९ ॥ ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च यस्याहवे तु प्रविशेत वक्रम् ॥ तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥ ४० ॥

जिसका शरीर रणस्थानमें शूल, मुद्गर, और लाठी आदिकोंसे क्षत हुआहो उस वीरको देवकन्या लेजातीहैं ॥ ३६ ॥ जिसकी संग्राममें मृत्यु होतीहै उस वीरको देखकर सहस्रों देवांगना "यह मेरा पति हो" ऐसा कहतीहुई शीघ्र उसके पासको जातीहैं ॥ ३७ ॥ स्वर्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण अनेक यज्ञ और तपकरके जिस भांति जिस स्थानको प्राप्त होतेहैं; उसी प्रकार उस स्थानको रणमें प्राणत्यागन करनेवाले वीर क्षणमात्रमें प्राप्त होजातेहैं ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीकी प्राप्ति रणमें विजय प्राप्त होनेसे होतीहै; और देवांगनाओंकी प्राप्ति मृत्यु होनेसे होतीहै. फिर यदि यह शरीर युद्धमें प्राप्त होजाय तौ इसकी चिन्ताही क्या है कारण कि यह क्षणमें भंग होनेवाला है ॥ ३९ ॥ संग्रामभूमिमें जिस वीरपुरुषके मस्तकसे रुधिर बहकर मुखमें चलाजाय, उसके निमित्त वह रुधिरका पान संग्रामरूपी यज्ञमें विधिपूर्वक सोमपान करनेकी समान है इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहंति द्विजातयः ॥ पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभंति ते ॥ ४१ ॥ न तेषामशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणाम् ॥ जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥ असगोत्रमबंधुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ॥ वहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ॥ स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अनाथ ब्राह्मणके मरजाने पर उसे अपने कंधेपर लेजातेहैं; उनको एक २ पगपर एक २ यज्ञका फल मिलताहै ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य मृतक हुए अनाथब्राह्मणको अपने कंधेपर रखकर स्मशानमें लेजाते हैं; उन श्रेष्ठकर्मकरनेवाले मनुष्योंको कुछ पाप या अमंगल नहीं होता, केवल जलमें स्नानकरनेसेही उनकी शुद्धि होजातीहै ॥ ४२ ॥ अपने गोत्रसे पृथक् श्रेष्ठ ब्राह्मणके मरजानेपर जो उसे कंधेपर लेजाकर दाह करतेहैं, उनकी शुद्धि केवल प्राणायामसेही होजातीहै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपनी इच्छानुसार मृतक मनुष्यके पीछे जाय, वह अपनी जातिका हो या अन्यजातिका हो तौ उसके पीछे जानेसे वस्त्रसहित स्नानकर अग्निका स्पर्श कर घृतके चाखनेसेही उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४४ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योनुगच्छति ॥
एकाहमशुचिर्भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४५ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानतासे क्षत्रियके मृतक शरीरके पीछे जाय, तौ उसको एक दिन अशौच रहताहै और पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४५ ॥

शवं च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो ह्यनुगच्छति ॥
कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ ४६ ॥

वैश्यके पीछे अज्ञानतासे जानेपर तीनरात अशौच रहताहै और छैः प्राणायाम करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४६ ॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ४७ ॥ त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४८ ॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रके मृतक देहके पीछे जाताहै वह तीन दिनतक अशुद्ध रहताहै ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त समुद्रगामिनी नदीके किनारे जाकर सौ प्राणायामकर घृतका भोजन करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥

विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥ द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः सनातनः ॥ ४९ ॥ तस्माद्द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ॥ दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ५० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जिससमय श्मशानसे लौटकर शूद्र जलके निकट आवे उस समय ब्राह्मण उनके समीप जाँय यही सनातन धर्म है ॥ ४९ ॥ इसकारण ब्राह्मण मृतक शूद्रका स्पर्श तथा उसकी दाह क्रिया न करै । जो मृतक शूद्रका दर्शन करताहै उसकी शुद्धि सूर्य नारायणके दर्शन करनेसे होतीहै यही पुरातन शुद्धि है ॥ ५० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ॥ उद्बध्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥ पूयशोणितसंपूर्णे त्वंधे तमसि मज्जति ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत् ॥ वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यंतीत्येवमाह प्रजापतिः ॥

जो स्त्री पुरुष अत्यन्त क्रोध, द्वेष वा लोकभयादिके कारण अपनेको फाँसी खाकर मारडालैं तौ उसकी गति इसप्रकार होतीहै ॥ १ ॥ वह मनुष्य रुधिर और पीवसे भरे हुए अंधतामिस्रनामक नरकमें डूबता है और फिर साठसहस्र वर्षतक निवास करताहै ॥ २ ॥ उसका अशौच न मानै अग्निसंस्कार न करै, उसको जलदान न करै, वरन उसके लिये आंसुओंका जलभी न डालै; जो मनुष्य उस मृतकको लेजातेहैं, या जो दाह करतेहैं, या जो पाश छेदन करतेहैं ॥ ३ ॥ उनकी शुद्धि तप्तकृच्छ्रके करनेसे होतीहै, यह प्रजापति ब्रह्माजीने कहाहै ॥

गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥ संस्पृशंति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ॥ अन्ये ये चानुगंतारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥

जिसको गौने या ब्राह्मणने माराहै अथवा जो फाँसी खाकर मरा है ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण उस मृतकका स्पर्श करतेहैं वा श्मशानमें लेजाते हैं तथा उसका दाह करते हैं, या जो उसके

पीछे जातेहैं वा उसकी पाश छेदन करतेहैं ॥ ५ ॥ उनकी शुद्धि तप्तकृच्छ्र व्रत कर सुपात्र ब्राह्मणको भोजन कराकर एक बैल और गौ दक्षिणामें देनेसे होतीहै ॥ ६ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥ षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८॥

अब तप्तकृच्छ्रव्रतकी विधि कहतेहैं; तप्तकृच्छ्र करनेवाला पुरुष तीन दिनतक छैः पल उष्ण जलको पियै; इसके पीछे तीन दिनतक प्रतिदिन चार २ पल उष्ण दुग्ध पान करै; उसके पीछे तीन दिनतक एक पल उष्ण घृत पान करै; और तीन दिनतक वायु भक्षण करै अर्थात् निर्जल व्रत करै यह तप्तकृच्छ्रका विधान है ॥ ७ ॥ ८ ॥

यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ॥ पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥ मासार्द्धमासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ॥ अष्टार्द्धमर्द्धमेकं वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण विना इच्छाके पतितादिकोंसे ५ दिन १० दिन १२ दिन ॥ ९ ॥ अथवा १५ दिन तथा एक महीना वा दो महीना, या चार महीने तथा एक वर्ष संसर्ग करताहै, वह ब्राह्मण उसीके समान पतित होजाताहै ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ॥ तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ११ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे मतः ॥ कुर्याच्चांद्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैंदवद्वयम् ॥१२॥ शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥

यदि पांच दिनतक पतितोंका संसर्ग कियाहो तौ उसकी शुद्धि तीन दिनतक उपवास करनेसे होतीहै; और जो दसदिन संसर्ग करताहै उसकी शुद्धि कृच्छ्रव्रतके करनेसे होतीहै, और जो बारह दिन संसर्ग करताहै वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११ ॥ पंद्रह दिन संसर्ग करनेसे दशदिनतक उपवास करै, और एक महीनेतक संसर्ग होनेसे पराकव्रतकरै दोमहीने संसर्ग होनेपर चांद्रायणव्रत करै; और चार महीने संसर्ग होनेसे दो चांद्रायणव्रत करै ॥१२॥ यदि एक वर्षतक संसर्ग रहाहो तौ छैः महीनेतक कृच्छ्रव्रत करै; और जितने पक्षतक संसर्ग रहाहो उतनीही सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे शुद्धि होतीहै; पूर्वोक्त प्रकारसे पहला पक्ष ५ दिनका है ऐसेही १० । १२ । १५ दिन । १ मास । २ मास । ४ मास । और एक वर्षके क्रमसे ८ पक्षका जानना ॥ १३ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ॥
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

जो ऋतुमती होनेके पीछे स्नान करके स्त्री अपने स्वामीके समीप नहीं जाती वह मृत्युके उपरान्त नरकको जातीहै, और नरक भोगनेके उपरान्त वारंवार विधवा होतीहै ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति ॥
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

और जो मनुष्य अपनी ऋतुस्नाता स्त्रीके समीप नहीं जाता वह घोर गर्भहिंसाके पापसे युक्त होताहै इसमें किंचित्भी संदेह नहीं ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते ॥ सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥ पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥ अपृष्ट्वा चैव भर्त्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ॥ सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥ बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या॥गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्कचित् ॥१९॥ यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने ॥ प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी, वा धूर्त पतिके होने पर उसका तिरस्कार करती है वह मृत्युके उपरान्त वारंवार कूकरी वा शूकरीकी योनिको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो स्त्री अपने पतिके जीवित रहते हुए निराहार व्रत करतीहै, वह पतिकी आयु हरण करतीहै, और मरनेके उपरान्त नरकको जातीहै ॥ १७ ॥ जो स्त्री विना पतिकी आज्ञाके व्रतकरतीहै उसका फल राक्षस लेजातेहैं, और वह व्रत निष्फल होजाताहै मनुजीका यह वचन है ॥ १८ ॥ जो स्त्री अपने बंधुबांधवोंसे अथवा अपनी जातिवालोंसे दुराचरण करतीहै, या जो गर्भपात करती है उस स्त्रीसे कभी वार्तालाप न करे ॥ १९ ॥ जो पाप ब्रह्महिंसामें होताहै उससे दुगना पाप गर्भ गिरानेमें होताहै उसका प्रायश्चित्त नहीं है इस कारण उस स्त्रीका त्यागही करना उचित है ॥ २० ॥

न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः ॥
स भवेत्कर्मचांडालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य गृहस्थीके कर्मोको नहीं करताहै अथवा जो अग्निहोत्र नहीं करताहै या जो धर्मसे विमुख रहकर कर्म करताहै वह चांडाल होताहै ॥ २१ ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ स क्षेत्री लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥ २२ ॥ तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः ॥ २३ ॥

यदि जल और पवनके वेगसे किसी मनुष्यका बीज दूसरे मनुष्यके खेतमें जाकर उत्पन्न होजाय तो उस बीजके फलका भागी खेतवाला ही होताहै, बीजवालेको भाग नहीं मिलता ॥ २२ ॥ इसी भांति कुंड और गोलक दो पुत्र जो परस्त्रीसे उत्पन्न होते हैं वह स्त्रीकेही पुत्र हैं, वीर्य देनेवालेके नहीं पतिके जीवित रहतेहुए जारसे उत्पन्न हुए पुत्रको कुंड कहतेहैं और पतिकी मृत्यु होनेके पीछे उत्पन्न हुए पुत्रको गोलक कहते हैं ॥ २३ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥
दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

औरस, क्षेत्रज, तथा दत्तक और कृत्रिम यहभी पुत्र हैं; जो पुत्र माता और पिताने किसीको दियाहो वह दत्तक कहलाताहै ॥ २४ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ॥ २५ ॥ द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ एव च ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥ कुब्जवामनषंढेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥ जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिविंदतः ॥ २७ ॥ पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥ ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ॥ अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ २९ ॥

परिवित्ति, और परिवेत्ता, तथा जो कन्या परिवेत्तासे विवाही जाय, कन्यादान करनेवाला और याजक यह पाचों नरकमें जातेहैं, यदि बडे भाईसे पहले छोटे भाईका विवाह होगयाहो, तो वह दोनों भाई दो कृच्छ्रव्रत करैं तब उनकी शुद्धि होतीहै, और विवाहिता कन्या एक कृच्छ्रव्रत करै, और कन्यादान करनेवाला कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतकरै; और होता (हवनका करनेवाला) चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो बडा भाई, कुबडा, बौना, नपुंसक अथवा तोतला, मूर्ख, जन्मसे अंधा, बहिरा वा गूंगा हो तो वह छोटा भाई परिवेदनके दोषका भागी नहींहै ॥ २७ ॥ यदि चचेरा व तपेरा भाई अथवा सपत्नीका पुत्र या दूसरी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र बडाभाई हो तो सन्तान उत्पत्ति या अग्निहोत्रके लिये विवाह करनेमें कुछ दोष नहींहै ॥ २८ ॥ बडे भाईके होतेहुए छोटाभाई अग्निहोत्रको ग्रहण न करै वरन शंखके वचनानुसार उसकी आज्ञा लेकर अग्निहोत्रके ग्रहणकरनेका अधिकारी है ॥ २९ ॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ॥
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥

जिस कन्याका वाग्दान होगयाहो और विवाह न हुआहो यदि इसी समयमें उसका पति मरजाय, या नष्ट होजाय अथवा संन्यासी या नपुंसक होजाय तो उस कन्याका विवाह दूसरे पतिके साथ करदेना चाहिये ॥ ३० ॥

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ॥ सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥

॥ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पतिके मरजानेपर जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियममें स्थित हो, वह मरनेके उपरान्त ब्रह्मचारीकी समान स्वर्गमें जातीहै ॥ ३१ ॥ और स्वामीके मरनेके उपरान्त जो स्त्री अपने पतिके साथ सती होजातीहै वह स्त्री मनुष्यके शरीरमें जितने रोम हैं उतनेही वर्षतक स्वर्गमें निवास करतीहै; अर्थात् सती स्त्री साढे तीन करोड वर्षतक स्वर्गमें वास करतीहै ॥ ३२ ॥ सर्पका पकडनेवाला जिसभांति सर्पको गढेमेंसे बलपूर्वक निकालताहै उसी प्रकार वह स्त्री अपने पतिका पापोंसे उद्धार कर उसके साथ आनंद करतीहै ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

वृकश्वानश्रृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ॥
स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥

जिस ब्राह्मणको भेडिये, कुत्ते, तथा गीदड आदिने काटाहो वह स्नानकर गायत्रीका जप करै, कारण कि गायत्री परम पवित्र और वेदोंकी माता है ॥ १ ॥

गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे ॥ समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि ॥ सहिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसेत् ॥ घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥ अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्विजः ॥ प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥ शुना घ्राताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ॥ अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम् ॥ ६ ॥

जिसको श्वानआदिकोंने काटा हो वह गोशृंगसे शुद्ध कियेहुए जलसे स्नान करनेसे तथा पवित्र नदियोंके संगममें स्नान करनेसे अथवा समुद्रका दर्शन करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥ यदि व्रतानुष्ठायी ब्राह्मणको कुत्तेने काटा हो, तौ वह सुवर्णसे शुद्ध किये जलसे स्नान करै और घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण तीन दिनका व्रत कर-रहाहो यदि उसको कुत्ता काटै तौ वह घृत और कुशोदकके पानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ जिस ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो वह व्रती हो या व्रतहीन हो परन्तु ब्राह्मणोंको प्रणाम करकै उनकी दृष्टिमात्रसेही शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥ जिसको श्वानने चाटाहो या सूंघा हो वा नखोंसे आघात कियाहो तो उसको जलसे धोकर अग्निसे तप्त करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ६ ॥

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ॥ यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥

जिस ब्राह्मणीको श्वान, शृगाल तथा वृकादिने काटाहो तौ वह उदय होते हुए सूर्य चन्द्रमादि ग्रह और नक्षत्रोंका दर्शन करै तब उसकी शुद्धि होजातीहै ॥ ७ ॥ कदाचित् चन्द्रमाका दर्शन कृष्णपक्षमें न भी हो तौ उस दिन जिस दिशामें चन्द्रमा उदयहो उस दिशाकाही दर्शन करले ॥ ८ ॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ॥
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण जिस ग्राममें न हो और किसी ब्राह्मणको कुत्ता काटै तौ वह स्नानकरकै वृषभकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रही शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥

चंडालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ॥ आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्मा हतो यदि ॥ १० ॥ दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मंत्रवर्जितम् ॥ स्पृष्ट्वा चोह्य च दग्ध्वा च सपिंडेषु च सर्वदा ॥ ११ ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥ दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः ॥ १२ ॥ स्वेनाऽग्निना स्वमंत्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत् ॥

जिस अग्निहोत्री ब्राह्मणको चांडाल वा श्वपचने मारडालाहो या उसे गौ वा ब्राह्मणोंने माराहो; या स्वयं विष खाकर मरगयाहो ॥ १० ॥ तौ उसका सपिंडी पुरुष जो उसकी क्रिया करै वह उस ब्राह्मणको विना मन्त्रके लौकिक अग्निमें दाह करै; और उसे स्पर्श करके तथा उसके विमानको उठाकर उसे दाह करै तौ ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्य व्रत करले और दाह करनेके उपरान्त उसकी अस्थियोंको दूधमें धोवै ॥ १२ ॥ फिर इसके पीछे उन अस्थियोंको मंत्रपूर्वक अग्निमें पृथक् दाह करै ॥

आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसन्कालचोदितः ॥ १३ ॥ देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याऽग्निर्वसते गृहे ॥ प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतां मुनिपुंगवाः ॥ १४ ॥ कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् ॥ षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृंततः ॥ १५ ॥ चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत् ॥ बाहुभ्यां दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥ शतं तु जघने दद्याद्विशतं तूदरे तथा ॥ दद्यादष्टौ वृषणयोः पंच मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥ एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजंघयोः ॥ पादांगुष्ठेषु दद्यात्षट् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥ १८ ॥ शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं मुष्कयोरपि ॥ जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत्॥१९॥पृष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुशलं न्यसेत्॥उरसि क्षिप्य दृषदं तंडुलाज्यतिलान्मुखे ॥२०॥ श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥ कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ २१ ॥ अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत् ॥ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत्॥२२॥ दद्यात्पुत्रोऽथवा भ्राताऽप्यन्यो वापि च बांधवः ॥ यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥२३॥ ईदृशं तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोके गतिः स्मृता ॥ दहंति ये द्विजास्तं तु ते यांति परमां गतिम् ॥ २४ ॥ अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः ॥ भवंत्यल्पायुषस्ते वै पतंति नरकेऽशुचौ ॥ २५ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! जो अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेशमें कालके वशसे ॥ १३ ॥ मरजाय और उसकी अग्निहोत्रकी अग्नि उसके घरपर स्थित हो, तौ उसका अग्निसंस्कार जिस भांति होना कर्तव्य है उसे श्रवण करो ॥ १४ ॥ चिताकी भूमिपर काली मृगछाला बिछाकर उसके ऊपर पुरुषके आकारकी भांति कुशाओंको बिछावै; और उस कुशाके पुरुषके ऊपर सातसौ

ढाककी डालियें इस प्रकार स्थापित करै ॥ १५ ॥ चालीस तौ शिरपर रक्खै, सौ कंठमें, दश भुजाओंमें और दश अंगुलियोंपर रक्खै ॥ १६ ॥ सौ नाभिपर, दोसौ उदरपर और आठ डालियें दोनों वृषणोंपर, और पांच लिंगपर स्थापित करै ॥ १७ ॥ इक्कीस ऊरुके ऊपर दो सौ जानु और जंघाओंके ऊपर और छैः पैरोंके अंगूठेके ऊपर रक्खै; इसके पीछे अग्निहोत्र के पात्रोंको स्थापित करै ॥ १८ ॥ शमीको शिश्नके ऊपर, और अंडकोशके ऊपर अरणि-को स्थापित करै, दहिने हाथमें स्रुवा, बांये हाथमें उपभृत्को स्थापित करै ॥ १९ ॥ पीठके नीचे ऊखल और मूशल रक्खै, हृदयमें सिल, मुखमें चावल, घृत और तिल ॥ २० ॥ कानमें प्रोक्षणी, आंखोंमें आज्यस्थाली, कान और नेत्र और मुखमें सुवर्णके टुकडे रक्खै॥२१॥ इसप्रकार अग्निहोत्रकी सम्पूर्ण वस्तुएं स्थापित कर मृतक अग्निहोत्रीका पुत्र वा भ्राता तथा जो कोई उसका बांधव हो वह "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इस मंत्रसे एक आहुति दे इसके उपरान्त दाहसंस्कारकी विधिके अनुसार दाहक्रिया करै ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस भांति विधिके अनुसार करनेसे उस मृतकको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै; और जो ब्राह्मण इस मृतक-का दाह करते हैं वहभी परम गतिको पातेहैं ॥ २४॥ और जो अपनी बुद्धिके अनुसार इस-के विपरीत करतेहैं वह अल्पायु होतेहैं, और अन्तमें अशुचिनामक नरकको जातेहैं ॥ २५ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ॥
पराशरेण पूर्वोक्ता मन्वर्थेपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण प्राणियोंकी हिंसाका प्रायश्चित्त वर्णन करतेहैं; पराशरजीने जो पहले वर्णन कियाहै, और मनुने भी विस्तारसहित वर्णन कियाहै ॥ १ ॥

क्रौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ॥ जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥ बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावपि ॥ अटीनबकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥ वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः ॥ अंत-र्जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥ गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ॥ अपक्काशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥ वल्गुलीटिट्टिभा-नां च कोकिलाखंजरीटके ॥ लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥६॥ कारंडवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ॥ भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ भेरुंडचाषभासांश्च पारावतकपिंजलौ ॥ पक्षिणां चैव सर्वे-षामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥

कुंज, सारस, हंस, चकवा, कुक्कुट और जालपाद, तथा जिन पक्षियोंके चरण जुडे हैं, जिनके हड्डी हो इनका मारनेवाला एकदिनरातके उपवास करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥ बगली, टटीरी, तोता तथा पारावत, मछली, और बगला इनका मारनेवाला नक्तभोजन व्रतके करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ३ ॥ भोडिया, काक, कबूतर, मैना, तीतर इनका मारनेवाला

दोनों संध्याओंके समय जलमें स्थित होकर प्राणायामकरनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ जिस मनुष्यने गिद्ध, बाज, खरगोश तथा उल्लू इन जीवोंकी हिंसा की हो वह सारेदिन कुछ न खाय केवल वायुभक्षण करकेही रहै ॥ ५ ॥ चटका, मोर, कोकिला, ममोला, तथा बटेर और लाल पंखवाले पक्षियोंकी हिंसा करनेवाला मनुष्य नक्तभोजनव्रतसे शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ मुर्गाबी, चकोर, चिमगादर, टटीरी, पपीहा इनमें किसीकी भी हिंसा हुई हो तो वह शिवजी-का पूजन करनेसेही शुद्धहोजाताहै ॥७ ॥ भेरुंड, नीलकंठ, भास, और पारावत तथा कपिंजल इन समस्त पक्षियोंमें से जिस किसीने एककीभी हिंसा कीहो उसकी शुद्धि एक दिनरात निराहार व्रत करनेसे होतीहै ॥ ८ ॥

हत्वा मूषकमार्जारसर्पाऽजगरडुंडुभान् ॥ कृसरं भोजयेद्विप्राँल्लोहदंडं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥ शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् ॥ वृंताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १० ॥

चूहा, बिल्ली, सर्प, अजगर तथा जलसर्प इनकी हिंसाकरनेवाला मनुष्य सुपात्र ब्राह्मण-को खिचडीका भोजन कराने और लोहदंडकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ९॥ शिशुमार, गोह, तथा कच्छप, और शिल्लू साँप इनकी हिंसा करनेवाला मनुष्य और बैंगनके फलको खानेवाला अहोरात्र व्रतकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

वृकजंबुकऋक्षाणां तरक्षूणां च घातकः ॥ तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिन-त्रयम् ॥ ११ ॥ गजस्य च तुरंगस्य महिषोष्ट्रनिपातने ॥ प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम्॥१२॥कुरंगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन्॥ शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥ मृगरोहिद्वराहाणामवेर्बस्तस्य घातकः ॥ अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥

भेडिया, गदिड, रीछ तथा व्याघ्रको मारनेवाला सुपात्र ब्राह्मणको एकप्रस्थ (१ सेर छः तोले) तिल देकर तीन दिनतक निर्जल व्रतकरनेसे शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ हाथी, घोडा, भैंसा तथा ऊंटकी हिंसाकरनेवाला अहोरात्र व्रतकर तीनों संध्याओंमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ मृग, वानर, तथा सिंह, चीता और व्याघ्रकी हिंसा करनेवाला मनुष्य तीन दिन-तक उपवासकर सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन जिमावै ॥ १३ ॥ मृग, रोहित, सूकर, तथा भेड और बकरीकी हिंसा करनेवाला अहोरात्र उपवास कर विनाहलसे जुतेहुए अन्नको खाकर शुद्ध होता है ॥ १४ ॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् ॥
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥

इसी भांति चौपाये और वनचर जन्तुओंकी हिंसा करनेवाला गायत्रीका जप करता हुआ अहोरात्र व्रत करै ॥ १५ ॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥ प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैका-दश दक्षिणा ॥ १६ ॥ वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत् ॥ सोऽति-

कृच्छ्रद्वयं कुर्याद्गोविंशद्दक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥ वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ॥ हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिंशद्गाश्चैव दक्षिणा ॥ १८ ॥ चंडालं हतवान्कश्चिद्ब्राह्मणो यदि कंचन ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य, शिल्पी, कारीगर, शूद्र, तथा स्त्रीको मारताहै वह दो प्राजापत्य करके ग्यारह बैलोंका दान करै तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १६ ॥ निरपराधी वैश्य वा क्षत्रियकी हिंसा करनेवाला मनुष्य दो अतिकृच्छ्रव्रतकर बीस गौ दक्षिणा में देनेसे शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य अपने धर्मकी क्रियामें आसक्त हुए वैश्य वा शूद्रको तथा कुकर्मी ब्राह्मणको मारता है उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतके करने और तीस गौयें दान करनेसे होती है ॥ १८॥ जिस ब्राह्मणने चांडालकी हिंसा की हो तौ वह कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रतकर दो गौयें दाक्षिणामें दे तब शुद्ध होता है ॥ १९ ॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च ॥
चंडालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तथा किसी अन्यजातिने यदि चांडालकी हिंसा की हो तो वह अर्द्धकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २० ॥

चोरः श्वपाकश्चंडालो विप्रेणाभिहतो यदि ॥
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २१ ॥

यदि चोरीकरनेवाले श्वपच या चांडालकी हिंसा ब्राह्मणने की हो तो वह अहोरात्र व्रत कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २१ ॥

श्वपाकं चापि चंडालं विप्रः संभाषते यदि ॥ द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत् ॥ २२ ॥ चंडालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ चंडालकूपं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥ चंडालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् ॥ चंडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ चंडालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः ॥ अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥ चंडालभांडं संस्पृष्ट्वा पीत्वा कूपगतं जलम् ॥ गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ चंडालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबते द्विजः ॥ तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥ यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति॥प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ॥ २८ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥ भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ॥ शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥ ३१ ॥

भुक्तेऽज्ञानाद्द्विजश्रेष्ठश्चंडालान्नं कथंचन ॥ गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥ एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रे यावकस्य च ॥ दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्तु विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

यदि श्वपच या चांडाल से ब्राह्मण वार्तालाप करै तौ वह दूसरे ब्राह्मणसे वार्तालापकर एकवारही गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य चांडालोंके साथ एकस्थान वा एकवृक्षकी छायामें शयन करता है तो उसकी शुद्धि एक दिनरात उपवास करनेसे होती है; और जो चांडालके साथ मार्ग चलता है और स्नानकरता है वह जितने पग चलाहो उतने गायत्री मंत्रोंका स्मरण करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २३ ॥ चांडालका दर्शन करनेवाला सूर्यभगवानका शीघ्रही दर्शन करले; और चांडालको छूनेवाला मनुष्य वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य यह अज्ञानतासे चांडालकी बनाई हुई बावडी में जल पीले तौ सारेदिन निराहार रहकर एकदिनमें शुद्ध होजातेहैं॥ २५॥ जिस कुएमें चांडालके पात्रका जल गिरगयाहो उस कुएके जलको पीनेसे तीनदिन तक गोमूत्र पिवै और जौका भोजन करनेसे शीघ्र शुद्ध होता है; यदि कोई ब्राह्मण विना जानेहुए चांडालके घडेका जल पीलेता है; यदि उसने जल पीकर उसी समय उगलदिया या वमनकर दीहै तौ वह प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्धि प्राप्त करसकता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ परन्तु उस जलको न उगलकर वह जल शरीरमेंही पचजाय तो प्राजापत्यव्रतके करनेसे उसकी शुद्धि नहीं होगी वह सांतपनव्रतके करनेसे शुद्ध होगा ॥ २८ ॥ ब्राह्मण सांतपन व्रत करै, क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत करै, वैश्य अर्द्धप्राजापत्य करै और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २९ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वा शूद्र यह विनाजानेहुए अन्त्यजोंके पात्रका जल, दही, दूध यह पीलें ॥ ३० ॥ तौ ब्रह्मकूर्चके उपवास करनेसे उनकी शुद्धि होती है; और शूद्र एक दिन उपवास करनेसे और यथाशक्ति ब्राह्मणों को दान देनेसे शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ जिस ब्राह्मणने अज्ञानतासे चांडालके यहांका अन्न भोजन कियाहो, उसकी शुद्धि दश दिन गोमूत्र और यवका भोजन करनेसे होतीहै ॥ ३२ ॥ वह प्रतिदिन दशदिनतक गोमूत्र और यवका एक २ ग्रास भक्षणकर नियमसहित व्रत करै तब दशदिनमें शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति ॥ विज्ञाते उपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥ मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान्गायंतो वेदपारगाः ॥ पतंतमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकरात् ॥ ३५ ॥ दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ॥ भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥ त्र्यहं भुंजीत दध्ना च त्र्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥ त्र्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥ भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥ दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥ ३८ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके घर चांडाल विना जाने रहजाय, और इसके उपरान्त वह घरवाला उसे निकालदे; तौ जिसके घर चांडाल रहा था उसपर ब्राह्मण कृपा करैं ॥ ३४ ॥ अर्थात्

पारंगत धर्मज्ञ ब्राह्मण मुनियोंके मुखसे कहे हुए धर्मोंको गाकर उस पतित होतेहुए पुरुषका उद्धार करैं ॥ ३५ ॥ अब उस पतितहुएका प्रायश्चित्त कहते हैं; वह पुरुष अपने कुटुम्ब और सेवकोंके साथ दही, घृत और दूधके साथ यवान्नका भोजन करै; और गोमूत्रका पान करै, तथा त्रिकालमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥ तीन दिनतक दहीसे खाय, और तीन दिनतक घृतके साथ भोजन करै, और तीन दिनतक दुग्धके साथ भोजन करै इसी भांति एक २ वस्तुसे एक २ दिन भोजन करै ॥ ३७ ॥ जिस मनुष्यका अंतःकरण दुष्ट हो उसका अन्न, उच्छिष्ट अन्न, और जो कृमिआदिकोंसे दूषित होगयाहो ऐसे अन्नका भोजन न करै; तीनपल दही और दूध और एकपल घृत इसभांति भोजन करै ॥ ३८ ॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यताम्रयोः ॥ जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृन्मयम् ॥ ३९ ॥ कुसुंभगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी ॥ द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वेश्मनि पावकम् ॥ ४० ॥ एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ त्रिशतं गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥ पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति ॥ आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥

अब जिस स्थानमें चांडालने निवास कियाहो उस स्थानकी तथा उस स्थानमें स्थित द्रव्योंकी शुद्धि कहतेहैं । काँसीके पात्र और ताँबेके पात्रोंकी शुद्धि भस्मद्वारा माँजनेसे ही होजाती है; और मिट्टीके पात्रोंका त्याग करना उचित है; और वस्त्रोंको जलसे धोडाले ॥ ३९ ॥ कुसुंभ, गुड, कपास, लवण, तेल तथा धान्यादिकोंको घरमेंसे बाहर निकालकर घरमें अग्नि लगादे; अर्थात् घरकी सम्पूर्ण भूमिको अग्निसे तपावै ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त घरको गोमयादिसे शुद्ध करके आप पूर्वोक्त व्रतोंसे शुद्ध हो उस घरमें सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन करावै; पीछे तीनसौ गौ और एक बैल उनको दक्षिणामें दे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त उस घरको लीपपोतकर उसमें हवन करै तब उस पृथ्वीकी शुद्धि होती है; ब्राह्मणोंके आधारसे भूमिदोष नहीं होता, अर्थात् लिपीहुई पृथ्वीके ऊपर ब्राह्मण बैठजाय तौ वह पृथ्वी अशुद्ध नहीं रहती; अन्य जातिके बैठनेसे पृथ्वी अशुद्ध होजाती है, इसकारण उसे फिर शुद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

चंडालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

यदि चांडालके साथ एक महीने या एकपक्षतक संसर्ग रहाहो तो पंद्रह दिनतक गोमूत्र पान करै और यवका भोजन करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ॥ चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥ ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥ गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रके घरमें धोबन, चमारी, लुब्धकी, अथवा बांसका कार्य करनेवाली अज्ञानतासे रहजाय ॥ ४४ ॥ तौ जाननेके उपरान्त जो प्रायश्चित्त चांडा-

लकी स्थिति करनेपर पहले कह आये हैं उससे आधा प्रायश्चित्त करै, सारा प्रायश्चित्त और केवल गृहदाह न करै ॥ ४५ ॥

गृहस्याभ्यंतरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् ॥ तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भांडं तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥ रसपूर्णं तु मृद्भांडं न त्यजेत्तु कदाचन ॥ गोमयेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥ ४७ ॥

यदि किसीके घरमें चांडाल चलाजाय, तौ उसे घरसे बाहर निकालकर मिट्टीके पात्रोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ जिन मिट्टीके पात्रोंमें घृतादि रस भराहो उनको न त्यागै । इसके ऊपर गोबरसे घरको लीपडालै ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे ॥ कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ४८ ॥ गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा ॥ त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥ क्षत्रियोपि सुवर्णस्य पंच माषान्प्रदाय तु ॥ गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥ शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्धयति ॥

(प्रश्न) यदि ब्राह्मणके व्रणमें पीव और रुधिर होकर उसमें कृमी होजांय तौ उसका प्रायश्चित्त क्या है ? ॥ ४८ ॥ (उत्तर) जिस ब्राह्मणको व्रण में कृमि हो वह गौके मूत्र, गोबर, दही, दूध और घृतमें तीन दिनतक स्नान करै और इन्हीं पांचों वस्तुओंको मिलाकर पीनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ४९ ॥ क्षत्रियके व्रणमें यदि कृमी पडगये हों तौ सुपात्र ब्राह्मणको पांच मासे सुवर्ण दान दे तथा वैश्य गोदान और उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ शूद्रको उपवास करनेकी आज्ञा नहीं है उसकी शुद्धि केवल दान देनेसेही होजाती है ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदंति क्षितिदेवताः ॥ ५१ ॥ प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् ॥ जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥ ५२ ॥ सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥

जब ब्राह्मण "अच्छिद्रमस्तु" यह वचन उच्चारण करै ॥ ५१ ॥ तब मस्तक नवाय प्रणाम कर उस वचनको ग्रहण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है । यदि किसी जपमें छिद्र हो अथवा तपमें छिद्र हो अथवा जो कुछ यज्ञकर्ममें छिद्र हो ॥ ५२ ॥ तथापि यदि ब्राह्मण उसे "अच्छिद्रमस्तु" ऐसा कह दे तौ वह सम्पूर्ण कर्म निश्छिद्र होजातेहैं ॥

व्याधिव्यसनिनि श्रांते दुर्भिक्षे डामरे तथा ॥ ५३ ॥ उपवासो व्रतं होमो द्विजसंपादितानि वा ॥ अथ वा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वंत्यनुग्रहम् ॥ ५४ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ॥

यदि व्याधि, व्यसन, थकावट तथा दुर्भिक्ष या किसीका भय हो तौ ॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उपवास,व्रत तथा हवन इत्यादिक किये जांय और वह विधिसहित न होसके तौ समस्त ब्राह्मण उपवास करनेवालेके ऊपर अनुग्रहकर प्रसन्नहो "अच्छिद्रमस्तु" ऐसा वचन कहदें ॥ ५४ ॥ तौ उन उपवासादिकोंसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्ति होजाती है;

दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः ॥ ५५ ॥ ततोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥ स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥ ५६ ॥ कुर्वंत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥

दुर्बल तथा बालक और वृद्धके ऊपर कृपा करनी योग्य है ॥ ५५ ॥ इसके अतिरिक्त अन्यपुरुषके व्रत होम आदिकमें कृपाकरनेसे दोष होता है; स्नेह, लोभ, अथवा भय तथा अज्ञानसे ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य अनुग्रह करते हैं वह पाप उन्हींको होता है;

शरीरस्याऽत्यये प्राप्ते वदंति नियमं तु ये ॥ ५७ ॥ महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाचन ॥ स्वस्थस्य मूढाः कुर्वंति वदंति नियमं तु ये ॥ ५८ ॥ ते तस्य विघ्नकर्तारः पतंति नरकेऽशुचौ ॥

अब शरीरके नाश प्राप्त होनेपर जो नियम कहते हैं ॥५७॥ महत्कार्यके अपराधसे स्वस्थको भी नियम कहते हैं और जो मंदबुद्धि पुरुष स्वस्थों के निमित्त नियमका उपदेश नहीं करते ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य उनके प्रायश्चित्तमें विघ्नकरते हैं वह अशुचिनामक नरक में जातेहैं;

स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥ ५९ ॥
वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणकी विना आज्ञालिये स्वयंही प्रायश्चित्तके निमित्त व्रत करते हैं ॥ ५९ ॥ उनका वह व्रत निष्फल होजाता है, उनको व्रत करनेका पुण्य नहीं होता;

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद्द्विजः ॥ ६० ॥
कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु अन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥

एक ब्राह्मणभी जिस नियमकरनेके लिये आज्ञा देदे ॥ ६० ॥ तौ वह नियम करना योग्य है; जो इनका वचन उल्लंघनकरता है उसको भ्रूणहिंसाका पाप होता है;

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥ ६१ ॥ तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यंति मलिना जनाः ॥ ब्राह्मणा यानि भाषंते मन्यंते तानि देवताः ॥ ॥ ६२ ॥ सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥ ६३ ॥ विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥

ब्राह्मण जंगमतीर्थस्वरूप है और साधुभी तीर्थस्वरूप है ॥ ६१ ॥ पापी पुरुष उन ब्राह्मणोंके वचनरूपी जलसे शुद्ध होजाते हैं; उत्तम ब्राह्मणोंके वचनको देवताभी मानते हैं ॥६२॥ वेदाभ्यासी सदाचारयुक्त सर्वदेवमय हैं, उनका वचन निष्फल नहींहोता, ब्राह्मण जिसके उपवास व्रत तथा स्नान तीर्थ अथवा जप तप. आदिको ॥ ६३ ॥ यह समाप्त होजाय इसभांति कहदें उन उपवासादिके करनेवालेको पूर्णफल प्राप्त होता है;

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥ ६४ ॥
तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥

कृमि, और मक्खीआदिसे जो अन्न दूषित होजाय या जिसमें बाल पडजांय तौ ॥ ६४ ॥ जलसे हाथ धो डाले, और अन्नपर किंचिन्मात्रही भस्म डालदे तब शुद्धि होजाती है;

भुंजानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥ ६५ ॥
स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते भुक्तभाजने ॥

जो ब्राह्मण भोजन करतेसमयमें अपने पैरोंको छुए तो ॥ ६५ ॥ और उच्छिष्ट पात्रमें जो भोजन करता है, वह अपने उच्छिष्ट को खाता है;

पादुकास्थो न भुंजीत पर्यंकस्थः स्थितोऽपि वा ॥ ६६ ॥
श्वानचण्डालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् ॥

खडाऊं पहरकर या पलंगपर बैठकर भोजन न करै ॥ ६६ ॥ कुत्ते और चांडालको देखताहुआ भोजन न करै;

यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥
यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥

जो अन्न निषिद्ध है उसकी शुद्धि ॥ ६७ ॥ जिसभांति पराशरजीने कही है उसीभांति मैं तुमसे कहताहूं;

शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम् ॥ ६८ ॥ केनेदं शुद्ध्यते चेति ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ काकश्वानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥ ६९ ॥ वेदवेदांगविद्भिर्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥ प्रस्थाद्वा त्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो विप्रस्य आढकः ॥७०॥ ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः॥ काकश्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा ॥ ७१ ॥ स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥ अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥ ७२ ॥ सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् ॥ हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥ ७३ ॥ विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥

द्रोणकी बराबर अन्न और आढकभर शृत (पकायेहुए) अन्नको यदि काक श्वान दूषित करजाय ॥ ६८ ॥ तौ उस अन्नको ब्राह्मणोंके आगे धर उनसे पूछे कि इसकी शुद्धि किसभाँति होगी, फिर जिसभांति वह बतलावें उसीभांति करले और उस अन्नको न फेंकै ॥ ६९ ॥ वेद वेदांगके जाननेवाले, और धर्मशास्त्रके अनुकूल जो ब्राह्मण आचरण करते हैं, उनका कथन है कि बत्तीस प्रस्थका एक द्रोण होता है, और बत्तीस प्रस्थका एक आढक कहाताहै ॥ ७० ॥ इसभांति द्रोण और आढक अन्नको श्रुति और स्मृति के ज्ञाताही जानते हैं द्रोण और आढकभर अन्नको यदि कौये और कुत्तेने चाटाहो या गौ या गधेने सूंघ लिया हो ॥ ७१ ॥ तौ उसकी शुद्धि उसमेंसे किंचित् अन्नके निकालनेसेही होजाती है, जितने अन्नमें उनकी राल टपकी है उतने अन्नको निकालकर शेषको ॥ ७२ ॥ सुवर्णके जलसे छिडककर अग्निमें तपावै, कारण कि अग्निमें तपाने और सुवर्णका जल छिडकनेसे ॥ ७३ ॥ तथा ब्राह्मणोंके वेदमंत्र पढनेसे वह अन्न खानेके योग्य होजाता है,

स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥ ७४ ॥ अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवनेन च ॥ अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) स्नेह (घृतआदि) गोरस अन्न (दुग्ध आदि) वह यदि अशुद्ध होजाँय तौ इनकी शुद्धि किसभाँति होती है ॥ ७४ ॥ (उत्तर) उनमें से थोडासा अलग निकालकर स्नेहादिक को उछालकर शुद्ध करले; और गोरसकी अग्नि में तप्तकरने से शुद्धि होजाती है ॥ ७५ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा ॥
दारवाणां तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अब पराशरजीके वचनके अनुसार द्रव्योंकी शुद्धिका विधान कहते हैं, काठके बनायेहुए पात्रोंको छोल डालनेसेही शुद्धि होजाती है ॥ १ ॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥ चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

और यज्ञके कर्ममें यज्ञपात्रोंकी केवल हाथके मांजनेसेही शुद्धि होजाती है; तथा चमस और ग्रहके पात्रोंकी शुद्धि जलसे धोनेपर होजाती है ॥ २ ॥ चरु, स्रुक्, और स्रुवेकी शुद्धि केवल गरम जलसेही होजाती है काँसीके पात्र भस्मसे और ताँबेके पात्र खटाईसे पवित्र होजाते हैं ॥ ३ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ॥
नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥

यदि जो स्त्री नीचजातिके साथ संगति न करै तो वह ऋतुमती होनेपर शुद्ध होजाती है; यदि नदीमें कोई अशुद्ध वस्तु नदीखती हो तौ वह प्रवाहसे पवित्र होजाती है ॥ ४ ॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन ॥
उद्धृत्य वै कुंभशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

वापी, कूप, तडागादि यदि यह किसी भांति अशुद्ध होगये हों, तो उनमेंसे सौ घडे जल निकालकर उनमें पंचगव्यके डालनेसे उनकी शुद्धि होजाती है ॥ ५ ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥ प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ॥ मासि मासि रजस्तस्याः पिबंति पितरोऽनिशम् ॥ ७ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥ यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥ यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥ स भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

आठ वर्षकी कन्याको गौरी और नौ वर्षकी कन्याको रोहिणी कहते हैं, और दशवर्षकी कन्या कन्याही कहाती है उसके उपरान्त रजस्वला होजाती है ॥ ६ ॥ कन्याके बारह

वर्ष होनेपर यदि कन्याका दान न कियाजाय तो उस मनुष्यके पितर प्रत्येक महीनेमें उसके रजका पान करतेहैं ॥ ७ ॥ कन्याको (जिसका विवाह न हुआहो) रजस्वलाहुई देखकर माता, पिता, और बडाभाई यह तीनों नरकको जाते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण अज्ञानतासे मोहित होकर उस कन्याके साथ विवाह करताहै वह वृषलीपति कहाता है; उससे संभाषण करना उचित नहीं, और पंक्तिसे बाहर कर देना योग्य है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण एकरात्रिभी वृषलीका सेवन करता है तौ वह तीनवर्षतक भिक्षान्नका भोजन करताहुआ गायत्री मन्त्रके जपनेसे शुद्ध होता है ॥ १० ॥

अस्तंगते यदा सूर्ये चंडालं पतितं स्त्रियः ॥ सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥ जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ॥ ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

(प्रश्न) सूर्यके अस्तहोनेपर जो ब्राह्मण पतित मनुष्यका वा सूतिका स्त्रीका स्पर्श करले तौ उसकी शुद्धि किसप्रकार होगी ॥ ११ ॥ (उत्तर) ब्राह्मणकी आज्ञासे स्नानके उपरान्त अग्नि, सुवर्ण और चन्द्रमाका दर्शन करै; यदि उससमय चन्द्रमा उदय न हुआहो तौ जिस दिशामें चन्द्रमा हो उसी दिशाका दर्शन करले तब शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा ॥ तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ॥ अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजां तथा ॥ पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनंतरा ॥ १५ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ॥ कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि दो ब्राह्मणी रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करलें तौ प्रत्येक स्त्री तीन २ दिन व्रत करैं तब शुद्ध होगी ॥ १३ ॥ यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया यह दोनों रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करलें तौ ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ्र करै और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १४ ॥ यदि ब्राह्मणी और वैश्यकी स्त्री इन दोनोंके ऋतुमती होनेपर आपसमें एक दूसरीका स्पर्श करले, तौ ब्राह्मणी पादोन (पौन) कृच्छ्र व्रत करै, और वैश्यकी स्त्री चौथाई कृच्छ्र व्रत करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १५ ॥ यदि ब्राह्मणी और शूद्रकी पुत्री रजस्वला होकर परस्परमें एक दूसरेका स्पर्श करले तौ ब्राह्मणी पूर्ण कृच्छ्र व्रत करकै शुद्ध होतीहै और शूद्रकी पुत्री दान करनेसे ही शुद्ध होजातीहै ॥ १६ ॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥
कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥ १७ ॥

यद्यपि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होजातीहै परन्तु रजकी निवृत्ति होनेपरही देवकर्म तथा पितृकर्म करसकती है ॥ १७ ॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते ॥
नाऽशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥ १८ ॥

जिस स्त्रीको रोगके कारण प्रतिदिन रजःस्राव हो वह स्त्री उस रजसे अशुद्ध नहीं होती, कारण कि वह रज स्वाभाविक नहीं है ॥ १८ ॥

साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्त्तते ॥
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥ १९ ॥

जबतक स्त्रीको रजकी प्रवृत्ति रहती है तबतक उसका अधिकार सत्कर्ममें नहीं है; और पतिके साथ सहवास करने योग्य और घरके कामकाज करनेयोग्य भी नहीं होती ॥ १९ ॥

प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥

स्त्री रजस्वला होनेपर पहले दिन चांडाली और दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी तीसरे दिन धोबिनि की समान होती है और चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है ॥ २० ॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥
स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥ २१ ॥

पुरुष अथवा स्त्री रोगी होजाय और उसी अवस्था में उसको स्नानकी आवश्यकता हो तौ निरोग मनुष्य क्रमानुसार दशवार स्नान करकै उस रोगीको स्पर्श करले तब वह रोग युक्त पुरुष अथवा स्त्री शुद्ध होजाते हैं ॥ २१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥

यदि किसी उच्छिष्ट शूद्र अथवा श्वानसे कोई पुरुष स्पर्श करकै ब्राह्मणको स्पर्श करले तौ वह ब्राह्मण एक रात्रि उपवास कर पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥
तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥

अनुच्छिष्ट शूद्रके स्पर्श होजानेसे ब्राह्मणको स्नानकरना उचित है यदि कोई उच्छिष्ट पुरुष स्पर्शकरले तौ प्राजापत्य व्रत करै ॥ २३ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ॥ सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेपनैः ॥ २४ ॥ गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥ शुद्ध्यंति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥ गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ॥ षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥

जिस कांसीके पात्रमें सुराका स्पर्श न हुआहो वह भस्मसे मार्जन करनेपर शुद्ध होजाता है और यदि जिसमें मदिराका स्पर्शभी होगयाहै वह वारंवार अग्नि डालकर मांजने से ही शुद्ध हो जाताहै ॥ २४ ॥ गौके सूंघेहुए, काकके चोंचलगाये हुए, कुत्तेके चाटेहुए तथा शूद्रके उच्छिष्ट काँसीके पात्र दशवार खटाई आदि क्षार पदार्थसे रगड़कर धोवै तब उनकी शुद्धि हो जातीहै ॥ २५ ॥ यदि काँसीके पात्रमें किसीने कुल्ला करदियाहो तौ उस पात्रको छैः महीनेतक पृथ्वीमें गाडदे इसके पीछे उखाड कर व्यवहारमें लावै ॥ २६ ॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्नौ विशोधनम् ॥ दंतमस्थि तथा शृंगं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥ मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलैः ॥

लोहेके पात्रको त्यागदेनेसे और शीशेके पात्रको तपानेसे तथा दांत, अस्थि, सींग, चांदी और सुवर्णका पात्र ॥ २७ ॥ मणि, रत्नोंके पात्र और शंखको जलसे धो लेनेपर उनकी शुद्धि होजातीहै,

पाषाणे तु पुनर्घर्ष एषा शुद्धिरुदाहृता ॥ २८ ॥

और पत्थरके पात्रको जलसे धोनेके उपरान्त मांज डालना और घर्षणकरना भी उचित है तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २८ ॥

मृन्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ॥

मट्टीके पात्रकी शुद्धि जलानेसे होतीहै; और धान्योंको भलीभांति मलकर धोवै तब शुद्ध होजातेहैं,

वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥
और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥

वांस, वल्कल, फटेवस्त्र, रेशमी वस्त्र, सूतीवस्त्र ॥ २९ ॥ ऊनी वस्त्र, नेत्रपट (सनके वस्त्र) यह धोनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ ३०॥

मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् ॥
तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥

मूँज, उपस्कर, शूर्प, (छाज) सन, फल, चर्म, तृण, काठ, रस्सी इनकी शुद्धि केवल जल छिडकनेसेही होजातीहै ॥ ३१ ॥

तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥

तोसक, तकिया, शय्या, लालवस्त्र, इन्हें धूपमें सुखाकर जल छिडकनेसे इनकी शुद्धि होजाती है ॥ ३२ ॥

मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदर्दुराः ॥
मेध्यामेध्यं स्पृशंतो ये नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥

विडाल, मक्खी, कीट, पतंग, कीडे, मेंडक यह सदा शुद्ध अशुद्ध वस्तुओंका स्पर्श करते रहतेहैं,इसकारण इनके स्पर्शसे कोई वस्तु अपवित्र नहीं होती, यह मनुजीका वचन है ॥३३॥

महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं याश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥
भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३४ ॥

जो जल पृथ्वीको स्पर्श करकै अन्यत्र जलमें मिलगयाहै; और जो एकसे उछलकर दूसरेके ऊपर छींटे गई हैं, यदि भुक्तोच्छिष्ट होय तौ भी अपवित्र नहीं होता, इसी भांति भुक्तोच्छिष्ट तेलभी अशुद्ध नहीं होता, यह मनुजीका मत है ॥ ३४ ॥

तांबूलेक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने ॥
मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥

तांबूल, इक्षु, फल, तेल, अनुलेपन, मधुपर्क तथा सोमरस इनमें उच्छिष्टता नहीं होती यह मनुजीका कथन है ॥ ३५ ॥

रथ्याकर्दमतोयानि नावः पंथास्तृणानि च ॥
मारुतार्केण शुद्ध्यंति पक्केष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥

मार्गकी कीच, और जल, नाव, मार्ग, तृण, तथा पक्की ईंटोंकी चिनाई यह सब वायु और सूर्यके संयोगसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३६ ॥

अदुष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यंति कदाचन ॥ ३७ ॥

पवनसे उडीहुई धूरि, और चारों ओर फैली हुई निर्मल धारा वृद्ध स्त्री और बालक यह कदापि दूषित नहीं होते ॥ ३७ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥
पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत ॥ ३८ ॥

छींकनेपर, थूकनेपर, दांतोंसे किसी अंगके उच्छिष्ट होजानेपर, मिथ्या बोलने पर या पतितोंके साथ सम्भाषण करनेपर अपने दहिने कानका स्पर्श करै ॥ ३८ ॥

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥ एते सर्वेपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठंति
दक्षिणे ॥ ३९ ॥ प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥ विप्रस्य दक्षिणे
कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥

कारण कि: अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य,पवन, यह सब ब्राह्मणोंके दहिने कानमें निवास करतेहैं ॥ ३९ ॥ प्रभासआदि तीर्थ और गंगा इत्यादि नदियें यह ब्राह्मणोंके दहिने कानमें स्थिति करतीहैं, यह वचन मनुजीका है ॥ ४० ॥

देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥ रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समा-
चरेत् ॥ ४१ ॥ येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥ उद्धरेद्दीनमात्मानं
समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥ आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाऽऽचारं न चिंत-
येत् ॥ शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७ ॥

देशका नाश होनेके समय, परदेशमें रोगयुक्त होनेपर और आपत्तियोंके आनेपर पहले सब प्रकारसे अपने शरीरकी रक्षा करनी उचित है इसके उपरान्त धर्माचरण करै ॥ ४१ ॥ अपने ऊपर विपत्ति आनेपर कोमल वा कठोर वा जिसकिसी उपायसे होसके अपने दीन आत्माका उद्धार करै; इसके पीछे सामर्थ्ययुक्त होकर धर्मका अनुष्ठान करै ॥ ४२ ॥ आपत्तिकाल उपस्थित होनेपर शौचाचारका विचार न करै, पहले अपना उद्धार करै, इसके पीछे स्वस्थ होकर धर्माचरण करै ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गवां बंधनयोक्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥ अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥ स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥

(प्रश्न०) यदि कोई गौ खूँटेमें बँधीहुई अकामतः मृत्युको प्राप्त होजाय तौ उस अकामकृत पापका प्रायश्चित्त किसभांति होना उचित है? ॥ १ ॥ (उत्तर) जो वेद वेदांगके जाननेवाले धर्मशास्त्रके पारदर्शी और सर्वदा अपने कर्तव्य कर्ममें निरत ऐसे ब्राह्मणोंसे वह पापी पुरुष अपना पाप निवेदन करदे ॥ २ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ॥ उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं समर्हति ॥ ३ ॥ सद्यो निःसंशये पापे न भुंजीतानुपस्थितः ॥ भुंजानो वर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥ संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ॥ प्रमादस्तु न कर्त्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥ कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते ॥ स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ६ ॥ तेऽपि पापकृतां वैद्या हंतारश्चैव पाप्मनाम् ॥ व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजापहाः ॥ ७ ॥

उस पापीको किस अवस्थासे उन ब्राह्मणोंके पास जाना होगा सो कहतेहैं, न्यायमार्गसे अपने पास आयेहुए उस पापीको ब्राह्मण व्रतकरनेकी आज्ञा दें ॥ ३ ॥ यदि निश्चयही पाप कियाहै, यह विदित होजाय तौ उस पापको धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके अर्थ निवेदन किये विना भोजन न करै; यदि विना परिषद्के निकट गये भोजन करले तौ पापकी वृद्धि होतीहै ॥ ४॥ यदि पाप करनेमें सन्देह होजाय तौ उसका निश्चय विना हुए भोजन न करै; और जबतक उसका निश्चय न होजाय तबतक असावधानभी रहना उचित नहीं ॥ ५ ॥ कियेहुए पापको कभी न छिपावै, कारण कि छिपानेसे पापकी वृद्धि होतीहै, पाप थोडा हो चाहैं बहुत हो उसे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मणोंके आगे निवेदन करदे ॥६॥कारण कि उसके पापोंका जानकर जिसभांति बुद्धिमान् वैद्य रोगीकी पीडाको दूरकरताहै, उसी प्रकार ब्राह्मण उसके पापको नष्ट करदेनेका उपाय कहदेंगे ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान्सत्यपरायणः ॥ मृदुरार्जवसंपन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥ ८ ॥ सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ॥ क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्षदमाव्रजेत् ॥ ९ ॥ उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान्धरणिं व्रजेत् ॥ गात्रैश्च शिरसा चैव नच किंचिदुदाहरेत् ॥ १० ॥

(इसभांति परिषद्की आज्ञानुसार) पापका प्रायश्चित्त करनेपर लज्जाशील, सत्यपरायण, सरलस्वभाव, पुरुष शीघ्रही शुद्धि प्राप्त करतेहैं ॥ ८ ॥ चाहैं क्षत्रिय हो चाहे वैश्य हो पापका संसर्ग होतेही मौन धारणकर वस्त्रोंसहित स्नानकरै, और गीले वस्त्रोंको पहरेहुएही सावधानीसे परिषद्के निकट जाय ॥ ९ ॥ पापी इसभांति शीघ्रताके साथ परिषद्के समीप जाकर विनयपूर्वक साष्टांग प्रणामकरै, और कुछ न बोलै ॥ १० ॥

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः संध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ॥ अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥ ११ ॥ अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥ १२ ॥ यद्वदंति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति॥१३॥अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ॥ प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत् ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण वेद और गायत्रीको नहीं जानते, और सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र नहीं करतेहैं; सर्वदा खेतीके कार्यमेंही लगे रहतेहैं वह केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं ॥ ११ ॥ ऐसे व्रतमन्त्रसे रहित और जातिके नाममात्रसे जीविका करनेवाले इकट्ठेहुए सहस्रों ब्राह्मणोंको परिषद् नहीं कहा जासकता ॥ १२ ॥ अज्ञानरूपी अन्धकारसे ढके मूढ धर्मशास्त्रको न जाननेवाले मूर्ख ब्राह्मण यदि प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करदें तो वह पापी पापसे छूट तो जाताहै, परन्तु वह पाप सौगुना होकर उन व्यवस्था देनेवालोंके शरीरमें प्रवेश करताहै ॥ १३ ॥ जो विना धर्मशास्त्रके जानेहुए प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देतेहैं पापी पुरुष तो उस व्यवस्थाके अनुसार शुद्ध होजाताहै, परन्तु वह पाप व्यवस्था देनेवाले परिषद्के शरीरमें प्रवेश करताहै ॥ १४ ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥ १५ ॥ प्रमाणमार्गं मार्गंतो येऽधर्मं प्रवदंति वै ॥ तेपामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥ यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति ॥ एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तत्र दुष्कृतम् ॥ १७ ॥ नैव गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ॥ मारुतार्कादिसंयोगात्पापं नश्यति तोयवत् ॥ १८ ॥ चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवंतोऽग्निहोत्रिणः ॥ ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९ ॥ अनाहिताग्नयो येन्ये वेदवेदांगपारगाः ॥ पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥ मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ॥ वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ २१ ॥

चारजने या तीन जने वेदके जाननेवाले ब्राह्मण जो व्यवस्था देतेहैं उसीको यथार्थ धर्म जानै, अन्य सहस्रों मनुष्योंका वचनभी धर्मस्वरूप नहीं होसकता ॥ १५ ॥ जो प्रमाणके मार्गको ढूंढकर अर्थात् सम्पूर्ण वचनोंका प्रमाण संग्रहकर धर्मशास्त्रकी व्यवस्था देतेहैं उनसे पाप भयभीत होताहै, वास्तवमें वही धर्मके कहनेवाले हैं ॥ १६ ॥ जिसभांति पत्थरके ऊपर रक्खा हुआ जल वायु और सूर्यके उत्तापसे सूखजाताहै, उसी भांति परिषदकी आज्ञासे सम्पूर्ण पापोंका नाश होजाताहै ॥ १७ ॥ और न वह पापकर्ताके शरीरमें रहतेहैं और परिषद्के शरीरमेंभी प्रवेश नहीं करते वायु और सूर्यके संयोगसे सूखेहुए जलकी समान नष्ट हो जातेहैं ॥१८॥ वेदवेत्ता अग्निहोत्री ब्राह्मण तीन अथवा चार होनेसे परिषद् होतीहै॥१९॥

जो ब्राह्मण वेद वेदांगके पारगामी धर्मज्ञ हैं और अग्निहोत्र करनेवाले नहीं हैं, तौ इन पांच वा तीन पुरुषोंके समूहकोभी परिषद् कहाहै ॥ २० ॥ ध्यानधारणादि द्वारा आत्मतत्त्वको जानने वाले मुनि, यज्ञ करनेवाले तथा स्नातक इनमेंका एक पुरुषभी परिषद् हो सकताहै ॥ २१ ॥

पंच पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चासंभवे त्रयः ॥
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

ऊपर कह आयेहैं कि पाच वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी एकत्रित होनेपर परिषद् होतीहै परन्तु यदि ऐसे पांच ब्राह्मण न मिलैं तौ शास्त्रोक्त निज वृत्तिमें संतुष्ट उनके मिलनेपर परिषद् होसकतीहै ॥ २२ ॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ॥ परिषत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥ ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ॥ यथा हुतमनग्नौ च अमंत्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥ यथा षंढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुषराऽफला ॥ यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ २६ ॥ चित्रकर्म यथानेकै रंगैरुन्मीलयते शनैः ॥ ब्राह्मण्यमपि तद्विद्धि संस्कारैर्मंत्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥

इसके अतिरिक्त जो केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं वह सहस्रों एकत्रित होनेपरभी परिषद् नहीं होसकती ॥ २३ ॥ जिसभांति काठका हाथी, जैसा चर्म का मृग, वेदको न जाननेवाला ब्राह्मणभी उसीप्रकार है, यह तीनों केवल नाममात्रके धारण करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ जिसभांति शून्य ग्राम, निर्जल कूप, और अग्निहीन भस्मके ढेरमें हवन करना निष्फल है उसी भांति विनामंत्रोंका जाननेवाला ब्राह्मणभी निष्फल है ॥ २५ ॥ जिसभांति नपुंसकका स्त्रीके साथ संभोग निष्फल होजाताहै, जिसभांति ऊपर भूमि निष्फल है, जिसभांति मूर्खको दान देना निष्फल है उसीभांति वेद मंत्रोंको न जाननेवाला ब्राह्मण निषिद्ध है ॥ २६ ॥ चित्रकारीके काम में नानाभांतिके रंग शनैः २ भरे जातेहैं उसीभांति अनेक संस्कारोंसे मन्त्रोंके द्वारा ब्राह्मणत्व होताहै ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छंति ये द्विजा नामधारकाः ॥
ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥

नाममात्रके ब्राह्मण प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देतेहैं वह पापी हैं और उनको नरककी प्राप्ति होतीहै ॥ २८ ॥

ये पठंति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये ॥ त्रैलोक्यं तारयंत्येव पंचेंद्रियरता अपि ॥ २९ ॥ संप्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ॥ तथा च वेदविद्विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम् ॥ ३० ॥ अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यंते यथोदके ॥ तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले ॥ ३१ ॥

जो ब्राह्मण वेदको पढतेहैं, और जो नित्य पंचयज्ञ करनेमें तत्पर रहतेहैं वे यद्यपि पंचेन्द्रियपरायण हों तथापि त्रिलोकीको धारण करतेहैं ॥ २९ ॥ श्मशानमें प्रदीप्त हुई अग्नि

मंत्रोंसे संस्कार होनेके कारण जिसभांति सर्वभोक्ता है उसीभांति ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर संस्कारको प्राप्तहुआ ब्राह्मण सर्वभुक् और देवरूप है ॥ ३० ॥ जिसभांति सम्पूर्ण अपवित्र वस्तुओंको जलमें डालदिया जाताहै, उसीप्रकार सम्पूर्ण पापोंको निर्मल ब्राह्मणोंके ऊपर डालदेना उचित है ॥ ३१ ॥

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ॥
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यंते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥

गायत्रीहीन ब्राह्मण शूद्रसेभी अधिक अपवित्र है; और जो ब्राह्मण गायत्रीनिष्ठ और ब्रह्मतत्त्वको जानतेहैं वह श्रेष्ठ और पूजनीय हैं ॥ ३२ ॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेंद्रियः ॥
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥ ३३ ॥

दुःशील होनेपरभी ब्राह्मण पूजनीय हैं; और शूद्र जितेन्द्रिय होनेपरभी पूजनीय नहीं होसकता, ऐसा कौन मनुष्य है जो देख भाल करभी दूषित अंग गौको त्यागकर शीलवती गधैयाको दुहैगा ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ३३ ॥

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ॥
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥

जो ब्राह्मण धर्म शास्त्ररूपी रथपर चढकर वेदरूपी खड्गको धारण करतेहैं वह यदि हँसीमेंभी जोकुछ कहदें उसकोही परम धर्म जानना ॥ ३४ ॥

चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥
त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥ ३५ ॥

चारों वेदोंका जाननेवाला, निश्चिन्त ज्ञानयुक्त वेदके अंगोंका पारदर्शी और धर्मशास्त्र पढानेवाला इकलाही श्रेष्ठ परिषद् होसकताहै, प्रधान आश्रमोंके दश होनेपरभी वह मध्यमही परिषद् होती है ॥ ३५ ॥

राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥

इसकारण ब्राह्मण राजाकी आज्ञानुसारही प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दे; अपने आपसे कदापि न दे ॥ ३६ ॥ यदि ब्राह्मणकी विना सम्मतिके लिये राजा कोई व्यवस्था देदे तो उस पापीका पाप सौगुना बढकर राजाके शरीरमें प्रवेश करजाताहै ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ॥ आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्वै वेदमातरम् ॥ ३८ ॥ सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ४० ॥ आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥ भक्षयंतीं न कथयेत्पिबंतं

चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥ पिबंतीषु पिबेत्तोयं संविशंतीषु संविशेत् ॥ पतितां पंकलग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

यदि ब्राह्मण देवमंदिरके सन्मुख बैठकर व्यवस्था दे दे तौ वेदमाता गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ प्रायश्चित्त करनेके समयमें पहले शिखासहित शिरका मुंडन करावै, त्रिकालमें स्नान करे और दिनमें गौके पीछे २ फिरै और रात्रिके समय गोशालामें शयन करै ॥ ३९ ॥ चाहै गरम पवन चलै; चाहै ठंडी हवा चलै चाहै आंधी चलतीहो, चाहै वर्षा होतीहो परन्तु अपनी रक्षाकी ओर ध्यान न देकर अपनी शक्तिके अनुसार गौकी रक्षा करनी अवश्य कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अपने या दूसरेके घरमें अथवा खेतमें वा खलमें यदि गौ कुछ धान्यादिक खातीहो तौ कुछ न बोलै, और जो वछडा गौका दूध पीताहो तौ भी कुछ न कहै ॥ ४१ ॥ गौके जलपान करनेपर पीछे आप जलपिये, गौके शयन करनेपर पीछे आप शयन करै, और यदि गौ किसी भांति गिरपडे या कीचडमें फँसजाय तौ यथाशक्ति उसको उठावै ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और गौके निमित्त अपने प्राण त्याग करताहै वह और ब्राह्मण और गौकी रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाताहै ॥ ४३ ॥

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥ प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥ एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ॥ अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥ ४५ ॥ दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ॥ दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताऽशनः ॥ ४६ ॥ त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः ॥ दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥ ४७ ॥ चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ॥ चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥४८॥ प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ विप्राणां दक्षिणां दद्यात्पवित्राणि जपेद्द्विजः ॥४९॥ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्ध्येन्न संशयः॥५०॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गोवधके प्रायश्चित्तके निमित्त प्राजापत्यके व्रतकी व्यवस्थाकरै; और प्राजापत्यनामक कृच्छ्रव्रतको चारभागोंमें विभक्त करै ॥४४ ॥ एक दिन एक रात्रिमें एकभुक्त भोजन करै; अयाचित पदार्थका भोजन करै, और एक दिन केवल वायुकाही सेवन करै ॥ ४५ ॥ दूसरे प्राजापत्यकी यह विधि है; दो दिन एकभुक्त रहै; दो दिनरात्रिमें भोजन करै, दो दिन अयाचित वस्तुका भोजन करै, और दो दिन केवल वायुही भक्षण करै ॥ ४६ ॥ तीसरे प्रकारके प्राजापत्यका नियम यह है कि तीन दिन एकभुक्त रहै, तीन दिन रात्रिमें भोजन करै; तीन दिन अयाचित पदार्थका भोजन करै; और तीन दिनतक केवल वायुही सेवन करै ॥ ४७ ॥ चौथे प्रकारका प्राजापत्य यह है कि चार दिनतक रात्रिमें भोजन करै और चार दिनतक अयाचित वस्तुका भोजन करता रहै, और चार दिन केवल पवनही सेवन करके

रहै ॥ ४८ ॥ इस भांति चार प्रकारके प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावै; और दक्षिणा देकर ब्राह्मण पवित्र मंत्रोंका जप करता रहै ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसेही गो वधकरनेवाला शुद्ध होजायगा इसमें किंचित्भी संदेह नहीं है ॥ ५० ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥
तद्वधं तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥

भलीभांति रक्षा करनेकी इच्छासे गौको बांधने या रोकनेमें यदि गोहत्या होजाय तौ इसमें दोष नहीं है और उस अवस्थामें वह कामकृत वा अकामकृत गोवध नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥

दंडादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् ॥
प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥

इस दंडके अतिरिक्त जो पुरुष अन्य दंडसे गौको मारताहै उसको प्रायश्चित्त करना उचितहै और यदि इस प्रहारसे गौकी मृत्यु होजाय तौ दुगना प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २ ॥

रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ॥ एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ ३ ॥ योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥ गोघाटे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥ नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ॥ दग्धदेशे मृता गावःस्तंभनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥ योक्त्रदामकरोरैश्च कंठाभरणभूषणैः ॥ गृहे चापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥ ६ ॥ तदेव बंधनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत् ॥ हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥७ ॥ गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रं भवति तद्वधः ॥ मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥ कामाकामकृतक्रोधो दंडैर्हन्यादथोपलैः ॥ प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

रोध, बन्धन, जोत और घात इन चारप्रकारसे गौको पीडा देनेपर प्रायश्चित्त करै, रोकनेपर एकपाद प्रायश्चित्त करै, बांधनेपर दो पाद प्रायश्चित्त करै, जोतनेमें तीनपाद प्रायश्चित्त करै, और प्रहारसे प्राण नाश करनेपर समस्त चतुष्पाद प्रायश्चित्त करै। यदि गौकी मृत्यु गौओंके चरानेके स्थानमें, गृहमें, घेरमें, दुर्गम स्थानमें, नदीमें, गडहेमें, गुहामुखमें और जलतेहुए स्थानमें स्थित गौके रोकनेसे गोवध होजाय, तौ उसको रोध कहतेहैं ॥३॥४॥५॥ यदि रस्सी, जोतकी रस्सी आर और घंटे आदि कंठके भूषण बांधनेसे गौ या बैलकी मृत्यु घरमें अथवा वनमें होजाय तौ ॥ ६ ॥ उसे बंधन कहतेहैं, यह बंधन दो भांतिका होताहै, एकतौ कामकृत दूसरा अकामकृत हलमें चलानेसे वा गाडीमें जोतनेसे अथवा पंक्तिमें, पीठमें मनुष्योंद्वारा पीडाको प्राप्तहोकर ॥७ ॥ यदि बैल मरजाय तो उस वधको योक्त्र कहतेहैं. यदि मत्त, प्रमत्त,

उन्मत्त, चेतन, वा अचेतन होकर कामकृत या अकामकृत क्रोधित हो दंड या पत्थरसे गौके ऊपर प्रहार करताहै, उससे अत्यन्त पीडित होनेके कारण यदि गौकी मृत्यु होजाय तौ उसको निपातन वा प्रहारके द्वारा गौवध कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ॥
आर्द्रस्तु सपलाशश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

अंगूठेकी समान मोटी एकहाथकी लम्बी और गीली तथा पत्तोंसे युक्त वृक्षकी शाखाको दंड कहतेहैं ॥ १० ॥

मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतः स तु ॥ उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पंच सप्त दशाथ वा ॥ ११ ॥ ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥ पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १२ ॥

दंडके प्रहारसे पीडित होकर यदि गौ मूर्छित होजाय या गिरपडै और वह गौ फिर मूर्छासे जागकर पांच या सात पग चलसके ॥ ११ ॥ अथवा उठकर एकग्रास खा ले वा जल पीले या प्रथम उसे कोई रोग हो तो उसका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ॥ १२ ॥

पिंडस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसंमिते ॥ पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ १३ ॥ पादेऽगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ॥ त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥ पादे वस्त्रयुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ॥ त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥ निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यते वा सचेतनः ॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ १६ ॥

पिंडकी समान गौका गर्भ नष्ट करनेपर एकपाद, गर्भमें स्थित बछडे आदिके यदि अंग प्रत्यंग बन गये हों उसके नष्ट करनेपर दोपाद, और चैतन्यहीन पूरे गर्भके बच्चेको नष्ट करनेपर मनुष्यको तीनपाद व्रतका अनुष्ठान करना कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ एकपादके व्रतमें तो शरीरके रोम दूर करदे, दोपादके प्रायश्चित्तमें डाढी मूंछतकको मुडादे और पादोन प्रायश्चित्तमें शिखाके अतिरिक्त समस्त मुंडन करावै, और निपातन अर्थात् चतुष्पादके प्रायश्चित्तमें शिखा सहित सम्पूर्ण मुंडन कराना चाहिये ॥ १४ ॥ वस्त्रका जोडा एकपादके प्रायश्चित्तमें और कांसीका पात्र दो पादके प्रायश्चित्तमें, एक बैल पादोन प्रायश्चित्तमें और सम्पूर्ण चतुष्पद प्रायश्चित्तमें दो गौओंको दे ॥ १५ ॥ जो मनुष्य अंग प्रत्यंगयुक्त गौके सम्पूर्ण चेतनयुक्त गर्भको गिराताहै वह मनुष्य गोवधसे दूना प्रायश्चित्त करै ॥ १६ ॥

पाषाणेनैव दंडेन गावो येनाभिघातिताः ॥ शृंगभंगे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥ १७ ॥ लांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभंजने ॥ त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ १८ ॥ शृंगभंगेऽस्थिभंगे च कटिभंगे तथैव च ॥ यदि जीवति षण्मासान्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यने पत्थरसे या दंडके प्रहारसे गौके सीगोंको तोड दियाहै वह एकपाद व्रतकरै और नेत्रको फोडनेवाला दोपाद व्रत करै ॥ १७ ॥ उसी प्रहारसे पूंछ तोडनेवाला

एकपाद कृच्छ्र व्रत करै, हड्डी तोडनेवाला दोपाद कृच्छ्र व्रत करै, कानके टूटनेपर तीनपाद कृच्छ्र व्रत करै, और यदि समस्त शरीरही भग्न होजाय तौ पूर्ण चतुष्पाद व्रत करै ॥ १८ ॥ सींग टूटने, हड्डी टूटने या कमरके टूटनेपर उसके उपरान्त यदि गौ छैः महीनेतक जीवित रहजाय तौ प्रायश्चित्त नहीं होताहै ॥ १९ ॥

व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना ॥ यवसश्चोपहर्तव्यो यावद्दृढबलो भवेत् ॥ २० ॥ यावत्संपूर्णसर्वांगस्तावत्तं पोषयेन्नरः ॥ गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥ यद्यसंपूर्णसर्वांगो हीनदेहो भवेत्तदा ॥ गोघातकस्य तस्यार्द्ध प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

यदि प्रहारसे गौके शरीरमें घाव होजाय तौ जबतक वह अच्छा नहो तबतक उस व्रणमें स्वयं अपने हाथसे घृत तेलादि लगाता रहै, जबतक वह गौ भली भांतिसे चंगी और बलवती न होजाय, तबतक उसके निमित्त हरी २ घास लाला कर खिलाना कर्तव्य है ॥ २० ॥ जबतक गौ निरोगता प्राप्त न करे तबतक उसका भली भांतिसे पोषण करतारहै, इसके उपरान्त ब्राह्मणको नमस्कार कर उस नीरोग गौ को छोडदे ॥ २१ ॥ यदि वह गौ पहलेकी समान चंगी भली न हुई हो, शरीरके किसी अंगमें हानिहो तौ उस मनुष्यको गोहत्याके प्रायश्चित्तसे आधा प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २२ ॥

काष्ठलोष्टकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ॥ व्यापादयति यो गां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥ चरेत्सांतपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥ पंच सांतपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ॥ तप्तकृच्छ्रे भवंत्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

यदि जो उद्धत पुरुष लकडी, लोष्ट, पत्थर अथवा शस्त्रसे बल करके गौको मारताहै तौ उसकी शुद्धि किसप्रकार होती है, उसे कहते हैं ॥ २३ ॥ लकडीसे हत्याकरनेवाला मनुष्य सांतपन व्रत करै; लोष्टसे हत्या करनेवाला मनुष्य प्राजापत्य व्रत करै, पत्थरसे हत्या करनेवाला मनुष्य तप्तकृच्छ्र करै, और शस्त्रसे गोहत्या करनेवाला मनुष्य अतिकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ सान्तपन व्रतमें पांच गौ दान करनी; तीन गौ प्राजापत्य व्रतमें दान करनी, आठ गौ तप्तकृच्छ्र में दान करनी उचित हैं, और अतिकृच्छ्र व्रतमें तेरह गौओंका दान करना कर्तव्य है ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ॥
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

गौआदिके प्रायश्चित्तके परिमाणके अनुसार उसकेही अनुरूप गौ आदिकोंको दान करै अथवा उसका मूल्य दे दे यह मनुजीका कथन है ॥ २६ ॥

अन्यत्रांकनलक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा ॥
सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥ २७ ॥

भार वा गाडी आदिको लेचलनेके लिये चरनेके लिये छोडनेके निमित्त और संध्याको रक्षाके निमित्त यदि गौके शरीरमें कोई विशेष चिह्न करनेको रोध अथवा बंधन कियाजाय तौ उसमें कोई दोष नहीं होताहै ॥ २७ ॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ॥ नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥ अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ॥ नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ २९ ॥ दहनात्तु विपद्येत अनड्वान्योक्त्रयंत्रितः ॥ उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥ ३० ॥

दागते समयमें यदि अधिक दग्ध होजाय, या अधिक बोझ लेजानेके निमित्त लादा जाय, नाथाजाय, या कष्ट देनेवाले नदी पर्वतके मार्गसे लेजाया जाय तौ प्रायश्चित्त करना उचित है ॥२८॥ अधिक दग्ध करनेपर एकपाद प्रायश्चित्त करै बोझा अधिक लादनेपर दोपाद प्रायश्चित्त करै नासिकाके छेदनेपर तीनपाद, और मारनेमें पूर्ण चतुष्पादका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ॥ २९ ॥ यदि जोतमें बंधा बैल अग्निसे मरजाय तौ विधिसहित एकपाद प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै, यह पराशर मुनिका वचन है ॥ ३० ॥

रोधनं बंधनं चैव भारप्रहरणं तथा ॥
दुर्गप्रेरणयोक्त्रं च निमित्तानि वधस्य षट् ॥ ३१ ॥

जोत, बंधन, रोध, अधिक बोझा लादना, प्रहार और जोतकर नदी पर्वत इत्यादि दुर्गमें मार्गोंमें लेजाना, यह छै हीं, प्रत्येक वधका मूल है ॥ ३१ ॥

बंधपाशसुगुप्तांगो म्रियते यदि गोपशुः ॥
भुवने तस्य पापी स्यात्प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति ॥ ३२ ॥

यदि रस्सीमें बंधनेके कारण जो गौ मरजाय तौ गृहस्थीको अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना उचित है ॥ ३२ ॥

न नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न चापि मौंजैर्न च वल्कशृंखलैः ॥
एतैस्तु गावो न निबंधनीया बद्धा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ ३३ ॥

नारियलकी रस्सी, सनकी रस्सी, मूंजकी रस्सी, अथवा लोहेकी जंजीरसे गौ और बैलको कदापि न बांधे, और जो यदि बांध भी दे तौ फरसे को हाथमें लेकर सर्वदा उनके सन्मुख बैठा रहै ॥ ३३ ॥

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ॥
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥

गौ अथवा अन्य पशुको दक्षिणकी ओरको मुखकर कुश अथवा काशसे बाँधै, यदि किसी कारणसे उसमें अग्नि लगकर पशुका शरीर जलजाय; तौ इस स्थानपर प्रायश्चित्त करनेकी विधि नहींहै ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भवेत्काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥ ३५ ॥

यदि उस स्थानके काष्ठमें तृणोंके रस्सीको अग्नि लगकर पशुके प्राणोंका नाश करदे तौ पवित्र करनेवाली गायत्रीका जप करनेसे पापसे छूट सकताहै ॥ ३५ ॥

प्रेरयन्कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ॥
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥

कूप या बावडी या तालावमें गौको प्रेरण करनेपर, या वृक्षोंको काटकर गौके ऊपर डालनेपर, या किसी गोभक्षणकारी मनुष्यके हाथ गौको बेचनेपर पूरा गौहत्याका पाप होताहै ॥ ३६ ॥

आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ॥ श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसंकटे ॥ ३७ ॥ कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः॥ स एव म्रियते तत्र त्रीन्पादांस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥

यदि इस अवस्थामें गौको विपत्तिसे उद्धार करनेके लिये पूर्वोक्त किसी कारणसे वक्षःस्थल, कान, अथवा हृदयका कोई भाग भग्न होजाय या गौ कुएआदिमें गिरपडै और उसको कुएमेंसे निकालनेके समयमें, उस गौके पैर, गरदन आदि टूटजायँ इस विपत्तिमें उसी समय या कुछ समय उपरान्त उसकी मृत्यु होजाय तौ उस पापसे छूटनेके लिये तीनपाद प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कूपखाते तटाबंधे नदीबंधे प्रपासु च ॥ पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥ कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ॥ स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥

कुएके निकटके चौबच्चेमें, सरोवरमें, नदीके बँधेहुए घाटपर पौके ऊपर यदि गौ जलपीनेके लिये गई हो और उसी स्थानपर उसकी मृत्यु होजाय तौ किसी भांतिका प्रायश्चित्त करना उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ यदि कुएके निकटके चौबच्चेमें नदी या जलाशयके निकटके गड्डेमें दीर्घखात वा साधारण जल पीनेके गड्ढेमें गिरकर यदि गौ मरजाय तौ उसके निमित्त कुछ प्रायश्चित्त न करै ॥ ४० ॥

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ॥
स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥

जिसने अपने घरके द्वारपर गड्ढा खोदाहै या घरके भीतर खोदाहै, या अपने कार्यके लिये वा साधारणके निमित्त तथा स्थान बँधानेके लिये खोदाहै उसी गड्ढेमें यदि गौ गिरकर मरजाय तब अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१ ॥

निशि बंधनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ॥ अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥ ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभंगनिपातने ॥ अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥ संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च ॥ दावाग्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥ यंत्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥ यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४५ ॥

यदि रात्रिके समय रोक कर बांधनेपर, या सर्पके काटनेसे या अग्नि तथा बिजलीके गिरनेसे गौकी मृत्यु होजाय तौ प्रायश्चित्त करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥ यदि ग्राम बाणोंसे पीडित होजाय; या घर टूटकर गिरपडै तथा अत्यन्त वर्षाहो इन तीनों में यदि किसी कारणसे गौकी मृत्यु होजाय, तौ इस समयमें प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४३ ॥ संग्राममें, घरमें अग्नि लगनेके समय किसी ग्रामवासीके घेर लेनेपर वा दावाग्निसे जो गौ भस्म होकर मरजाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ यदि चिकित्सा करनेके समय में गौको पीडा दीजाय अथवा दूषित गर्भके गिरानेपर अनेक यत्न करनेपरभी गौकी मृत्युहो जाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां च रोधने बंधनेऽपि वा ॥
भिषङ्मिथ्यापचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

बहुतसी गौ और बैलोंको एकसाथ बांधकर रोकनेपर उनकी अनभिज्ञ चिकित्सकसे चिकित्सा करानेमें यदि गौ वा बैलकी मृत्यु हो जाय तौ गोवधका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावंतः प्रेक्षका जनाः ॥
अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

गौ अथवा बैलकी अकालमृत्युको अपने नेत्रोंसे देखकर भी उसको उस आसन्न मृत्युसे छुटानेकी जो मनुष्य चेष्टा नहीं करते वह गोहत्या पापके भागी होतेहैं ॥ ४७ ॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् ॥
दिव्येन तेषामुपलभ्य हंता निवर्त्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥ ४८ ॥

यदि किसी गौ या बैलको बहुतसे पुरुष इकट्ठे होकर ईट पत्थर मारकर उसको पीडित करै तौ उससे पशुकी कदाचित् मृत्यु होजाय और यह निश्चय न होसकै कि किस पुरुषके प्रहारसे गौकी मृत्यु हुई तो राजाको उचित है कि वह अपने कर्मचारियोंके द्वारा प्रत्येक पुरुषको सौगन्ध दिलाकर उस पशुकी हत्याकरनेवालेका निश्चय करले ॥ ४८ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ॥
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥

यदि एक गौ बहुतसे पुरुषोंके आघातसे मरगई हो तौ उन प्रहार करनेवालोंमें प्रत्येकको गोवधका चतुर्थांश प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् ॥ लाला भवति दंष्ट्रेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥ ५० ॥ ग्रासार्थं चोदितो वापि अध्वानं नैव गच्छति ॥ मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥ प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥

गौके मारनेपर उसके रुधिरके चिह्नसे हत्या करनेवालेको जानले, या उन सबमेंसे जो रोगी होजाय, दुर्बल होजाय या जिसके दाढोंमेंसे लार गिरनेलगे, जो प्रेरणा करनेपरभी ग्रासके निमित्त घरसे बाहर न जाय ऐसी हत्या करनेवालेकी खोज करले, सम्पूर्ण शास्त्रोंके

जाननेवाले अद्वितीय भगवान् मनुजीने गोहत्यामात्रमें चांद्रायण व्रतको करनेकी व्यवस्था दीहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥ ५२ ॥ राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥ अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥ यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥ तत्पापं तस्य तिष्ठेत त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

गोहत्याके प्रायश्चित्तके समयमें जो केश रखने चाहैं उसको दुगना प्रायश्चित्त करना उचितहै और दुगने प्रायश्चित्तकी दुगनीही दक्षिणा देनी चाहिये ॥ ५२ ॥ राजा, राजपुत्र अथवा वेदोंका जाननेवाला ब्राह्मण केशोंका मुंडन न कराकरभी प्रायश्चित्त कर सकताहै॥५३॥ जिस पुरुषने केशोंकी रक्षा कीहै और दुगना प्रायश्चित्त वा दुगनी दक्षिणा नहीं दीहै उसका पाप पहलेकी समान होगा वह अपने पापसे मुक्त नहीं होगा और जो इस भांति व्यवस्था करनेकी अनुमति देगा वहभी नरकको जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

यत्किंचित्क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥ ५५ ॥ एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥ ५६ ॥

प्राणिमात्रके सम्पूर्ण किये हुए पाप केशोंमेंही निवास करतेहैं इस कारण बालोंको हाथमें पकडकर उनके अग्रभागके भागको दो २ अंगुल कटवादे ॥ ५५ ॥ यह रीति केवल कुमारी कन्या और सुहागिन स्त्रियोंके लिये है, कारण कि, इन स्त्रियोंको मुंडन और स्वतंत्र शयन अथवा स्वतंत्र भोजनका विधान नहीं है ॥ ५६ ॥

न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥ नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥ ५७ ॥ न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥ त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥ ५८ ॥ बंधुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचांद्रायणादिकम् ॥ गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥

इन स्त्रियोंको रात्रिके समय गोशालामें शयन और दिनके समय गौके पीछे २ जाना उचित नहीं, और विशेष करके नदीके ऊपर, जनसमूहके स्थानमें और जंगलमेंभी इनके जानेका निषेध है ॥ ५७ ॥ स्त्रियोंको मृगचर्म ओढनेकी आवश्यकता नहीं वह तीनों कालमें स्नान कर देवताओंका पूजन करती रहैं ॥ ५८ ॥ स्त्रियोंको कृच्छ्र चांद्रायण व्रत अपने बंधु बांधवोंके बीचमें ही करना उचित है वह अपने घरमें स्थित रह कर सर्वदा पवित्र नियमोंका पालन करती रहैं ॥ ५९ ॥

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति॥ स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥ विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥ क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥ तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥ स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें गोवध करके उस पापको छिपानेकी इच्छा करता है वह निश्चयही कालसूत्रनामक घोर नरकमें जाताहै ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त उस भयानक नरकसे छूटकर फिर इसी मृत्यु लोकमें मनुष्ययोनिमें जन्म लेताहै और फिर जन्म लेकर बहिरा, दुःखी, कोढी होकर क्रमानुसार सातजन्म उसको व्यतीत करने पडतेहैं ॥ ६१ ॥ इस कारण पाप करके उसको छिपानेकी चेष्टा कदापि न करै प्रकाश करदे, और स्त्री, बालक, सेवक, गौ तथा इनके ऊपर क्रोध कदापि न करै ॥ ६२ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥
अगम्यागमने चैव शुद्धौ चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंके पापसे छूटनेका उपाय कहते हैं, अगम्य स्त्रीमें गमन करनेसे जो पाप होताहै वह चांद्रायणव्रतके करनेसे मुक्त होताहै ॥ १ ॥

एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ॥ अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चांद्रायणो विधिः ॥ २ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत् ॥ अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक ग्रास कमती करता रहै, और शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन एक२ग्रासको बढावै और अमावस्याके दिन कुछभी न खाय यह चांद्रायण व्रतकी विधि है ॥ २ ॥ एक २ ग्रासको मुरगीके अंडोंकी समान बडा बनावै, इसके अन्यथा करनेसे न धर्म है और न शुद्धिही होतीहै ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तका अनुष्ठान शेष होजानेपर ब्राह्मणभोजन करावै, और दो गौ और एक जोडा वस्त्र ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे ॥ ४ ॥

चंडालीं वा श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥ सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥ गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥ विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥

जो ब्राह्मण चांडाली वा श्वपचीमें गमन करताहै वह ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार तीनरात्रि उपवास करै ॥ ५ ॥ इसके पीछे शिखासहित सम्पूर्ण केशोंका मुंडन करावै और दो प्राजापत्य व्रत करै, इसके पीछे ब्रह्मकूर्चका पान करकै भोजनादिद्वारा ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै ॥ ६ ॥ इसपीछे वह नित्य गायत्रीका जपकरता रहै, फिर एक गौ और एक बैल ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे, तौ वह निस्संदेह शुद्धि प्राप्त कर सकताहै ॥ ७ ॥ यह पाराशरजीका वचन है कि दो गौ दक्षिणामें देनेसे शुद्धि होतीहै,

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥ ८ ॥
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥

यदि कोई क्षत्रिय वा वैश्य किसी चांडालीमें गमन करै तौ ॥ ८ ॥ वह दो प्राजापत्य व्रत करै और ब्राह्मणोंको एक गौ और एक बैल दक्षिणामें दे;

श्वपाकीं वाथ चण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

यदि शूद्र श्वपाकी और चांडालीके साथ गमन करै तौ ॥ ९ ॥ एक प्राजापत्य व्रतकर ब्राह्मणोंको चार गोमिथुन दक्षिणामें दे ॥ १० ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥ एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥ चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति ॥

अपनी माता, बहन और पुत्रीमें जो मनुष्य अज्ञानतासे गमन करताहै वह तीन कृच्छ्रव्रत करै ॥ ११ ॥ वा तीन चांद्रायण करै पीछे शिर छेदन करनेसे शुद्धि होतीहै;

मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिकृंतनम् ॥ १२ ॥ अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् ॥ दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

और माताकी बहनके साथ गमन करनेवाला अपनी लिङ्गेन्द्रिय काटनेपरही शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥ यदि जो पुरुष अज्ञानतासे मौसीके विषय गमन करताहै वह दो चांद्रायण व्रत करै, और दस गौ और दश बैल ब्राह्मणोंको दान करै तब शुद्ध होताहै, यह पराशरजीका कथन है ॥ १३ ॥

पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥ गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ॥ १४ ॥ मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

जो पुरुष सौतेली मातामें, माताकी सखीमें, भाईकी लडकीमें, गुरुकी स्त्रीमें, पुत्रकी स्त्रीमें, भ्राताकी स्त्रीमें ॥ १४ ॥ मामाकी स्त्रीमें या अपने गोत्रकी कन्याके साथ गमन करताहै वह तीन प्राजापत्यव्रत कर दो गौ दक्षिणामें देनेसे निःसन्देह शुद्ध हो जाताहै ॥ १५ ॥

पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रीं कपीं तथा ॥
खरीं च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥

पशु, वेश्या, महिषी (भैंस) ऊंटनी, वानरी, गर्दभी, शूकरीके साथ गमन करनेवाला प्राजापत्यव्रत करै ॥ १६ ॥

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

गौके साथ गमन करनेवाला तीनरात्रि उपवास कर ब्राह्मणोंको एक गौ दान करै। महिषी, ऊंटनी और गर्दभीके साथ गमन करनेवाला एक रात्रिदिन उपवास करनेसे शुद्ध हो जाताहै ॥ १७ ॥

डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥
बंदिग्राहे भयार्तो वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥

मारामारी वा काटाकाटीके समयमें, युद्धके समय, दुर्भिक्षके समय, जनक्षयके समय, भय प्राप्त होनेके समय, कोई आक्रमण करनेवाला यदि पकडकर या बन्दी करके लेजाय तो उस समय सर्वदा अपनी स्त्रीकी ओर दृष्टि रखनी उचित है ॥ १८ ॥

चण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥ विप्रान्दशवरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥ आकंठसंमिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥ तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥ सशिखं वपनं कृत्वा भुंजीयाद्यावकौदनम् ॥ त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत्॥ २१ ॥ शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥ सुवर्णं पंचगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ॥ २२ ॥ एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥ व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते बहिः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥

जो स्त्री चांडालके साथ सहवास करै; तौ वह अपने पापको श्रेष्ठ दस ब्राह्मणोंके निकट प्रकाशित करदे ॥ १९ ॥ गोवरके जल व कीचसे भरेहुए कूपमें गलेतक मग्न होकर विना भोजन करे एक रातदिन रहकर निकल आवै ॥ २० ॥ फिर शिखासहित सारे शिरका मुंडन कराकर अधपके हुए यवका भोजन करै, इसके उपरान्त तीन रात्रि उपवास कर एकरात्रि जलमें निवास करै ॥ २१ ॥ पीछे शंखपुष्पी औषधीकी जड, पत्ते, फूल, फल और सुवर्ण तथा पंचगव्य इन सबको एकत्र पीसके औटाकर उसका जलपान करै ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त जबतक ऋतुमती हो तबतक पकेहुए अन्नका भोजन दिनमें एक वार करै, जबतक यह व्रत समाप्त न होजाय तबतक घरकृत्यसे बाहर रहै ॥ २३ ॥ इस भांति प्रायश्चित्तके समाप्त होजानेपर ब्राह्मण भोजन कराकर दो गौ दक्षिणामें दे तब शुद्धि होतीहै यह पाराशरजीका वचनहै ॥ २४ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चांद्रायणव्रतम् ॥
यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥ २५ ॥

यदि चारों वर्णोंकी स्त्रियें दोषयुक्त होजायँ तौ कृच्छ्र चांद्रायण व्रत करैं; पृथ्वी और स्त्री दोनोंही समान हैं इसकारण उनको दूषित न करै ॥ २५ ॥

बंदिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्भयात् ॥ कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छंती पापकर्मभिः ॥ प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन च ॥ २७ ॥

जिस स्त्रीको बंदी करकै अन्य पुरुष भोगतेहैं, अथवा जिस स्त्रीको प्रहार कर कैद करकै भय दिखाकर बलात्कार करकै भोगाहै पराशरजीका कथनहै कि, वह स्त्री कृच्छ्र सांतपन व्रतके करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ २६ ॥ जिस स्त्रीको विना इच्छाके पापी पुरुषोंने बलपूर्वक एकवारभी भोगाहै वह प्राजापत्य व्रत करकै ऋतुमती होनेपर शुद्ध होजातीहै ॥ २७ ॥

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥ पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ २८ ॥ गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥

जो स्त्री मदिरा पान करतीहै उसका आधा शरीर पतित होजाताहै; इस प्रकारसे जिसका शरीर पतित होगयाहै उसकी शुद्धि नहीं है, वह नरकको जाती है इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ कृच्छ्र सांतपन व्रतके आचरण करनेके समय निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ २९ ॥ गोमूत्र, गौका गोबर, दूध, दही, घृत, और कुशाका जल, यह पंचगव्य पानकर एकरात्रि उपवास करै, यह सांतपन कहाताहै ॥ ३० ॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ॥
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥

पतिके त्याग करनेसे या पतिके मरजानेसे स्त्री अन्य पुरुषके संयोगसे गर्भवती होजाय तो उस पापिनी पतित स्त्रीको अन्यराज्यमें छोड आवै ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता ॥ सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या गमनं पुनः ॥ ३२ ॥ कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बंधून्सुतान्पतिम् ॥ सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी पर पुरुषके साथ निकलजाय तौ उसको नष्ट हुई जानो, उसको किसी प्रकारभी घरमें रखना उचित नहीं ॥ ३२ ॥ यदि कोई स्त्री काम या मोहके वशीभूत होकर पति, पुत्र, तथा बंधु बांधवोंको त्याग कर घरसे चलीजाय, तौ वह परलोकमें तथा मनुष्य समाजमें नष्ट होजातीहै ॥ ३३ ॥

मदमोहगता नारी क्रोधाद्दंडादिताडिता ॥
अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥

जो स्त्री मद वा मोहसे अथवा क्रोधसे दंडके ताडन करनेसे विना किसीके पास गये घर लौट आवै ॥ ३४ ॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेन्नष्टश्रुतां तथा ॥ ३५ ॥ भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बांधवाः ॥ तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥

यदि उस स्त्रीको गये हुए घरसे दश दिन बीत जायँ तौ प्रायश्चित्त नहीं वह पतितही होती है कारण कि, दश दिनतक स्त्रीका त्याग न करै, परन्तु यदि उसको नष्टा सुनाजाय तौ उसका त्याग करदे ॥ ३५ ॥ और उसके पतिको कृच्छ्र व्रत और उसके बंधु बांधवोंको अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना चाहिये, और उनके घरका जिसने भोजन कियाहो वा जलपान किया हो वह अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता ॥
गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी निषेध करनेपर भी परपुरुषके संग चलीजाय वह स्त्री यदि दूसरे पुरुषका संग करके शीघ्र अपने पतिके निकट चली आवै तौ सगोत्रियोंको उसको त्यागदेना उचित है ॥ ३७ ॥

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥ पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥ ३८ ॥ उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत् ॥ त्यजेच्च मृन्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥ संभाराञ्छोधयेत्सर्वान्गोकेशैश्च फलोद्भवान् ॥ ताम्राणि पंचगव्येन कांस्यानि दशभस्मभिः ॥ ४० ॥ प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादयेत् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥ इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च शोधनम् ॥ उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसंध्यार्चनादिभिः ॥ ४२॥ जपहोमदयादानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणादयः ॥ आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ॥ ४३ ॥ न दुष्यंति च दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा ॥ ४४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यदि वह स्त्री जारपुरुषके घरमेंसे चली आवै तौ पतिका घर और उस स्त्रीके पिता और माताका घर अशुद्ध होजाताहै ॥ ३८ ॥ उस घरको खोदकर पीछे पंचगव्यको छिडके, और मिट्टीके पात्रोंको फैंकदे और वस्त्र तथा काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि करै ॥ ३९ ॥ फलकी सामग्रियोंको तौ गौके चँवरासे शुद्ध करै और ताँबेकी वस्तुओंको पंचगव्यसे शुद्ध करै और काँसीकी वस्तुको दशवार भस्मसे मांजकर शुद्ध करना उचित है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंके कहे हुए प्रायश्चित्तको वह ब्राह्मण करै, और दो गौ दक्षिणामें दे और दो प्राजापत्यव्रत करै ॥ ४१ ॥ और उसके अन्यान्य बंधु अहोरात्र व्रतकर पंचगव्य पान करके तथा, उपवास, व्रत, पुण्य, स्नान, सन्ध्या, पूजनआदिसे ॥ ४२ ॥ और जप होम दया दान इनसे ब्राह्मणआदि शुद्ध होजातेहैं ॥ आकाश, पवन, अग्नि, और पृथ्वीमें पडा हुआ जल ॥ ४३ ॥ तथा कुशा यह किसी भांति अशुद्ध नहीं होते, जिस भांति यज्ञमें चमसा अशुद्ध नहीं होताहै॥४४॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अमेध्यरेतो गोमांसं चंडलान्नमथापि वा ॥ यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥ क्षत्रियो वाथ वैश्यश्चेदर्धकृच्छ्रं च कायिकम् ॥ २ ॥ पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्द्विजः ॥ एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मणने अशुद्ध पदार्थ, वीर्य, गौका मांस, और चांडालके यहांका अन्न भक्षण करलियाहो तौ चांद्रायण व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १ ॥ और यदि क्षत्रीने इन वस्तुओंको खालिया हो तौ वह अर्द्धकृच्छ्र चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै; और वैश्य इन वस्तुओंके खानेसे प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥ और शूद्र तौ पंचगव्यका पान

करै, और ब्राह्मण ब्रह्मकूर्चको पीले, फिर ब्राह्मणआदि चारोंवर्ण क्रमानुसार एक, दो, तीन और चार गौओंका दान करैं ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकान्नं च अभोज्यस्यान्नमेव च ॥ शंकितं प्रतिषिद्धान्नं, पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥ यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥ ज्ञात्वा समाचरे-त्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

शूद्रकी अन्न, सूतकका अन्न, अभोज्यका अन्न, शंकित अन्न, निषिद्ध अन्न, उच्छिष्ट अन्न ॥ ४ ॥ इन अन्नोंको यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे या विपत्ति आनेके समय खाले तौ उसको जानकर कृच्छ्रव्रत करै और पवित्र करनेवाले ब्रह्मकूर्चका पान करैं ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ॥
तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

जिसे सर्प, नौला, बिलावआदिने जूंठा करदिया हो वह तिल और कुशाका जल छिडकनेसे निःसन्देह उस अन्नकी शुद्धि होजातीहै ॥ ६ ॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

अभोज्य अन्नको खानेवाला शूद्रभी पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै; यदि अभोज्य अन्नको क्षत्रिय तथा वैश्य खाले तौ वह प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ७ ॥

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥ यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ॥ प्रायश्चित्तं चरे-द्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पंक्तिमें एकसाथ भोजन करते हुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि कोई ब्राह्मण भोजन करनेसे खडा होजाय तौ उस शेष अन्नको कोई ब्राह्मण भी न खाय ॥ ८ ॥ यदि इस अवस्थामें कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे उस पंक्तिमें उच्छिष्टको खाले; तौ उस ब्राह्मणको सांतपन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ९ ॥

पीयूषं श्वेतलशुनं वृंताकफलगृंजने ॥ पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥ उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्ये-न शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पेवची, श्वेतलहसन, बैंगन, गाजर, प्याज, वृक्षका गोंद, देवताका द्रव्य, कवक (पृथ्वीकी ढाल) ॥ १० ॥ ऊंटनी, तथा भेडका दूध, जो ब्राह्मण इन वस्तुओंको अज्ञानतासे खाता है वह तीनरात्रि उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ११ ॥

मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण जानबूझ कर मेंडक और मूंसेके मांसको खाताहै वह अहोरात्रमें जौके खानेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ ॥
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥

क्षत्री हो या वैश्य हो जब कि वह क्रियाकरनेवाले धर्माचरणकारी और पवित्रात्मा हैं तब उनके यहां हव्य कव्यमें सर्वदा भोजन करसकता है ॥ १३ ॥

घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं तैलेन पाचितम् ॥ गत्वा नदीतटे विप्रो भुंजीयाच्छूद्रभाजने ॥ १४ ॥ मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥ तं शूद्रं वर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिव दूरतः ॥ १५ ॥ द्विजशुश्रूषणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ॥ स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूद्रान्न त्यजेद्द्विजः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण नदीके किनारे जाकर शूद्रके पात्रमें घी, दूध, तेल, और तेलसे पके हुए गुडको खाले ॥ १४॥ जो शूद्र मदिरा मांस खाता, नीचकर्म करताहो उस शूद्रको श्वपाककी समान दूरसेही त्यागदे ॥ १५ ॥ जो शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा करताहो, मदिरा मांसको न खानेवाला अपने कर्ममें तत्पर हो उस शूद्रका ब्राह्मणोंको त्याग करना उचित नहीं॥ १६ ॥

अज्ञानाद्भुंजते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ॥ प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥ गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ॥ वैश्ये पंचसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८॥ ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्विसहस्रं तु दापयेत् ॥ अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्धयति ॥ १९ ॥

(प्रश्न) यदि जो ब्राह्मण अज्ञानतासे सूतक वा मृतकमें भोजन करतेहैं तौ वर्ण वर्णके प्रति उनका किस प्रकारसे प्रायश्चित्त कहाहै? ॥१७॥ (उत्तर) शूद्रके यहां सूतकमें भोजन करनेसे आठहजार गायत्री जपकरनेसे शुद्धि होतीहै, वैश्यके यहां सूतकमें भोजन करनेसे पांचहजार गायत्रीका जपकरै, और क्षत्रियके यहां सूतकमें भोजन करनेसे तीनहजार गायत्रीका जपकरनेसे शुद्धि होजातीहै ॥ १८॥ परन्तु ब्राह्मणके यहां सूतकमें खानेसे दोहजार गायत्रीका जप करै अथवा वामदेव ऋषिके कहेहुए साममंत्रसेही शुद्धि होजातीहै ॥ १९ ॥

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेषेण आहृतम् ॥ पक्वं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥ आपत्काले तु विप्रेण भुंक्ते शूद्रगृहे यदि ॥ मनस्तापेन शुद्धयेत द्रुपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥

शूद्रके यहांका अन्न, गोरस, और स्नेह (घीआदि) यह यदि शूद्रके यहांसे लाकर ब्राह्मण घर पकाकर खाले तौ वह भोजनके योग्य है, यह मनुजीका वचन है ॥ २० ॥ यदि आपत्तिके समयमें ब्राह्मणने शूद्रके यहां भोजन करलिया हो तौ वह मनके पश्चात्तापसेही शुद्ध होजाताहै, और फिर एकवार द्रुपदा मन्त्रका जप करै ॥ २१ ॥

दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं विधीयते ॥ २२॥

दास, नाई, गोपाल कुलका मित्र अर्द्धसीरी इन सबके यहांका और अपने आप स्वयं इस भांति कहदे कि मैं आपका हूं, उसके यहांका अन्न भोजन करनेके योग्य है ॥ २२ ॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥ असंस्काराद्भवेदासः संस्कारादेव नापितः ॥ २३॥ क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ॥ स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २४ ॥ वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥ स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥

जो सन्तान ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हो यदि उसका संस्कार न हो तौ वह दास कहाता है, और जो यदि संस्कार होजाय तौ वह नाई होताहै ॥ २३ ॥ जो पुत्र शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो, वह गोपाल कहाताहै, उसके यहां ब्राह्मण निस्संदेह भोजन करै ॥ २४ ॥ जो पुत्र ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न हो और उसका संस्कार होजाय उसे आर्द्धिक कहते हैं, उसके यहांभी ब्राह्मणको भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ २५ ॥

भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ॥ अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७ ॥ शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्धयति ॥ ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ २८ ॥

(प्रश्न) जिनके यहांका भोजनकरना अनुचित है उनके पात्रमें रक्खा जल, दही, घी, दूध इनको जो मनुष्य खाता है उसका प्रायश्चित्त किस भांति से हो ? ॥ २६ ॥ (उत्तर) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यदि यह खालें तौ यज्ञके योग्य तीनों वर्णोका प्रायश्चित्त ब्रह्मकूर्च उपवास करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥ शूद्रको उपवास करना उचित नहीं शूद्र तो दान करनेसेही शुद्ध होजाता है श्वपाक अहोरात्रका उपवास करनेसेही शुद्ध होसकता है ॥ २८ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥ गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥ पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ॥ मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥ क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते ॥ घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥ गायत्र्यादाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥ ३३ ॥ तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥ पंचगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥ आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मंत्रयेत्॥ सप्तावरासु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥ ३५ ॥ एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि ॥ इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥ ३६ ॥ एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्द्विजः ॥ आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु॥ ३७॥ उद्धृत्य प्रणवेनैवं पिबेच्च प्रणवेन तु ॥ यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेंधनम् ॥ पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥ वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ॥ दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशका जल यही सम्पूर्ण पापोंका नाशकारी पवित्र पंचगव्य कहाता है ॥ २९ ॥ काली गौका मूत्र, सफेद गौका गोबर, तांबेके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही, ॥ ३० ॥ कपिला गौका घी, अथवा सम्पूर्ण वस्तुऐं कपिलाहीकी लेले; एक पल गोमूत्र, आधे अंगूठेभर गोमय, ॥ ३१ ॥ सात पल दूध, तीन पल दही, एक पल घी और एक पल कुशाका जल हो॥३२॥गायत्री पढकर गोमूत्र ग्रहण करै, "गंधद्वारां"इस मंत्रसे गोबर "आप्यायस्व" इस मंत्रसे दूध "दधिक्राव्ण" इससे दही ले ॥ ३३ ॥ "तेजोसिशुक्रं" इस मंत्रसे घी ले "देवस्य त्वा" इस मंत्रसे कुशाका जल ले इसभाँति ऋचाद्वारा पवित्रकिये

पंचगव्यको अग्नि के सन्मुख रक्खै ॥ ३४ ॥ "आपोहिष्ठा" इस मंत्रसे चलावे "मानस्तोके" इस मंत्रसे मथै, कमसे कम सात, और तोतेके समान रंगवाली अग्रभागयुक्त ॥ ३५ ॥ उन कुशाओंसे विधिसहित उठाकर पंचगव्यका हवन करै "इरावती" "इदंविष्णु" "मानस्तोके" "शंवती" ॥ ३६ ॥ इन ऋचाओंसे हवन करै और शेषको ब्राह्मण पान करै, ओंकारसेही चलाकर और ओंकारसेही मथकर ॥ ३७ ॥ ओंकारसेही उठावै और ओंकारसेही पिये । जो त्वचा और अस्थियोंमें देहधारियोंका पाप स्थित है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्च उसको इस भांति दग्ध करदेता है जिसभांति ईंधनको अग्नि भस्म करदेती है; यह पंचगव्य तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और देवताओंसे अधिष्ठित है कारण कि ॥ ३९ ॥ वरुण गोमूत्रमें, अग्नि गोबरमें, पवन दहीमें, चंद्रमा दूधमें, और सूर्य घीमें निवास करते हैं ॥ ४० ॥

पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥
अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥

यदि मनुष्यके जल पीतेहुए समयमें मुँहमेंसे जल निकलकर पात्रमें गिरपडै तो वह जल पीने योग्य नहीं रहता;और जो यदि उसे पीभी ले तो वह चांद्रायण व्रतकरनेसे शुद्ध होता है॥४१॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वसृगालौ च मर्कटम् ॥ अस्थिचर्मादिपतितः पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥ ४२ ॥ नारं तु कुणपं काकं विड्वराहं खराष्ट्रकम् ॥ गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥४३॥ वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा कूपे यदि निमज्जति॥ तडागस्याऽप्यदुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥ प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ॥ विप्रः शुध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ॥ एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥

जिस कुएमें कुत्ता, गीदड, बंदर, अस्थि, चर्म यह गिरगई हो उस कुएके अपवित्र जलको पीनेवाला ब्राह्मण ॥ ४२ ॥ और मनुष्यका शरीर, कौआ, विष्ठा खानेवाला सूकर, गधा, ऊंट, गाय (नीलगाय) हाथी, मोर, गैंडा, ॥ ४३ ॥ भेडिया, रीछ, सिंह, यदि यह कुएमें डूबजायँ, और निषिद्ध तालावके जलको पीनेवाला मनुष्य ॥ ४४ ॥ इन सबका क्रमानुसार प्रायश्चित्त इस भांति है, ब्राह्मण तीनरात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, क्षत्रिय दो दिनके उपवास करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४५॥ वैश्य एकही दिन उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, शूद्र नक्तव्रतके करनेसे शुद्ध होजाता है ॥

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥ अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ अपचस्य तु यद्दानं दातुरस्य कुतः फलम् ॥ ४७ ॥ दाता प्रतिगृहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥

जो परपाकनिवृत्त (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न, और जल परपाकरत (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न ॥४६॥ और अपच (लक्षण आगे कहेंगे) का अन्न खानेसेब्राह्मणको चांद्रायण व्रत करना उचित है, जो मनुष्य अपचको दान देताहै उसका फल दाताको नहीं होता ॥ ४७ ॥ उसका देनेवाला और लेनेवाला यह दोनों नरकको जातेहैं;

गृहीत्वाग्निं समारोप्य पंचयज्ञान्न निर्वपेत् ॥ ४८ ॥परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ पंचयज्ञान्स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति ॥ ४९ ॥ सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः ॥ गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ॥५०॥ ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥

अग्निहोत्रका नियम करके पंचयज्ञ न करै ॥ ४८ ॥ दूसरेके पकायेहुए अन्नको भोजन करै, मुनियोंने इसे परपाकनिवृत्त कहाहै; और जो स्वयं पंचयज्ञ करके पराये अन्नसे जीवन व्यतीत करतेहैं ॥ ४९ ॥ और नित्य प्रति प्रभातकालको उठकर परपाकमें रत हो उसको परपाकरत कहते हैं गृहस्थ धर्ममें जो ब्राह्मण हो और दान न देता हो ॥ ५० ॥ धर्म तत्त्वके जाननेवाले ऋषियोंने उसे अपच कहाहै,

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥ ५१ ॥
तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

जो धर्म युग २ में स्थित हैं; और जो ब्राह्मण युग २ में हैं ॥ ५१ ॥ उनकी निन्दाकरनी उचित नहीं कारण कि वह ब्राह्मण युगकेही अनुरूप हैं;

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥ ५२ ॥ स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषम-भिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्ध्वापि वाससा ॥ ५३ ॥ विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षिति-पातने ॥ ५४ ॥ अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥

अत्यन्त बडे ब्राह्मणको हुंकार और त्वंकार कहकर ॥ ५२ ॥ जितना दिन शेष हो उतने दिन स्नानकरके बैठारहै; और उन्हें नमस्कार कर प्रसन्न करै, यदि कोई तिनुकेसे ब्राह्मणको ताडन करै, या उसके गलेमें वस्त्र बाँधे ॥५३॥ अथवा विद्याके द्वारा उसको पराजित कर दे तौ प्रणामादि द्वारा उस ब्राह्मणको प्रसन्न करना उचित है; और यदि ब्राह्मणको झटकदे तब अहोरात्र उपवास करै, और पृथ्वीपर गिरानेसे तीनरात्रि उपवासकरना उचित है ॥ ५४ ॥ रुधिर निकालनेपर अतिकृच्छ्र व्रत करै और रुधिरके न निकलनेपर कृच्छ्र करना उचित है ॥

नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ ५५ ॥
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥

एक अंजुलीभर अन्नको नौ दिन तक खाय वह अतिकृच्छ्र कहाताहै ॥ ५५ ॥ और तीन रात्रि उपवास करै उसे कृच्छ्र कहतेहैं ॥

सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥
दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥ ५६ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यदि एकहीसमय सम्पूर्ण पापोंका सम्मिलन होजाय तौ॥दश हजार गायत्रीका जप करनेसे परमशुद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ५६ ॥इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वांते वा क्षुरकर्मणि ॥
मैथुने प्रेतधूम्रे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

वमन, क्षौरकर्म,मैथुन, प्रेतका धुंआ, इनके स्वप्न देखनेके उपरान्त स्नान करना कहाहै॥१॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेवच ॥ पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २ ॥ अजिनं मेखला दंडो भैक्षचर्या व्रतानि च॥निवर्त्तंते द्विजा-तीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे विष्ठा, मूत्र, और जिसमें मदिरा मिलीहो इनको खाले तौ तीनों वर्ण फिर संस्कारके योग्य होजातेहैं ॥ २ ॥ द्विजातियोंको पुनर्वार संस्कारके कर्ममें मृगछाला, कौंधनी, दंड, भिक्षाका मांगना यह सम्पूर्ण निवृत्त होजातेहैं ॥ ३ ॥

विण्मूत्रस्य च शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥
पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

विष्ठा मूत्रका खानेवाला प्राजापत्य करै, और पंचगव्य बनाकर स्नान करकै पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥

जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ॥ प्रत्यवसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ५ ॥ प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ॥ वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्ध्यंति ते त्रयः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) जल और अग्निमें पडकर संन्यास धर्मको नष्टकरनेवाले उन धर्मसे पतितहुए वर्णोंकी शुद्धि किसभाँति होतीहै? ॥ ५॥ (उत्तर) दो प्राजापत्यके करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे ग्यारह बैलोंका दानकरनेसे क्रमानुसार तीनोंवर्ण शुद्ध होजातेहैं ॥ ६ ॥

ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे ॥ सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

अब ब्राह्मणका प्रायश्चित्त कहतेहैं; वह ब्राह्मण वनमें जाकर चौराहेमें शिखासमेत मुंडन कराकर दो प्राजापत्य व्रतकरै ॥ ७ ॥ और दक्षिणामें दो गौ दे तब शुद्ध होताहै यह पराशरमुनिका वचन है. और उस पापसे छूटकर फिर ब्राह्मणही होजाताहै ॥ ८ ॥

स्नानानि पंच पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ॥ आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ ९ ॥ आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ॥ आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ १० ॥ यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥ तत्र स्नात्वा तु गंगायां स्नातो भवति मानवः ॥ ११ ॥

बुद्धिमानोंने पांच स्नानोंको पवित्र कहाहै १ आग्नेय,२ वारुण,३ ब्राह्म, ४ वायव्य, ५ दिव्य ॥ ९ ॥ जो भस्मसे मार्जन कियाजाताहै वह आग्नेय स्नान कहाताहै, जलसे जो स्नान किया जाताहै वह वारुण कहाताहै, 'आपो हिष्ठा' इन तीन ऋचाओंसे जो स्नान है उसे ब्राह्म कहतेहैं, और जो गौओंकी रजसे स्नान कियाजाताहै उसे वायव्य कहतेहैं ॥ १० ॥ धूपके निकलनेपर भी जो वर्षा होतीहो उस मेघोंकी बूंदोंसे जो स्नान कियाजाताहै उसे दिव्य स्नान कहतेहैं इस दिव्य स्नानसे मनुष्य गंगास्नानके फलको पाताहै ॥ ११ ॥

स्नातुं यांतं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह ॥ वायुभूतास्तु गच्छंति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥ १२ ॥ निराशास्ते निवर्त्तंते वस्त्रनिष्पीडने कृते ॥ तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥

जिस समय ब्राह्मण स्नान करनेके लिये जाताहै,उस समय पितर और देवता तृष्णासे आतुर हो जलपीनेके लिये वायुरूप धारणकर उसके संगसंग जातेहैं ॥ १२ ॥ यदि वह ब्राह्मण स्नानकर विना तर्पण कियेही वस्त्र निचोड डाले तब वह निराश होकर लौट आतेहैं, इसकारण पितरोंका तर्पण बिना किये वस्त्रको पहले कभी न निचोडै ॥ १३ ॥

रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च ॥ १४ ॥ अवधूनोति यः केशान्स्नात्वा प्रस्रवतो द्विजः ॥ आचामेद्वा जलस्थोपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य रोमोंके छिद्रोंको पोंछकर पितरोंका तर्पण करताहै उसनें मानों रुधिर और मलसे पितरोंको तृप्तकिया ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण स्नान करनेके पीछे केशोंको झाडताहै या उनमेंसे जल टपकाताहै, या जो जलमें बैठकर वा खडे होकर आचमन करताहै, वह मनुष्य पितर और देवताओंके कर्म करने योग्य नहींहै ॥ १५ ॥

शिरः प्रावृत्य कंठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा ॥
विना यज्ञोपवीतेन आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य शिर वा कंठको फेरकर और लम्बी शिखाको खोलकर, या जनेऊके विना आचमन करता है वह आचमन करकेभी शुद्ध नहीं होता, अर्थात् अशुद्धही रहताहै ॥ १६ ॥

जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्चेद्बहिः स्थले ॥
उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥

मनुष्य स्थलमें बैठकर जल में और जलमें बैठकर स्थलमें आचमन न करै परन्तु दोनों जगह बैठा दोनों जगहही आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्प्पणे ॥
आचांतः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥ १८ ॥

आचमनकरनेके पीछे, स्नानकरनेके उपरान्त जलपीनेके पीछे, छींकनेके उपरान्त सो कर उठनेके पीछे, खानेके पीछे, या गलीमें चलनेके पीछे वा वस्त्र पहननेके पीछे फिर आचमन करले ॥ १८ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥
पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥

छींकना, थूकना, दांतोंका उच्छिष्ट, अथवा झूंठ बोलना, व पतितोंके साथ संभाषणकरना इन कर्मोंके करनेसे दाहिने कानका स्पर्श करले ॥ १९ ॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ॥
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥

दिनका स्नान सूर्यकी किरणोंसे पवित्र है, और राहुके दर्शनोंको छोडकर रात्रिका स्नान अधम कहाता है ॥ २० ॥

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः ॥
सर्वे सोमे प्रलीयंते तस्माद्दानं तु संग्रहे ॥ २१ ॥

मरुत, आठ वसु,ग्यारह रुद्र और बारह सूर्य और देवता यह ग्रहणके समयमें सब चंद्रमा में लीन होजाते हैं, इससे ग्रहणके समय में दानदेना अवश्य कर्तव्य है ॥ २१ ॥

खलयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे तथा ॥ शर्वर्य्यां दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥ पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ॥ राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥ महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

खलयाग, विवाह, संक्रांति और ग्रहण इन अवसरोंमें रात्रिके समय में दानकरै; अन्यसमय में न करै ॥ २२ ॥ पुत्रका जन्म, यज्ञ, मृतकका कर्म, राहुका दर्शन इनमें रात्रि के समय में दान उत्तम कहाहै, और कर्मों में नहीं कहा ॥ २३ ॥ रात्रि के बीचमें दो पहरोंको महानिशा कहते हैं, इसकारण सूर्यास्तके और पिछले पहरमें दिनकी समान स्नानकरै ॥ २४ ॥

चैत्यवृक्षश्चितिः पूयश्चंडालः सोमविक्रयी ॥
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ २५ ॥

चैत्यका वृक्ष (इसकी पूजा बौद्धमतवाले करतेहैं) चितारोध, चांडाल, सोमलताका बेचनेवाला; इन सबका स्पर्शकरनेसे ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करै ॥ २५ ॥

अस्थिसंचयनात्पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ॥
अंतर्दशाहे विप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनं स्मृतम् ॥ २६ ॥

अस्थिसंचयनके पहले रुदनकरकै स्नानकरना उचित है और ब्राह्मणोंको मरनेसे दसदिन उपरान्त आचमनकरना उचित है ॥ २६ ॥

सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥
सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥

सूर्य या चंद्रमाको जिससमय राहु ग्रसले उससमय सभी जल, स्नान, दान आदि कर्मोंमें गंगाकी समान होजाते हैं ॥ २७ ॥

कुशैः पूतं भवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद्द्विजः ॥
कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥ २८ ॥

कुशासे पवित्रहुए जलसे स्नानकरै, और कुशाओंसेही ब्राह्मण आचमनकरै, कारण कि कुशासे उठायाहुआ जल अमृतपानकरनेकी समान होजाताहै ॥ २८ ॥

अग्निकार्यात्परिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ॥ वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २९ ॥ तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥ शूद्रान्नरसपुष्टस्याधीयमानस्य नित्यशः ॥ जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ ३१ ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्रसे भ्रष्ट होगये हैं और जो संध्याउपासनासे वर्जित हैं; जो वेदको नहीं पढते उनको शूद्र कहाहै॥२९ ॥ इसकारण शूद्रहोनेके भयसे यदि ब्राह्मण सब वेदोंको न पढसकै तौ एक वेदको तौ अवश्यही पढै ॥ ३० ॥ शूद्रके अन्नसे पुष्टहोकर जो ब्राह्मण नित्य वेदपाठ हवन और जप करता है परन्तु तौभी उसको सद्गति नहीं प्राप्तहोती ॥ ३१ ॥

शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ३२ ॥ यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ॥ वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥ ३३ ॥ मृतसूतकपुष्टांगं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम् ॥ अहं तं न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥३४॥ गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि सूकरः॥श्वयोनौ सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत्॥३५॥

शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल, शूद्रके साथ एकजगह बैठना, शूद्रसे ज्ञान लेना, यह प्रतापवान मनुष्यकोभी पतित करदेते हैं॥३२॥जो ब्राह्मण शूद्रीसे भोजन बनवाताहै,या जिसकी स्त्री शूद्रीहो;वह ब्राह्मण पितर और देवताओंसे वर्जित है,और अन्तमें रौरव नरकको जाताहै॥३३॥

है ॥ ३३ ॥ मृतकके सूतकमें खानेसे जिसका अंग पुष्टहुआहो, और जो शूद्रके यहांका अन्न भोजन करता हो वह न जाने किस २ योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३४ ॥ परन्तु मनुने इस भांति कहाहै कि बारह जन्मोंतक गीध, दश जन्मोंतक सूकर सात जन्मतक वह मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३५ ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविका हवन करताहै; वह ब्राह्मण शूद्र होताहै; और वह शूद्र ब्राह्मण होताहै ॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्द्विजः ॥ भुंजानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥ हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥ भुंजानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुंचति ॥ स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥ भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वंति ये द्विजाः ॥ न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरस्तथा ॥ ४० ॥ अस्नात्वा वै न भुंजीत तथैवाग्निमपूज्य च ॥ न पर्णपृष्ठे भुंजीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥

मौन व्रतको धारणकर जो ब्राह्मण बैठे वह न बोले; और जो भोजन करतेमें बोले तौ उस अन्न को त्याग दे ॥ ३७ ॥ आधा भोजन करनेके उपरान्त जो ब्राह्मण उसी भोजनके पात्रमें जल पीताहै; उसके देवता और पितरोंके किये हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट होजाते हैं;और वह स्वयं अपनी आत्माकोभी नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें पहले पात्र छोडकर खडा होजाताहै; वह मूढ महापापी और ब्रह्महत्यारा कहाताहै ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण भोजन करते समयमें स्वस्ति कहते हैं उनपर देवता तृप्त नहीं होते, और उसके पितरभी निराश होजातेहैं ॥ ४० ॥ स्नान विना किये, और विना अग्निका पूजन किये भोजन करना उचित नहीं और रात्रिके समयमें पत्तेकी पीठपर दीपक के विना भोजन न करै ॥ ४१ ॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिंतयेत् ॥ पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥ न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥ अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः॥४३॥अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः॥ दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥ अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ॥तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥

दयावान् गृहस्थ सर्वदा धर्मकी चिन्ताकरै, और अपने पुत्र वा भृत्यआदिके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये बुद्धिमान् सर्वदा न्यायका वर्ताव करता रहै ॥ ४२ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे अपनी रक्षाकरै, जो अन्यायसे जीवन व्यतीत करताहै,वह धर्मोंसे रहित है॥ ४३॥ अग्निसे हवन करनेवाला, कपिलागौ, यज्ञकरनेवाला, राजा, भिक्षुक, समुद्र; यह देखनेसेही पवित्र करतेहैं, इसकारण इनका दर्शन सर्वदा करै ॥ ४४ ॥ अरणि, काला बिलाव, चन्दन; उत्तम मणि, घी, तिल, काली मृगछाला, बकरी इनकी रक्षा अपने घरमें करै ॥ ४५ ॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययंत्रितम् ॥ तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७॥ कुटुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥

यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥ वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेय-शतैर्मखैः ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ४९ ॥

जिस स्थानपर सौ गौ और एक बैल यह दशगुने अर्थात् दशहजार गौ और सौ बैल यह विना बाँधे टिकें उस क्षेत्रको गोचर्म कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य इस गोचर्ममात्र पृथ्वीका दानकरताहै वह मनुष्य मन वचन देह और कर्मोंसे कियेहुए ब्रह्महत्याइत्यादि पापोंसे छूटजाताहै ॥४७॥ जो मनुष्य कुटुंबी, दरिद्री विशेष करके वेदपाठी इनको दान देताहै, वह शुभका करनेवाला है ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीहरण करताहै वह बावडी, कूप तालाव और सौ२ वाजपेय यज्ञोंके करनेसे और कोटि गौओंके दान करनेसे भी शुद्ध नहीं होता ॥ ४९ ॥

अष्टादशदिनादर्वाक्स्नानमेव रजस्वला ॥ अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनि-रब्रवीत् ॥ ५० ॥ युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम् ॥ चण्डालसूतिकोद-क्यापतितानामधः क्रमात् ॥ ५१ ॥ ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाच-रेत् ॥ स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि ॥ ५२ ॥

यदि जो रजस्वला स्त्री रजोदर्शनसे अठारहदिन पहले पूर्व कहे हुए चांडालआदिका स्पर्श करले तौ स्नानही करै; आर अठारह दिनसे आगे तीनरात उपवास करै यह उशना मुनिका वचनहै ॥ ५० ॥ यदि क्रमानुसार चार दिन,आठदिन बारह दिन सोलहदिन चांडाल सूतिका रजस्वला पतित इनके ॥ ५१ ॥ निकट रहजाय तौ उसको वस्त्रोंसहित स्नानकरना उचित है, और यदि अज्ञानसे स्पर्शभी करलियाहो तौ स्नान करके सूर्यका दर्शन करै ॥ ५२ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥
तोयं पिबति वक्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

जो ब्राह्मण हाथोंके होतेहुएभी पात्रमें मुखलगाकर जल पीताहै उसको अवश्यही कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ५३ ॥

यस्तु क्रुद्धः पुमान्ब्रूयाज्जायायास्त्वगम्यताम्॥पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥ ५४ ॥ श्रांतः क्रुद्धस्तमोऽधो वा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ॥ दानं पुण्य-मकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥ उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसंगमे ॥ चीर्णांते चैव गां दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य क्रोधित होकर अपनी स्त्रीसे इसभांति कहताहै कि तू मेरे गमनकरने योग्य नहीं है, और फिर किसी समय उस स्त्रीकी इच्छा करै, तौ वह अपनी यह बात ब्राह्मणोंके निकट प्रकाश करदे ॥ ५४ ॥ थका, या क्रोधी, अथवा अज्ञानतासे अंधा; क्षुधातृष्णासे दुःखी उस ब्राह्मणको दान पुण्यकरना उचित नहीं वह केवल तीनदिनतकही प्रायश्चित्त करै ॥ ५५ ॥ और तीनों समयमें महानदीके संगममें स्नानकर आचमन करै, और प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त त्रिकाल गोदान करै, और दश ब्राह्मणोंको जिमावै ॥ ५६ ॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ॥
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण दुराचारी और निषिद्ध आचरण करनेवाले ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह एकदिन भोजन न करै ॥ ५७ ॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांगवेदिनः ॥
भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रांतरान्नरः ॥ ५८ ॥

और जो मनुष्य उत्तम आचरण करनेवाले वेद वेदांतके जाननेमें निपुण ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह मनुष्य अहोरात्रके उपरान्त सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ५८ ॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमंतरिक्षमृतौ तथा ॥ कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे तथा ॥ ५९ ॥ कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ॥ पुण्यतीर्थे नार्द्रशिराः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥ द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् ॥

यदि कोई ऊर्ध्वोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अधोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अन्तरिक्षमें मरजाय उसके अशौचके अन्नको और मृतकके अशौचके भोजनको जो मनुष्य खाताहै वह तीनकृच्छ्र व्रतकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५९ ॥ दशहजार गायत्री, दोसौ प्राणायाम, और पवित्र तीर्थमें बारहवार शिर भिगोकर स्नान, यह एककृच्छ्रका फल देतेहैं ॥ ६० ॥ और दो योजनतक तीर्थकी यात्राकोभी एक कृच्छ्र कहाहै;

गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं यदि ॥ ६१ ॥
सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥

जो गृहस्थी पुरुष अपने वीर्यको जानकर गिराताहै ॥ ६१ ॥ वह तीन प्राणायामकर एकहजार गायत्रीका जप करै.

चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥ समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समादिशेत् ॥ सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥ ६३ ॥ वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानहवर्जितः ॥ अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥ ६४ ॥ गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥ गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ६५ ॥ तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥ एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ॥ ६६ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ रामचंद्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥ ६७ ॥ सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥ ६८ ॥ यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः ॥ पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥ सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥ ॥ ७० ॥ ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥

जो चारों विद्याओंसे युक्त हो यदि उसने ब्रह्महत्या की हो ॥ ६२ ॥ उसे सेतुबंध रामेश्वर जानेका प्रायश्चित्त बताना कर्तव्य है;और वह सेतुबंध जानेके समय चारों वर्णोंसे भिक्षा मांगै ॥ ६३ ॥ केवल कुकर्म करनेवाले मनुष्योंसे भिक्षा न मांगै, उससमय जूता और छत्रीको न रक्खै और वह भिक्षाके समयमें यह कहै कि मैने अत्यन्त दुष्कर्म कियाहै, मैं महापापी हूं ॥ ६४ ॥ मैंने ब्रह्महत्या कीहै भिक्षाके निमित्त "तुम्हारे द्वारपर खडाहूं" और गोशाला, ग्राम, नगर इनमें निवास करै ॥ ६५ ॥ तपोवनके तीर्थोंमें वसै; और जहां नदीके प्रवाह हैं वहां इनसे अपने पापोंको प्रगट करताहुआ पवित्र समुद्रपर जाय ॥ ६६ ॥ दश योजन चौडे और सौ योजन लम्बे श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे नल वानरके बनायेहुए ॥ ६७ ॥ समुद्रके दर्शनकरै तब उसीसमय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होजाता है इसके उपरान्त समुद्रके पुलका दर्शनकर पवित्रमन हो स्नानकरै ॥ ६८ ॥ और यदि पृथ्वीपति राजाही ब्रह्महत्या करै तौ वह अश्वमेध यज्ञको करै, इसके उपरान्त घर लौटकर आवै और निवासकरै ॥ ६९ ॥ इसके पीछे पुत्र और भृत्योंसमेत ब्राह्मणोंको भोजन करावै; और चारों विद्याओंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको सौ गौ दक्षिणामें दे ॥ ७० ॥ ब्राह्मणोंकी प्रसन्नतासेही मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाताहै;

विंध्यादुत्तरतो यस्य संवासः परिकीर्तितः ॥ ७१ ॥
पराशरमतं तस्य सेतुबंधस्य दर्शनात् ॥

जो विंध्याचलसे उत्तरमें निवास करताहै ॥ ७१ ॥ उसे पराशर ऋषिने सेतुबंधका दर्शन करना कहाहै;

सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य प्रसूता स्त्रीको मारताहै; वह ब्रह्महत्यामें कहेहुए व्रतका आचरण करै ॥ ७२ ॥

सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ चांद्रायणं ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७३ ॥ अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥

जो ब्राह्मण मदिरा पीताहै वह समुद्रगामिनी नदीके तटपर जाकर चांद्रायण व्रतकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ७३ ॥ और एक बैल और एक गौ ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे;

सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ ७४ ॥
स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च ॥

एकवार मदिराको पीकर, अग्निके समान रंगवाली मदिराका जो पान करताहै ॥ ७४ ॥ वह इस लोक और परलोकमें अपने आत्माको पवित्रकरताहै;

अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥ ७५ ॥ गच्छेन्मुशलमादाय राजानं स्ववधाय तु ॥ हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च ॥ ७६ ॥ कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा वधमर्हति ॥

ब्राह्मणके सुवर्णको चुरानेवाला स्वयंही ॥ ७५ ॥ मूसलको अपने मारनेके लिये लेकर राजाके निकट जाय, फिर राजासे प्रहार खाकर वह शुद्ध होजाताहै, और इसके उपरान्त उसकी मुक्ति भी होजातीहै ॥ ७६ ॥ यदि जानकर अपराध कियाहै तब तौ वह मारनेके योग्य है, इसके अतिरिक्त नहीं;

आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात् ॥ ७७ ॥ संक्रामंतीह पापानि तैलबिंदुरिवांभसि ॥ चांद्रायणं यावकं च तुलापुरुष एव च ॥ ७८ ॥ गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

एक आसनपर बैठनेसे, सोनेसे, गमन करनेसे, बोलनेसे, भोजनसे ॥ ७७ ॥ पाप इसभांति लिप्त होतेहैं जिसभांति जलमें पडीहुई तेलकी बूंद; चांद्रायण, यावकभोजन, तुलापुरुषव्रत ॥ ७८ ॥ और गौओंके पीछे जाना, इससे सम्पूर्ण पाप नाश होजातेहैं;

एतत्पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपंचकम् ॥ ७९ ॥ द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥ यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ॥ ८० ॥ अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गकामिना ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णयो नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

यह पांचसौ बानवे श्लोकयुक्त पराशर मुनिके कहेहुए धर्मशास्त्रका संग्रह है ॥७९ ॥ जिसभांति अध्ययनके कर्म हैं उसी भांति यह धर्मशास्त्र है ॥ ८० ॥ स्वर्गकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इसका पाठ यत्नसहित करना कर्तव्य है ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णये पं० श्यामसुन्दरलालत्रिपाठिकृत भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

पाराशरस्मृतिः समाप्ता ॥११॥

॥ श्रीः ॥

व्यासस्मृतिः १२.

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ व्यासस्मृतिः ॥ वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यासं तपोनिधिम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान्वर्णव्यवस्थितान् ॥ १ ॥ स स्पृष्टः स्मृतिमान्स्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ॥ उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः श्रूयतामिति ॥ २ ॥

काशीक्षेत्रमें श्रीवेदव्यासजी सुखसहित बैठथे इससमय मुनियोंने उनके समीप जाकर चारोवर्णोंके धर्मको पूछा ॥ १ ॥ सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् वह वेदव्यासमुनि मुनियोंके इसभांति पूछनेपर सम्पूर्ण वेदका अर्थ और स्मृति शास्त्रको स्मरणकर प्रसन्न हो कहने लगे ॥ २ ॥

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ॥
चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति ॥ ३ ॥

जिन २ देशोंमें इच्छानुसार काला मृग सर्वदा विचरण करै उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें वेदोक्त धर्मका आचरण करना उचित है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥

जहां श्रुति, स्मृति, और पुराणोंका विरोध हो वहां वेदोक्त कर्मही प्रधानहैं,और जहां स्मृति और पुराणमें विरोध देखाजाय वहां स्मृतिके विषयही बलवान हैं; अर्थात् स्मृतिके कहेहुए कर्मको करना चाहिये ॥ ४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु नेतरे ॥५ ॥ शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजातिहैं, यह तीनों वर्णही श्रुति स्मृति और पुराणमें कहेहुए धर्मके अधिकारी हैं; दूसरा नहीं ॥ ५ ॥ शूद्रजाति चौथा वर्ण है, इसीकारण धर्मका अधिकारी है परन्तु वेदमंत्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कारादि शब्दोंके उच्चारणका अधिकारी नहींहै ॥ ६ ॥

विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ॥ जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥ वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥

ब्राह्मणके साथ विधिपूर्वक जो ब्राह्मणकन्या विवाही गईहै उसकी सन्तानके जातकर्म आदि संस्कार ब्राह्मणोंके समान हैं, और क्षत्रियके कुलसे जो विवाही गईहै उसकी सन्तानके

संस्कार क्षत्रियोंकी समान हैं, और जो शूद्रकुलसे विवाहीगईहै उसकी सन्तानके संस्कार शूद्रकी समान होतेहैं ॥ ७ ॥ जिस वैश्यका ब्राह्मण या क्षत्रियने विवाह कियाहै, और वैश्यने शूद्रीके साथ विवाह कियाहै इन दोनोंकी सन्तानके कर्म शूद्रकी समान होतेहैं;

अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥

नीचे वर्णसे उत्तम वर्णकी कन्यामें जो सन्तान उत्पन्नहो वह शूद्रसेभी नीच कहातीहै॥८॥

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चंडालो धर्मवर्जितः ॥ ९ ॥ कुमारीसंभवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥ ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥

ब्राह्मणीमें जो शूद्रसे उत्पन्नहो वह चांडाल होताहै, उसको किसी धर्मका अधिकार नहीं ॥ ९ ॥ वह चांडाल तीन प्रकारका है; एक तौ वह जो कि कुमारीसे उत्पन्नहो और दूसरा वह जो कि सगोत्र पुरुषद्वारा विवाहिता सगोत्रास्त्रीमें (व्यभिचारधर्मसे) उत्पन्नहो; और तीसरा वह जो कि ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्नहो ॥ १० ॥

वर्द्धकिर्नापितो गोप आशायः कुंभकारकः ॥ वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुंबिनः ॥ वरटो मेदचंडालदासश्वपचकोलकाः ॥ ११ ॥ एतेंऽत्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ॥ एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥

वर्द्धकी (बढई) नापित (नाई) और गोप (ग्वाल) कुंभकार वणिक् (जो लेनदेन करै और निषिद्ध जाति हो) किरात, कायस्थ, माली, वरट, मेद, चांडाल, कैवर्त, श्वपच, कोलक कुटुम्बी (कूटामाली) ॥ ११ ॥ और जो गोमांस भक्षण करतेहैं वह सभी अन्त्यज हैं, इन सबके साथ सम्भाषण करनेसे स्नानकरना उचितहै; और इनके देखनेसे सूर्यभगवान्का दर्शन करै ॥ १२ ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च ॥ नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥ केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥१४॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥ नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥ विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंत, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० यज्ञोपवीत, ११ वेदारंभ, १२ केशांत (ब्रह्मचर्य समाप्त होनेपर १६ वें वर्षमें क्षौर), १३ स्नान (समावर्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करकै यथाशास्त्र स्नान करना), १४ विवाह, १५ विवाहकी अग्निका ग्रहण,॥ १४ ॥ १६ त्रेता (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन) अग्नि (अग्निहोत्र) का ग्रहण यह गर्भाधानादि सोलह संस्कार कहेहैं; कर्णवेधतक जो नौ संस्कार हैं वह स्त्रीके विनामंत्र

१ प्रथममें (९ श्लोकमें) इसीको सबसे निकृष्टहोनेके कारण उत्तम चांडाल कहकर फिर उसीके साथ और दोप्रकारके चांडालकरके दिखानेसे उन दोनोंमें चाडालसादृश्य (तुल्यता) दिखाकर निंद्यत्वबोधन करतेहैं जैसाकि आगेके १२ श्लोकमें ११ श्लोकोक्त कतिपय असच्छूद्र महाशूद्रको श्वपचादिकोंके साथ पाठ कियाहै उसकाभी उनमें निंद्यत्वबोधन करनेहीमें तात्पर्य जानलेना ।

होतेहैं ॥ १५ ॥ (ब्राह्मणी) स्त्रीकाभी विवाह मन्त्रोंसे होताहै और शूद्रोंके यह दशो विनामंत्र होतेहैं;

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥ १६ ॥ सीमंतश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥ एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥ १७ ॥ षष्ठे मास्यन्नमश्नीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥ कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ॥ १८ ॥ विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥ द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥ तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्द्विगुणाधिकः ॥ वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥

गर्भाधान प्रथम रजोदर्शनमें होताहै; जब तीनमहीनेका गर्भ होजाय तब पुंसवन संस्कार होताहै ॥ १६ ॥ सीमंत आठमें महीनेमें होताहै; और पुत्र उत्पन्न होनेपर जातकर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीनें घरसे बाहर निकालकर बालकको सूर्यदेवका दर्शन कराना होताहै ॥ १७ ॥ और छठेमहीने अन्नप्राशन होना, और मुंडन अपने कुलकी रीतिके अनुसार करना उचित है; बालकका जब मुंडन होजाय तब कर्णवेध करना उचित है ॥ १८ ॥ ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष करना; क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें, और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ १९ ॥ यदि यज्ञोपवीत होनेकी नियत कीहुई अवस्था निकलजाय वरन उससे दूनी अवस्था बीतजाय और यज्ञोपवीत न हुआहो तौ यह वेदके व्रतसे पतित होजातेहैं उनको "व्रात्यस्तोम" यज्ञकरना उचित है ॥ २० ॥

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥ द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥ एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीनों जातियोंके जन्म दो होतेहैं, पहला जन्म माताके गर्भसे, दूसराजन्म गुरुके निकट विधिसहित वेदमाता (गायत्री) को ग्रहण करनेसे ॥ २१ ॥ इस भांतिसे यह द्विजत्वको प्राप्तहोकर अन्यदोषोंसे रहित होकर श्रुति स्मृति और पुराण इनके पढने योग्य होताहै ॥ २२ ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥ बिभृयाद्दंडकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥ २३ ॥ पुण्येह्नि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिक्रियः ॥ स्मृत्वोंकारं च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २४ ॥ शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ॥ पठेत गुरुतः सम्यक्कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥ ततोऽभिवाद्य स्थविरान्गुरुं चैव समाश्रयेत् ॥ स्वाध्यायार्थं तदापन्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥ २६ ॥ नापक्षिप्तोऽपि भाषेत नाव्रजेत्ताडितोऽपि वा ॥ विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥ तौर्य्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ॥ अञ्जनोद्वर्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥ २८ ॥ वृथाटनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥

ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥ अलोलुपश्चरेद्भैक्षं वृत्तिषूत्तमवृत्तिषु ॥ सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत ॥ ३० ॥ कृतमाध्याह्निकोऽश्नीयादनुज्ञातो यथाविधि ॥ नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाचामितामियात् ॥ ३१ ॥ नान्यद्भिक्षितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ॥ अनिंद्यामंत्रितः श्राद्धे पैत्रेऽद्याद्गुरुचोदितः ॥ ३२ ॥ एकामन्नप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी ॥ भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा संधुक्षणादिकम् ॥ ३३ ॥ समिधोऽग्नावादधीत ततः परिचरेद्गुरुम् ॥ शयीत गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च प्रथमं गुरोः ॥ ३४ ॥ एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतं चरेत् ॥ हितोपवादः प्रियवाक्सम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥ ३५ ॥

यज्ञोपवीत होजानेपर सावधान होकर गुरुके कुलमें निवास करे, और दंड, कौपीन, यज्ञोपवीत, मृगछाला और मेखला इनको धारण करे ॥ २३ ॥ इसके पीछे पवित्रदिनमें गुरुकी आज्ञा लेकर मन्त्रोंसे हवन करै, पहले "ॐकार" को उच्चारण करताहुआ गायत्रीका स्मरणकर वेदका प्रारंभ करै ॥ २४ ॥ शौच और आचारके जाननेके निमित्त धर्मशास्त्रकोभी पढै; और गुरुदेवके कर्मको भलीप्रकारसे करै ॥ २५ ॥ इसके पीछे वृद्धोंको नमस्कारकर भलीभांतिसे सावधानहो पढै, और सर्वदा गुरुके हितके निमित्त आचरण करता रहै ॥२६ ॥ यदि किसीसमय गुरुदेव तिरस्कारभी करैं तौ उनके सन्मुख कुछ न बोले; और गुरुकी ताडना करनेपरभी वहांसे न भागे, वैर (किसीके साथ शत्रुता), पैशुन्य (चुगलपन), हिंसा, सूर्यका दर्शन ॥ २७ ॥ तौर्यत्रिक (गानावजाना) झूंठ, उन्माद, निंदा, भूषण, अंजन, उबटन (आदर्श, शीशेका) देखना, माला चन्दनआदिका लगाना, और स्त्रीसङ्ग ॥ २८ ॥ वृथा फिरना, असंतोष इनका ब्रह्मचारी त्यागकरदे; और मध्यान्ह समय उपस्थित होनेपर स्वयंही गुरुकी आज्ञासे ॥ २९ ॥ चपलताको छोडकर उत्तम आचरण करनेवाली जातियेंामें भिक्षामांगै; और शीघ्रही भिक्षाको लेकर धनकी समान उसका उपस्पर्श (रक्षा) करै ॥ ३० ॥ इसके पीछे मध्याह्न कार्यको समाप्तकर गुरुकी आज्ञानुसार विधिसहित भोजन करै; एक मनुष्यके यहांके अन्न और उच्छिष्ट इनका भोजन न करै, और जो यदि खाले तौ आचमन करले ॥ ३१ ॥ आपत्ति आजानेपरभी भिक्षाके अन्नके अतिरिक्त दूसरेका अन्न न ले; और अनिंद्य (शुद्ध) के निमन्त्रण देनेपर गुरुकी आज्ञानुसार पितरोंके श्राद्धमें भोजन करले ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारीके व्रतमें जो एक मनुष्यके यहांका निषिद्ध अन्नहै उसको खानेसे सन्धुक्षण (मार्जन) आदि करकै गुरुकी सेवा करतारहै ॥ ३३ ॥ पहले अग्निमें समिधैं रक्खै, पीछे गुरुकी सेवाकरै और (रात्रिकाल होनेपर) गुरुको नमस्कारकर उनकी आज्ञासे शयन करै ॥ ३४ ॥ इस भांति प्रतिदिन अभ्यास करता हुआ ब्रह्मचारी व्रतोंको करै और मधुरवाणीसे वार्तालाप करै; और भलीभांतिसे गुरुके कार्यको साधन करता रहे ॥ ३५ ॥

नित्यमाराधयेदेनमासमाप्तेः श्रुतिग्रहात् ॥ अनेन विधिनाधीतो वेदमंत्रो द्विजं नयेत् ॥ ३६ ॥ शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणां च सलोकताम् ॥ पयोऽमृताभ्यां

मधुभिः साज्यैः प्रीणंति देवताः ॥३७॥ तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ॥ यदंगं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमादसंपूर्णमनहंकृतिराचरेत् ॥ परत्रेह च तद्ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम् ॥ ३९ ॥

वेदके समाप्त होनेतक सर्वदा गुरुकी सेवा करतारहै; जो ब्राह्मण इसभांतिसे वेदमंत्र पढताहै ॥ ३६ ॥ वह शापदेनेमें और अनुग्रह करनेमें सामर्थ्यवान् और ऋषियोंके लोकमें जानेयोग्य होताहै; दूध, अमृत, सहत, घृत इनसे देवता प्रसन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ इसकारण अनध्यायतिथिको छोडकर प्रतिदिन वेद पढै; और गुरुके वचनोंको मानकर वेदके सम्पूर्ण अंगोंको अनध्यायोंमें पढता रहै ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमकरने (उलट पुलट करने) से असंपूर्णही रहताहै, इसकारण अहंकारसे रहित हो गुरुके वचनके अनुसार कार्य करै, वह ब्राह्मण चाहैं वेदको न भी पढै, परन्तु तौभी इसलोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है॥३९॥

यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतमाचरेत् ॥
स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

जो ब्रह्मचारी यज्ञोपवीतसे लेकर मृत्युपर्यन्त इस व्रतको करताहै वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

उपकुर्व्वाणको यस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः ॥
केशांतकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥ ४१ ॥

जो छब्बीस वर्षका ब्राह्मण केशान्त कर्मतक शास्त्रोक्त व्रतोंको करताहै उसे उपकुर्वाणक कहतेहैं ॥ ४१ ॥

समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥
स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इसप्रकार चारों वेद या दो वेद तथा एकही वेदको समाप्तकर गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर स्नान (जो गृहस्थमें आनेके समावर्तन कर्ममें है उसे) करै ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकांक्षया ॥
प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवाम् ॥ १ ॥

इसप्रकार वेदको पढकर गुरुकी आज्ञासे स्नातकताको प्राप्त होकर गृहस्थआश्रमकी अभिलाषा करनेवाला ब्राह्मण पवित्रवंशमें उत्पन्नहुई कन्याके साथ विवाह करनेकी चेष्टाकरै ॥१॥

अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम्॥सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥२॥ अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ॥ धृताधोवसनां गौरीं विख्यात-

दशपुरुषाम् ॥ ३ ॥ ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ॥ दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ॥ ४ ॥

जिस कन्याको कोई रोग न हो और वंशभी उत्तम हो; जिसका पिता कुछ रुपया न ले जो अपने वर्णकी हो और मातापिताके गोत्रकी न हो ॥ २ ॥ पहले जिसकी सगाई न हुईहो छोटी और पतली हो; और शुभलक्षणोंसे युक्त अधोवस्त्र (लहंगा) पहनतीहो, गौरी (आठवर्षकी अवस्थावाली) हो और जिसके बडे दशपुरुषतक विख्यात हों ॥ ३ ॥ और प्रसिद्ध नामवाले पुत्रवान् अच्छे आचरण करनेवाले और जो कन्या देनेकी इच्छा करताहो उसकी पुत्रीके साथ धर्मसहित विवाह करले ॥ ४ ॥

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावे परो विधिः ॥
दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥

और ब्राह्म विवाहकी रीतिसे विवाहे ब्राह्मविवाहके अभावमें दूसरी (दैवआदि विवाहोंकी)विधि कहीहै; और यह कन्या उसे देनी जो अवस्था विद्या और वंशमें समान हो ॥ ५॥

पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ॥
पूर्वाभावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥

पिता, पितामह, भाई, चाचा, जातिके मनुष्य, माता, इनमें प्रथम २ के अभावमें अपर २ दे यदि इनमें कोई न हो तौ कन्या आपही पतिके यहां चलीजाय ॥ ६ ॥

यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका ॥
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ ७ ॥

यदि वह कन्या देनेवालेकी असावधानतासे रजको देखले तौ; जै वार वह ऋतुमती हो उतनीही भ्रूणहत्या देनेवालेको लगतीहै; इसकारण ऐसी कन्याका विवाह न करै विवाह करनेसे वह पतित होजाताहै ॥ ७ ॥

तुभ्यं दास्याम्यहमिति गृहीष्यामीति यस्तयोः ॥
कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दंडभाक् ॥ ८ ॥

"मैं तुझे कन्या दूंगा" और "मैं ग्रहण करूंगा" इस भांति लेनेवाले और देनेवाले प्रतिज्ञा करलें और फिर यदि उस प्रतिज्ञापर दोनोंमेंसे कोई न रहै वही दंडका भागी है ॥ ८ ॥

त्यजन्नदुष्टां दंड्यः स्याद्दूषयंश्चाप्यदूषिताम् ॥ ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ॥ ९ ॥ तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥

जो मनुष्य निर्दोष स्त्रीका त्यागकरताहै; और जो निर्दोषको दोष लगाताहै यह दोनों दंडके भागी हैं; यदि अपने वर्णकी एक स्त्रीसे विवाह करलियाहो तौ दूसरे वर्णकी अन्यस्त्रीसेभी इच्छानुसार विवाह करले ॥ ९ ॥ उस अन्य वर्णकी स्त्रीसे जो पुत्र होताहै वह सवर्णही होताहै;

---

१ पुत्रवान् कहनेसे पुत्रिकाधर्मकी शंकाको दूरकरतेहैं, अर्थात् कन्याप्रदको यदि पुत्र न होगा तौ वह "अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति" इस विधिसे प्रथम पुत्रसन्ततिका ग्राहक हो जायगा ।

उद्वहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥ १० ॥
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥

ब्राह्मण क्षत्रिया और वैश्याको विवाहै, और क्षत्रिय वैश्याको विवाहै ॥ १० ॥ और ब्राह्मण शूद्रीको; और नीच वर्ण उत्तम वर्णकी कन्याको न विवाहै;

नानावर्णासु भार्य्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥ ११ ॥
धर्म्माधर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥

अनेक वर्ण की स्त्रियोंमें जो सवर्णा है वही सहचारिणी है ॥ ११ ॥ धर्म वा अधर्ममें है परन्तु वह धर्मिष्ठा है वही अपनी जातिमें बडीभी है;

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥ पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥ यावन्न विंदते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥ नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥ गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥ यतस्ततोऽन्वहं भूत्वा स्ववशो बिभृयाच्च ताम् ॥

हे ब्राह्मणों ! यह एक देह पहले ब्रह्मानें फाडाहै ॥ १२ ॥ आधे देहसे पति और आधेसे स्त्री हुईहै यह श्रुतिमें प्रमाण है; जबतक पुरुषका विवाह नहीं होताहै तबतक वह असम्पूर्ण है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे कुछ सम्पूर्ण पुरुषही आधे नहीं होते, यहभी श्रुति है। वह स्त्री धर्म अर्थ कामकी बडी भारी पृथ्वी है, उसे पतिके अतिरिक्त दूसरा नहीं विवाह सकता ॥१४॥ जिस स्त्रीको दूसरा न विवाहसकै इसकारण प्रतिदिन स्वतंत्र होकर उस स्त्रीकी पालना करतारहै;

कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥ स्वकृतं वित्तमासाद्य वैतानाग्निं न हापयेत् ॥ स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ १६ ॥ कर्म कुर्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रीतिपूर्वकः ॥

इसके पीछे विवाह करके अग्नि और स्त्रीके साथ पुरुष घरको निर्माणकर घरमें निवास करै ॥ १५ ॥ अपने उपार्जन कियेहुए धनको पाकर वैतानाग्निको न त्यागै, स्मृतिमें कहेहुए कर्म विवाहकी अग्निमें और वेदोक्तकर्म वैतानाग्निमें ॥ १६ ॥ प्रतिदिन विधिसहित उक्त कर्मोंको करतारहै;

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥ एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥ न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ १८ ॥ भावतो ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥

स्त्री पुरुष धर्म अर्थ कामोंमें रातदिन भलीभांति ॥ १७ ॥ एकमन, एकव्रत, और एकवृत्तिसे रहैं; स्त्रियोंको त्रिवर्ग विधिसाधन अर्थात् धर्म अर्थ काम प्रदायक अनुष्ठान स्वामीसे पृथक् न करना चाहिये ॥ १८ ॥ भावसे वा आज्ञासे यही शास्त्रकी उत्तम विधि है;

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥ उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥ मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालं स्वमंगणम् ॥ २० ॥ शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥ प्रोक्षण्यैरिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥ द्वंद्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥

शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥ महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥ मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥ स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥ कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरूनभिवादयेत् ॥ २४ ॥ ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबांधवैः ॥ वस्त्रालंकाररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ २५ ॥ मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ॥ छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ॥ २६ ॥ दासीवादिष्टकार्य्येषु भार्य्या भर्तुः सदा भवेत् ॥ ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत् ॥ ॥ २७ ॥ वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥ पतिं चैवाभ्यनुज्ञाता सिद्धमन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥ भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिंतया ॥ पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥ २९ ॥ कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत्पतिम् ॥ नातितृप्त्या स्वयंभुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥ ३० ॥ आस्तीर्य साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् ॥ सुप्ते पतौ तदभ्याशे स्वपेत्तद्गतमानसा ॥ ॥ ३१ ॥ अनग्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेंद्रिया ॥ नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बहून्पत्युरप्रियम् ॥ ३२ ॥ न केनचिद्विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ॥ न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥ प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावंचनं चातिमानिताम् ॥ पैशुन्यहिंसाविद्वेषमदाहंकारधूर्तताः ॥ ३४ ॥ नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दंभान्साध्वी विवर्जयेत् ॥ एवं परिचरंती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥ यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥ योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ॥ ३६ ॥

स्त्री पतिसे प्रथम उठकर देहकी शुद्धिको करकै ॥१९॥ शय्याआदिको उठाय घरका शोधन कर, मार्जन और लीपनेसे अग्निकी शाला और अपने आंगनको ॥ २० ॥ पवित्र करै; इसके उपरान्त गरमजलसे अग्निके उपयुक्त पात्रोंको प्रोक्षणीयों से धोकर यथास्थानपर रखदे ॥ २१ ॥ जोडेके पात्रोंको कभी पृथक् न रक्खै, इसके पीछे पात्रोंको शुद्धकर जलआदिसे भरकर रखदे ॥ २२ ॥ इसके पीछे चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्र धोकर मिट्टीसे चूल्हेको लीप उसमें अग्निको रखदे ॥ २३ ॥ वर्तनेके पात्रोंको और रसके द्रव्यको स्मरण करकै पूर्वाह्णका कामकरके अपने माता पिताओंको नमस्कार करै ॥ २४ ॥ माता, पिता, पति, श्वशुर, भाई, मामा, बांधव इनके दियेहुए वस्त्रोंको और आभूषणोंको धारण करै ॥२५॥ वह पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञानुवर्तिनी होकर मन, वचन और कायसे पवित्र स्वभाव प्रकाशकर छायाकी समान पतिके पीछे चले, निर्मल चित्तवाली सखीकी समान पतिका हित करै ॥ २६ ॥ स्वामीकी आज्ञापालन करनेके विषयमें दासीकी समान व्यवहार करै इसके उपरान्त भोजन बनाकर पतिको निवेदन करै ॥ २७ ॥ बलिवैश्वदेवादि कार्यके समाप्त करनेपर उस अन्नसे जिमानेके योग्यों (पुत्रआदिकों) को भोजन कराकर फिर पतिको जिमावै; और फिर स्वामीकी आज्ञासे शेष बचेहुए अन्नको आप खाय

॥ २८ ॥ भोजन करनेके उपरान्त शेष दिनको आमदनी और खर्चकी चिन्तासे व्यतीत करै; इसके उपरान्त फिर सन्ध्यासमय और प्रातःकाल घरकी शुद्धिकरकै ॥ २९ ॥ इसके पीछे व्यंजनादि बनाकर साध्वी स्त्री अत्यन्त प्रीतिसे पतिको भोजन करावै; और फिर स्वयं भी तृप्तिके विना आप खाकर गृहस्थकी नीतिको करकै ॥ ३० ॥ उत्तम शय्याको बिछाकर पतिकी सेवाकरै । पतिके सोजानेपर पतिमेंही चित्तवाली वह स्त्री पतिके निकट सोजाय ॥ ३१ ॥ निद्राके समयमें नंगी न हो; प्रमत्त न होकर इन्द्रियोंको जीते रहै; ऊँची और कठोर वाणी न कहै; पतिको अप्रिय वचन न कहै ॥ ३२ ॥ किसीके साथ लडाई झगडा न करै; अनर्थकारी और वृथा न बोलै; व्यय (खर्च) में अपना मनलगाये रक्खै; धर्म और अर्थका विरोध न करै ॥ ३३ ॥ असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगाई, अत्यन्तमान, चुगलपन, हिंसा, वैर, मद, अहंकार, धूर्तपन ॥ ३४ ॥ नास्तिकपन, साहस, चोरी, दंभ, साध्वी स्त्री इन सबका त्याग करदे; इसप्रकार परमदेवस्वरूप पतिकी सेवाकरनेसे वह स्त्री ॥ ३५ ॥ इसलोकमें कीर्ति और यश तथा सुखको भोगकर परलोकमें पतिके लोकको प्राप्त होतीहै; स्त्रियोंके इसप्रकार नित्यकर्म कहेहैं, इसके आगे नैमित्तिक कर्म कहतेहैं ॥ ३६ ॥

रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥ सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितांतर्गृहे वसेत् ॥ ३७ ॥ एकांबरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता ॥ मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्भिरचंचला ॥ ३८ ॥ अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥ स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥ स्नायीत च त्रिरात्रांते सचैलमुदिते रवौ ॥ विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥४० ॥ कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥

ऋतुमती होनेपर दोषके भयसे सबको त्यागदे; जहां कोई न देखसकै लज्जावती होकर इसभांति निर्जन घरमें निवास करै ॥ ३७ ॥ एक वस्त्रको पहरकर स्नान और आभूषणोंको त्यागकर, दीनकी समान मौन धारणकर नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावै ॥ ३८ ॥ रात्रिके समयमें एक अन्नका मट्टीके पात्रमें भोजन करै; अप्रमत्ता हो पृथ्वीपर शयनकरै इसभांति तीनदिन बितावै ॥ ३९ ॥ इसभांति तीनदिनके उपरान्त चौथेदिन सूर्यदेवके उदय होनेपर वस्त्रोंसहित स्नानकरै; इसके पीछे पतिका दर्शनकर धर्मसे शुद्ध होतीहै ॥ ४० ॥ शौचजनक कार्यको समाप्तकर वह स्त्री पहलेकी समान सम्पूर्ण कार्योंको करै;

रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥ ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥ चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥ गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्र्यर्क्षराक्षसान् ॥

रजोदर्शनसे लेकर सोलहरात्रियोंतक ऋतुकाल रहताहै ॥ ४१ ॥ इन रात्रियोंमें पुरुषका बीज विनाक्लेश शुद्ध क्षेत्रमें जमताहै;इसभांति पर्वके चार दिनोंमें गमनकरना निषिद्ध है ॥४२॥ युग्म (सम) रात्रियोंमें रेवती, मघा, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें गमन करै;

प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥ क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् ॥ ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् ॥

और अपनी स्त्रीके संग जिस स्थानमें सूर्यकी किरण न आतीहो ऐसे स्थानमें गमन करै ॥ ४३ ॥ तब वह पुरुष शुभलक्षणयुक्त प्रशंसा करने योग्य पुत्रको प्राप्त करताहै पूर्वोक्तरीतिके अनुसार स्त्रीमें गमन करनेसे ब्रह्मचारीही रहता है ॥ ४४ ॥ दुष्ट नहीं होता यदि वह निंदितकर्म आदि न करै;

भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्य्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥ सा त्ववाप्यान्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ॥ महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ ४६ ॥

और जो पुरुष ऋतुके समय अपनी स्त्रीके साथ गमन नहीं करताहै वह भ्रूणहत्याके पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ जो ऋतुमती स्त्री यदि अन्यपुरुषसे गर्भधारण करले तौ वह पापिनी त्यागनेके योग्यहै ॥ ४६ ॥

सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥
महापातकदुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्यस्तया पतिः ॥ ४७ ॥

यदि कोई पुरुष उत्तमचरित्रवाली स्त्रीको त्यागताहै वह महापातकके पापमें लिप्त होताहै; और महापातकसे दुष्ट पतिको शुद्धितकभी वह स्त्री प्रतीक्षा करतीरहै ॥ ४७ ॥

अशुद्धे क्षपमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ॥ व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शनादृते ॥ ४८ ॥ धिक्कृतायामवाच्यायामन्यत्र वासयेत्पतिः ॥ पुनस्तामार्तवस्नातां पूर्ववद्व्यवहारयेत् ॥ ४९ ॥ धूर्तां च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥ सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ॥ ५० ॥ अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणां तु समतामियात् ॥

महापातककी शुद्धिपर्यन्त व्यभिचारी जो दुष्ट पति है उसके दर्शनको छोडकर दूरस्थानमें चिन्तासे टिकी स्त्रीको ॥ ४८ ॥ या जिसे धिक्कार देदीहो, या जिसके साथ बोलना छोड दियाहो उसे दूसरे स्थानमें रखदे; और जब वह ऋतुमती हो तब पूर्वके समान वर्ताव करै ॥ ४९ ॥ जो स्त्री धूर्त्त हो; जो धर्म और कामको नष्ट करनेवाली हो; और जिसके पुत्र न हो, जिसे कोई रोग हो, जो अत्यन्त दुष्ट हो, जिसे कुछ व्यसनभी हो जो अपना हित न चाहतीहो, इन स्त्रियोंका अधिवास न करै, अर्थात् इनके ऊपर दूसरा विवाह करले॥५०॥ वह अधिविन्ना स्त्री जिसपर दूसरा विवाह भी कियागयाहै पतिकी अन्य स्त्रियोंकीही समान होतीहै;

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥ ५१ ॥
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥

वह अधिविन्ना स्त्रीभी मलिनवर्ण दीनमुख देहके संस्कार उबटना आदिको त्यागदे ॥५१॥ और पतिमें व्रत रक्खै, निराहार रहै, पतिके परदेश चलेजानेपर शरीरको सुखादे,

मृतं भर्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ॥ ५२ ॥
जीवंती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥

और पतिके मरजानेपर वह ब्राह्मणी पतिके साथ अग्निमें प्रवेशकरै अर्थात् सती होजाय ॥ ५२ ॥ यदि जीवित रहै तो बालोंको मुडादे, और तपस्या करके शरीरको शुद्धकरै,

सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥
तदेवानुक्रमात्कार्य्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥

स्त्रियोंकी सभी अवस्थाओंमें रक्षा नहीं करना योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥ इसकारण क्रमानुसार तीनों अवस्थाओंमें पिता, पति, पुत्रआदि स्त्रियोंकी रक्षाकरैं;

जाताः सुरक्षिताः पापात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥ ५४ ॥
ये यजंति पितॄन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥

पापसे जिन स्त्रियोंकी रक्षा कीजाय उनसे उत्पन्न हुए जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र हैं ॥५४॥ वे मोक्ष देनेवाले बडा उदय देनेवाले यज्ञोंकरके पितरोंकी पूजा करतेहैं;

मृतानामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥
दाहयेदविलंबेन भार्यां चात्र व्रजेत सा ॥ ५५ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मरेहुए पतिके अग्निहोत्र करके उसकी स्त्रीको भी विधिसहित दग्धकरै, और जिस स्त्रीको इसी अग्निहोत्रकी अग्निमें दाह किया जाताहै वह भी स्वर्गमें निवास करतीहै ॥५५॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ॥
त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्य्यताम् ॥ १ ॥

गृहस्थमात्रको नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह तीन प्रकारके कर्म कहेहैं. उन तीनों कर्मोंको कहताहूं तुम श्रवणकरो ॥ १ ॥

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ॥
आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥

रात्रिके पिछले पहरमें उठकर विष्णुका स्मरणकरै, इसके पीछे मंगल द्रव्योंको देखकर आवश्यकीय कर्मोंको करै ॥ २ ॥

कृतशौचो निषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा ॥
स्नात्वोपास्य द्विजः संध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥

इसके पीछे शौचक्रियाको करकै अग्निकी सेवाकरै; इसके उपरान्त जलसे दांतोंको धोकर स्नानकर ब्राह्मण सन्ध्या करनेके उपरान्त देवता और पितरोंका तर्पण करै ॥ ३ ॥

वेदवेदांगशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ॥ अध्यापयेच्च सच्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥ अलब्धं प्रापयेल्लब्ध्वा क्षणमात्रं समापयेत् ॥ समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः क्वचिद्वसेत् ॥ ५ ॥

इसके पीछे वेद वेदाङ्ग शास्त्र और इतिहास इनका अभ्यासकरै; फिर अच्छे शिष्य और उत्तम ब्राह्मणको पढावै ॥ ४ ॥ फिर अलब्ध वस्तुकी प्राप्तिका उपायकरै; और उस वस्तुके मिलनेपर क्षणकालके निमित्त पढानेको समाप्त करदे;और सामर्थ्यवान् होकर किसीकी सामर्थ्यके विनाजाने निवास न करै, अर्थात् जिस जगह अपनेको कोई न जानताहो उस स्थानपर निवास न करै ॥ ५ ॥

सरित्सरःसु वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ॥ स्नायीत यावदुद्धृत्य पंचपिंडानि वारिणा ॥ ६ ॥ तीर्थाभावेऽप्यशक्तो वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ॥ गृहांगणगतस्तत्र यावदंबरपीडनम् ॥ ७ ॥

नदी, सरोवर, बावडी, कुण्ड, झरने इनमें स्नान जब करै जब कि पहलै पांच पिंड मिट्टीके बाहर निकालदे ॥ ६ ॥ तीर्थके न होनें या जानेकी सामर्थ्य न होनेपर कुएमेंसे जलको निकालकर स्नान करले; और घरके आंगनमें जितनें जलसे वस्त्र भीजजाय उतनेही जलसे ॥ ७ ॥

स्नानमब्दैवतैः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् ॥
मंत्रैः प्राणांस्त्रिराचम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

जलही है देवता जिनका ऐसे मन्त्रोंसे स्नानकरै, इसके उपरान्त पवित्र करनेवाले मंत्रोंसे मार्जन करै; और मन्त्रोंसे तीन प्राणायामकर सूर्यके मन्त्रोंसे सूर्यका दर्शन करै ॥ ८ ॥

तिष्ठन्स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत ॥ ऋचां च यजुषां साम्नामथर्वांगिरसामपि ॥ ९ ॥ इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ॥ शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥ स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात ॥ तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥ ११ ॥

इसके पीछे खडा होकर वेदमाता गायत्रीका और वेदका अभ्यासकरै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ॥ ९ ॥ इतिहास पुराण वेद और उपनिषद् इनके अल्पभागकोभी समाप्ति होनेतक जो ब्राह्मण अपनी शक्तिके अनुसार भलीभांतिसे पढताहै ॥ १० ॥ वह यज्ञ दान और तप इनके सम्पूर्ण फलको पाताहै इसकारण ब्राह्मण प्रतिदिन मौनधारणकर वेदका पाठकरै ॥ ११ ॥

धर्म्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत् ॥ कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥ १२ ॥ जान्वाच्य दक्षिणां दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः ॥ एकैकांजलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥ समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः॥ तिर्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥ १४ ॥ अंभोभिरुत्तरक्षिप्तैः कनिष्ठामूलनिर्गतैः ॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यामंजलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥ दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः ॥ तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥ १६ ॥ दक्षिणांसोपवीतः स्यात्क्रमेणांजलिभिस्त्रिभिः ॥ संतर्पयेद्दिव्यपितॄंस्तत्परांश्च पितॄन्स्वकान् ॥ १७ ॥ मातृमातामहांस्तद्वत्त्रीनेवं हि

त्रिभिस्त्रिभिः ॥ मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः॥ १८ ॥ तानेकांजलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् ॥ असंस्कृतप्रमीता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥ १९ ॥ वस्त्रनिष्पीडिताम्भोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् ॥ अतर्पितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥ निराशाः पितरस्तस्य भवंति सुरमानुषैः ॥ पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥ सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि वृथा विना ॥ अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥ अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ॥ एवं संतर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयंति च ॥ २३ ॥

और सम्पूर्ण धर्मशास्त्र तथा इतिहासभी अपनी सामर्थ्यके अनुसार पढै स्वाध्यायको करके प्रथम देवताओंको तर्पण इसप्रकारसे करै ॥ १२ ॥ पूर्वको मुखकर दहिने घुटनेको नवाकर; पूर्वको अग्रभागवाली कुशा और जौ तिल आदिको लेकर स्वाभाविकरूपसे यज्ञोपवीतको धारणकर दो अंजलि देकर तर्पण करै ॥ १३ ॥दोनों घुटनोंको बराबरकर जनेऊ कंठमें पहरे उत्तरको मुखकरे बांई ओरको अग्रभागवाली तिरछी कुशा और तिल मिलेहुए जौसे ॥ १४॥ कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे उत्तरमें जो गिरै ऐसे जल द्वारासे दो २ अंजलियोंसे फिर मनुष्योंका तर्पणकरै ॥ १५ ॥ दक्षिणकी ओरको मुखकर बांये घुटनेको नवाय द्विगुण कुशाओंसे तिल और देशिनीके मूल और कुशासे गिरते जलोंसे ॥ १६ ॥ दहिने कंधेपर जनेऊ रख क्रमानुसार तीन २ अंजुली देकर देवतारूप पितरोंका तर्पणकर फिर अपने पितरोंका तर्पण करै ॥ १७ ॥ इसके पीछे माता और मातामहआदि तीनोंका भी इसी भांति तीन २ अंजुलियोंसे तर्पण करै और जो मातामहके गोत्रके अन्य दाहसे वर्जित हैं ॥ १८ ॥ उनका भी पृथक् २ दो २ अंजुली देकर तर्पण करै; और जो विना संस्कारके हुए ही मरगयेहैं; जिनका दाहादिक संस्कार नहीं हुआहै॥१९॥ उनकी तृप्ति वस्त्र निचोडनेसे ही होजातीहै; जो पुरुष पितरोंकी विना तृप्ति किये हुए वस्त्रको निचोडता है ॥ २० ॥ उसके पितर देवता और मनुष्योंसमेत निराश होजातेहैं; स्वधा, गोत्र, नाम, तिल इनसे जो जल दियाजाताहै॥ २१॥ वह श्रेष्ठ है; और वस्त्रके निचोडनेसे ही वह सब निष्फल होजाताहै; अन्यत्र मन लगाकर वा विधिसे रहित जो जल दियाजाताहै ॥ २२ ॥ या विना आसनपर बैठकर जो दियाजाताहै, वह सब रुधिरके समान होजाताहै, उपरोक्त नियमोंके अनुसार पितरोंका तर्पण करनेपर पितृ प्रसन्न होकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करतेहैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः ॥ पूजयेल्लक्षितैर्मंत्रैर्जलमंत्रोक्तदेवताः ॥ ॥ २४ ॥ उपस्थाय रविं काष्ठां पूजयित्वा च देवताः॥ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णूनां निहतांहसाम् ॥ २५ ॥ तत्तन्मंत्रैश्च सत्कारं नमस्कारैः स्वनामभिः ॥ कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य, मित्र, वरुण यह नाम जिन मन्त्रोंमें हों, उन मंत्रोंसे जलके मंत्रोंमें कहीहुई विधिसे देवताओंका पूजन करै ॥ २४ ॥ पूर्वदिशाका पूजन कर सूर्यकी स्तुति करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, औषधी, जीव, विष्णु इन दोषनाशकोंको ॥ २५ ॥

उन उनके मन्त्रोंसे नमस्कार कर और उन उनके नामोंसे सत्कार करके मुखको पोंछ इस भांति स्नान करै ॥ २६ ॥

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने ॥ पाकयज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद्द्विजः ॥ २७ ॥ अनाहितावसथ्याग्निरादायान्नं घृतप्लुतम् ॥ शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥ २८ ॥ व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम् ॥ षड्भिर्देवकृतस्येति मंत्रविद्भिर्यथाक्रमम् ॥ २९ ॥ प्राजापत्यं, स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाहुतीः ॥ ओंकारपूर्वः स्वाहांतस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥३०॥

इसके उपरान्त भवनमें जाकर घरकी अग्निमें चतुर ब्राह्मण विधिसहित पाकयज्ञ करै ॥ २७ ॥ जिसनें घरकी अग्निमें अग्निहोत्र ग्रहण न कियाहो वह ब्राह्मण घृतसे भरेहुए अन्नको लेकर शाकल ऋषिकी विधिके अनुसार लौकिक अग्निमें हवन करै ॥ २८ ॥ पृथक् २ व्याहृतियोंसे और फिर सम्पूर्ण व्याहृतियोंसे छैः आहुति "देवकृतस्य" इस मंत्रसे क्रमानुसार देकर ॥ २९ ॥ इसके पीछे 'स्विष्टकृत्' प्राजापत्यकी बारह आहुति देकर स्विष्टकी विधिसे पहले ॐकार और अंतमें स्वाहा हो, इस भांतिसे आहुतिका त्याग होताहै (ॐ प्रजापतये स्वाहा) ॥ ३० ॥

भुवि दर्भान्समास्तीर्य बलिकर्म समाचरेत् ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥ भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित् ॥ दद्याद्बलित्रयं चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधानमः ॥३२ ॥ पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षिपेत् ॥ उद्धृत्य षोडशग्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ॥ ३३ ॥ इदमन्नं मनुष्येभ्यो हंतेत्युक्त्वा समुत्सृजेत् ॥ गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तितः ॥ ३४ ॥ षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात्पितृयज्ञविधानतः ॥ वेदादीनां पठेत्किंचिदल्पं ब्रह्ममखाप्तये ॥ ३५ ॥ ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्बहिः ॥ काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रक्षिपेद्ग्रासमेव च ॥३६ ॥ उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम् ॥ अप्रभुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपर कुशा बिछाकर उसके ऊपर बलि वैश्वदेव करै और "विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः" "सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः" ॥ ३१ ॥ और "भूतानां पतये नमः" इस भांति शास्त्रका जाननेवाला पुरुष तीन बलि अग्र (द्वार) भागमें दे; "पितृभ्यः स्वधा नमः" इस मन्त्रसे पितरोंको दे ॥ ३२ ॥ पात्रोंके धोनेका जल वायुकोणमें फैंकदे फिर सोलह ग्रास भर घीसे छिडकेहुए अन्नको निकालकर ॥ ३३ ॥ "इदमन्नं मनुष्येभ्यो हंत" यह कहकर (हंतकार) देदे; और फिर गोत्र नाम स्वधा कहकर पितरोंको भी दे ॥ ३४ ॥ पितृयज्ञकी विधिके अनुसार छैः (३ पितृपक्षके ३ मातृपक्षके) को नित्य अन्न दे, इसके पीछे यज्ञकी प्राप्तिके निमित्त कुछ वेद आदिको भी पढै ॥ ३५ ॥ इसके पीछे अन्य अन्नको ग्रहणकर घरके बाहर जाकर काक, कुत्ते इनको भी ग्रासदे, और गौको भी ग्रासदेना उचित है ॥ ३६ ॥ इसके पीछे घरके द्वारपर बैठकर पवित्र भावसे अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ दो घडीतक बैठारहै जबतक आप भोजन न करै ॥ ३७ ॥

आगतं दूरतः श्रांतं भोक्तुकाममकिंचनम् ॥ दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥ ३८ ॥ पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरर्चितः ॥ त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥ कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ॥ द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥ विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः ॥ अर्घ्या भवंति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥ गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥ भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत् ॥४२॥ विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ॥ मित्रमातुलसंबंधिबांधवान्समुपागतान् ॥ ४३ ॥ भोजयेद्गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ॥ स्वाद्वन्नमभ्रस्वादु दद्गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४४ ॥ गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु ॥ बुभुक्षितेषु भुंजानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥ नाद्याद्गृह्येन्नपाकाद्यं कदाचिदनिमंत्रितः ॥ निमंत्रितोऽपि निंदेत प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥ ४६ ॥

जो दूरसे आयाहो, श्रान्त हो, भोजन करनेकी इच्छा करताहो और अकिंचन हो (जिसके पास कुछ न हो) ऐसे अतिथिको देखकर उसी समय उसके सन्मुख जाकर उसे घर ले आवे; और विनयसहित पूजन सत्कार करै ॥ ३८ ॥ अतिथिके चरण धोने, भलीभांति सत्कार करने और उबटनआदि मलनेसे यज्ञसे भी अधिक स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३९ ॥ उचित समयपर आयाहुआ अतिथि और वेदके पार जाननेवाला (किसी निमित्तसे) यह दोनों घरपर आयेहुए पूजित हों तो स्वर्गमें लेजातेहैं, और जो इनकी पूजा नहीं करता, उसे नरकमें लेजातेहैं ॥ ४० ॥ जिसका विवाह अपने यहां हुआहो और जो ब्रह्मचर्यको समाप्त करकै गृहस्थाश्रममें जानेको उद्यत हो, राजा, आचार्य, मित्र, ऋत्विज् यह सबके घरपर आयेहुए प्रतिवर्ष धर्मसे पूजने योग्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वेदपाठी घरपर आवै उसका भलीभांति सत्कार कर श्रद्धासे एक बडाभाग देकर बिदा करदे ॥ ४२ ॥ वेदपाठीके भलीभांति तृप्त होनेपर उसके पीछे २ कुछ दूर चलकर उसे बिदा करदे । इसके पीछे, मित्र, मामा, सम्बन्धि बांधव इनके घर आनेपर ॥ ४३ ॥ भोजन करावै; भिक्षुक गृहस्थकी सन्मानसे दीहुई भिक्षाको ग्रहण करै और जो गृहस्थी स्वयं स्वादिष्ट अन्नका भोजन कर अस्वादिष्ट अन्न भिक्षुक वा अतिथिको देताहै वह अधोगतिको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ गर्भवती स्त्री, रोगी, भृत्य, बालक, और वृद्ध इनके भूंखे रहते जो गृहस्थी भोजन करताहै वह महान् पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ विना निमंत्रणके पकान्न आदिका भोजन न करै, और न उसकी अभिलाषा करै, यदि कोई पुरुष निमंत्रण देभी दे तौभी ब्राह्मण निवारण करसकताहै ॥ ४६ ॥

शूद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टक्रूरतस्कराः ॥ क्रुद्धापविद्धबद्धोग्रवधबंधनजीविनः ॥ ४७ ॥ शैलूषशौंडिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः ॥ नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥ कदर्यस्त्रीजितानार्यपरवादकृता नराः ॥ अनीशाः कीर्तिमंतोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥ शयनासनसंसर्गकृतक-

र्मादिदूषिताः ॥ अश्रद्दधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥ अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः ॥ ५० ॥

शूद्र, जिसे शाप लगाहो, व्याजलेकर निर्वाह करनेवाला, वाग्दुष्ट, गूंगा, अथवा निरन्तर झूंठ बोलनेवाला, कठोरहृदय, चोर, क्रोधी, पतित, और बंधन बडीहिंसा बंधनसे जो जीविका करतेहैं ॥ ४७ ॥ नट, कलाल, उन्नद्ध, उन्मत्त, व्रात्य, जिसने व्रतको छोड दिया हो; नंगा, नास्तिक, निर्लज्ज, चुगल, व्यसनी, ॥ ४८ ॥ जिसे कामदेव और स्त्रियोंने जीताहो; असज्जन, दूसरेकी निंदा करनेवाला असमर्थ और कीर्तिमान् होकरभी जो राजा और देवताके द्रव्यको हरण करले ॥ ४९ ॥ शय्या, आसन, संसर्ग, व्रतकर्म इनमें जो किसी भाँति दूषित हो और श्रद्धाहीन, पतित, भ्रष्टाचार, नट आदि यह सम्पूर्ण अभोज्यान्न कहेहैं; अर्थात् इनके यहांके अन्नको न खाय, कारण कि जो जिसके यहांके अन्नको खाताहै वह उसीके समान होजाताहै ॥ ५० ॥

नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥ शूद्राणामप्यमीषां तु भुक्त्वान्नं नैव दुष्यति ॥ ५१ ॥

नाई, वंशका मित्र, अर्द्धसीरी दास और गोप इन शूद्रोंके अन्नको खाकर भी दोष नहीं लगता ॥ ५१ ॥

धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥ ५२ ॥ स्ववृत्तोपार्जितं मेध्यमाकरस्थममाक्षिकम् ॥ अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥ अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च ॥ अम्लानबाह्यमन्नाद्यमाद्यं नित्यं सुसंस्कृतम् ॥ कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च ॥ ५४ ॥

द्विजोंको परस्परमें यदि वंश (कुल) विदित हो तौ धर्म करकै एक दूसरेके अन्नको भोजन करसकतेहैं ॥ ५२ ॥ परन्तु उस अन्नको खाय जिसको वह खाने वा खिलानेवालेने अपनी जीविकासे संचय कियाहो, और शहतको छोडकर आकरकी वस्तु और जिसको कुत्तेने न सूंघाहो और जिसे गौने न सूंघाहो; जिसे शूद्र और काकने न छुआहो यह सभी पवित्रहैं ॥ ५३ ॥ उच्छिष्ट न हो, बासी न हो, दुर्गंधि न आतीहो इस प्रकार भलीभांति बनायेहुए अन्नको नित्य खाले, खिचडी, मालपुए, मोहनभोग, खीर, पूरी इनको भी खाले ॥ ५४ ॥

नाश्नीयाद्ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथंचन ॥ क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन्पतति द्विजः ॥ ५५ ॥ मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ क्षत्रियो द्वादशोनं तत्क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण श्राद्धादिकमें विना नियुक्त मांसभोजन कदापि न करै परन्तु यज्ञमें वा श्राद्धमें नियुक्त होकर ब्राह्मण यदि मांसभोजन न करै तौ पतित होताहै ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय मृगया करकै लायेहुए मांससे पितर और देवताओंको पूजकर उसमेंसे आप भी भोजन करै, और उसमेंसे बारहवें भागको मोल लेकर वैश्य भी खाले तौ अधर्म नहीं है॥ ५६ ॥

द्विजो जग्ध्वा वृथामांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥
निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण वृथामांस खाताहै, या जो विना विधिके पशुओंको मारताहै, वह अनंत कालतक नरकमें निवास करताहै, जबतक चन्द्रमा और तारागण आकाशमें स्थिति करतेहैं तभीतक उसका नरकमें वास है ॥ ५७ ॥

सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥
मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ॥ ५८ ॥

(वृथामांसको वेर्जदेनेसे) सम्पूर्ण कामना और अश्वमेधके यज्ञके फलको प्राप्त होकर गृहस्थी भी ब्राह्मण मुनियोंकी समान होजाताहै ॥ ५८ ॥

द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥
निर्दशासंधिसंबंधिवत्सवर्तीपयांसि च ॥ ५९ ॥

गाय और भैंसका दूध ब्राह्मणोंके खाने योग्य होताहै; और वह खाने योग्य दूध है जो ब्यानेसे दशदिनके पीछेका हो, तथा वह गौ असंधिनी (जो ग्याभन न) हो; और उसके बछडे वा बछिया हों ॥ ५९ ॥

पलांडुं श्वेतवृंताकं रक्तमूलकमेव च ॥ गृंजनारुणवृक्षासृग्जंतुगर्भफलानि च ॥ ६० ॥ अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैंदवं चरेत् ॥ वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीडितकार्यपि ॥ ६१ ॥

प्याज, सफेद बैंगन, लाल मूली, गाजर, वृक्षका लाल गोंद, गूलरके फल ॥ ६० ॥ विना समयके फूल जो ब्राह्मण इनको खाताहै वह ऐंदव इन्दुका (चन्द्रदेवताका) पाकरूप प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै, और वाणीसे दूषित (गोभी आदिक) और जिसे जानता न हो वह, और जिससे दूसरेको दुःख हो ऐसा पदार्थ खानेवालाभी ऐंदव प्रायश्चित्त करै ॥६१॥

भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥

जो विना भूतोंके दिये अन्न खाताहै वह यह सब अन्न गृहस्थीको दग्ध करतेहैं,

हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही ॥ ६२॥ अभावे साधुगन्धेषु लोध्रद्रुमलतासु च ॥ पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥

गृहस्थी सदा सुवर्ण चांदी काँसी इनके पात्रोंमें भोजन करले ॥ ६२ ॥ पात्रोंके अभावमें गृहस्थी अच्छी सुगंधवाले देवदारु, ढाक और कमलके पत्तोंमें भोजन करनेयोग्य है ॥६३॥ ब्रह्मचारी और यतिको भी उक्त पत्तोंमें ही भोजन करना उचित है ॥ ६४ ॥

अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद्बलित्रयम् ॥ भूपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ॥ ६५ ॥ अपः प्राश्य ततः पश्चात्पंचप्राणाहुतीः क्रमात् ॥ स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥ अनन्यचित्तो भुंजीत वाग्यतोऽन्न-

१ "मुनिर्मांसविवर्जनात्" ऐसी मनुकी आज्ञा है ।

मकुत्सयन् ॥ आतृप्तेरन्नमश्नीयादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥ उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत् ॥ ६८ ॥ आचांतः साधुसंगेन सद्विद्यापठनेन च ॥ वृत्तवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत् ॥ ६९ ॥

अन्नको "ॐतेजोऽसि" इस मन्त्रसे छिडककर नमस्कार करै; इसके पीछे पृथ्वीमें तीन बली (थोडा २ अन्न) दे कि, "भूपतये नमः, भुवः पतये नमः, भूतानां पतये नमः" ॥ ६५ ॥ फिर अपोशन " ॐअमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" इस मन्त्रसे आचमन करके पांच प्राणोंकी आहुति स्वाहा कहकर दे, और फिर सुखसहित शेष अन्नको खाले ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मौन धारण कर अन्नकी निन्दाको न करताहुआ मनुष्य एकाग्र मनसे तृप्तिपर्यन्त भोजन करै; और पात्रको खाली न छोडै, अर्थात् उसमें कुछ अंश रहनेदे ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त " ॐअमृतापिधानमसि स्वाहा." इस मन्त्रसे प्रत्यपोशन अर्थात् पुनराचमन लेकर) उस बचेहुए उच्छिष्ट अन्नमेंसे एक ग्रास उठाकर (किंचित् दो जगह, "ॐश्यामाय नमः "ॐ शबलाय नमः" इस मंत्रसे) पृथ्वीपर रखदे ॥ ६८ ॥ इसके पीछे आचमन करके साधुओंकी संगति और उत्तम विद्याको पढकर जो सदाचारमें रतहैं उनकी कथाओंसे शेष दिनको व्यतीत करै ॥ ६९ ॥

सायं संध्यामुपासीत हुत्वाग्निं भृत्यसंयुतः ॥
आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः ॥ ७० ॥

इसके पीछे सायंकालको सन्ध्या करै, और अग्निहोत्र कर भृत्योंसमेत भोजनसे पहले आचमन करके नित्यशः भोजन करै ॥ ७० ॥

सायमप्यातिथिः पूज्यो होमकालागतोऽनिशम् ॥
श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः ॥ ७१ ॥

होमके समय आयाहुआ अतिथि सन्ध्याके समयभी अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धासहित अवश्य पूजने योग्य है, पूजा न करनेसे वह अतिथि उसके पुण्यको हरण करताहै ॥ ७१ ॥

नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥ अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे ॥ शक्तिमानुदिते काले स्नानं संध्यां न हापयेत् ॥ ७२ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिंतयेद्धितमात्मनः ॥ शक्तिमान्मतिमान्नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अत्यन्त तृप्त नहीं हुआ चरणोंको धोकर पवित्र हो वह मनुष्य उत्तम शय्यापर शयन करै, पश्चिमकी ओरको शिर न करै, शक्तिके अनुसार सूर्योदयके समय स्नान और सन्ध्याको न त्यागै ॥ ७२ ॥ ब्राह्ममुहूर्त्त (४ घडी रात शेष रहते) में उठकर अपने हितकी चिन्ता करै । समर्थ बुद्धिमान् मनुष्य नित्य इस प्रकारका कार्य करै ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

"१ॐ प्राणाय स्वाहा १ ॐ अपानाय स्वाहा २ ॐ उदानाय स्वाहा ३ ॐ समानाय स्वाहा ४ ॐ व्यानाय स्वाहा ५ " इनको पांच प्राणोंकी आहुति कहतेहैं ।

चतुर्थोऽध्यायः ४.

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ॥ आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ॥ १ ॥ गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥ सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥

यह व्यासजीका कहाहुआ शास्त्र धर्मोंका सारयुक्त है; आश्रममें जो पुण्य है और जो पुण्य मोक्षके धर्मोंमें है ॥१॥ उन सबमें गृहस्थाश्रमसे श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है यह व्यासजीने बार २ कहाहै, जो गृहस्थ यथोक्त गृहस्थधर्मके अनुसार पालन करताहै; वह घरमेंही सम्पूर्ण तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ २ ॥

गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥ नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ ३ ॥ स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिवर्तनम् ॥ अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥

जो गृहस्थी गुरुमें भक्ति करनेवाला, भृत्योंका प्रतिपालक, दयालु, निन्दा न करनेवाला, सर्वदा जप होम करनेवाला, सत्यभाषी और जितेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ जिसे अपनी स्त्रीसे ही सन्तोष है, पराई स्त्रीकी इच्छा न करनेवाला, जिसकी कहीं निन्दा न हो उस गृहस्थीको घरमें बैठही तीर्थका फल मिलताहै ॥ ४ ॥

परदारान्परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ॥
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥ ५ ॥

जो गृहस्थी प्रतिदिन पराई स्त्री और पराये धनको हरण करताहै; उसके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी पाप नष्ट नहीं होते ॥ ५ ॥

गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ॥
अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेन लिप्यते ॥ ६ ॥

इस कारण सवन (यज्ञ वा संतान) युक्त घरोंमें सब तीर्थोंका फल मिलताहै; जिसके अन्नसे श्राद्ध आदि कियाजाता है तीनों भाग पुण्यके उसको भी मिलते हैं, और जो उक्त कर्मोंको करै उसको एक भाग मिलता है ॥ ६ ॥

प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानां च तर्पणम् ॥ न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिभिक्षां ददाति यः ॥ ७ ॥ पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥

जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको जीविका प्रदान, तथा तृप्ति करता उनके चरण धोता है और जो बलि वैश्वदेव करता है उस मनुष्यको पाप स्पर्शतक भी नहीं करसकता ॥ ७ ॥ जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको प्रतिश्रय अर्थात् रहनेको जगह और पैरोंके धोनेके लिये जल पादघृत (जूता वा खडाऊं) दीपक अन्नदान और आश्रय देताहै, यमराज उसके निकट नहीं आसकते ॥ ८ ॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥
तावत्पुष्करपात्रेषु पिबंति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥

जिस गृहस्थीके घरमें ब्राह्मणोंके चरणोंके धोनेके जलसे पृथ्वी जबतक गीली रहती है तबतक कमलके पत्तोंमें उसके पितर अमृत पीतेहैं ॥ ९ ॥

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे॥ तत्फलं ऋषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशोधने ॥ १० ॥ स्वागमेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः ॥ पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ११ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठो ! कपिलागौके दान करनेसे जो फल होता है, कार्तिककी पूर्णमासीको पुष्करमें स्नान करनेसे जो फल होता है वही फल केवल ब्राह्मणोंके चरण धोनेसे होताहै ॥ १० ॥ ब्राह्मणोंका स्वागत करनेसे अग्निदेव प्रसन्न होतेहैं,आसन देनेसे इन्द्र प्रसन्न होते हैं;चरण धोनेसे पितर प्रसन्न होतेहैं, और अन्नादि दान करनेसे प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ११॥

मातापित्रोः परं तीर्थं गंगा गावो विशेषतः ॥
ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥

माता और पिता यही प्रधान तीर्थ हैं, यद्यपि गंगा और गौ यहभी तीर्थ हैं,परन्तु ब्राह्मणोंसे बढकर तीर्थ न हुआ और न होगा ॥ १२ ॥

इंद्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ॥ तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३॥ गंगाद्वारं च केदारं सन्निहत्यं तथैव च ॥ एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंको वशमें कर गृहस्थाश्रममें जो मनुष्य वास करता है उसको घरमें ही कुरुक्षेत्र नैमिष और पुष्कर ॥ १३ ॥ हरिद्वार, केदार, सन्निहत्य (कुरुक्षेत्र) यह सम्पूर्ण तीर्थ हैं, वह इन सब तीर्थोंके प्रभावसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १४ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ॥
दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥ १५ ॥

हे द्विजगण ! व्यास मुनिने जिस प्रकार कहा उसीके अनुसार चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके दानका फल कहताहूं ॥ १५ ॥

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिनेदिने ॥ तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥ १६ ॥ यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ॥ अन्ये मृतस्य क्रीडंति दारैरपि धनैरपि ॥१७ ॥ किं धनेन करिष्यंति देहिनोऽपि गतायुषः॥ यद्वर्द्धयितुमिच्छंतस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥ १८ ॥ अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥ यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ॥ यत्परित्यज्य गंतव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥ २० ॥ जीवंति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बांधवाः ॥ जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥ २१ ॥ पशवोऽपि हि जीवंति केवलात्मोदरंभराः ॥ किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना॥ २२ ॥ ग्रासादर्द्ध-

मपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ॥ इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ २३ ॥

जो धन प्रतिदिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दिया जाताहै जो स्वयं भोगता है उसी धनको मैं धन मानताहूं; और जो दान नहीं करता, भोग नहीं करता, उसकी रक्षाही करताहै, वह उसका नहीं है ॥ १६॥ जो धन दान दिया जाताहै, भोगाजाताहै वही धनीका धन है, मृतकके धन रखजाने पर अन्य पुरुष उसके स्त्री वा धनसे क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥ धनको रखकर जो मरजाते हैं, वह उस धनसे आत्माका क्या उपकार करेंगे, धनको भोगकर जिस शरीरको पुष्ट करनेकी इच्छा करते हैं सो वह शरीर भी सर्वदा रहनेवाला नहीं॥१८॥देह और धन सर्वदा रहनेवाला नहीं, सर्वदा मृत्यु सन्मुख खडी रहती है, इस कारण धर्मका संग्रह करना उचित है॥१९॥जो धन सम्पत्ति धर्मके निमित्त, या अभिलाषा पूरणके निमित्त तथा कीर्तिके निमित्त न हुई उस धनको त्यागकर परलोक जाना होगा;फिर उस धनको किस कारण दान नहीं करता ॥२० ॥ जिस मनुष्यके जीवित रहनेसे ब्राह्मण मित्र तथा बंधु बांधव जीवित रहतेहैं उन्हींका जीवन सफल है, अपने लिये कौन नहीं जीता ॥ २१ ॥ केवल अपने पेट भरनेके लिये तो पशुभी जीवन धारण करतेहैं (जो मनुष्य धनसे दानादि सत्कार्य नहीं करते) उन्हें भलीभांति शरीरकी रक्षा करनेसे या बलवान् होने तथा चिरजीवी होनेसे ही क्या फल है ॥ २२॥ यदि एक ग्रास वा आधा ग्रास भी अभ्यागतको न दे (और यह कहै कि जब इच्छानुसार धन मिलैगा तब देंगे) सो इच्छानुसार धन कब मिला और किसके होताहै ॥ २३ ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ॥
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुंचति ॥ २४ ॥

अदाता (न देनेवाला ही) पुरुष त्यागी है कारण कि वह धनको छोडकर जाताहै, परन्तु मैं दाताको कृपण मानताहूं कारण कि दाता मरकर भी धनको नहीं छोडता, अर्थात् मरनेपरभी उसे धन मिलता है ॥ २४ ॥

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न स मृतः ॥
अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५ ॥

एक दिन अवश्यही प्राणत्याग करने होंगे परन्तु जो कृतार्थ है वह मृतक नहीं हुआ; और जो विना धर्मकिये मराहै वह गधेकी समान है ॥ २५ ॥

अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ॥ भविष्यति युगस्यांतस्तस्यांतो न भविष्यति ॥ २६ ॥ मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते ॥ परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥ अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ॥ पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनंतकम् ॥ २८ ॥

विना मांगे जो दान दियाहै, युगका तो अन्त हो जायगा परन्तु उस दानका अन्त नहीं होगा ॥ २६ ॥ मरे बछडेवाली काली गौको जिस भांति दुहतेहैं परन्तु उसके दूधसे देवकार्य नहीं होता, इसीभांति परस्परके दानका भी कोई फल नहीं होता, केवल लोकाचारकी रक्षा होतीहै, परन्तु उससे पुण्य नहीं होता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य पापको न देखकर (अर्थात्

किसी पापके लिये न दे) वा दानके भोक्ताको न देखकर (यह इच्छा न करै कि इसका फल मुझे मिले) और यह भी अभिलाषा न करै कि मैं फिर इस संसारमें आऊंगा, तौ उस समयमें दानका फल अनन्त होताहै अर्थात् जो दान निष्काम होकर कियाजाताहै वही सफल होताहै ॥ २८ ॥

मातापितृषु यद्द्याद्भ्रातृषु श्वशुरेषु च ॥ जायापत्येषु यद्द्यात्सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ॥ २९ ॥ पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥ भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

माता, पिता, भाई, श्वशुर, स्त्री, पुत्र वा पुत्री जो इनको दान करताहै वह अनन्तकालतक स्वर्गमें निवास करताहै ॥ २९ ॥ पिताको दान करनेसे सहस्रगुणा फल मिलताहै, माताको दान करनेसे हजारगुना फल मिलताहै; और भगिनीको जो दान दियाजाताहै वह लाखगुना होताहै, और जो भाईको दिया जाताहै उसका कभी भी नाश नहीं होता ॥३०॥

अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेषु मुनीश्वराः ॥ आगमिष्यति यत्पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥ ३१ ॥ किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् ॥ पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ ३२ ॥

हेमुनीश्वरो ! दिन २ ब्राह्मणोंको दान करै, कारण कि, जो पात्र आजायगा वही तारदेगा ॥ ३१ ॥ यत्किंचित् पात्र तो वेदपाठी वा तपस्वी होताहै, और पात्रोंमें उत्तम पात्र वह है जिसके उदरमें शूद्रका अन्न नहो ॥ ३२ ॥

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि गुणान्वितः ॥
गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ३३ ॥

जिसके घरमें मूर्खका निवास हो और विद्वान् दूर रहताहो तौ वह मनुष्य गुणीको बुलाकर दान करै, मूर्खके उल्लंघन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥ कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलंतमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३५ ॥ सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥ भोजने चैव दाने च हन्यात्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३६ ॥

देवताके द्रव्यका नाश, ब्राह्मणके धनकी चोरी और ब्राह्मणका उल्लंघन इनसे अच्छे कुलभी दुष्ट कुल होजाते हैं ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण वेदको नहीं जानता उसका उल्लंघन नहीं होता; कारण कि प्रज्वलित अग्निको छोडकर भस्ममें हवन नहीं कियाजाता ॥ ३५ ॥ भोजन और दानके समयमें जो अपने समीपके पढेहुए ब्राह्मणका उल्लंघन करताहै वह तीन पीढीतक अपने कुलको नष्ट करताहै ॥ ३६ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३७ ॥ ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३८ ॥

जिस भांति काठका हाथी, और जैसा चमडेका मृग होता है उसी भांति विना पढा ब्राह्मण है; यह तीनों नाममात्रधारी हैं; अर्थात् निरर्थक हैं ॥ ३७ ॥ शून्य ग्रामस्थान, और जलहीन कुआ जिस प्रकार किसी अर्थका नहीं उसी भांति विना पढा ब्राह्मण है. यह तीनों नाममात्रकेही धारण करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणेषु च यद्दत्तं यच्च वैश्वानरे हुतम् ॥
तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥

जो धन ब्राह्मणोंको दिया जाताहै, या जिस धनसे हवन कियाजाताहै; वही धन यथार्थ धन कहाहै; और सम्पूर्णधन वृथा है ॥ ३९ ॥

सम समब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्ये ह्यनंतं वेदपारगे ॥ ४० ॥ ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः ॥ जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥ गर्भाधानादिभिर्मंत्रैर्वेदोपनयनेन च ॥ नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥ अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥ इष्टिभिः पशुबंधैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥ मीमांसते च यो वेदान्षड्भिरंगैः सविस्तरैः ॥ इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः॥ ४५ ॥

अब्राह्मणको जो दियाजाय वही सम (उतनाही रहताहै) और जो (सामान्य) ब्राह्मणब्रुवको दिया जाय वह दुगना होताहै, और आचार्यको दियाजाता है वह सौगुना होताहै; और वेदके पारको जो जानता है उसके देनेसे अनन्त फल होता है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न होकर जो गायत्रीआदिका जप न करै, और जो ब्राह्मण जातिही कहकर उदरपोषण करै, उस ब्राह्मणको सम ब्राह्मण कहतेहैं ॥ ४१ ॥जिस ब्राह्मणकी संतानके यथाशास्त्र गर्भाधानादि संस्कार हुएहैं; यज्ञोपवीत आर वेदपाठ भी रीतिके अनुसार हुआहै परन्तु उनको न पढै और न पढावै उसको ब्राह्मणब्रुव कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जो ब्राह्मण नित्य हवन करताहो, तपस्वी हो, कल्प और रहस्यसहित जो वेदोंको पढताहो उस ब्राह्मणको आचार्य कहते हैं ॥ ४३ ॥ यज्ञीय पशुको बांधकर जो चातुर्मास्य अग्निष्टोमादि यज्ञ करताहै और जो देवताओंकी पूजा करताहै उसे इष्टवान् कहतेहैं; अर्थात् उन्हींने पूजाकरी ॥ ४४ ॥ विस्तार सहित छः अंग, चारों वेद और इतिहास पुराण इनका जो विचार करता है उसको वेदपारग कहते हैं ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणा येन जीवंति नान्यो वर्णः कथंचन ॥ ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ॥ प्रत्यक्षं चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥

जिससे ब्राह्मण जीतेहैं उससे और वर्ण कभी नहीं जीते अर्थात् जो ब्राह्मणोंको दान देकर पालन पोषण करताहै, अन्य वर्ण नटवेश्यादिकों को अपना द्रव्य देकर पोषण नहीं करताहै, ऐसे इस मार्गमें स्थित होनेवालेको कौन परित्याग करनेकी इच्छा करै अर्थात् कोई भी नहीं- ॥ ४६॥ वह ब्राह्मण देवताका भी देवता है और प्रत्यक्ष जगत्का कारण ब्रह्मतेजही है॥४७॥

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकंटकम् ॥ वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥ ४८ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव हि दुष्यति ॥ ४९ ॥ विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते ॥ क्रीडंत्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ५० ॥ नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ॥ दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥ ५१ ॥ वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥ न च मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥ ५२ ॥ यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठंति भो द्विजाः ॥ तानि तस्य प्रयोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ ५३ ॥ यस्य देहे सदाश्नंति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥५४॥ यद्भुंक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥ दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्मत दक्षयम् ॥५५॥

ब्राह्मणका मुखही कंकर और कांटोंसे रहित क्षेत्र है उसीमें बीज बोवै, कारण कि वह खेती सब मनोरथोंकी देनेवाली है ॥ ४८ ॥अच्छे क्षेत्रमें बीज बोवै, सुपात्रको धन दे कारण कि अच्छे खेतमें फेंकाहुआ बीज और सुपात्रको दियाहुआ धन दूषित नहीं होता ॥ ४९ ॥ जिस समय विद्या और विनयसे युक्त होकर ब्राह्मण घरमें आवै उस समय सब औषधी क्रीडा करतीहैं कि हम परम गतिको प्राप्त होंगी ॥ ५० ॥ जो ब्राह्मण नष्टशौच है वा जो व्रतसे भ्रष्ट है, तथा जो वेदसे हीन है; उसको दियाहुआ अन्न भय मानकर रोताहै कि इसने बुरा किया जो दिया ॥ ५१ ॥ वेदसे पूर्ण तृप्त ब्राह्मणको भी जिमावै; और निराहार छैः रातके उपासे मूर्ख ब्राह्मणको कदापि न जिमावै ॥ ५२ ॥ हे द्विजो ! पवित्र वस्तु जिसके उदरमें रहै, अर्थात् वही २ वस्तु उस ब्राह्मणको देनी; अन्यथा देहधारियोंका देह किसी प्रयोजनका नहीं है ॥ ५३ ॥ जिस ब्राह्मणके शरीरमें देवता हव्य और पितर कव्य सर्वदा भोजन करते रहतेहैं, उससे परे और कौन होगा ॥ ५४ ॥ वेदका जाननेवाला और अपने कर्ममें तत्पर ब्राह्मण जो खाताहै, दाताको उसका फल अनगिन्त होताहै और जन्म २ में वह अक्षय होताहै ॥ ५५ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छंति पंडिताः ॥ अहं नेच्छामि मुनयः कस्यैताः सर्वसंपदः ॥ ५६ ॥ वेदलांगलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च ॥ यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसंपदः ॥ ५७ ॥

हे मुनियो ! हाथी, रथ, घोडा, यान, पालकी इनको ऐसा कौन पंडित ब्राह्मण लेनेकी इच्छा करैगा, इनके लेनेकी कोई विद्वान् भी इच्छा नहीं करता, कारण कि यह संपदा किसकी खेतीकी हैं ॥ ५६ ॥ वेदरूप हलसे जुते जो सत्पात्र ब्राह्मणोंमें उत्तम हैं उनमें जो पूर्वजन्मसे बीज बोयागया हो उसीकी यह अन्न आदि खेतीकी संपदा है ॥ ५७ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः ॥ वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ ५८ ॥ न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पंडितः ॥ न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ ५९॥ इंद्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पंडितः॥ हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ ६० ॥

सौमें एक शूर वीर, हजारमें एक पंडित और लाखमें एक वक्ता होताहै; और दाता तो हो या न हो ॥ ५८ ॥ रणको जीतनेसे ही शूर वीर नहीं होता, पढनेसे ही पंडित नहीं होता, वाणीसे ही वक्ता नहीं होता, और धनके दानसे ही दाता नहीं होता ॥ ५९ ॥ परन्तु जो इन्द्रियोंको जीतताहै वही शूर है, जो धर्माचरण करताहै वही पंडित है जो हितकारी और प्रिय वचन कहै वही वक्ता है; और जो मनुष्य सन्मानपूर्वक दान करै, वही दाता है ॥ ६० ॥

यद्येकपंक्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ॥ वेदेषु दृष्टं ऋषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदंति ॥ ६१ ॥ ऊखरे वापितं बीजं भिन्नभांडेषु गोदुहम् ॥ हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

यदि स्नेह या भयसे या धनके लोभसे एक पंक्तिमें बैठेहुए ब्राह्मणोंको विषम न्यूनाधिक देताहै उसको ब्रह्महत्याका पाप होताहै, यह वार्ता मुनियोंने भी कहीहै और वेदोंमें भी देखी गईहै, और ऋषिभी वही कहतेहैं ॥६१॥ ऊपर भूमिमें बोयाहुआ बीज, फूटे पात्रमें दुहाहुआ दूध, भस्ममें कियाहुआ हवन, और मूर्खको दिया हव्य और दान यह सभी निष्फल हैं ॥६२॥

मृतसूतकपुष्टांगो द्विजः शूद्रान्नभोजने ॥ अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ ६३ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥ स भवेत्सूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥ गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥ श्वानश्च सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६५ ॥

जो ब्राह्मण जन्म मरणके सूतकमें अन्न खाकर अपना शरीर पुष्ट करतेहैं और जो शूद्रके यहांका भोजन करतेहैं वह ब्राह्मण परलोकमें जाकर किस योनिमें जन्म लेंगे; व्यासदेवजी कहतेहैं कि यह मैं स्थिर नहीं करसका ॥ ६३ ॥ शूद्रका अन्न उदरमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाताहै वह परलोकमें सूकरकी योनिमें जन्मलेताहै अथवा शूद्रकेही कुलमें जन्मलेताहै ॥६४॥ वह बारह जन्मतक गीध, सात जन्मतक सूकर, और सात जन्मोंतक कुत्ता होताहै, यह मनुका वचन है ॥ ६५ ॥

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

ब्राह्मणका अन्न उदरमें स्थित रहनेपर यदि मरजाय तौ उसकी मोक्ष होतीहै, क्षत्रियका अन्न उदरमें रहनेपर मृतक होजाय तौ दरिद्र होताहै, वैश्यका अन्न उदरमें रहनेपर मरजाय तौ शूद्र होताहै, और शूद्रके अन्नसे नरककी प्राप्ति होतीहै ॥ ६६ ॥

यश्च भुंक्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥ ६७ ॥ यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥ वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥

जो ब्राह्मण निरन्तर एक महीनेतक शूद्रका अन्न खाताहै, वह इसी जन्ममें शूद्र है और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ६७ ॥ जिस ब्राह्मणके यहां शूद्रा स्त्री रसोई बनाती-

हो अथवा जिसकी स्त्री शूद्रा हो वह द्विज पितर और देवताओंसे त्यागाहुआ है और मृत्युके उपरान्त रौरव नरकको जाताहै ॥ ६८ ॥

भांडसंकरसंकीर्णा नानासंकरसंकराः ॥
योनिसंकरसंकीर्णा निरयं यांति मानवाः ॥ ६९ ॥

पात्रोंके संकरसे जो संकीर्ण है; जिसतिसके पात्रमें खाले, और जिनका मेळ अनेक संकरोंमें है, और योनिसंकरसे जो संकीर्ण हैं, चाहैं जिसके साथ विवाह करलें, यह सभी मनुष्य नरकमें जातेहैं ॥ ६९ ॥

पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिंदकः ॥
आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

जो पंक्तिमें भेद करताहो और जो वृथापाकी बलिवैश्वदेव न करै, अपने लियेही अन्न पकावै, ब्राह्मणोंकी निन्दा करताहो और वेदको बेचताहो, जो आज्ञाको करताहो, अथवा कुछ द्रव्यके लोभसे पढावे या जपकरै यह पांचों ब्रह्महत्यारे कहेहैं ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥
एतदुक्ताचारवतः पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥

व्यासजीके विरचित धर्मशास्त्रके संग्रहको मनुष्योंको प्रतिदिन पढना आवश्यक है, व्यासजीके कहेहुए आचरणोंको जो करताहै उसका पतन नहीं होता, अर्थात् इस शास्त्रोक्त आचरणको करनेसे धर्मकी प्राप्ति होतीहै, और अधर्मका सम्पर्क नहीं होता ॥ ७१॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्यासस्मृतिः समाप्ता १२.



॥ श्रीः ॥

शङ्खस्मृतिः १३.

भाषाटीकासमेता।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शंखस्मृतिप्रारंभः ॥

स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥

सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयंभू ब्रह्माजीको नमस्कार करके चारों वर्णोंके कल्याणके निमित्त शंखऋषिने शास्त्रको निर्माण किया ॥ १ ॥

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥ प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दि-
शेत् ॥ २ ॥ दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥ क्षत्रियस्य च वैश्यस्य
कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥ क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥ कृषि-
गोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पा-
नि चाप्यथ ॥

यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और पढाना, प्रतिग्रह और पढना यह छः कर्म ब्राह्मणोंके कहेहैं ॥ २॥ दान, पढना, और विधिके अनुसार यज्ञकरना; यह तीन कर्म क्षत्रिय और वैश्योंके हैं ॥ ३ ॥ क्षत्रिय जातिका विशेष कर्म प्रजाकी पालना करनाहै,और वैश्यका खेती, गौओंकी रक्षा तथा लैन दैन कहाहै ॥ ४ ॥ और तीनों जातियोंकी सेवा करना और सम्पूर्ण कारीगरी यह शूद्रका कर्म है,

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥

विशेष करके क्षमा, सत्य, शौच यह चारों वर्णोंके समान कर्म हैं ॥ ५ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं
मौंजिबंधनम् ॥ ६ ॥ आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥ ब्राह्मण-
क्षत्रियविशां मौंजीबंधनजन्मनि ॥ ७ ॥ वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विच-
क्षणैः ॥ यावद्वेदे न जायंते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंको द्विजाति कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसे जानना ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंके यज्ञोपवीतके जन्ममें आचार्य पिता और माता गायत्री कहीहै ॥ ७ ॥जबतक इनको वेद शास्त्रका अधिकार न हो तबतक पंडित इनको शूद्रकी समान जानें; और वेदपाठप्रारंभ अर्थात् यज्ञोपवीत होजानेपर ब्राह्मण जानना उचित है ॥ ८ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ॥ पुरा तु स्यंदनात्कार्यं पुंसवनं वि-
चक्षणैः ॥ १ ॥ षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो जाते वै जातकर्म च ॥ आशौचे च
व्यतिक्रांते नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥

गर्भके भलीभांतिसे प्रकाश पानेपर, निषेककर्म करना कहा है, और गर्भके स्यंदन (गर्भके चलने) से प्रथम पंडितोंको पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १ ॥ छटे या आठवें महीनेमें सीमन्त और सन्तानके उत्पन्न होनेपर जातकर्म और सूतकसे निवृत्त होनेपर नामकरण संस्कार करना उचित है ॥ २ ॥

नामधेयं च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥ मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य
बलान्वितम् ॥ ३ ॥ वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ शर्मांतं
ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥ धनांतं चैव वैश्यस्य दासान्तं
चांत्यजन्मनः ॥

चारोंवर्णोंका नाम समअक्षरयुक्त रखना उचित है; ब्राह्मणके नामके उच्चारणमें मंगल शब्द हो, क्षत्रियके उच्चारणमें बलयुक्त नाम हो ॥ ३॥ वैश्यके नाममें धनयुक्त नाम हो, और शूद्रजातिके नाममें निन्दायुक्त शब्द हो; ब्राह्मणके नामके पीछे शर्मा और क्षत्रियके नामके पीछे वर्मा ॥४॥ वैश्यके नामके अन्तमें धन और शूद्रके नामके अन्तमें दास होना उचित है,

चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥

चौथे महीनेमें बालकको सूर्यका दर्शन करावै ॥ ५ ॥ छठे महीनेमें अन्नप्राशन संस्कार करना कर्तव्य है, और मुंडन अपनी २ कुलकी रीतिके अनुसार करै;

गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भा-
द्द्वादशमे विशः ॥ षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥ विंशतिः
सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥ नातिवर्तेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तते
॥ ८ ॥ विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता व्रात्याः
सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ९ ॥

गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ ६ ॥ क्षत्रियका गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै और वैश्यका गर्भसे बारहवें वर्षमें करै; ब्राह्मणकी सोलह वर्षतक, क्षत्रियकी बाईस वर्षतक ॥७॥ और वैश्यकी चौबीस वर्षतक गायत्री निवृत्त नहीं होती; यह शास्त्रका वचन है, इसके आगे निवृत्त होजाती है ॥ ८ ॥ जिनका अपने २ समयके अनुसार संस्कार नहीं हुआ है, वह तीनों वर्ण गायत्रीसे पतित और सम्पूर्ण धर्मकर्मोंसे वर्जित हैं;अर्थात् शूद्रकी समान हो जाते हैं ॥ ९ ॥

मौंजीज्यार्बधनानां तु क्रमान्मौंज्यः प्रकीर्तिताः ॥ मार्गवैयाघ्रबास्तानि चर्माणि
ब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥ पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दंडाः प्रकीर्तिताः ॥ केश-

देशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥ ११ ॥ अवक्रास्सत्वचःसर्वे अनग्न्येधास्तथैव च ॥ वस्त्रोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥ १२ ॥ आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥ भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १३ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मुंज, प्रत्यंचा, त्रावना (तृणविशेष) इनकी क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी मेखला, और मृग, व्याघ्र, मेढ इनका चर्म तीनों जातिके ब्रह्मचारियोंको कहा है ॥ १० ॥ ढाक, पीपल, बेल इनके दंड क्रमानुसार कहे हैं; और वह दंड शिखा, माथा, मुखतकके प्रमाणसे तीनों वर्णोंको लेने उचित हैं ॥ ११ ॥ सीधे, त्वचासहित और जले न हों इन तीनोंके वस्त्र और जनेऊ क्रमसे कपास अलसीकी सन और ऊनके होने उचित हैं ॥ १२ ॥ फिर आदि, मध्य और अंतमें भवतीशब्द लगाकर इस भांतिके वचनसे क्रमानुसार भिक्षा मांगे; अर्थात् ब्राह्मण "भवति भिक्षां देहि" यह कहै, क्षत्रिय "भिक्षां भवति देहि" और वैश्य "भिक्षां देहि भवति" इस भांति कहै ॥ १३ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आचार्य शिष्यको यज्ञोपवीत संस्कार कराकर प्रथम शौच, आचार, अग्निका कार्य और संध्योपासनादिकी शिक्षा करै ॥ १ ॥

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥
भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥

जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर वेद पढाता है उसे गुरु कहतेहैं, और जो कुछ द्रव्य लेकर पढाता है उसे उपाध्याय कहते हैं ॥ २ ॥

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम ॥
क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः ॥ ३ ॥

मनुष्योंको सर्वदा माता, पिता और गुरु यह तीनों पूजने योग्य हैं; कारण कि, जो इन तीनोंका आदर नहीं करताहै उसके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं ॥ ३ ॥

प्रयतः कल्य उत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ॥ कुर्वीत प्रणतो भक्त्या गुरूणामभिवादनम् ॥४ ॥ अनुज्ञातस्तु गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ॥ कृत्वा ब्रह्मांजलिं

१ अपनी मातासे प्रथम भिक्षा मांगै, उसमें तो "मातर्भिक्षां मे देहि" ऐसाही वचन कहै, कारण कि "सप्तभिरक्षरैर्मातुः सकाशाद्भिक्षां याचेत" ऐसा सूत्र है; और औरोंसे मांगनेमें यह भवति शब्दपद्धति वाक्य उच्चारण करै तहांकी यह व्यवस्था लिखतेहैं ।

पश्यन्गुरोर्वदनमानतः ॥ ५ ॥ ब्रह्मावसाने प्रारंभे प्रणवं च प्रकीर्तयेत् ॥ अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

प्रत्यूषकालमें (तडकेही) उठकर प्रयत (मलमूत्रादिक करके शुद्ध) हो स्नान और होम करनेके उपरान्त भक्तिपूर्वक गुरुओंको नमस्कार करै ॥ ४ ॥ इसके पीछे गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मांजलिको करके गुरुके मुखको दर्शन कर नम्रभावसे वेदको पढै ॥ ५ ॥ वेद पढनेके प्रारंभ और अन्तमें ॐकारका उच्चारण करै, और अनध्यायके दिन यत्नपूर्वक न पढै ॥ ६ ॥

चतुर्दशीं पंचदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ॥ उल्कापातं महीकंपमाशौचं ग्रामविप्लवम् ॥ ७ ॥ इंद्रप्रयाणं श्वहतं सर्वसंघातनिस्वनम् ॥ वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ नाधीयीताभियुक्तोऽपि यानगो न च नौगतः ॥ देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥ ९ ॥

चौदस, पूर्णमासी, अष्टमी, ग्रहण, उल्का, बिजलीका पात, भूकंप, अशौच, ग्रामका उपद्रव ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाण, (वर्षाऋतुमें धनुषका दर्शन) कुत्तेका मरण, शवके समूहका शब्द, बाजोंका कुलाहल, और युद्ध इन दिनोंमें न पढे ॥ ८ ॥ सवारी, और नावमें, देवमंदिरमें, बामीमें, श्मशानमें और शवके निकट बैठकर किसीके कहनेपर भी न पढै ॥ ९ ॥

भैक्ष्यचर्यां तथा कुर्याद्ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥
गुरुणा चाप्यनुज्ञातः प्राश्नीयात्प्राङ्मुखः शुचिः ॥ १० ॥

और ब्राह्मणोंसे विधिसहित भिक्षा मांगै, फिर पवित्र हो पूर्वकी ओरको मुख करकै गुरुदेवकी आज्ञा लेकर भोजन करै ॥ १० ॥

हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहंकारविवर्जितः ॥ उपास्य पश्चिमां संध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ॥ ११ ॥ अभिवाद्य गुरुं पश्चाद्गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥ गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ॥ १२ ॥

अहंकाररहित होकर गुरुदेवका प्यारा और हितकारी कार्य करै, इसके पीछे सायंकाल होनेपर सन्ध्या और अग्निकी पूजा करके ॥ ११ ॥ पीछे गुरुको नमस्कार कर गुरुके वचनोंका पालन करै, और गुरुसे प्रथम उठै और पीछे सोवै ॥ १२ ॥

मधु मांसांजनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ॥
हिंसां परापवादं च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥ १३ ॥

मधु (सहत आदिक मीठापदार्थ वा मदिरा),मांस, अंजन, श्राद्धका भोजन, गान, नाच, हिंसा, पराई निन्दा और विशेषकर स्त्रियोंकी लीला इन्हें त्यागदे ॥ १३ ॥

मेखलामजिनं दंडं धारयेच्च विशेषतः ॥
अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १४ ॥

१ "अपाञ्जलिः । पाठे ब्रह्माञ्जलिः" ऐसा अमरकोशमें लिखा है, इसका अर्थ यह है कि वेदादिपाठके समय जो अञ्जलि बांधना है उसे ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ।

मूंजआदिकी मेखला (कौंधनी) मृगछाला, दंड, विशेषकर इनको धारण करै, और ब्रह्मचारी सावधानीसे पृथ्वीपर शयन करै ॥ १४ ॥

एवं व्रतं तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ॥
गुरवे च धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वेदके पढनेके समयमें बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसप्रकार व्रत और नियमको करै; और फिर गुरुको धन देकर गुरुकी आज्ञासे स्नान करै अर्थात् गृहस्थाश्रममें वास करै ॥ १५ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

विंदेत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ॥
मातृतः पंचमीं चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अपने गोत्र और प्रवरसे रहित स्त्रीके सहित विधिसहित विवाह करै अथवा जो अपनी माताके वंशज पूर्व पुरुषसे पांचवीं पीढीकी और पिताके पूर्वपुरुषसे सातवीं पीढीकी हो उसके साथ विवाह करै ॥ १ ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥ एभ्यो ऽम्यर्यास्तु चत्वारः पूर्वे ये परिकीर्तिताः ॥ गांधर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस, और पैशाच यह आठप्रकारके विवाह हैं, इनमें आठवां पैशाच अधम है ॥ २ ॥ पूर्व कहेहुए इनमे चार धर्म्य विवाह हैं; और गांधर्व, राक्षस यह दोनों क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥ यज्ञस्थायर्त्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥ ४ ॥ प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥ आसुरो द्रविणादानाद्गांधर्वः समयान्मिथः ॥५॥ राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

जो विवाह बडे यत्न और प्रार्थना करनेसे हो उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं, और जो कन्या यज्ञमें बैठे ऋत्विजको दीजाय उसे दैव विवाह कहते हैं; और वरसे दो गौ लेकर जो कन्या दीजाय उसे आर्षविवाह कहते हैं ॥ ४ ॥ कन्या देनेके निमित्त जहां वरकी प्रार्थना कीजाय उस विवाहको प्राजापत्य कहते हैं; और धन लेकर जिसका विवाह कियाजाय उस विवाहको आसुर कहते हैं; और जो विवाह कन्या और वरकी सम्मतिसे हो उसे गांधर्व विवाह कहते हैं ॥ ५ ॥ युद्धमें हरीहुई कन्याके साथ विवाह करनेका नाम राक्षस विवाह है, और छल करके कन्याके साथ विवाह कियाजाय उस विवाहको पैशाच विवाह कहतेहैं,

---

१ मातृवंशज जिन पुरुषोंमें कन्या पांचवीं पडै उसे लेना यह भी मुन्यन्तरसम्मत नहीं है कारण कि "मातृतः पंचमं त्यक्त्वा पितृतः षष्ठकं त्यजेत्" ऐसा मन्वादिकोंका वचन है, इससे ऊपर हो तो दोष नहीं ।

तिस्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥ एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्याः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥ क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥ वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥

ब्राह्मणके तीन (ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या) स्त्री, और क्षत्रियके दो (क्षत्रिया, वैश्या) स्त्री होतीहैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्रके एक २ ही स्त्री होतीहै, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, और वैश्या यही तीन ब्राह्मणकी भार्या कहीहैं ॥ ७ ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या यह दो भार्या हैं, और वैश्यकी वैश्या और शूद्रकी शूद्राही भार्या होतीहै ॥ ८ ॥

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना ॥
तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥

विपत्तिकाल होनेपरभी द्विजाति शूद्रकी कन्याके साथ विवाह न करै, कारण कि शूद्रकन्यासे उत्पन्न हुई सन्तानका कोई भी प्रायश्चित्त नहीहै, अर्थात् वह पतित होजाताहै ॥९॥

तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥
ध्रुवं शूद्रत्वमायाति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥ १० ॥

तपस्वी, यज्ञशील और सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेपरभी ब्राह्मण शूद्रके त्रयोदशाह श्राद्धकरनेसे निश्चयही शूद्रकी समान होजाताहै ॥ १० ॥

नीयते तु सपिंडत्वं येषां शूद्रः कुलोद्भवः ॥ सर्वे शूद्रत्वमायान्ति यदि स्वर्गजितश्च ते ॥ ११ ॥ सपिंडीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥ श्राद्धद्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणं चार्हेन्न न शूद्रः कथंचन ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्यां विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो शूद्र कुलमें उत्पन्न होकर जिनकी सपिंडी करताहै वह चाहैं स्वर्गके जीतनेवालेभी क्यों नहीं परन्तु सब शूद्र होजातेहैं ॥ ११ ॥ इसकारण कुलमें उत्पन्नहुओंका द्वादशाहका श्राद्ध करकै त्रयोदशाह श्राद्धके दिन अवश्य सपिंडन करे ॥ १२ ॥ शूद्र कभीभी सपिंडी करनेके योग्य नहीहै, इसकारण यत्नपूर्वक शूद्रास्त्रीका त्याग करदे ॥ १३ ॥

पाणिर्ग्राह्यस्सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदेन त्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥

१ पर कहीं २ चारोंवर्णोंकी कन्या लेनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको है, जैसे शबरस्वामीजीको चारोंवर्णकी कन्यामें संतान–

"ब्राह्मण्यामभवद्वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणी राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत् ।
वैश्यायां हरिचंद्रवैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती, शूद्रायाममरः षडेव शबरस्वामिद्विजस्यात्मजाः ॥"

ऐसे लिखे पद्योंसे पाई जातीहै; परंतु यह,–

"तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा"

इसीके अनुमोदक वाक्य है, शबरस्वामी सहस्रशाखा सामवेदको 'अर्थतः पाठतश्च' जानतेथे और वेदोंका तो कहनाही क्या है । "सहस्रशाखा ह्यर्थतो वेद शबरः" ये भाष्यकारका वचन है ।

ब्राह्मणके विवाहकरनेमें ब्राह्मणी हाथको ग्रहण करै, क्षत्रियाशरको, वैश्या प्रतोद (चाबुक) को ग्रहण करै ॥ १४ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥ सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या प्रजावती ॥ १५ ॥ लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च ॥ ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जो स्त्री घरमें चतुर हो, जो पतिव्रता हो, वा जिसके प्राण पतिमें वसतेहों, और जिसके संतान हो वही भार्या है ॥ १५ ॥ भार्याका सर्वदा लालन करता रहै और ताडनाभी करै कारणकि लालना और ताडना करनेसेही वह स्त्री लक्ष्मीकी समान होजाती है इसमें अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥ कंडनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य शांतये ॥ १ ॥ पंचयज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् ॥ पंचयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥

गृहस्थीमें सर्वदा पांच हत्या होती हैं· चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखली, और जलका घडा, इन हत्याओंके पापकी शांतिके निमित्त ॥ १ ॥ गृहस्थी किसीदिनभी पंचयज्ञकर्मका त्याग न करै, कारण कि पांचयज्ञके करनेसे उन हत्याओंका पाप नष्टहोजाता है ॥ २ ॥

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ॥ ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंचयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥ होमो दैवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिंडक्रिया स्मृतः ॥ स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ यह पांचप्रकारके यज्ञ कहेहैं ॥ ३ ॥ हवनको देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवको भूतयज्ञ, पिंडदानको पितृयज्ञ, वेदपाठको ब्रह्मयज्ञ, और अतिथिके पूजनको मनुष्ययज्ञ कहा है ॥ ४ ॥

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ॥ गृहस्थस्य प्रसादेन जीवंत्येते यथाविधि ॥ ५ ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः ॥ ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती यह तीनों द्विजाति गृहस्थीके प्रसादसे यथाविधि (यथार्थसे) जीवन निर्वाह करते हैं ॥ ५ ॥ गृहस्थीही यज्ञ करता है,गृहस्थीही तपस्या करताहै, गृहस्थीही दानदेता है, इसकारण गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥
अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥

जिसप्रकार स्वामीही स्त्रियोंका रक्षक है, और जिसभांति चारों वर्णोंका रक्षक ब्राह्मण है उसीप्रकार गृहस्थीका स्वामी अतिथि कहाहै ॥ ७ ॥

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ॥ नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ ८ ॥ न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः ॥ राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥ न स्नानेन न मौनेन नैवाग्निपरिचर्यया ॥ ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति गुरुपूजनात् ॥ १० ॥ नाग्निशुश्रूषया क्षांत्या स्नानेन विविधेन च ॥ वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥ ११ ॥ न दंडैर्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च ॥ यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १२ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ॥ गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ॥ आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥ १४ ॥

व्रत, उपवास, और अनेकभांति के धर्मकरनेसे स्त्रीको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु केवल एकमात्र पतिके पूजन से स्वर्गको जाती है ॥ ८ ॥ व्रत, उपवास और अनेकप्रकारके यज्ञोंको करकै राजाको स्वर्ग प्राप्त नहींहोता परन्तु एक प्रजाकी रक्षा करनेसेही स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारी स्नान,मौन और नित्य अग्निकी सेवा करनेसेही स्वर्गको नहीं जाता परन्तु एकमात्र गुरुकी सेवा करनेसेही स्वर्गको जाताहै ॥ १० ॥ वानप्रस्थ अग्निकी सेवासे या क्षमासे तथा अनेकप्रकारके स्नानकरनेसे स्वर्गको नहीं जाता, केवल एक भोजनके त्यागकरनेसेही स्वर्गको जाता है ॥ ११॥ संन्यासी दंड, मौन, और शून्य स्थानमें रहकरही सिद्धिको प्राप्त नहीं होता परन्तु योगसेही सर्वोत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १२॥ गृहस्थी दक्षिणावाली यज्ञोंकी और अग्निकी सेवा करनेसे स्वर्गको नहींजाता केवल एक अतिथिके पूजनसेही स्वर्ग प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ इसकारण गृहस्थीको यत्नपूर्वक अतिथिको भोजन और शय्याआदिसे पूजाकरनी उचित है ॥ १४ ॥

सायंप्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शं च पौर्णमासं च जुहुयाद्विधिवत्तथा ॥ १५ ॥ यजेत पशुबंधैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥ त्रैवर्षिकाधिकालस्तु पिबेत्सोममतंद्रितः ॥ १६ ॥ इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः ॥ न भिक्षेत धनं शूद्रात्सर्वं दद्याच्च भिक्षितम् ॥ १७ ॥

विधिपूर्वक सायंकाल और प्रातःकाल में अग्निहोत्र करै और दर्श (अमावस) तथा पूर्णमासीकोभी हवन करै ॥ १५ ॥ अश्वमेधादि यज्ञ और चातुर्मास्य यज्ञोंसे ईश्वरका पूजन करै और तीनवर्षसे अधिक अन्नवाला पुरुष आलस्यरहित होकर सोम (अमृतनामकी एकलता) का पान करै ॥ १६ ॥ थोडे धनवाला ब्राह्मण वैश्वानरी यज्ञ करै, और शूद्रसे धनको कदापि न माँगै और भिक्षाके सम्पूर्ण धनका दान करै ॥ १७ ॥

वृतं तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव च ॥ कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यया च वृणीत तम् ॥ १८ ॥ एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनं तथा ॥ याजयीत सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विद्वान् मनुष्य उस ऋत्विजका त्याग न करै जिसको कि वरा हो परन्तु जन्म और कर्ममें शुद्ध उसी ऋत्विजका वरण करै ॥ १८ ॥ उक्तगुणोंसे युक्त जिसने न्यायसे धनका संचय कियाहो उस मनुष्यको ब्राह्मण सर्वदा यज्ञ करावै; और उसीसे प्रतिग्रह ले ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

गृहस्थी मनुष्य जिससमय देखै कि शरीरका मांस सूखगया है अर्थात् बुढापा आगया है, और, पौत्रको देखले तब वानप्रस्थआश्रमको ग्रहण करनेके निमित्त वनको चलाजाय ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तया वानुगतो वनम् ॥ अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥ २ ॥ यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥ ३ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥ स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च बिभृयात्तथा ॥ ४ ॥ तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं चैव कलेवरम् ॥

स्त्री [यदि वनको जानेके लिये सम्मत न हो] तो उसे पुत्रोंको सौंपकर वनको चलाजाय (और जो वनजानेके लिये सम्मत हो तो) उसको अपनेसाथ लेजाकर अग्निकी सेवा करै; और वनमें उत्पन्नहुए कंद मूल फलादिकाही भोजन करै ॥ २ ॥ वनवासके समय जो अन्न आप भोजन करै उससेही पितर और देवता तथा अतिथिका पूजन करै ॥ ३ ॥ सावधानचित्त होकर ग्रामसे आठ ग्रास लाकर भोजन करै और वेदको पढै तथा जटाओंकोभी धारण करै ॥ ४ ॥ प्रतिदिन तपस्याद्वारा अपनी देहको सुखावै,

आर्द्रवासास्तु हेमंते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥ प्रावृष्याकाशशायी च नक्ताशी च सदा भवेत् ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्षष्ठकालिक एव वा ॥ ६ ॥ वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥ एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शीतकालमें गीले वस्त्रोंको पहरे, और ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निको तपै ॥ ५ ॥ वर्षाकालमें मैदानमें शयन करै और सर्वदा नक्तमेंही भोजन करै, अथवा चौथे कालमें वा छठे कालमें भोजन करै ॥ ६ ॥ अथवा वृक्षों के तलेमेंही अपने समयको व्यतीत करै और ब्रह्मचर्यका पालनकर ब्राह्मण अपने समयको व्यतीतकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ ७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

कृत्वेष्टिं विधिवत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम्[१] ॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सर्ववेदसदक्षिणानामक इष्टि करके अपनी देह तथा अपनी आत्मामेंही अग्निको मानकर ब्राह्मण संन्यासआश्रमको ग्रहण करै ॥ १ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवर्जने ॥ अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥ न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥ न स्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे ॥ ३ ॥

जिस समय ग्रामवासी मनुष्य भोजन करचुके हों, धुआं न उठताहो, मूसलभी चावल निकालकर यथास्थानपर रखदिये हों और रसोई वा जलके पात्रोंका इधर उधर लेनाभी बंद होगयाहो उससमय संन्यासी भिक्षाके लिये जाय, सात घरोंसे भिक्षा मांगे, एकदिन जिन घरोंमेंसे भिक्षा मांगीहो फिर दूसरे दिन उनसे भिक्षा न मांगै ॥ २ ॥ यती भिक्षाके न मिलनेसे दुःखी न हो, जो कुछ मिलजाय उससेही जीविका निर्वाह करै, अन्नको स्वादिष्ठ न करै और न किसीके घरमें भोजन करै ॥ ३ ॥

मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥
तेषां संमार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

यतिकेलिये मिट्टी और तांबेके पात्र कहे गयेह; यह जलसे मांजनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥४॥

कौपीनाच्छादनं वासो बिभृयादव्यथश्चरन् ॥
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायंगृहो मुनिः ॥ ५ ॥

और दुःखसे रहित संन्यासी वनमें निवास करताहुआ कौपीन और गुदड़ीकेही वस्त्रोंको पहरै, शून्यस्थानमें निवास करै,जहां संध्या होजाय वहीं घर मानकर मौन हो निवास करै॥५॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ६ ॥

भलीभांति चारों ओरको देखकर पैर रक्खै; और वस्त्रसे छानकर जल पियै, सत्यवचन बोले और मनसे पवित्र आचरण करै ॥ ६ ॥

सर्वभूतसमो मैत्रः समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ७ ॥ जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥ आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥ अशुचित्वं शरीरस्य प्रियाप्रियविपर्ययः ॥ गर्भवासे च वसतं तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥ ९ ॥

---

१ यहां ऐसाभी अर्थ होसकताहै कि जिस घरसे एक संन्यासी भिक्षा लेगयाहो ऐसा विदित होनेपर उसी घरमें दूसराभी भिक्षा मांगनेको न जाय ।

सम्पूर्ण प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखे, सबका मित्र बनारहै; और सुवर्ण, पत्थर, ढेला इनकोभी एकसाही समझै ध्यान और योगमें रत रहै; ऐसे आचरण करनेवाला भिक्षुक परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जो शरीर जन्ममरण वा मनकी पीडा और देहके रोगसे छूटजाय देवता उसीको ब्राह्मण शरीर कहतेहैं ॥ ८ ॥ शरीरकी अशुद्धतासे प्रियके स्थानपर अप्रिय और अप्रियके स्थानपर प्रिय होजाताहै, और गर्भमें निवास होताहै, इन सब क्लेशोंसे ब्राह्मण जन्मके बिना नहीं छूटता ॥ ९ ॥

जगदेतन्निराक्रंदं निःसारकमनर्थकम् ॥
भोक्तव्यमिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

यह संसार बडा भयंकर है साररहित और अनर्थरूप है, इसमें जो आयेहैं तौ इसको अवश्यही भोगना पडैगा; जो अपनी बुद्धिसे इसको भोगताहै उसकी मुक्ति होजातीहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥

प्राणायामसे दोषोंको और धारणाओंसे सम्पूर्ण पापोंको भस्मकरदे, प्रत्याहारसे संगोंको और ध्यानसे अज्ञानआदि गुणोंको दग्ध करदे ॥ ११ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥ त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ १२ ॥ मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते ॥ संहारश्चेंद्रियाणां च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥ हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥ ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥ १४ ॥

सात व्याहृति और ॐकार शिरोमंत्रसहित गायत्रीके प्राणोंको रोककर तीनवार पढनेको प्राणायाम कहाहै ॥ १२ ॥ धारणाके जाननेवाले मनके रोकनेको धारणा कहतेहैं, इन्द्रियोंके विषयोंसे हटानेको प्रत्याहार कहतेहैं ॥ १३ ॥ और योगाभ्याससे हृदयमें स्थित देवदेव परमात्माका जो दर्शन है, इसको ध्यान कहतेहैं, इसके उपरान्त ध्यानयोगको कहताहूं॥१४॥

हृदिस्था देवतास्सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ हृदि ज्योतींषि सूर्यश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्विष्णुं पश्येद्धृदि स्थितम् ॥ १६ ॥ हृद्यर्कश्चंद्रमाः सूर्यः सोममध्ये हुताशनः ॥ तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥ १७ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तेजोमयं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १८ ॥ वासुदेवस्तमोऽध्यानां पर्णैरपि पिधीयते ॥ अज्ञानपटसंवीतैरिंद्रियैर्विषयेच्छुभिः ॥ १९ ॥ एष वै पुरुषो विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ एष धाता विधाता च पुराणो निष्कलः शिवः ॥ २० ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ यं वै विदित्वा न बिभेति मृत्योर्नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ॥ २१ ॥

हृदयमें सम्पूर्ण देवता और प्राण स्थित हैं, हृदयमेंही सम्पूर्ण तारागण और सूर्य निवास करतेहैं ॥ १५ ॥अपने देहको नीचेकी अरणी और ॐकारको ऊपरकी अरणी करके ध्यानके उपरान्त अभ्यासरूप मथनसे हृदयमें विराजमान विष्णुका दर्शन होताहै ॥ १६ ॥ हृदयमें सूर्य और चन्द्रमा हैं सूर्यचन्द्रके मध्यमें अग्नि है इस अग्निमें सत्त्वपदार्थ स्थित है और सत्त्व पदार्थमें भगवान् अच्युत निवास करतेहैं ॥ १७ ॥ अणुसेभी अणु और महान्सेभी महान् आत्मा इस प्राणीके हृदयरूपी गुहामें स्थित है परमात्माकी कृपासे इस तेजोमय आत्माकी महिमाको कोई वेदान्तविचारसे शोकरहित हुए पुरुषही देखसक्तेहैं ॥ १८ ॥ अज्ञानसे अंधे पुरुषोंको यह सबमें निवास करनेवाले भगवान् पत्तोंसे आच्छादित हैं अर्थात् पत्ते डाली जड चेतन सबमें व्याप्तहैं तथापि अज्ञानी उनको ऐसे नहीं देखसक्ते जैसे मेंहदीमें लाली दिखाई नहीं पडती नहीं तो एक पत्तेमेंही उसका प्रकाश दीखताहै और उन विषयकी इच्छावालोंकी इन्द्रिय अज्ञानरूपी वस्त्रोंसे ढकी रहतीहैं ॥ १९ ॥ और यह पुरुष (हृदयमें शयन करनेवाला) विष्णु प्रकट और अप्रकट और नित्य हैं; और यही धाता, विधाता, पुरातन, कलारहित और कल्याणस्वरूप हैं ॥ २० ॥ इनको मैं बडा पुरुष और सूर्यकी समान तेजस्वी तमोगुणसे परे जानताहूं; इनको जानकर पुरुष मृत्युसेभी नहीं डरता और इसके अतिरिक्त मोक्षके लिये दूसरा कोई मार्ग नहींहै ॥ २१ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥ पंचैतानि विजानीयान्महाभूतानि पंडितः ॥ २२ ॥ चक्षुः श्रोत्रं स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥ बुद्धींद्रियाणि जानीयात्पंचेमानि शरीरके ॥ २३ ॥ रूपं शब्दस्तथा स्पर्शो रसो गंधस्तथैव च ॥ इंद्रियार्थान्विजानीयात्पंचैव सततं बुधः ॥ २४ ॥ हस्तौ पादावुपस्थं च जिह्वा पायुस्तथैव च ॥ कर्मेंद्रियाणि पंचैव नित्यमस्मिञ्छरीरके ॥ २५॥ मनो बुद्धिस्तथैवात्मा ह्यव्यक्तं च तथैव च ॥ इंद्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि कथितानि च ॥ २६ ॥ चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानि कथितानि च ॥ तथात्मानं तद्व्यतीतं पुरुषं पंचविंशकम् ॥ २७ ॥ यं तु ज्ञात्वा विमुच्यंते ये जनाः साधुवृत्तयः ॥ तदिदं परमं गुह्यमेतदक्षरमुत्तमम् ॥ २८ ॥ अशब्दरसमस्पर्शमरूपं गंधवर्जितम् ॥ निर्दुःखमसुखं शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २९ ॥ अजं निरंजनं शांतमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ॥ अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३० ॥

और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पंडित जन इन पांचोंको महाभूत जानै ॥ २२ ॥ १ नेत्र, २ कान, ३ त्वचा, ४ रसना (जिह्वाके अग्रभागमें रहतीहै) और ५ घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय शरीरमें रहतीहैं ॥ २३ ॥ रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, इन पांचों इन्द्रियोंके अर्थ पंडितजनोंको अवश्य जानना उचित है ॥ २४ ॥ हाथ, पांव, लिंग, जिह्वा, गुदा यह पांच कर्मेन्द्रिय शरीरमें हैं ॥ २५ ॥ मन, बुद्धि, आत्मा, अव्यक्त यह चार तत्त्व इन्द्रियोंसे परे हैं ॥ २६ ॥ यह चौवीस तत्त्व हैं और आत्मा जो पुरुष (ईश्वर) है वह पचीसमा है ॥ २७ ॥ जिसको जानकर साधुस्वभाव मनुष्य मुक्त होजातेहैं

सो यह परम गुप्त अविनाशी और सर्वोत्तम है ॥ २८ ॥ उस आत्मामें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह कुछ नहीं है; और दुःख सुख यहभी उसमें कुछ नहीं है वह विष्णुका परमपद है॥२९॥ जो जन्म और कर्मोंकी वासनासे रहित है और जो शांत, अप्रत्यक्ष, नित्य, अविनाशी और जो आदि और अंतसेभी रहित है और जो ब्रह्मरूप है वही विष्णुका परम पद है ॥ ३० ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबंधनः ॥
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यका विज्ञानही सारथी है, और मनही प्रग्रह (रस्सी) अर्थात् इन्द्रियरूपी घोडोंकी लगाम है वही संसाररूपमार्गसे परे उस विष्णुके परम पदको प्राप्तहोता है ॥ ३१ ॥

वालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥
तस्यापि शतमाद्भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥ ३२ ॥

वाल (केश) के अग्रभागके सहस्रटुकडे कियेजायँ उनमेंसे एक टुकडेका जो सौमा भाग है उससेभी जीव सूक्ष्म है ॥ ३२ ॥

इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा तथा परः ॥ ३३ ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ३४ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविकलः सदा ॥ दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंसे परे अर्थ (विषय) हैं और अर्थसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धि से परे आत्मा महत्तत्त्व है ॥ ३३ ॥ महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त प्रधान है अव्यक्तसे परे पुरुष है और पुरुष (ब्रह्म) से परे कुछ नहीं है; किन्तु वही उत्तम काष्ठा और गति है ॥ ३४ ॥ इन सम्पूर्ण प्राणियोंमें वह सर्वदा अविकल एकसा स्थित रहता है, और सूक्ष्म बुद्धिवाले मनुष्य उत्तम और सूक्ष्म बुद्धिसे उस ब्रह्मका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगं मलकर्षणम् ॥
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मलकर्षण, क्रियास्नान, यह छैः प्रकारका स्नान कहाहै ॥ १ ॥

अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु ॥ प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ चंडालशवभूयाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ॥ स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥ ३ ॥ पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ॥ तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ जमु-

कामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितॄन् ॥ स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियांगं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥ मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥ मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥

स्नानके विनाकिये मनुष्य जप, अग्निहोत्रआदिके करनेका अधिकारी नहीं होता, इसकारण प्रातःकालका स्नान नित्यस्नान कहाहै ॥ २ ॥ चांडाल, शव, पूय, राध, और रजस्वला स्त्री इनके स्पर्श करनेके उपरान्त जो स्नान कियाजाताहै उस स्नानको नैमित्तिक कहाहै ॥ ३ ॥ पुष्यनक्षत्रआदि समयमें जो ज्योतिषशास्त्रमें कहाहुआ स्नान है उस स्नानको काम्य कहाहै, और निष्काम मनुष्य उस स्नानको न करै ॥ ४ ॥ पवित्रमंत्रोंके जपनेके निमित्त या जो देवताओंकी पूजाके निमित्त स्नान कियाजाताहै उस स्नानको क्रियांग कहाहै ॥ ५ ॥ जो स्नान मैलको दूरकरनेके निमित्त उबटनाआदि लगाकर कियाजाताहै उस स्नानको मलकर्षण कहाहै; कारण कि उस स्नान करनेमें मनुष्यकी प्रवृत्ति मैल दूरकरनेके लिये है अन्यथा नहीं ॥ ६ ॥

सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥ ७ ॥ तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ॥ नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियांगं मलकर्षणम् ॥ ८ ॥

नदी, देवताओंके खोदेहुए कुंड, तीर्थ, छोटी २ नदी, इनमें जो स्नान कियाजाताहै उसे क्रियास्नान कहाहै, कारण कि इनमें स्नानकरना उत्तम कर्म है ॥ ७ ॥ और पूर्वोक्त नदीआदिकोंमें ही काम्य स्नान भलीभांतिसे करना योग्य है और नित्य, नैमित्तिक, क्रियांग और मलकर्षण यह चारप्रकारके स्नान हैं ॥ ८ ॥

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥ स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥ ९ ॥ शरीरशुद्धिविज्ञाता न तु स्नानफलं लभेत् ॥ अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यंति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥

तीर्थके अभावमें गरमजलसे और पूर्वोक्त नदीआदिसेभी भिन्न २ जलसे स्नानकरना कहाहै; और अग्निसे तपाये तथा अन्य मनुष्यके निकालेहुए जलसे जो स्नान है ॥ ९ ॥ वह शरीरकी शुद्धिके निमित्त है, उस स्नानका फल नहीं मिलता कारण कि तीर्थस्नानसे फलकी प्राप्ति होतीहै और जलोंसे गात्रकी शुद्धि होतीहै ॥ १० ॥

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥ ११ ॥ तीर्थं प्राप्यानुषंगेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् ॥ स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलेन तु ॥ १२ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ॥ परास्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥ १३ ॥ सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ॥ नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥ १४ ॥

देवताओंके खोदे तालाव,तीर्थ,और नदी इनमें स्नान करनाही कर्म है, इसकारण स्नानकरनेसे पुण्यफल मिलताहै ॥११॥ जो अकस्मात् तीर्थमें जाकर स्नान कियाजाता है वह स्नान फलका देनेवाला होगा, तीर्थयात्राका फल नहीं होगा ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंने सम्पूर्ण तीर्थोंका मनुष्योंके पापोंका नाशकरनेवाला और परस्परमें अनपेक्ष कहा है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण झरने, तालाव, पर्वत, नदी यह सभी पवित्र हैं और विशेषकर श्रीगंगाजी पवित्र हैं ॥ १४ ॥

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥ विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १५ ॥ नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ॥ यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति यह अपने वशमें हैं वही तीर्थोंके फलको भोगताहै ॥ १५ ॥ जो मनुष्य पापी हैं उनके पापोंका नाश होजाताहै शुद्ध मनवाले मनुष्योंको तीर्थमें जानेसे इच्छानुसार फल मिलताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

क्रियास्नानं तु वक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ॥
मृद्भिरद्भिश्च कर्त्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥ १ ॥

इसके उपरान्त क्रियास्नानकी विधिको कहताहूं, प्रथम मिट्टी और जलसे विधिपूर्वक शौचकरै ॥ १ ॥

जले निमग्न उन्मज्ज्य उपस्पृश्य यथाविधि ॥ जलस्यावाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥ २ ॥ प्रपद्ये वरुणं देवमंभसां पतिमूर्जितम् ॥ याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ ३ ॥ तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाघविनिषूदनम् ॥ सान्निध्यमस्मिन्सततोये भज त्वं मदनुग्रहात् ॥ ४ ॥ रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वानप्सुसदस्तथा ॥ सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्ये प्रणतः स्थितः ॥ ५ ॥ देवमप्सुसदं वह्निं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ॥ अपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥ ६ ॥ रुद्रश्चाग्निश्च सर्पाश्च वरुणश्चाप एव च ॥ शमयंत्वाशु मे पापं मां रक्षंतु च सर्वशः ॥ ७ ॥ इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं जले ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ८ ॥ हिरण्यवर्णेति वदेदाभिश्च तिसृभिस्तथा ॥ शन्नोदेवीति च तथा शन्न आपस्तथैव च ॥ ९ ॥ इदमापः प्रवहत तथा मंत्रमुदीरयेत् ॥ एवं मंत्रान्समुच्चार्य छंदांसि ऋषिदेवताः ॥ १० ॥ अघमर्षणसूक्तस्य संस्मरन्प्रयतः सदा ॥ छंद आनुष्टुभं तस्य ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ ११ ॥ देवता भाववृत्तन्तु पापघ्नस्य प्रकीर्तितः ॥ ततोंऽभसि निमग्नस्तु त्रिः पठेदघमर्षणम् ॥ १२ ॥

फिर जलमें गोता लगाकर बाहर निकल विधिसहित आचमनकरके यथाविधि जलका आवाहन करै, इसके आगे जलका आवाहन कहताहूं कि ॥ २ ॥ "जलके पति वरुणदेवजीकी मैं शरण हूं हे वरुण ! जिस तीर्थकी मैं अभिलाषा करूं सम्पूर्ण पापोंके दूरकरनेके निमित्त तुम मुझे उसीको दो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण पापोंके दूरकरनेवाले तीर्थका मैं आवाहन करताहूं, हे तीर्थ ! इस उत्तम जलसे मेरे ऊपर कृपाकर मुझे संनिधिकरो ॥ ४ ॥ जलमें स्थित रुद्रोंको और अन्य जलके निवासियोंको अमुकनामवाला मैं नमस्कारकरकै उनकी शरण हूं ॥ ५ ॥ जलके निवासी और सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले अग्निदेवताकी भी मैं शरण हूं ॥ ६ ॥ रुद्र, अग्नि, सर्प, वरुण, और जल यह शीघ्रही मेरे पापोंका नाशकरैं और मेरी चारों ओरसे रक्षाकरैं ॥ ७ ॥ इस भांति कहकर फिर जलमें "आपो हि ष्ठा०" इत्यादि तीनऋचाओंके क्रमसे भलीभांति मार्जनकरै ॥ ८ ॥ "हिरण्यवर्णा० अग्निश्च० शन्नो देवी०" और "शन्न आपः०" इन मन्त्रोंको पढै ॥ ९ ॥ और "इदमापः०" इस मन्त्रको पढै इसप्रकार मंत्रोंका उच्चारण कर छन्द ऋषि और जो देवता अघमर्षणसूक्तके हैं उनका सावधानीसे सर्वदा स्मरण करै, अघमर्षणसूक्तका छन्द अनुष्टुप् है और ऋषि अघमर्षण है ॥१०॥ ॥११॥ पापके नाशकरनेवाले अघमर्षणका भाववृत्त देवता कहाहै फिर जलमें गोता लगाकर तीनवार अघमर्षण मंत्रको पढै ॥ १२ ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापप्रणाशनः ॥
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥

जिस भांति यज्ञोंका राजा अश्वमेध सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है उसी भांति अघमर्षणसूक्तभी सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ १३ ॥

अनेन स्नात्वा अम्मध्ये स्नातवान्धौतवाससा ॥ परिवर्तितवासास्तु तीर्थतीरमुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥ उदकस्याप्रदानाच्च स्नानशाटीं न पीडयेत् ॥ अनेन विधिना स्नातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस विधिके अनुसार जलमें स्नान करकै गीलेवस्त्रको निकालकर दूसरे वस्त्रको पहरे इसके पीछे किनारेपर आकर आचमन करै ॥ १४ ॥ और विना तर्पणकिये धोतीको न धोवै, इस विधिके अनुसार स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ॥

इसके उपरान्त शुभ आचमनकी क्रियाको कहताहूं.

कायं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥ अंगुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः ॥ अंगुल्यग्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ॥ २ ॥ प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नीयाज्जलं द्विजः ॥ द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्खान्यद्भिः

समुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥ हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥ तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ४ ॥

(दहिने) हाथकी कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें बुद्धिमानोंनें काय (ब्राह्म) तीर्थ कहाहै ॥ १ ॥ अंगूठेकी जडमें प्राजापत्य तीर्थहै, और अंगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ और तर्जनीकी जडमें पितृतीर्थ पंडितोंने कहाहै ॥ २ ॥ ब्राह्मण प्राजापत्य तीर्थसे तीनवार जलपिये, फिर दोवार मुखको पोंछे, और पीछे कानआदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श भलीभांतिसे करै ॥ ३ ॥ ब्राह्मण हृदयतक आचमनके जलको पहुंचनेसे शुद्ध होतेहैं, क्षत्रिय कंठतक आचमनके जलके जानेसे शुद्ध होतेहैं, वैश्य तलुवेतक आचमनके जल जानेसे शुद्ध होतेहैं; और शूद्रकी शुद्धि मुखपर जलके स्पर्श करनेंसेही होजातीहै ॥ ४ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ॥ उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५ ॥ अद्भिः समुद्धताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ वह्निना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥

पूर्व या उत्तरकी ओरको मुखकर मनुष्य सावधान होकर घुटनोंके भीतर हाथकर दिशाओंको न देखै ॥ ५ ॥ और कुएसे निकाले तथा झाग और बुल्बुलेरहित जलसे आचमन करै वह आचमनका जल गरम और खारीभी न हो ॥ ६ ॥

तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥ अंगुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥ ७ ॥ अंगुष्ठानामिकायोगे श्रवणौ समुपस्पृशेत् ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कंधद्वयं ततः ॥ ८ ॥ सर्वासामेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा ॥ संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥ ९ ॥

अंगूठा और तर्जनी इन दोनोंसे नासिकाके दोनों छिद्रोंका स्पर्श करै; बीचकी अंगुली और अंगूठेसे दोनों नेत्रोंको छुये ॥ ७ ॥ अंगूठा और अनामिका इन दोनोंसे कानोंका स्पर्श करै कनिष्ठा और अंगूठेके योगसे दोनों कंधोंका स्पर्श करै ॥ ८ ॥ फिर पांचो उंगलियोंके योगसे, नाभि, हृदय, और मस्तक इनका स्पर्शकरै; यह आचमनकी विधि कहीहै॥ ९ ॥

त्रिः प्राश्नीयाद्यदंभस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवंतीत्यनुशुश्रुम ॥ १० ॥ गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥ नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥ ११ ॥ स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ॥ कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ ॥ १२ ॥ स्कंधयोः स्पर्शनादस्य प्रीयंते सर्वदेवताः ॥ मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥

आचमनके समय जो तीनवार जलपान कियाजाताहै उससे ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र इत्यादि देवता प्रसन्न होतेहैं, यह हमने सुनाहै ॥ १० ॥ मुखमार्जन करनेंसे गंगा और यमुना यह दोनों प्रसन्न होतीहैं; दोनों नासिकाके पुट स्पर्श करनेसे दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होते ॥ ११ ॥ दोनों नेत्रोंके स्पर्श करनेसे चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होतेहैं; और दोनों कानोंके स्पर्श करनेसे वायु और अग्नि प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ दोनों कंधोंके स्पर्श करनेसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होतेहैं, और मस्तकके स्पर्श करनेसे परमेश्वर प्रसन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः ॥ अप्रक्षालितपादस्तु आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥ बहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः ॥ सोपानत्कस्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

यज्ञोपवीतके बिना पहरे बिना चोटीमें गांठ लगाये और बिना पैर धोये मनुष्य आचमन करलेनेपरभी अशुद्ध रहताहै ॥ १४ ॥ दोनों घुटनोंसे हाथ बाहर रखकर हाथमें लियेहुए जलसे जूता पहरेहुए खडाहोकर जो आचमन करताहै वह अशुद्ध रहताहै ॥ १५ ॥

आचम्य च पुरा प्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ॥ उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मतः ॥ १६ ॥ अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम् ॥ १७ ॥

आचमनके पीछे तीर्थका मार्जन करै फिर धर्मपूर्वक इस मंत्रसे आचमन करै ॥ १६ ॥ हेजल ! सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें व्यापक यज्ञ, वषट्कार, ज्योति, रस अमृत आदिरूपसे ! तुम विचरतेहो ॥ १७ ॥

आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ॥ उदुत्यंजातवेदसमिति मंत्रेण निःक्षिपेत् ॥ १८ ॥ एष एव विधिः प्रोक्तः संध्यायाश्च द्विजातिषु ॥

फिर आचमन करनेके उपरान्त सूर्यके सन्मुखको मुखकर "उदुत्यं जातवेदसं०" इस मंत्रसे जलकी अंजुलि दे ॥ १८ ॥ यही नियम द्विजातियोंकी दोनों समयकी संध्याओंमें कहाहै;

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥ १९ ॥ ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वाथ शक्तितः ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ २० ॥

प्रातःकालकी सन्ध्यामें खडा होकर जपकरै, और सायंकालकी सन्ध्यामें बैठकर जपकरै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त पवित्र मंत्रोंका अपनी शक्तिके अनुसार जपकरै, ऋषि दीर्घ संध्याकी उपासना करतेथे इसी कारणसे उनकी आयु दीर्घ होतीथी ॥ २० ॥

सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥
येषां जपैश्च होमैश्च पूयंते मानवाः सदा ॥ २१ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इसके आगे वेदमें जो पवित्र मंत्र हैं उन सबका वर्णन करताहूं इन सब मंत्रोंके जप और हवनसे मनुष्य सर्वदा पवित्र होतेहैं ॥ २१ ॥

इति श्रीशङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अघमर्षणं देववृत्तं शुद्धवत्यश्च तत्समाः ॥ कूष्मांड्यः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥ १ ॥ अभीष्टद्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतीस्तथा ॥ भारुंडानि च सामानि गायत्री चौशनं तथा ॥ २ ॥ पुरुषवृत्तं च भार्षं च तथा सोमव्रतानि च॥ अब्लिंगं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तममृतं तथा ॥३॥ शतरुद्रियमथर्वशिर-

त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ॥ गोसूक्तमश्वसूक्तं च इंद्रसूक्तं च सामनी ॥ ४ ॥ त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वामदेवव्रतं च ॥ एतानि गीतानि पुनंति जंतूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अघमर्षणसूक्त, दैवबृत्तसूक्त, शुद्धवतीऋचा, कूष्मांडीऋचा, पवमानसूक्त और गायत्री॥१॥ अभीष्ट द्रुपदा, स्तोम,व्याहृती, भारुंडसामवेद गायत्री और उशनामंत्र ॥ २॥ पुरुषवृत्त, भाष, सोमव्रत, जलके मन्त्र, बृहस्पतिके मंत्र, वाक्सूक्त, अमृत, ॥३॥ शतरुद्री,अथर्वशिर, त्रिसुपर्ण, महाव्रत, गोसूक्त, अश्वसूक्त, दोनों सामवेद ॥ ४ ॥ तीनों आज्यदोह, रथंतर, अग्निव्रत, वामदेवव्रत, यह अघमर्षण आदि गानकरनेंसे जीवोंको पवित्र करतेहैं; और इच्छानुसार इनका जपकरनेसे मनुष्य उसी जातिमें प्रसिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि एभ्यस्सावित्री विशिष्यते ॥ नास्त्यघमर्षणात्परमंतर्जलेन सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥ कुशशय्यामासीनः कुशोत्तरीयो वा कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमानादाय मालां कुर्यात् ॥ कुशग्रंथिं कृत्वा वामहस्तोपायनैर्वा गणयेत् आदौ देवतामार्षं छंदः स्मरेत् ततः सप्रणवसव्याहृतिकामादावंते च शिरसा गायत्रीमावर्तयेत् ॥ अथास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छंदः ॐकारप्रणवाद्याः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ॥ भवंति चात्र श्लोकाः ॥

वेदमें यह सब मन्त्र पवित्र कहेहैं, इन सम्पूर्ण मन्त्रोंमें गायत्री प्रधान है अघमर्षण मन्त्रसे श्रेष्ठ जलके भीतरे जपोंमें दूसरा मन्त्र नहींहै; और गायत्रीके समान दूसरा जप नहींहै, व्याहृतियोंके समान होम नहींहै; कुशासनपर बैठकर वा ओढकर कुशाकी पवित्रियोंको धारणकर पूर्वको वा सूर्यके सन्मुख जपकी मालाको ले देवताका ध्यान करताहुआ मनुष्य जपकरै, सुवर्ण, मणि, मोती, स्फटिक, कमलगट्टे, बहडेके फल इनमेंसे किसियोंकी जपके लिये माला बनावै; और कुशाकी गांठोंसे या बांयें हाथकी अंगुलियोंसे गिनतीकरै, फिर प्रथम मन्त्रके देवता ऋषि छन्द इनका स्मरण करै; और फिर आदि और अन्तमें शिरमंत्रसहित गायत्रीका जपकरै; और गायत्रीका देवता सूर्य, ऋषि विश्वामित्र और गायत्रीही छन्द है; और ॐकारका प्रणव और ॐ भूः ॐभुवः ॐस्वः ॐ महः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं यह सात व्याहृति, "ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्" इस मन्त्रको शिर कहतेहैं; और यही श्लोकोंमेंभी कहाहै;

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥
ये जपंति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ १ ॥

जो मनुष्य सर्वदा व्याहृति, प्रणव, शिर इनके साथ गायत्रीका जप करताहै वह कभी भय नहीं पाता ॥ १ ॥

शतजप्ता तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी ॥ सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥ २ ॥ दशसाहस्रजप्ता तु सर्वकल्मषनाशिनी ॥ सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यान्न संशयः ॥ ३ ॥

सौवार गायत्रीका जपकरनेसे दिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं और हजारवार गायत्रीका जपकरनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ २ ॥ जो दशहजारवार गायत्रीका जपकरताहै उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं,सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण, ब्रह्महत्याकरनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरनेवाला, मदिरा पीनेवाला यह सब एकलाख गायत्रीके जपकरनेसे निस्सन्देह शुद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥

जो मनुष्य स्नानके समय सावधान होकर तीन प्राणायाम करताहै वह दिनमें कियेहुए पापोंसे उसीसमय छूटजाताहै ॥ ४ ॥

सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनंत्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥

व्याहृति और ॐकारसहित सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करनेसे एक महीनेमें मनुष्य गर्भहत्याके पापसेभी मुक्त होजाताहै ॥ ५ ॥

हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥ सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ॥ ६ ॥ शांतिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥ हंतुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ॥ ७ ॥ श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः कांचनकामुकः ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ॥ ८ ॥ घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ॥ गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ॥ १० ॥

और जो हवन गायत्रीसे कियाजाताहै वह सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्णकरनेवाला है; भक्तिप्रिय और वरकी देनेवाली गायत्री सम्पूर्ण पापोंको नाशकरतीहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य शांतिकी अभिलाषाकरै वह पवित्र होकर गायत्रीका हवन चावलोंसे करै; और जो अकालमृत्युसे बचनेकी इच्छाकरै वह घीसे हवन करै ॥ ७ ॥ और लक्ष्मीकी इच्छाकरनेवाले कमलोंसे हवनकरै. और सुवर्णकी इच्छाकरनेवाला बेलोंसे गायत्रीका हवनकरै, ब्रह्मतेजकी इच्छा करनेवाला दूधसे हवन करै ॥ ८ ॥ और भलीभांति सावधानीसे घी मिलेहुए तिलोंद्वारा

दशहजार गायत्रीके हवन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥ और पापात्मा मनुष्य लाख गायत्रीके हवनकरनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै तथा मनवांछितलोकमें जन्मलेकर अभिलषित फलको पाताहै ॥ १० ॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥ गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ११ ॥ हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥ तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२ ॥

वेदोंकी माता गायत्री है; और पापोंकी नाशकरनेवाली है; इस लोक और स्वर्गमें गायत्रीसे परे पवित्रकरनेवाला दूसरा नहींहै ॥ ११ ॥ जो मनुष्य नरकरूपी समुद्रमें पडेहैं उनका हाथ पकडकर रक्षाकरनेवाली गायत्रीही है; इसकारण नियमपूर्वक शुद्धतासे ब्राह्मण नित्य गायत्रीका अभ्यासकरै ॥ १२ ॥

गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥ तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिंदुरिव पुष्करे ॥ १३ ॥ जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥

गायत्रीमें तत्पर ब्राह्मणको हव्य और कव्यसे जिमावै, कारण कि उस ब्राह्मणमें पाप इस भांति नहीं टिकते कि जैसे कमलके पत्तेके ऊपर जलकी बूंद नहीं ठहरती ॥ १३ ॥ ब्राह्मण गायत्रीके जपकरनेसेही सिद्ध होजाताहै, इसमें कुछ संदेह नहीं,वह ब्राह्मण चाहै अन्य कर्म करै वा न करै परन्तु तौ भी उसको मैत्र कहतेहैं ॥ १४ ॥

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥
नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५ ॥

उपांशु जप सौगुना फलका देनेवाला है; और मानसजप हजारगुणा फल देताहै, विशेष करके गायत्रीका जप ऊँचे स्वरसे बुद्धिमान् मनुष्य न करै, और जप भी ऊँचे स्वरसे न करै ॥ १५ ॥

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥ गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं च विंदति ॥ १६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ॥ गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य गायत्रीके जपमें तत्पर है वह स्वर्गको प्राप्तहोता है; और गायत्रीके जपकरनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ इसकारण सम्पूर्ण यत्नके साथ स्नान करनेके पीछे पवित्र चित्त होकर मनको रोक सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाली गायत्री का जप करै ॥ १७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥ अथ तर्पणविधिः ॥ ॐ भगवंतं शेषं तर्पयामि । कालाग्निरुद्रं तु ततो रुक्मभौमं

तथैव च ॥ श्वेतभौमं ततः प्रोक्तं पातालानां च सप्तमम् ॥ १॥ जंबूद्वीपं ततः प्रोक्तं शाकद्वीपं ततः परम् ॥ गोमेदपुष्करे तद्वच्छाकाख्यं च ततः परम्॥२॥ शार्वरं ततः स्वधामानं ततः हिरण्यरोमाणं ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥ लवणोदं ततः दधिमण्डोदं ततः सुरोदं ततः घृतोदं ततः क्षीरोदं ततः इक्षूद ततः स्वादूदं ततः इति सप्तसमुद्रकम् प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदकांजलीन् दद्यात् पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥ अथ कृतापसव्यो दक्षिणामुखोऽन्तर्जानुः पित्र्येण पितॄणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुंबरेण खड्गपात्रेणान्यपात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात्॥ पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय मात्रे मातामहाय प्रमातामहाय मात्रे मातामह्यै प्रमातामह्यै सप्तमान्पुरुषान् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात् पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरूणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात ॥ मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबंधिबांधवानां कुर्यात्॥ तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ भवंति चात्र श्लोकाः

स्नानकरनेके उपरान्त गायत्रीको जपकर पूर्वकी ओरको मुखकरके देवतीर्थसे देवताओंका जलसे तर्पणकरै, अब तर्पणकी विधि कहतेहैं ॐ भगवान् शेषको तृप्तकरताहूं फिर काल अग्नि रुद्र, रुक्म, भौम, श्वेतभौम, और सातों पाताल क्रमानुसार इनको तृप्तकरै ॥ १ ॥ इसके पीछे जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, गोमेद, पुष्कर और शाकद्वीप इनको तृप्तकरै ॥ २ ॥ फिर शार्वर, स्वधामा, हिरण्यरोमा, कल्पतक स्थित रहनेवाले लोक इनको तृप्तकरै; फिर लवणोद, दधिमण्डोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, इक्षूद्र, स्वादूद इन सात समुद्रोंको तृप्तकरै;फिर पुरुषसूक्त को पढकर परमेश्वरको जलकी अंजुली दे; फिर भक्तिसहित पुष्प निवेदनकर अपसव्य हो दक्षिणको मुखकिये घुटनोंके भीतर हाथकर पितृतीर्थसे श्रद्धाके अनुसार यथेच्छ जल पितरों को दे, सोनेके पात्र वा चाँदी, गूलर या गैंडे अथवा किसी अन्यके पात्रसे पितृतीर्थका स्पर्शकर जलसे पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, प्रमातामह, माता, मातामही, प्रमातामही सात पुरुष पिताके पक्षमें जिनका नाम जानें पितृपक्षोंका तर्पण करै फिर गुरु और मातृपक्षकोंका तर्पणकरै, फिर सम्बन्धी बांधवोंका तर्पणकरै; और इसीभांति तर्पणकरनेके विषयमें श्लोकभी हैं ॥

विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च॥ विना दर्भैश्च मंत्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ १ ॥ सौवर्णरजताभ्यां च खड्गेनौदुंबरेण च ॥ दत्तमक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ २ ॥ हेम्ना तु सह यद्दत्तं क्षीरेण मधुना सह ॥ तदप्यक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ ३ ॥

चांदी, सोना, तांबा, तिल, कुशा और मंत्र इनके विना दियाहुआ जल पितरोंको नहीं पहुंचताहै ॥ १ ॥ सुवर्ण, चाँदी, गैंडा, गूलर इनके पात्रोंसे जो मनुष्य पितरोंको जल देता है उसे अक्षय फल मिलताहै ॥ २ ॥ सुवर्ण, दूध, सहत इन सबको मिलाकर जो तिलजल पितरोंको दिया जाताहै; वह भी अक्षय होताहै ॥ ३ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥ स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितॄणां तु तिलांभसा ॥ पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितॄंस्तथा ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अन्न इत्यादि द्रव्य, जल वा दूध, मूल फल इनसे पितरोंको प्रतिदिन प्रसन्न रक्खै ॥ ४ ॥ जो मनुष्य स्नानकरनेके उपरान्त तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करताहै, वह पितृयज्ञके फलको पाताहै, और उसके पितर भी तृप्त होतेहैं ॥ ५ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥
पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य देवकार्यके विषयमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करै, पितृकार्य उपस्थित होनेपर गुप्तरीतिसे परीक्षाकरै ॥ १ ॥

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ॥ ऊनांगा अतिरिक्तांगा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ २ ॥ गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ॥ गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३ ॥ अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ॥ शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण निषिद्ध कर्मको करताहै; अथवा कठोरचित्त है, वा जिसकी देहका अंग न्यून और अधिक है, वह पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गुरुके प्रतिकूल आचरण करताहै; और जो वेदको उखाडताहै, अर्थात् वेदोक्त कर्मको नहीं जानता, और जिसने गुरुओंका त्यागकराहै वहभी पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ ३ ॥ जो अनध्यायके दिन पढताहै जो शौच आचारसे हीन है; और जो शूद्रके अन्नसे पुष्ट होताहै, वहभी पंक्तिको दूषितकरनेवाला है ॥ ४ ॥

षडंगविन्त्रिसुपर्णो बहूवृचो ज्येष्ठसामगः ॥ त्रिणाचिकेतः पंचाग्निर्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥ ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ॥ ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ॥ अथर्वांगिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥ नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण वेदके छैहों अंगोंको जानताहो, और जो त्रिसुपर्णको जानताहो, जिसने बहुतसी ऋचा पढीहों, वा सामवेदको गाताहो, जिसने त्रिणाचिकेत पढाहो, जो पंचाग्निको तापताहो वह ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ५ ॥ जिसकी सन्तान वेदके अनुसारहो जो वेदोक्तका दाता हो, और जिसका आगेका समयभी वेदके अनुसार हो वह ब्राह्मणभी पक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ६ ॥ जो ऋग्वेद और सामवेदके पारको जानताहो; और

जिसने अथर्व आंगिरसवेदका भाग पढलियाहो वह ब्राह्मणभी पंक्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ ७ ॥ जो नित्य योगमार्गमें तत्पर है, जो ज्ञानी है, जो ढेले पत्थर और सुवर्णको समान देखताहै, जो ध्यानशील है; और जो पंडित है वह ब्राह्मणभी पंक्तिका पवित्रकरनेवाला है ॥ ८ ॥

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ त्रींश्च पित्र्ये वोदङ्मुखांस्तथा ॥ भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥ ९ ॥ भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ॥

देवकर्ममें पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मणोंको और पितृकर्ममें उत्तराभिमुख तीन अथवा अनेक या दोनों जगह एक २ ब्राह्मणकोही भोजन करावै ॥ ९ ॥ या पंक्तिके पवित्र करनेवाले एकही ब्राह्मणको जिमावै;

दैवें कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्वह्नौ तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥ उच्छिष्टसन्निधौ कार्यं पिंडनिर्वपणं बुधैः ॥ अभावे च तथा कार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥

और दैवकर्ममें नैवेद्य बनाकर अग्निमें हवनकरै ॥ १० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उच्छिष्टके निकटही पिंडदान करै; और किसीकारणसे जो पिंडदानका अभाव हो तौ विधिसहित अग्निहोत्र करै ॥ ११ ॥

श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ॥ उंछमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पंडितः ॥ भोजयेद्विविधान्विप्रान्गंधमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥ यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा ॥ अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिंडमूले कदाचन ॥ १४ ॥

यत्नसहित श्राद्ध करकै शीघ्रतापूर्वक क्रोधसे रहित मनुष्य उंछ अन्न ब्राह्मणोंको श्रद्धासे दान करै ॥ १२ ॥ फल मूल तथा व्रतवालोंका आसन इनपर न बैठालकर अर्थात् शुद्ध ऊन आदिके आसन पर बैठाकर गंध, मालासे उज्ज्वल विविध ब्राह्मणोंको भोजन करावै॥१३॥ अपने घरमें जो कुछ भक्ष्य वा भोज्य वस्तु बनाई हो उसको पिंडोंके पास विना दिये कभी भोजन न करै ॥ १४ ॥

उग्रगंधान्यगंधानि चैत्यवृक्षभवानि च ॥ पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ १५ ॥ तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥ ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥ १६ ॥ दशां विवर्तयेत्प्राज्ञो यद्यनाहतवस्त्रजा ॥ घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥ धूपार्थं गुग्गुलं दद्याद्घृतयुक्तं मधूत्कटम् ॥ चंदनं च तथा दद्यात्पिष्ट्वा च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥

अधिक सुगंधिवाले वा गंधहीन, और लाल रंगके फूल इनको त्याग दे ॥ १५ ॥ यदि लाल फूल जलमें उत्पन्न हुएहों तौ दान करै, ऊनका सूत वा कपासका सूत दे ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य नये वस्त्रकी बत्ती बनावै, और फिर घी या तिलोंका तेल दीपकमें डालै ॥ १७ ॥ धूपके निमित्त घृत और मीठा मिलाहुआ गूगल दे, और पीसकर चन्दन और कुंकुम दे ॥ १८ ॥

भूतृणं सुरसं शिग्रुं पालकं सिंधुकं तथा ॥ कूष्मांडालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥ पिप्पलीमरिचं चैव तथा वै पिंडमूलकम् ॥ कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥ राजमाषान्मसूरांश्च चणकान्कोरदूषकान् ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासाञ्छ्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥

भूतृण, सरसों, सौंजना, पालक, सिंधुक, पेठा, तुम्बी, बैंगन, कचनार, श्राद्धमें इनका निषेध है ॥ १९ ॥ पीपल, मिरच, सलगम, बनाया लवण, वांशका अग्रभाग इनको भी त्याग दे ॥ २० ॥ रवांस, मसूर, कोदों और कोरदूषक, वृक्षके लाल गोंदको भी श्राद्धकर्म में त्याग दे ॥ २१ ॥

आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्वीकादधिदाडिमान् ॥ विदारींश्चैव रंभाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ धानालाजान्मधुयुतान्सक्तूञ्छर्करया तथा ॥ दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटकविसेतकान् ॥ २३ ॥

आम, आंवला, गन्ना, दाख, दही, अनार, विदारीकंद, केला इनको श्राद्धमें यत्नसहित दे ॥ २२ ॥ सहतमें मिलेहुए धान, खीलें; खांड मिले सत्तू, शृंगाटक, विसेतक इनको भी श्राद्धमें विशेष करकै दे ॥ २३ ॥

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ॥
अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर उनके आचमन करनेके उपरान्त उनको दक्षिणा दे ब्राह्मणोंको नमस्कारकर उनके पीछे २ जाकर पहुंचा आवै ॥ २४ ॥

निमंत्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः ॥
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥

जो ब्राह्मण निमंत्रित होकर स्त्रीसंसर्ग करताहै उसको श्राद्धमें जिमानेवाला और वह जीमनेवाला दोनोंही बडे पापके भागी होते हैं ॥ २५ ॥

कालशाकं सशल्कं च मांसं वार्ध्रीणसस्य च ॥
खड्गमांसं तथानंतं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥ २६ ॥

कालशाक, शल्क, वार्ध्रीणस (मृग) का मांस यमराजने इनको अनन्त फलका देनेवाला कहा है ॥ २६ ॥

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा ॥ प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २७ ॥ गंगायमुनयोस्तीरे अयोध्यामरकंटके ॥ नर्मदायां गयातीर्थे सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २८ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ॥ सप्तवेण्यृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य इनमें जो जाकर पितरोंको देताहै, वह अक्षय फलको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ गंगा और यमुनाके किनारे, अयोध्या, अमरकंटक, नर्मदा, गयातीर्थ इनमें देनेसे अनंत फल प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुंग, महालय, ऋषिकूप, इनमें दानकरनेसे अनंत फल मिलताहै ॥ २९ ॥

म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ॥
न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥ ३० ॥

म्लेच्छोंके देशमें, रात्रिमें विशेषकर संध्याके समयमें बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध न करै; और म्लेच्छोंके देशमें जाय भी नहीं ॥ ३० ॥

हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने ॥
विषुवत्ययने चैव सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ ३१ ॥

गजच्छाया, ग्रहण, विषुवत्संक्रान्ति और दोनों अयन इनमें दान करनेसे अनन्त फल होता है ॥ ३१ ॥

प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ॥प्राप्य श्राद्धं प्रकर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥ ३२ ॥ प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ॥ नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छंति पितामहाः ॥ ३३ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यदि किसी कारणसे प्रौष्ठपदीप्रयुक्त महालय श्राद्धका यथायोग्य समय व्यतीत होजाय तौ मघानक्षत्रसे युक्त त्रयोदशीके दिन मधुसे वा खीरसे श्राद्ध करै ॥ ३२ ॥ इससे पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंको सर्वदा सन्तान, पुष्टता, यश, स्वर्ग, आरोग्य, धन इनको देतेहैं ॥ ३३ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

जनने मरणे चैव सपिंडानां द्विजोत्तमः ॥
त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और वेदपाठी है वह सपिंडोंके जन्म अथवा मरणमें तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥

सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति ॥ २ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति ॥ मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नांतरा ॥ ३ ॥

सातवी पीढीमें सपिंडता निवृत्त होजातीहै; और नामधारक ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होताहै; ॥ २ ॥ बारह दिनमें क्षत्रिय, एक पक्षमें वैश्य, और एक महीनेमें शूद्रकी शुद्धि होतीहै प्रथम नहीं होती ॥ ३ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति ॥ अजातदंतबाले तु सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४ ॥ अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके ॥ तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुध्यंति बांधवाः ॥ ५ ॥ अनूढानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ॥

महीनोंकी समान रात्रियोंमें गर्भके स्रावमें जितने महीनेका गर्भ हो उतनी ही रात्रियोंमें शुद्धि होतीहै और बालक विना दांत जमेही मरजाय तो उसके मरनेमें उसी समय शुद्धि

कहीहै ॥ ४ ॥ जो बालक मूडनसे प्रथमही मरजाय वह अहोरात्रसे और यज्ञोपवीतसे पहले जो मरजाय उसके बंधु बांधव तीन दिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ ५ ॥ जो कन्या बिना विवाहे मरजाय उसके यहां तीन दिनमें शुद्धि होतीहै, और शूद्रके मरनेमें भी तीन दिनमें शुद्धि होतीहै;

अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम्॥ ६॥ मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बांधवाः ॥ शुद्धिं समधिगच्छेयुर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

यदि बिनाविवाहा शूद्र सोलह वर्षसे पीछे ॥ ६ ॥ मृतक होजाय तौ उसके बंधु बांधव एक महीनेमें शुद्ध होतेहैं इसमें विचार करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥ ८॥ हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ॥ प्रसवे मरणे तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥

यदि जिस कन्याका विवाह न हुआहो और वह पिताके घरही रजस्वला होजाय तौ उसके मरनेका अशौच कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ८ ॥ यद्यपि कोई नीच वर्णकी कन्या विवाहसे प्रथम ही सन्तान उत्पन्न करले तो उसके प्रसव और मरणके दोनों अशौच कभी निवृत्त नहीं होते ॥ ९ ॥

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥

सजातीय अशौचमें यदि दूसरा सजातीय अशौच होजाय तौ प्रथमके साथही दूसरा भी समाप्त होजाताहै और जो दूसरा सजातीय न हो तौ धर्मराजके वचनके अनुसार दूसरेके संग दोनों अशौच निवृत्त होजातेहैं ॥ १० ॥

देशांतरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ११ ॥ अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ तथा संवत्सरेतीते स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

परदेशमें जाकर यदि जातिका मरण या जन्मअशौच हुएके समाचार सुनकर दशदिनके बीचमें जो शेष दिन हैं तबतक अशुद्ध रहताहै ॥ ११ ॥ यदि दशदिनके उपरान्त सुने तौ तीन रात्रिमें और एक वर्ष बीतनेपर सुने तौ स्नान करनेसे ही शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च॥ परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥ १३ ॥ मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ॥ गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु तु त्र्यहस्तथा ॥ १४ ॥ निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ॥ आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥ मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बांधवेषु च ॥ सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥

अपने औरससे अतिरिक्त पुत्र व्यभिचारिणी और परपूर्वा स्त्री इनके मरनेमें तीन दिनमें शुद्धि होजातीहै ॥ १३ ॥ नाना, आचार्य, विवाही कन्या इनके मरनेमें भी तीन दिनमें

शुद्धि होजातीहै॥१४॥देशके राजाके मरनेमें और अपने घरमें दौहित्रके जन्ममें आचार्यकी स्त्री वा पुत्रोंके मरनेमें एक दिनमें ही शुद्धि होजातीहै॥१५॥मामाके मरनेमें दिनरातमें और शिष्य ऋत्विक् और बांधव इनके मरनेमें एक रातमें, सब ब्रह्मचारी और अनूचान गुरु उपगुरुके मरनेमें एक दिन अशुद्धि रहतीहै ॥ १६ ॥

एकरात्रिं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ॥ शूद्रे सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥ त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ॥ वैश्ये सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥ सपिंडे क्षत्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य तु ॥ वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥ सपिंडे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ॥ दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥ २० ॥

अपना जो सपिंडी शूद्र होगयाहो उसके मरनेमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह चारों वर्ण क्रमानुसार एक रात; तीन रात, छैः रात, और एक महीनेमें शुद्ध होते हैं ॥१७॥ सपिंडी वैश्यके मरनेमें चारों वर्णोंको तीन रात, छैः रात, एक पक्ष और एक महीनेका अशौच कहाहै ॥ १८ ॥ और सपिंडी क्षत्रियके मरनेमें ब्राह्मणोंकी छैः रातमें और तीनों वर्णोंकी बारह दिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥ सपिंडी ब्राह्मणके मरनेमें चारों वर्णोंकी शुद्धि दश रातमें होतीहै, यह भगवान् यमने कहाहै ॥ २० ॥

भृग्वग्न्यनशनांभोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ॥ पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥ २१ ॥ यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ॥ नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥ २२ ॥

भृगु, अग्नि, अनशन, जल, अपने आप शस्त्र, जल इनसे जिनकी मृत्यु हुईहो वा जो पतित मरेहों उनका अशौच नहीं होता ॥ २१ ॥ संन्यासी, व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर, दीक्षित, और राजा की आज्ञा माननेवाले, यह अशुद्ध नहीं कहेहैं ॥ २२ ॥

यस्तु भुंक्ते पराशौचे वर्णी सोऽप्यशचिर्भवेत् ॥ अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥ २३ ॥ पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥ भुक्तान्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी दूसरेके अशौचमें खाताहै, वह अशुद्ध होजाताहै, परन्तु जब अशौचकी शुद्धि होजातीहै तभी बुद्धिमानोंने ब्रह्मचारीकी भी शुद्धि कहीहै ॥ २३ ॥ जो मनुष्य दूसरेके अशौचमें खाताहै उसको कीडेकी योनि मिलतीहै और जिसके अन्नको खाकर मरताहै उसी की जातिमें जन्म लेताहै ॥ २४ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ॥
प्रेतपिंडे क्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥ २५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, हवन, वेदपाठ, पितरोंका कर्म यह सब प्रेतके लिये पितरोंके कर्मके अतिरिक्त अशौचमें निवृत्त होजातेहैं ॥ २५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्ध्यति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥ १ ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥ २ ॥ शुद्ध्यत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलांभसा ॥ अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥ क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लोहस्य च विनिर्दिशेत् ॥ मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ४ ॥ अब्जानां चैव भांडानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ शाकवर्जं मूलफलद्विदलानां तथैव च ॥ ५ ॥ मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ उष्णांभसा तथा शुद्धिं सस्नेहानां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण मट्टीके पात्र अशुद्ध होनेपर दुबारा अग्निमें पकानेसे शुद्ध होजाते हैं और मदिरा, मूत्र, विष्टा, थूक, राध, और रुधिर ॥ १ ॥ इन सबका स्पर्श होनेसे मट्टीका पात्र दुबारा अग्निमें तपानेसे भी शुद्ध नहीं होता और इन्हींका स्पर्श तांबे, सुवर्ण और चाँदीके पात्रमें होगयाहो ॥ २ ॥ तौ वह फिर बनानेसे शुद्ध होताहै; और इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे अशुद्ध होजाय तौ केवल उसकी शुद्धि जलसे ही होजातीहै, और तांबेकी शीसाकी और लाखकी शुद्धि खटाईके जलसे होतीहै ॥ ३ ॥ लोहे और काँसीकी शुद्धि खारी जलसे और मोती, मणि, मूंगा इनकी शुद्धि धोनेसे ही होजाती है ॥ ४ ॥ जलमें उत्पन्नहुए पदार्थ और पत्थरके पात्र तथा शाकको छोडकर मूल फल और वल्कल यह धोनेसे ही शुद्ध होजातेहैं ॥ ५ ॥ यज्ञके पात्र यज्ञमें मांजनेसे और चिकने गरम जलसे धोनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ६ ॥

शयनासनयानानां सशूर्पशकटस्य च ॥ शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे करकेंधनयोस्तथा ॥ ७ ॥ मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तक्षणात् ॥ संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥ बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ॥ प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणाञ्च तक्षणात् ॥ ९ ॥ सिद्धार्थकानां कल्केन शृंगदंतमयस्य च ॥ गोवालैः फलपात्राणामस्थ्नां शृंगवतां तथा ॥ १० ॥ निर्यासानां गुडानां च लवणानां तथैव च ॥ कुसुंभकुंकुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥ ११ ॥ प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः ॥

शय्या, आसन, सवारी, सूप, शकट, चटाई, ईंधन इनकी शुद्धि यज्ञमें केवल जल छिडकनेसे होजातीहै ॥ ७ ॥ घरोंकी शुद्धि मार्जनसे और पृथ्वीकी शुद्धि कुछ थोडी खोदडालनेसे और वस्त्रोंकी शुद्धि जलसे होतीहै ॥ ८ ॥ बहुतसे अन्नोंकी तथा दलेहुए अन्न और काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि जलके छिडकनेसे होतीहै ॥ ९ ॥ सींग और दांतकी वस्तु सरसोंकी खलसे और फलके पात्र, हाड और सींगवालोंकी शुद्धि गौके चँवरसे होतीहै ॥ १० ॥ गोंद, लवण, गुड, कुसुंभ, कुंकुम, ऊन और कपास ॥ ११ ॥ इनकी शुद्धि जल छिकडनेसे होजातीहै, यह भगवान् यमने कहाहै;

भूमिस्थमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम् ॥ १२ ॥ वर्णगंधरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत् ॥ शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदेव सुखाकरम् ॥ १३ ॥

और पृथ्वी तथा शिलापर पडा जल शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥ यदि वह जल दुष्टवर्ण जो रस गंधसे रहित हो; वह नदी और आकरका जल शुद्ध है ॥ १३ ॥

शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाऽजाश्वयोर्मुखे ॥
मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जार श्चाश्रमे शुचिः ॥ १४ ॥

हाटमें फैलीहुई वस्तु बकरी और घोडेका मुख शुद्ध हैं मुख छोडके गौका सर्वअंग शुद्ध है, घरमें रहनेवाली बिलाव शुद्ध है ॥ १४ ॥

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमंडलुः ॥
आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥ १५ ॥

शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और पात्र यह अपने अपनेही शुद्ध हैं और अन्यके शुद्ध नहीं हैं ॥ १५ ॥

नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुभं मुखम् ॥
रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥ १६ ॥

स्त्री, बछडे, पक्षी, इनका मुख क्रमसे रात्रि प्रस्रवण और वृक्ष तथा मृगयामें सर्वदा शुद्ध है ॥ १६ ॥

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करकै स्वामीके निमित्त और देवता पितरोंके कर्ममें पांचवें दिन शुद्ध होतीहै ॥ १७ ॥

रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येन वाप्यथ ॥
नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ १८ ॥

कदाचित् मनुष्यकी नाभिके ऊपर गलीकी कीचड अथवा जल या थूक लगजाय तौ उसी समय स्नान करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १८ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ॥ भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चांभोऽवगाह्य च ॥ १९ ॥ रथ्यामाक्रम्य चाचामेद्वासो विपरिधाय च॥

लघुशंका, मलका त्याग, स्नान, भोजन, छींक, शयन, जलपान और जलमें अवगाहन इनको करकै भोजनसे प्रथम ॥ १९ ॥ और गलीमें चलकर वस्त्रोंको धारणकर आचमन करै;

कृत्वा मूत्रं पुरीषं च लेपगंधापहं द्विजः ॥ २० ॥ उद्धृतेनांभसा शौचं मृदा चैव समाचरेत् ॥ पायौ च मृत्तिकाः सप्त लिंगे द्वे परिकीर्तिते ॥ २१ ॥ एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्देयाश्चतुर्दश ॥ तिस्रस्तु मृत्तिका ज्ञेयाः कृत्वा नखविशोधनम् ॥ २२ ॥ तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा ॥ शौचमेतद्गृह-

स्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्व पूर्यते यया ॥ २४ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

और द्विजाति ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य मलमूत्रका त्याग करकै जिससे दुर्गंध दूर होजाय ऐसी ॥ २० ॥ स्वयं जल निकालकर मिट्टी और जलसे शुद्धि करले; और गुदामें सातवार लिंगमें तीनवार मिट्टी लगावै ॥ २१ ॥ बांयें हाथसे बीसवार और फिर दोनोंमें चौदहवार नखोंकी शुद्धि करकै तीनवार मिट्टीको लगावै ॥ २२ ॥ शुद्धिकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य तीनवार पैरोंमें मिट्टीको लगावै, यह शुद्धि गृहस्थियोंकी है; ब्रह्मचारियोंकी इससे दुगुनी शुद्धि कहीहै ॥ २३ ॥ वानप्रस्थोंकी इससे तिगुनी शुद्धि है, और संन्यासियोंकी चौगुनी है; प्रत्येक वारमें इतनी मिट्टी लगावै जिससे कि तीन अंगुल हाथके भरजाय ॥२४॥

इति श्रीशङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ॥ अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥ ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥ हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनैतेन शुद्ध्यंते महापातकिनस्त्विमे ॥ ३ ॥

वनमें जाय पर्णकुटी बनाकर जटा धारण करकै त्रिकालीन स्नान कर पत्ते, मूल, पत्र इनका भोजन करताहुआ पृथ्वीपर शयन करै ॥ १ ॥ अपने कर्मको मनुष्योंके निकट प्रकाश करताहुआ गांवमें भिक्षाके अर्थ जाय और बारहवर्षतक एक समय भोजन करै ॥ २ ॥ सुवर्णकी चोरी करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे रमण करनेवाला, यह महापापीभी इस व्रतके करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥

यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥ कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपहृत्य च ॥ एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥ ५ ॥ आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ॥ हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥

यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यको मारनेवाला तथा रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला इसी व्रतके करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ झूंठी साक्षी कहकर न्यायको चुराय और शरण आयेको त्यागकरके यही व्रत करै ॥ ५ ॥ अग्निहोत्रीकी स्त्रीकी हत्या करनेपर और मित्रकी हत्या करनेपर, तथा विना जाने गर्भकी हत्या करनेपर भी इसी व्रतको करै ॥ ६ ॥

वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्याद्द्विगुणं च विशुद्धये ॥ ७ ॥ क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्द्धं वैश्यघातने ॥ अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥ पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ॥

गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥ पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मासं कृत्वा विचक्षणः ॥ आरण्यानां वधे तद्व्रतदर्धं तु विधीयते ॥ १० ॥

वनवासी ब्राह्मण और अपराधी राजा इनकी हत्या करकै दूना व्रत करैं तब वह शुद्ध होंगे ॥ ७ ॥ वनवासी क्षत्रियकी हत्या करकै पौन व्रत करै, वैश्यकी और स्त्रीकी हत्या करकै इस व्रतको आधा करै ॥ ८ ॥ शूद्रकी हत्या करकै और ऋतुमती स्त्रीमें गमन करकै पाद चौथाई इस व्रतको करै ॥ ९ ॥ ग्रामके वनके पशुओंको मारनेवाला अन्य प्रायश्चित्त न करकै केवल यही आधा व्रत करै ॥ १० ॥

हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयबिलेशयान् ॥
सप्तरात्रं तथा कुर्याद्व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥

पक्षी और जलचर तथा बिलमें सर्पको मारकर सातरात्रितक ब्रह्महत्याका व्रत करै ॥११॥

अनस्थां तु शतं हत्वा सास्थां दशशतं तथा ॥
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ १२ ॥

विना अस्थिके सौ जीवोंकी हत्या करकै, या एक सहस्र हड्डीयुक्त जीवोंको मारकर मनुष्य एक वर्षतक सम्पूर्ण ब्रह्महत्याके व्रतको करै ॥ १२ ॥

यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ॥
तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥

जिस २ वर्णकी जीविकाका छेदन करै उसीउसी वर्णकी हत्याका प्रायश्चित्त करै ॥ १३ ॥

अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ॥ प्रायश्चित्तं वधप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥ १४ ॥ गोजाश्वस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ॥ जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ १५ ॥ तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ॥ संवत्सरार्द्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥ तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः ॥ मासमेकं व्रतं कुर्याद्दन्तानां सर्पिषां तथा ॥ १७ ॥ लवणानां गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च ॥ मासार्द्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १८ ॥ लोहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ॥ एकरात्रं व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १९ ॥

अज्ञानसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंकी भूमि चोरी करले, तौ ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर प्रायश्चित्त करै ॥ १४ ॥ गौ, बकरी, घोडा, मणि, चांदी, जल इनकी चोरी करनेवाला मनुष्य एक वर्षतक उक्त व्रतको करै ॥ १५ ॥ तिल, अन्न, वस्त्र, मदिरा, मांस, इनकी चोरी करनेवाला छैः महीनेतक सावधान होकर इसी व्रतको करै ॥ १६ ॥ तिल, गन्ना, काठ, मट्ठा, रस, दांत, घी इनकी चोरी करनेवाला एक महीनेतक इस व्रतको करै ॥ १७ ॥ लवण, मूल, फूल इनकी चोरी करनेवाला सावधान होकर पंद्रह दिनतक इसी व्रतको करै ॥ १८ ॥ लोहा, वैदल, सूत, चाम इनकी चोरी करनेवाला एकरात्रि सावधान होकर यही व्रत करै ॥ १९ ॥

भुक्त्वा पलांडुं लशुनं मद्यं च करकाणि च ॥ नारं मलं तथा मांसं विड्वराहं खरं तथा ॥ २० ॥ गौधेयकुंजरोष्ट्रं च सर्वं पांचनखं तथा ॥ क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥

प्यांज, लहसुन, मदिरा, करक, मनुष्यकी विष्ठा इत्यादि मल, मनुष्यका मांस, सूकर, गधा इनका खानेवाला ॥ २० ॥ गोधेय,हाथी, ऊंट, सम्पूर्ण पंचनखमांस, जीव और ग्रामके मुरगेको खानेवाला एक वर्षतक उक्त व्रतको करै ॥ २१ ॥

भक्ष्याः पंचनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः ॥
खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥

गोह, कछवा, सेह, गेंडा, ससा, यही पांच पंचनख भक्ष्य हैं, इनको मारनेवाला भी इसी व्रतको करै ॥ २२ ॥

हंसं मद्गुरकं काकं काकोलं खंजरीटकम् ॥ मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं शुकसारिके ॥ २३ ॥ चक्रवाकं प्लवं कोकं मंडूकं भुजगं तथा ॥ मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥

हंस, मद्गुर, कौआ, काकोल (सर्प) खंजरीट, मत्स्यके खानेवाले मत्स्य, बगला, तोता, सारिका, ॥ २३ ॥ चकवा, प्लव, कोक, मेंडक, सर्प इनका खानेवाला एकमहीनेतक इसी व्रतको करै, और फिर इनको न खाय ॥ २४ ॥

राजीवान्सिंहतुंडांश्च शकुलांश्च तथैवच ॥ पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परिकीर्तितौ ॥ २५ ॥ जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्किरान् ॥ रक्तपादांञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥

राजीव, सिंह, तुंड, शकुल, पाठीन, रोहित यह मत्स्य भक्ष्य हैं ॥ २५ ॥ जो जलमें उत्पन्नहो और जो जलमेंही विचरण करें जो मुखके अग्रभागसे और नखोंसे खोदनेवाले, जिनके पैर लाल हों, और जिनका पैर जालके समान हो इनको खानेवाला सात दिनतक व्रत करै ॥ २६ ॥

तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कपिंजलम् ॥ वार्ध्राणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह यमस्तथा ॥ २७ ॥ भुक्त्वा चोभयतोदंतांस्तथैकशफदंष्ट्रिणः ॥ तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥

तीतर, मोर, लाल पक्षी, कपिंजल, वार्ध्राणस, वर्तक इनको यमराजने भक्ष्य कहाहै ॥ २७ ॥ दोनोंओर दांतवाले, और जिनके एक खुर हो,इनको जो एक महीनेतक खाय वह पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ २८ ॥

स्वयं मृतं तथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ॥ गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च तथा पयः॥ संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥ क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥ सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥

जीव जो स्वयं मरजाय उसका मांस, या भैंसा, बकरी का मांस, या जिस गौका बछडा

मरगया हो या जो गाभिन हो उस गौका दूध, और संधिनीका दूध जो अशुद्ध हो उसको खानेवाला पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ २९ ॥ जो दूध अभक्ष्य है उनके विकारों (दही आदिकों) को खाकर बुद्धिमान् मनुष्य सात रात्रितक उक्त व्रतको करै ॥ ३० ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत् ॥ गुडशुक्तं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं च व्रती भवेत् ॥ ३१ ॥

वृक्षका लाल गोंद, और वृक्षके काटनेसे जो गोंद निकले वह, शुक्त, (कांजी वा आल सिरका) वासी पदार्थ और गुडका शुक्त, इनको खानेवाला मनुष्य तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ३१ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु यच्चान्यद्दधिसंभवम् ॥ गुडशुक्तं तु भक्ष्यं स्यात्सर्पिष्कमिति स्थितिः ॥ ३२॥ यवगोधूमजाः सर्वे विकाराः पयसश्च ये ॥ राजवाडवकुल्यं च भक्ष्यं पर्युषितं भवेत् ॥ ३३ ॥

शुक्तोंमें दहीका विकार, घी मिला गुडका शुक्त यह भक्ष्य शुक्तोंमें कहाहै ॥ ३२ ॥ जौ, गेहूं, दूध, इनका विकार, और राजवाडवका मांस यह वासी भी भक्ष्य है ॥ ३३ ॥

राजीवपक्वं मांसं च सर्वयत्नेन वर्जयेत् ॥
संवत्सरं व्रतं कुर्यात्प्राश्यैताञ्ज्ञानतस्तु तान् ॥ ३४ ॥

राजीव मत्स्यभेदके पकेहुए मांसको सब भांति त्याग दे और जो मनुष्य ऊपर कहेहुओंको जान बूझकर खाले वह एक वर्षतक व्रतको करै ॥ ३४ ॥

शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रंगावतारिणः ॥ चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥ ३५ ॥ षंढस्य कुलटायाश्च तथा बंधनचारिणः ॥ वद्धस्य चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥ ३६ ॥ चर्मकारस्य वेनस्य क्लीबस्य पतितस्य च ॥ रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥ ३७ ॥ कदर्यस्य नृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च ॥ गणान्नं भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम् ॥ ३८ ॥ मौंजिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत् ॥

शूद्र, रंगरेज, वैद्य, क्षुद्रबुद्धि स्त्री, और जो अपनी जीविका मृगोंसे करताहो ॥ ३५ ॥ नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री, डांकिया, कैदी, चोर, पतिपुत्रहीन स्त्री ॥ ३६ ॥ चमार, बेनवे, क्लीब, पतित, सुनार, धूर्त, वार्धुषिक, व्याज लेनेवाला ॥ ३७ ॥कृपण, कायर, हिंसक, वेश्या, कपटी, शूद्र इत्यादि इनके अन्नको खानेवाला, दलभद्रके अन्न तथा राजाके अन्न और जो कुत्तोंसे अपनी जीविका करैं उनके अन्नको ॥ ३८ ॥ मूंजके व्यापारी और सूतिका (प्रसूति होकर शुद्ध नहीं हुई स्त्री) के अन्नको खानेवाला एक महीनेतक व्रत करै ॥

शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥ ३९ ॥ वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत् ॥ क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ॥ ४०॥ ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ॥

और निरन्तर शूद्रजातिके अन्नको खानेवाला छैः महीनेतक व्रत करै ॥ ३९ ॥ वैश्यका अन्न निरन्तर खानेसे तीन महीने, और क्षत्रियका अन्न निरन्तर खानेसे दो महीनेतक व्रतकरै ॥ ४० ॥ ब्राह्मणका अन्न निरन्तर खानेवाला एक महीनेतक व्रत करै;

अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ मद्यभांडगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ॥ शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४२ ॥ क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ॥ अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४३ ॥

मदिराके पात्रमें जलको पीनेवाला पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ ४१ ॥ गुडकी मदिराके पात्रमें जल पीनेवाला सात रात्रि व्रत करै, शूद्रकी उच्छिष्टको खानेवाला एक महीनेतक और वैश्यकी उच्छिष्टको खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४२ ॥ क्षत्रियकी उच्छिष्टको खानेवाला सात दिनतक, ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खानेवाला एक दिन और श्राद्धमें खानेवाला बुद्धिमान् मनुष्य एक महीनेतक व्रत करै ॥ ४३ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविंदति ॥
व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपंचमाः ॥ ४४ ॥

परिवेत्ता, परिवित्ति; जो स्त्री परिवेत्ताने बडे भाईसे पहले विवाही हो वह, दाता और पांचवां याजक; इन पांचोंको एक वर्षतक व्रत करना उचित है ॥ ४४ ॥

काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥ ४५ ॥ दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालांगलेन च ॥ मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ४६ ॥ वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥ भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४७ ॥ नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥ त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षतः ॥ ४८ ॥ पादप्रतापनं कृत्वा वह्निं कृत्वा तथाप्यधः ॥ कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ४९ ॥ नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥ त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छित्त्वा गुल्मलतास्तथा ॥ ५० ॥

काकका उच्छिष्ट, गौका सूंघा इनका खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करै ॥ ४५ ॥ केश, कीडा, मूसा, वानर इनसे दूषितहुआ और मक्खी, मच्छर इनसे दूषित हुएको खाकर तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४६ ॥ वृथा कृसर, संयाव, खीर, पूआ, पूरी इनका खानेवाला सावधानीसे तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४७ ॥ नीलके वृक्षकी लकडीसे जिसके शरीरमें घाव होजाय, या कुत्तेने काटाहो उससे घाव होजाय; तौ वह तीन रात्रितक व्रतकरै ॥ ४८ ॥ और जिसके पुंश्चलीके दांतोंका क्षत होजाय, जो नीचे अग्नि रखकर पैरोंको सेके, और जो कुशाओंसे पैरोंको झाडे वह एक दिन व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४९ ॥ जो नीला वस्त्र पहररहाहो जिसके छूनेसे स्नान करना योग्य है उसका अन्न खाकर और गुल्म लताका छेदन करके तीन रात्रि व्रत करै ॥ ५० ॥

अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥
पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५१ ॥

ब्राह्मण ढाककी बनीहुई शय्या (खाट आदि) यान (सवारी) आसन (पीढा कुरसी आदि) और खडाऊं इनपर बैठकर तीन रात्रि व्रत करै ॥ ५१ ॥

वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ॥
भुक्त्वान्नं ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५२ ॥

वाणी और भाव इनसे दुष्ट पदार्थको भावसे दुष्ट पात्रमें खाकर ब्राह्मण तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ५२ ॥

क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः ॥
संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा पिप्पलपादपम् ॥ ५३ ॥

अपने प्राणोंकी रक्षामें तत्पर क्षत्री युद्धमें पीठ देकर और पीपलके वृक्षको काटकर एक वर्षतक व्रत करै ॥ ५३ ॥

दिवा च मैथुनं कृत्वा स्नात्वा नग्नस्तथांभसि ॥
नग्नां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५४ ॥

दिनके समय मैथुन करकै, जलमें नंगा हो स्नान करकै या दूसरेकी स्त्रीको नंगी देखकर एक दिनतक व्रत करै ॥ ५४ ॥

क्षिप्त्वाग्नावशुचि द्रव्यं तदेवांभसि मानवः ॥
मासमेकं व्रतं कुर्यादुपक्रुश्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥

अग्नि या जलमें अशुद्ध पदार्थ फैंककर वा गुरुपर क्रोध करनेवाला एकमहीनेतक व्रत करै ॥ ५५ ॥

पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणः क्वचित् ॥ त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः ॥ ५६ ॥ एकपंक्त्युपविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ॥ यश्च यावदसौ पक्वं कुर्यात्तु ब्राह्मणो व्रतम् ॥ ५७ ॥

कदाचित् ब्राह्मण पीनेसे बचेहुए पानीको पीले, या बांये हाथसे जल पीले तो तीन रात्रि-तक व्रत करे ॥ ५६ ॥ एक पंक्तिमें बैठहुओंके आगे जो न्यूनाधिक परोसे, वह ब्राह्मण ईसी व्रतको करले ॥ ५७ ॥

धारयित्वा तुलां चैव विषमं कारयेद्बुधः ॥
सुरालवणमद्यानां दिनमेकं व्रती भवेत ॥ ५८ ॥

वणिक् तराजूमें तोलकरभी न्यूनाधिक करै, सुरा और लवणको वेचनेवाला मनुष्य यह सभी एक दिनतक व्रत करै ॥ ५८ ॥

---

१ वाणीदुष्ट जैसा "गोशृंगी" यह चन्वीडेके नाम हैं अतः वह अन्नाद्य है, भावदुष्ट जो वस्तु बुरी रीतिसे बनाई जातीहै, जैसे विहित मांसका भी कबाब आदिक भावदुष्ट पात्र रंगसे काले आदिक कियेहों।

२ "वृक्षं फलप्रदम्" इस पाठके अनुसार फलदेनेवाले वृक्षके काटनेमें यह प्रायश्चित्त जानना ।

मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥
विक्रीय पाणिना मद्यं तिलानि च तथाचरेत् ॥ ५९ ॥

मांसको बेचनेवाला महाव्रत करै, अपने हाथसे मदिरा और तिलको बेचकरभी महाव्रतको करै ॥ ५९ ॥

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥
दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥

या ब्राह्मणको अपमानसूचक हुंकार, और बडोंको तू कहकर भलीभांति सावधान होकर एक दिनतक व्रत करै ॥ ६० ॥

प्रेतस्य प्रेतकार्याणि कृत्वा च धनहारकः ॥
वर्णानां यद्व्रतं प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥

जो धन (वेतन) लेकर प्रेतकी क्रिया और प्रेतको श्मशानमें कंधेपर लेजाय वह निज वर्णका जो व्रत अन्यत्र कहाहै उसी व्रतको शुद्ध होकर करै ॥ ६१ ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्द्धते ॥
कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्षदानुमतं व्रतम् ॥ ६२ ॥

पाप करके उसे न छिपावै, कारण कि छिपानेसे पापकी वृद्धि होतीहै बुद्धिमान् मनुष्य पाप करकै सभाकी अनुमतिसे प्रायश्चित्त करै ॥ ६२ ॥

तस्करश्वापदाकीर्णे बहुव्याधमृगे वने ॥ न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभयात्सदा ॥ ६३ ॥सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥ व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च इत्याह भगवान्यमः ॥ ६४ ॥ शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरात्स्रवते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ॥ ६५ ॥ आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह ॥ प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६६ ॥

इति श्रीशाङ्खीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण चोर, भेडिये, सांप, मृगआदिक जन्तुओंसे परिपूर्ण स्थानमें जाकर या जहां प्राणोंका भय हो ऐसे स्थानमें जाकर व्रत न करै ॥ ६३ ॥ कारण कि, जीवनकी रक्षा सब स्थानोंपर लिखीहै. जीवित रहनेपर व्रत कृच्छ्र तथा अनेक दानद्वारा सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करसकताहै यह भगवान् यमने कहाहै ॥६४ ॥ और शरीर ही धर्मका मूल है इस कारण यत्नसहित शरीरकी रक्षा करनी योग्य है, पर्वतमेंसे जलकी समान शरीरमेंसे धर्म निकलता रहताहै ॥ ६५ ॥ इस कारण सम्पूर्ण शास्त्रोंको विचारकर ब्राह्मणोंके साथ एकमति होकर ब्राह्मण प्रायश्चित्त बतावै, अपनी इच्छासे कभी न बतावै ॥ ६६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१ "दहित्वा च वहित्वा च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इस वचनसे दाह करनेवाला परगोत्रीभी तीन दिन अशुद्ध रहताहै, उसके उपरान्त प्रायश्चित्त करै ।

अष्टादशोऽध्यायः १८.

त्र्यहं त्रिषवणस्नायी स्नाने स्नानेऽघमर्षणम् ॥ निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुंजीत दिनत्रयम् ॥ १ ॥ वीरासनं च तिष्ठेत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥ अघमर्षणमित्येतद्व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥ २ ॥

तीन दिनतक प्रतिदिन तीनवार स्नानकर तीनों स्नानोंमें जलमें डूबाहुआ तीनवार अघमर्षण जपकरे, और तीन दिनतक भोजन न करै ॥ १ ॥ सर्वदा वीरासनपर खडा होकर दूध देनेवाली गौका दान करै; इसका नाम अघमर्षण व्रत है इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं॥२॥

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ॥ ३ ॥

प्राजापत्य व्रत करनेपर तीन दिनतक नक्त भोजन. तीन दिनतक एकभक्त, तीन दिनतक अयाचित भोजन, और तीन दिनतक उपवास करै ॥ ३ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहं भवेत् ॥ ४ ॥ तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ॥

तीन दिनतक गरम जल पिये, तीन दिनतक गरम घृतका पान करै, तीन दिनतक गरम दूधही पियै, और तीन दिनतक केवल वायु ही भक्षण करके रहै ॥ ४ ॥ इसका नाम तप्तकृच्छ्र है और ऐसाही शीत उदक, शीत घृत, शीत दूध और वायु इनका क्रमशः तीन तीन दिनतक सेवन कियाजाताहै वह शीतकृच्छ्र कहाहै,

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

और बारह दिनतक उपवास करनेका नाम पराक व्रत है ॥ ५ ॥

विधिनोदकसिद्धान्नं समश्नीयात्प्रयततः ॥
सक्तूंन्हि सोदकान्मासं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक जलसे बनाये अन्नको यत्नसहित जो मनुष्य खाय यदि वह मनुष्य एक महीनेतक सोदक करै अर्थात् भोजनके विना जल न पिये उसे वारुणकृच्छ्र कहतेहैं ॥ ६ ॥

बिल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवा शुभैः ॥
मासेन लोकैस्त्रीन्कृच्छ्रः कथ्यते बुद्धिसत्तमैः ॥ ७ ॥

एक महीनेतक बेल, आंवला, कमलगट्टे इनको खानेसे बुद्धिमानोंने स्त्रियोंका कृच्छ्र कहाहै॥७॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ८ ॥ एतैस्तु त्र्यहमभ्यस्तैर्महासांतपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, घृत, कुशाका जल इनका खाना, और एक दिन उपवास करना इसका नाम सांतपन कृच्छ्र है ॥ ८ ॥ और इन सबको तीन दिन करनेसे महासांतपन कहाहै ॥९ ॥

पिण्याकं चामतक्रांबुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥
उपवासांतराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥

तिलोंकी खल, विनाजलका मट्ठा, सत्तू इनको प्रतिदिन खाय और बीच २ में उपवास करनेका नाम तुलापुरुष है ॥ १० ॥

गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः॥

गोबर और जौको एकमहीनेतक प्रतिदिन सावधानीसे खाय, यह यावकव्रत है,

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११॥ ग्रासं चंद्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्व-र्द्धयन्सदा ॥ ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रतं चांद्रायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पापोंके नाशकरनेवाले इस वार्द्धिक व्रतको करै उसीको चांद्रायण व्रत भी कहतेहैं उसका लक्षण यह है ॥ ११ ॥ चंद्रमाकी कलाकी भांति वृद्धिके अनुसार एकग्रास प्रतिदिन खावै ॥ और कलाकी हानिके अनुसार एक एक ग्रास प्रतिदिन घटाता जाय, यह चांद्रायण व्रत है ॥ १२ ॥

मुंडस्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेंद्रियः ॥ स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभा-षणम् ॥ १३ ॥ पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥ अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥ पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥ गतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

मुंडन किये हुए त्रिकाल स्नान करै, पृथ्वीपर शयन कर इन्द्रियोंको जीतना, स्त्री, शूद्र, पतित इनके साथ संभाषण न करना ॥ १३ ॥ और पवित्र स्तोत्रआदिका जप, यथा-शक्ति हवन करना यह विधि सर्वदा सब कृच्छ्रोंमें जाननी उचित है ॥ १४ ॥ कृच्छ्रोंके प्रता-पसे पापी मनुष्य पापोंसे छूटकर स्वर्गमें इसभांति जाताहै कि जैसे पापहीन मनुष्य स्वर्गमें जातेहैं, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १५ ॥

शंखप्रोक्तमिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तस्स्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥

इति श्रीशांखीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंखऋषिके कहेहुए शास्त्रको पढताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ लिखितस्मृतिः १४.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ लिखितस्मृतिः ॥

इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

ब्राह्मण यत्नपूर्वक इष्ट और पूर्तको करतारहै, कारण कि इष्टसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै, और पूर्तसे मोक्ष होजातीहै ॥ १ ॥

एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ॥ कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषी भवेत् ॥ २ ॥ भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ॥ तँल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥ पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते॥ अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके॥६॥

एकदिनतक जितना जल पृथ्वीमें रहजाय ऐसा जलाशय यत्नसहित करै, और जिन जलाशयोंसे गौकी तृषा निवृत्त होजाय ऐसे जलाशयोंका बनानेवाला सातकुलोंको तारताहै ॥ २ ॥ भूमिदान करनेसे जो लोक मिलताहै वृक्षोंके लगानेसे भी मनुष्योंको वही लोक प्राप्त होतेहैं ॥ ३ ॥ बावडी, कूप, तालाव, देवताओंके मंदिर इनके टूटनेपर जो इनको फिर बनवाताहै वह भी पूर्तके फलको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंकी रक्षा, अभ्यागतका सत्कार और बलिवैश्वदेव इनको इष्ट कहाहै ॥ ५ ॥ द्विजातियोंके इष्ट और पूर्त्त यह साधारण धर्म कहेहैं; और शूद्र केवल पूर्त्तका अधिकारी है उसे वेदोक्त धर्म इष्टआदिकोंका अधिकार नहींहै ॥ ६ ॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥

मनुष्यकी अस्थि जबतक गंगाजलमें पडीरहै उतनेही हजार वर्षतक वह मनुष्य स्वर्गमें निवास करताहै ॥ ७ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम् ॥
असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलांजलिम् ॥ ८ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजली जलमें दे, अर्थात् देवतर्पण और पितृतर्पणके निमित्त जलमेंही जलको डाले; जो बालक संस्कारके विनाहुए मरगयेहैं उनके लिये जलांजलि स्थलमें दे ॥ ८ ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥ मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥

जिस प्रेतके एकादशेके दिन प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रआदि अधिकारी वृषका उत्सर्ग करतेहैं वह प्रेत प्रेतलोकसे मुक्त होकर पितृलोकमें जाताहै ॥ ९ ॥ मनुष्य बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करै यद्यपि बहुतसे पुत्रोंमेंसे कोई एक तो गयाको जायगा, या कोई तौ अश्वमेधयज्ञ करैगा, अथवा कोई तो नील बैलका उत्सर्ग करैगा वही यथार्थ पुत्र है ॥ १० ॥

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥
हसंति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥

काशीधाममें जाकर कदाचित् जो मनुष्य निकल आताहै तौ सब भूत परस्परमें ताली बजाकर उसका उपहास करतेहैं (तस्मात् काशीप्राप्त करके क्षेत्रन्यास करके वहां रहनाही श्रेष्ठ है) ॥ ११ ॥

गयाशिर तु यत्किंचिन्नाम्नो पिंडं तु निर्वपेत् ॥ नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥ यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य गयामें जाकर नामोल्लेख करकै गयाशिरपर पिंडदान करताहै यदि वह नरकमेंभी हो तोभी स्वर्गमें जाताहै; और जो स्वर्गमें होय तो उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ १२ ॥ अपने सम्बन्धी हों या दूसरेके सम्बन्धी हों जिसकाभी नाम लेकर गयामें जो पिंडदेगा वह मनुष्य सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥
लांगूलशिरसा चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥

जिसका रंग लाल हो, खुर पूंछ और शिर यह सफेद हों उसे नील वृष कहतेहैं ॥ १४ ॥

नवश्राद्धं त्रिपक्षं च द्वादशस्वेव मासिकम् ॥ षण्मासौ चाब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥ १५ ॥ यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ॥ पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ १६ ॥

आद्य श्राद्ध (जो कि ब्राह्मणआदिको ११ वां आदिक दिन प्रथम रहोताहै वह)त्रिपक्ष (१॥ महीनेमें) बारह महीनोंके दो षाण्मासिक, वर्षी, यह सोलह श्राद्ध हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य प्रेतके लिये इन सोलह एकोद्दिष्टको नहीं करता; उसके सैंकडों श्राद्ध करनेसे भी वह प्रेतयोनिसे मुक्त नहीं होता ॥ १६ ॥

सपिंडीकरणादूर्द्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥ मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥ १७ ॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम् ॥ अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥ संक्रान्तावुपरागे च पर्वण्यपि महालये ॥ निर्वाप्यास्तु त्रयः पिंडा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥ १९ ॥ एकोद्दिष्टं परित्यज्य पा-

र्वणं कुरुते द्विजः ॥ अकृतं तद्विजानीयात्स मातापितृघातकः ॥ २० ॥ अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा यदि ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥ २१ ॥

इसकारण सपिंडी करनेके उपरान्त प्रत्येक वर्षमें मातापिताके मरनेके दिनमें एकोद्दिष्ट पृथक् करै ॥ १७ ॥ माता पिताका श्राद्ध प्रत्येक वर्ष २ में निरन्तर करतारहै, और विश्वेदेवाके बिना श्राद्धमें जिमावै और एक पिंड दे ॥ १८ ॥ संक्रान्ति, ग्रहण, पर्व, पितृपक्ष इनमें एकपक्षमें तीन पिंड दे और जो क्षयाके दिन ॥ १९ ॥ एकोद्दिष्टको त्यागकर पार्वणश्राद्ध करताहै वह श्राद्ध न हुएकी समान है, और वह पुत्र माता पिताका मारनेवाला है ॥ २० ॥ जो अमावस या पितृपक्षमें मरे उसके निमित्त सपिंडी करनेके उपरान्त क्षयीके दिन भी पार्वण श्राद्ध करै ॥ २१ ॥

त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥ २२ ॥

त्रिदंडके लेनेसे ही प्रेत नहीं होता,उसके मरनेसे भी ग्यारहवें दिन पार्वण श्राद्ध कहाहै॥२२॥

यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं स्मृतम् ॥
प्रत्यहं तत्सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ २३ ॥

एक वर्षसे प्रथम जिसका सपिंडीकरण कहाहै उसके निमित्तभी प्रतिदिन ब्राह्मण जलसे भरा घट दान करै ॥ २३ ॥

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिंडीकरणं स्त्रियः ॥ पितामह्यापि तत्तस्मिन्सत्येवन्तु क्षयेऽहनि ॥ तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्र्वेति निश्चितम् ॥ २४ ॥

स्त्रीकी सपिंडी एकमात्र पतिके पिंडके साथही करनी चाहिये यदि स्त्रीका पति जीवित हो तौ स्त्रीकी सासके पिंडमें स्त्रीका पिंड मिलावै और जो स्त्रीकी सासभी जीतीहो तो स्त्रीकी सासकी सासके पिंडमें स्त्रीका पिंड मिलावै ॥ २४ ॥

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥ एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ २५॥ स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे ॥ भर्तृगोत्रेण कर्तव्या दानपिंडोदकक्रिया ॥ २६ ॥

स्त्री विवाह होनेके पीछे चौथेदिनकी रात्रिमें पतिकी सङ्गिनी अर्थात् पतिके पिंड, गोत्र और सूतकमें एक होजातीहै ॥ २५ ॥ विवाहके पीछे सप्तपदीके होनेहीमें स्त्री अपने पिताके गोत्रसे भ्रष्ट होजातीहै अतः पतिके गोत्रसेही उसका पिंडदान और जलदान करना चाहिये ॥ २६ ॥

द्विमातुः पिंडदानं तु पिंडे पिंडे द्विनामतः ॥ षण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता न मुह्यति ॥ २७ ॥ अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥ अदोषं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ २८ ॥

दो माताओंको दो पिंड दे और पिंडमें दोनामका उच्चारण करै, छःके निमित्त अर्थात् बाप, दादा और पडदादा तथा माता, दादी और पडदादी इन छैके लिये तीन पिंडदान करे; इस प्रकारसे पिंडदेनेवाला दाता मोहको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ यदि मन्त्रज्ञ ब्राह्मण शरीरके पंक्तिको दूषित करनेवाले विकारोंसे युक्त होजाय उसको यमराजनें तौभी निर्दोष कहाहै, कारण कि वह पंक्तिको पवित्र करनेंवाला है ॥ २८ ॥

अग्नौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥
प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥

अग्नौकरणका शेष अन्न पिताके पात्रमें दे पहले पितरोंको देकर पीछे विश्वेदेवाओंको न दे ॥ २९ ॥

अनग्निको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्व्वणम् ॥
तत्र मातामहानां च कर्त्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥

यदि अग्निहोत्ररहित ब्राह्मण पार्वणश्राद्ध करै तो वह मनुष्य पितृपक्ष और मातामहपक्ष इन दोनों पक्षोंका अवलम्बनकर श्राद्ध करै ॥ ३० ॥

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥
तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥

अपुत्रक होकर मृतक हुए पुरुष वा स्त्री इनके निमित्तभी एकोद्दिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण श्राद्ध नहीं करै ॥ ३१ ॥

यस्मिन्राशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः ॥ तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपिंडोदकक्रियाः ॥ ३२ ॥ वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ॥ अधिमासे तु पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥ स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा ॥ अभिघातान्तरं कार्य्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥ ३४ ॥

जिस राशिके सूर्यमें द्विजातिकी मृत्यु हुईहो उसी राशिके उसीदिन में दान, पिंडदान और जलदान करै ॥ ३२ ॥ और वर्षकी वृद्धिमें अभिषेक इत्यादि अधिक न करे यदि मलमास आजाय तो वर्षसे प्रथमभी श्राद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ यदि किसी कर्मवशसे उस दिनको प्रारब्धवश त्यागदे अन्यथा नहीं; मृत्युके उपरान्त जो कर्तव्य है वह उसीदिन करना उचित है ॥ ३४ ॥

शालाग्नौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥ यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥ ३५ ॥ वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंद्रितः ॥ वैदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥ अग्नौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मंत्रैस्तु शाकलैः ॥ संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्नीयादनग्निमान् ॥ ३७ ॥ उच्छेषणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ॥ ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्म्मो व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥

नित्य शालाग्नि अथवा लौकिक अग्निमें अन्न पकावै, और जिस अग्निमें अन्न पकावै उसमेंही हवन करनेकी विधि है ॥ ३५ ॥ नित्य आलस्यरहित होकर लौकिक वा वैदिक अग्निमें हवन करै, वैदिक अग्निमें हवन करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ३६ ॥ प्रथम अग्निमें सात व्याहृति और शाकलऋषिके कहेहुए मंत्रोंसे हवनकर भूतोंको अन्नका भाग देकर भोजन करै और जो अग्निहोत्री न हो तौ ॥ ३७ ॥ जबतक ब्राह्मण विदा न हो जायँ तबतक उच्छिष्ट न करे इसके पीछे गृहबलि करे यही व्यवस्थित धर्म है ॥ ३८ ॥

दर्भाः कृष्णाजिनं मंत्रा ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ नैते निर्माल्यतां यान्ति योक्तव्यास्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥ पानमाचमनं कुर्यात्कुशपाणिस्सदा द्विजः ॥ भुक्त्वा नोच्छिष्टतां याति एष एव विधिः सदा ॥ ४० ॥ पान आचमने चैव तर्पण दैविके सदा ॥ कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ॥ ४१ ॥ वामपाणौ कुशान्कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ॥ विनाचामन्ति ये मूढा रुधिरेणाचमंति ते ॥ ४२ ॥ नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ॥ पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः ॥ ४३ ॥

दर्भ, काले मृगका चर्म, मन्त्र, विशेषकर ब्राह्मण, यह निर्माल्यता (अशुद्धि) को बारंबार ग्रहण करनेसे भी अशुद्ध नहीं होते ॥ ३९ ॥ कुशा हाथमें लेकर ब्राह्मण सर्वदा जलपान और आचमन करै, भोजन करनेपर भी यह कुश उच्छिष्ट नहीं होते, यह शास्त्रकी विधि है ॥ ४० ॥ पीना, आचमन, तर्पण, देवकर्म इनमें सर्वदा कुशा हाथमें लेनेसे मनुष्य दूषित नहीं होता कारण कि जैसा हाथ है वैसीही कुशा होतीहै ॥ ४१ ॥ बांये हाथमें कुशा लेकर दहिने हाथसे आचमन करे । जो मूढबुद्धि मनुष्य बिना कुशाके आचमन करतेहैं वह उनका आचमन रुधिरकी समान है ॥ ४२ ॥ नीवीमें और जनेऊमें जो कुशा रक्खीहै वह कुशा पवित्र हैं, कारण कि कुशाभी देहकी समान हैं ॥ ४३ ॥

पिंडे कृतास्तु ये दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ॥
मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥ ४४ ॥

जो कुशा पिंडोंपर रक्खी जातीहैं, वा जिनसे पितरोंका तर्पण कियागयाहो; या जिनको लेकर मलमूत्र त्याग कियाहो उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४४ ॥

दैवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ॥
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पैतृकम् ॥ ४५ ॥

जो श्राद्ध विश्वदेवपूर्वक हो वा विश्वदेवपूर्वक न हो अर्थात् पार्वण हो एकोद्दिष्ट हो, उस समयमें ब्रह्मचारी रहै; और पितरोंके निमित्त श्राद्ध करै ॥ ४५ ॥

मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनंतरम् ॥
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ ४६ ॥

प्रथम माताका श्राद्धकर पीछे पितरोंका करै, इसके पीछे नानाआदिका श्राद्ध होताहै, इसभांति वृद्धिश्राद्धमें तीन श्राद्ध होतेहैं ॥ ४६ ॥

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवा आर्द्रवाश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥ ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवंतु ते ॥ ४८ ॥ इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च दैविके ॥ ४९ ॥ कालः कामोऽग्निकार्य्येषु अधरे धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवा आर्द्रवाश्च पार्व्वणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥

और क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरुरवा, आर्द्रवा इनको विश्वेदेवा कहाहै ॥ ४७ ॥ "हे महाबली और महाभागी विश्वेदेवो" जो इस श्राद्धमें कहे हैं वे सावधान हो ॥ ४८ ॥ इष्टि (पूजननिमित्तक) श्राद्धमें क्रतु और दक्ष; दैवश्राद्धमें वसु और सत्य ॥ ४९ ॥ अग्निके कर्ममें काल और काम, यज्ञनिमित्तक श्राद्धमें धूरि और लोचन पौर्वणमें पुरूरवा, और आर्द्रवा इन विश्वदेवोंको नियुक्त करै ॥ ५० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्म्मशंकया ॥ ५१ ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥५२॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥ द्वितीये तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुःपितुः ॥ ५३ ॥

जिस कन्याके भाई और पिता न हो, उस कन्याका पिता किस जातिका था यह कन्या पुत्रिका है कि क्या यह शंका करके बुद्धिमान् मनुष्य उसके साथ विवाह न करै ॥ ५१ ॥ यद्यपि उस भाईहीन कन्याको मनुष्य अलंकृत करकै यह कहकर दे कि "यह कन्या मैं तुम्हैं देताहूं इसके जो पुत्र होगा वह मेरा होगा" जो इस प्रतिज्ञासे कन्या विवाही जाय उसे पुत्रिका कहतेहैं ॥ ५२ ॥ पुत्रिका कन्यासे उत्पन्न हुआ पुत्र पहले माताको पिंडदान करै, दूसरा पिंड माताके पिताको दे, और तीसरा पिंड माताके बाबाको दे ॥ ५३ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितॄन् ॥ अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥ अलाभे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ घृतेन प्रोक्षणं कार्य्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य श्राद्धके समय मट्टीके पात्रमें पितरोंको जिमाताहै; उससे श्राद्धका कर्ता और पुरोहित, तथा भोजन करनेवाला यह तीनों नरकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ यदि पीतलआदिके पात्र न हों तौ ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मट्टीके पात्रमेंभी भोजन करावै; और मट्टीके पात्र घीसे छिडक लेनेपर वह पवित्र होजातेहैं ॥ ५५ ॥

श्राद्धं कृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुंजीत विह्वलः ॥ पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ५६ ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ॥ भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः ॥५७॥ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ॥ दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥ अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ॥ कर्म्मकृज्जायते दासः स्त्रीगमने च सूकरः॥५९॥

जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके दूसरेके यहां श्राद्धमें व्याकुल होकर भोजन करताहै उसके पितर लुप्तपिंड और लुप्तउदकक्रिय होकर नरकमें जातेहैं ॥५६॥ जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करकै

या दूसरेके श्राद्धमें भोजन करकै अधिकमार्ग चलताहै उसके पितर उस एक महीनेतक धूलि खातेहैं ॥ ५७ ॥ श्राद्ध करकै दुबारा भोजन, मार्ग चलना, बोझ उठाना, पढना, दान, प्रतिग्रह, हवन और मैथुन इन आठ कार्योंको त्यागदे ॥ ५८ ॥ श्राद्धमें खाकर जो मनुष्य अधिक मार्ग चलताहै वह घोडा होताहै, और जो दुबारा भोजन करताहै वह काक होताहै, और जो कर्म करताहै वह शूद्र होताहै, और जो स्त्रीसंसर्ग करताहै उसको सूकरकी योनि मिलतीहै ॥ ५९ ॥

दशकृत्वः पिबेदापः सावित्र्या चाभिमंत्रिताः ॥
ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्ध्येत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त कर्मोंको करनेवाला दसवार गायत्री पढ जल पिये और फिर सन्ध्योपासन करकै शुद्ध होताहै ॥ ६० ॥

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ॥
सर्वं तन्निष्फलं कुर्य्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

गीले वस्त्रोंको पहनकर अथवा घुटनोंसे दोनों हाथ बाहर करकै जो जप, हवन और प्रतिग्रह किया जाताहै, वह उसका सब निष्फल होजाताहै ॥ ६१ ॥

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥ ऊनाब्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥ शावे मासं तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥

नवश्राद्धमें भोजनकर चांद्रायण व्रतकरै, मासिक श्राद्धमें जीमकर पराक व्रत करै और डेढ महीनेके श्राद्धमें और छैः महीनेके श्राद्धमें भोजन करकै कृच्छ्र करै ॥ ६२ ॥ ऊनाब्दिकमें त्रिरात्र, और वरसीमें एकदिन व्रत करै और शवके अशौचमें खानेवाला एकमहीनेतक व्रत करे; अथवा कृच्छ्र करना कहाहै ॥ ६३ ॥

सर्पविप्रहतानां च शृंगिदंष्ट्रिसरीसृपैः ॥
आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ ६४ ॥

जो ब्राह्मण सर्पके विषसे, या सींगवाले सरीसृप इनसे मृतक होगयाहो, जो अपनेसे त्यागा-गयाहै इनका श्राद्ध न करै ॥ ६४ ॥

गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥
तं स्पृशंति च ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवंति ते ॥ ६५ ॥

जो मनुष्य गौके आघातसे मृतक होगयाहै और जो बंधनसे मरगयाहै, या ब्राह्मणद्वारा जो निहत हुआहै, इनके शवका जो स्पर्श करताहै वह दूसरे जन्ममें गौ, बकरी, घोडा इनकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ६५ ॥

अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यंति मनुराह प्रजापतिः ॥ ६६ ॥ त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

उनके दाहका कर्ता,और जो फाँसीका देनेवाला है, वह तप्तकृच्छ्र करनेंसे शुद्ध होताहै । यह मनुका वचन है ॥ ६६ ॥ तीन दिनतक गरम जल, तीन दिनतक गरम दूध, तीन दिनतक गरम घी, और तीन दिनतक वायुको भक्षण करके रहै ॥ ६७ ॥

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥ यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥ उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मघातकः ॥ सर्व्वे ते शुद्धिमृच्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥ ६९ ॥

गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, स्त्री, खेत, घर यदि इनको चुराले, और जिससे दुःखी होकर मनुष्य प्राणोंको त्यागदे उसीको ब्रह्महत्यारा कहतेहैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य धर्म नष्ट करनेके उद्योगसे उद्यत होकर साथ २ जाताहै उनमें जो मनुष्य एकका धर्म नष्ट करताहै वह मनुष्यही एकही ब्रह्महत्यारा और पापी है, और सब शुद्ध हैं ॥ ६९ ॥

पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवेश्मनि ॥
स मासार्द्धं चरेद्वारि मासं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥

पतित मनुष्यके यहांका जो मनुष्य अन्नभोजन करै या चांडालके यहांका भोजन करै तौ जो अज्ञानतासे भोजन कियाहो तौ पंद्रह दिनतक, और जानबूझकर खायाहो तौ एकही महीनेतक जलपान करै ॥ ७० ॥

यो येन पतितेनैव स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य जिस पतितका स्पर्श करनेंपर स्नान करनेंसे शुद्ध होताहै यदि उसीको उच्छिष्ट दशामें स्पर्श कियाहो तो प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७१ ॥

ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पंचमः ॥ ७२ ॥

ब्रह्महत्या करनेंवाला, मदिरा पीनेंवाला, चोरी करनेंवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरनेंवाला; और इनकी संगति करनेंवाला यह पांच महापातकी कहेहैं ॥ ७२ ॥

स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥
कर्वन्त्यनुग्रहं ये च तत्पापं तेषु गच्छति ॥ ७३ ॥

स्नेहके वशसे, वा लोभसे, वा भयसे, या दयासे जो पापका प्रायश्चित्त नहीं कराते वह पाप उनकोही लगताहै ॥ ७३ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ॥
तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचामेन शुचिर्भवेत् ॥ ७४ ॥

यदि उच्छिष्ट मनुष्यके द्वारा उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श होजाय तौ उसी समय स्नानकर आचमन करनेंसे शुद्ध होजाताहै ॥ ७४ ॥

कुब्जवामनषंढेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥ जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ ७५ ॥ क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥

बडाभाई यद्यपि कुबडा, बिलंदिया, नपुंसक, तोतला, महामूर्ख,जन्मसे अंधा, बहरा, गूंगा हो तौ उसका विवाह न होनेपर छोटा भाई पहले विवाह करले तो इसमें दोष नहींहै ॥७५॥ क्लीब, देशांतरमें रहनेवाला, पतित, जिसने संन्यास धर्मको ग्रहण करलियाहो, और जो योगशास्त्रका अभ्यास करताहो ऐसे बडे भाईके होतेहुए छोटाभाई विवाह करले तौ कोई दोष नहींहै ॥ ७६ ॥

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ॥
विक्रीणीत गजं चाश्वं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य कुए या बावडीको पाटदे, वृक्षोंको काटडाले, हाथी या घोडेको बेचतारहै उसको गोवधका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ७७ ॥

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥
तृतीये तु शिखावर्जं चतुर्थे तु शिखावपः ॥ ७८ ॥

जिस स्थलमें एक पादके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वहां शरीरके सम्पूर्ण रोमोंको कटादे, और द्विपादमें डाढी मूंछोंका छेदनकरावै, और त्रिपादमें शिखाके अतिरिक्त सम्पूर्ण केशोंका और चौथे पादमें शिखासहित मुंडन करावै ॥ ७८ ॥

चण्डालोदकसंस्पर्शे स्नानं येन विधीयते ॥ तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७९ ॥ चण्डालस्पृष्टभांडस्थं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥ तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ८० ॥ यदि नोत्क्षिप्यते तोयं शरीरे तस्य जीर्य्यति ॥ प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ८१ ॥ चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२॥

चांडालके जलको छूकर स्नान करै; और उच्छिष्ट ब्राह्मण यदि चांडालके जलको छूले तौ प्राजापत्य व्रतकरै ॥ ७९ ॥ यदि कोई ब्राह्मण चांडालके घडेका या उसके यहांके पात्रमें जल पीले तौ जो उसी समय वमन करदे तौ वह प्राजापत्य व्रतकरै ॥ ८० ॥ और जो यदि वमन न करै और वह पचजाय तौ सांतपन कृच्छ्र करै प्राजापत्य करना ठीक नहीं ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण सांतपन, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य करै; और शूद्रजाति चौथाई प्राजापत्य करै ॥ ८२ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना सूकरवायसैः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥ अज्ञानतः स्नानमात्रमा नाभेस्तु विशेषतः ॥ अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात्तदीयस्पर्शने मतम् ॥ ८४ ॥

यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, सूकर और काक यह छूलें तौ एक रात्रि उपवास करै पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ८३ ॥ यदि रजस्वला स्त्री अज्ञानसे किसीको नाभितक छूले तौ स्नान करनेसेही उसकी शुद्धि है, और नाभिसे ऊपर स्पर्शकरनेपर तीनरात उपवास करना उचित है ॥ ८४ ॥

बालश्चैव दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥
सद्य एव विशुद्ध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ८५ ॥

बालक यदि जन्मदिनसे दसदिनके बीचमेंही मरजाय; तौ उसी समय शुद्धि होजातीहै उसका अशौच और जलदान नहीं होता ॥ ८५ ॥

शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ॥
शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥

यदि मरणसूतकमें जन्मसूतक होजाय तौ शेषदिनोंसे ही जन्मसूतककी शुद्धि होतीहै, और जन्मसूतकके दिनोंसे मरणसूतक निवृत्त नहीं होता ॥ ८६ ॥

षष्ठेन शुद्ध्येतैकाहं पंचमे द्व्यहमेव तु ॥
चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥

छठी पीढीमें एक दिनका, पांचवी पीढीमें दो दिनका, चौथीमें सातदिनका और तीसरीमें दशदिनका सूतक होताहै ॥ ८७ ॥

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ॥
आ दाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥ ८८ ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री नहींहै उसे मरणके दिनसेही अशौच लगताहै; और जो वेदोक्त अग्निहोत्र करताहै उसको दाहपर्यंतही अशौच लगताहै ॥ ८८ ॥

आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥
अन्यभांडस्थिता ह्येते निष्क्रांताः शुचयः स्मृताः ॥ ८९ ॥

कच्चा मांस, घृत, सहत, फलसे उत्पन्न स्नेहद्रव्य अर्थात् बादामका तेल इत्यादि यह अन्य मनुष्यके पात्रमेंसे अपने पात्रमें आनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ८९ ॥

मार्जनीरजसा सक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ॥
नवांभसि तथा चैव हंति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ९० ॥

मार्जनीके मुखसे निकलीहुई धूरि यदि स्नानके जलमें या वस्त्रके जलमें या घटके जलमें, वा नये जलमें लगजाय तौ प्रथम कियेहुए पुण्य उसी समय नष्ट होजातेहैं ॥ ९० ॥

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु ॥
धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥

दिनमें कैथके वृक्षकी छायामें, रात्रिमें दही और सत्तूमें और सर्वदा आमलेके फलोंमें अलक्ष्मी निवास करतीहै ॥ ९१ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥
तत्रतत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस २ कार्यमें अपनेको संकीर्ण (पतित) विचारै उसी २ कार्यमें तिलोंसे हवन और आठसौ गायत्रीका जपकरै ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तधर्मशास्त्रभाषाटीका सम्पूर्णा ॥ १४ ॥

इति लिखितस्मृतिः समाप्ता ॥ १४ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ दक्षस्मृतिः १५.

भाषाटीकासमेता।

—∞◇∞—

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दक्षस्मृतिप्रारंभः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ॥ पारगः सर्वविद्यानां दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ १ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अर्थोंके जाननेवाले, सम्पूर्ण वेद और वेदके अंगोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण विद्याओंके पारको जाननेवाले दक्षनामक प्रजापति हुए ॥ १ ॥

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थितिः संहार एव च ॥ आत्मा चात्मनि तिष्ठत आत्मा ब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एतेषां तु हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥

उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और संहार इनके करनेमें सामर्थ्यवान् जो आत्मा है वही दक्षके देहमें स्थित था; और उनका मन ब्रह्ममें स्थित था ॥ २ ॥ उन्हीं दक्षने ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ,संन्यासी इन चारों वर्णोंके हितके निमित्त दाक्षनामक धर्मशास्त्रको निर्माणकिया॥३॥

जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ॥ स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥ भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते॥ अस्मिन्काले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥ उपनीते तु दोषोस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः ॥

जबतक बालककी आठ वर्षकी अवस्था न होजाय तबतक बालकको उत्पन्नहुए बालककी समान जाने, वह बालक गर्भस्थित बालककी समान है; उसका एक आकार मात्रही है ॥ ४ ॥ जबतक बालकका जनेऊ न हो तबतक भक्ष्य; अभक्ष्य, पेय, अपेय, सत्य और झूंठमें इस बालकको दोष नहींहै ॥ ५ ॥ यज्ञोपवीत होजानेपर निंदित कर्म करनेसे पापका भागी होताहै;

अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च ॥ ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद्गृही ॥ ७ ॥ द्विविधो ब्रह्मचारी स्यादुपकुर्वाणको ह्यथ ॥ द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः ॥ ८ ॥

जबतक सोलह वर्षकी अवस्था न हो तबतक व्यवहारका अधिकारी नहीं होता ॥ ६ ॥ जबतक वेदको पढै, और वेदोक्त व्रतको करै तबतक वह ब्रह्मचारी कहाताहै, इसके पीछे स्नातक होकर गृहस्थी होताहै ॥ ७ ॥ (पंडितोंने शास्त्रमें अनेक प्रकारके ब्रह्मचारी कहेहैं)

परन्तु ब्रह्मचारी दो प्रकारके हैं एक तौ उपकुर्वाणक, दूसरा नैष्ठिक, जो जन्मभरतक ब्रह्मचर्यके व्रतमेंही स्थित रहै ॥ ८ ॥

यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥
न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य प्रथम गृहस्थाश्रममें स्थित होकर फिर ब्रह्मचारी होताहै; और जो यतीभी नहींहै और वानप्रस्थभी नहींहै वह सम्पूर्ण आश्रमोंसे भ्रष्ट है ॥ ९ ॥

अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः ॥ आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ १०॥ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा॥ नासौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमाच्च्युतः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण एकदिनभी आश्रमसे हीन होकर न रहै कारण कि आश्रमशून्य होनेपर प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १० ॥ आश्रमरहित होकर जप, हवन, दान, और वेदपाठ इत्यादि द्विज जो कुछ कर्म करेगा उसका फल नहीं होगा ॥ ११ ॥

त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ॥
प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थआश्रम, वानप्रस्थआश्रम, इन तीनों आश्रमोंका आनुलोम्य है और प्रातिलोम्य नहींहै, इससे जो प्रातिलोम्यसे वर्तताहै उससेपरे अत्यन्त पापका कर्ता कोई नहींहै ॥१२॥

मेखलाजिनदंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥ गृहस्थो दानवेदाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥ त्रिदंडेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

मेखला, मृगचर्म, दंड इनसे ब्रह्मचारी और गृहस्थी दान और वेद इत्यादिसे अनुलोम कर्मोद्वारा वानप्रस्थ विदित होताहै ॥ १३॥ संन्यासी तीन दंडोंसे लक्षित होता है चारों आश्रमोंके यह पृथक् लक्षण हैं, जिस वानप्रस्थके यह लक्षण नहीं हों वह प्रायश्चित्तके योग्य है ॥ १४ ॥

उक्तं कर्म क्रमो नोक्तो न काल ऋषिभिः स्मृतः ॥
द्विजानां च हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति दाक्षे धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋषियोंन कर्म कहाहै परन्तु क्रम और काल नहीं कहा; यह सम्पूर्ण कार्य द्विजोंके हितके निमित्त दक्षमुनिने स्वयं कहेहैं ॥ १५ ॥

इति दक्षस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्द्विजेन दिने दिने ॥
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर द्विजोंको जो कर्म करना चाहिये वह उपकारी कर्म मैं सब कहताहूं ॥ १ ॥

उदयास्तमितं यावन्न विप्रः क्षणिको भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ २ ॥ संध्याद्यं वैश्वदेवांतं स्वकं कर्म समाचरेत् ॥ स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विजः ॥ ३ ॥ अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत् ॥ दिवसस्याद्यभागे तु कर्म तस्योपदिश्यते ॥ ४ ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पंचमे तथा ॥ षष्ठे च सप्तमे चैव अष्टमे च पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ विभागेष्वेषु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

ब्राह्मणगण सूर्यदेवके उदयसे अस्ततक नित्यकार्य, नैमित्तिककार्य और अन्य प्रकारके अनिंद्य काम्यकर्मको त्यागकर, क्षणकालभी न वितावै ॥ २ ॥ जो ब्राह्मण सन्ध्या, बलि वैश्वदेव इत्यादि अपने कर्मोंको त्यागकर अन्य वर्णका कर्म करताहै ॥ ३ ॥ अज्ञान अथवा लोभसे वह ब्राह्मण उस अन्यकर्मके करनेसे पतित होजाताहै, और ब्राह्मणको दिनके पहले भागमें जो कर्म करना कहाहै ॥ ४ ॥ और दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें और आठवें भागमें पृथक् २ ॥ ५ ॥ इन भागोंमें जो कर्म कहाहै उन सबको कहताहूं;.

उषःकाले च सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ॥ ६ ॥ ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥ अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्रवत्येष दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥ क्लिद्यंति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च ॥ ८ ॥ अंगानि समतां यांति उत्तमान्यधमैः सह ॥ नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥ ९ ॥ अस्नात्वा नाचरेत्किंचिज्जपहोमादिकं द्विजः ॥ प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥ सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ उषस्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ ॥ ११ ॥ प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥ प्रातःस्नानं प्रशंसंति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ॥ १२ ॥ सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥ गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः ॥ आरोग्यमायुश्च मनोनुरुद्धदुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ॥ १४ ॥

जिससमय प्रातःकाल होजाय तब यथार्थ शौचकरके ॥ ६ ॥ दंतधावनके उपरान्त स्नान करै, नौ छिद्रोंसे युक्त और अत्यन्तमलीन यह शरीर है ॥ ७ ॥ दिन और रात मलमूत्र इसमेंसे झरताहै, प्रातःकालके स्नानकरनेसे इस शरीरकी शुद्धि होतीहै, जब मनुष्य सोजाताहै, उससमय इन्द्रियें ग्लानिको प्राप्तहोतीहैं, और झरतीहैं ॥ ८ ॥ उत्तम मध्यम सभी अंग एक होजातेहैं; और सोनेसे उठाहुआ मनुष्य विविध भांतिके पसीनोंसे पूर्ण होजाताहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मण विना स्नानकिये कभी जप और हवनआदि न करे, जो द्विज प्रातःकालही उठकर स्नान करताहै ॥ १० ॥ उसके सात जन्मके कियेहुए पाप तीन दिनमेंही नष्ट होजातेहैं प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर सन्ध्याके समयका जो स्नान है ॥ ११ ॥ वह प्राजापत्य व्रतके समान महापापोंका नाश करनेवाला है; प्रातःकालका स्नान इसलोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है, उसकी प्रशंसा सभी करतेहैं ॥ १२ ॥ प्रातःकालका स्नान कर मनुष्यदेहकी पवित्रतासे सम्पूर्ण जपहोमआदिके करनेका अधिकारी होताहै ॥ १३ ॥ जो सज्जन

पुरुष स्नानमें तत्पर होताहै उसमें यह दशगुण विद्यमान होतेहैं; रूप, पुष्टता, बल, तेज, आरोग्य, अवस्था, दुःस्वप्नका नाश, धातुकी वृद्धि, तप और बुद्धि ॥ १४ ॥

स्नानादनंतरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते ॥ अनेन तु विधानेन स्वाचांतः शुचितामियात् ॥ १५ ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिबेदंबु वीक्षितम् ॥ संवृत्यांगुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ १६ ॥ संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥ ततः पादौ समभ्युक्ष्य अंगानि समुपस्पृशेत् ॥ १७ ॥ अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥ १८ ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥ १९ ॥ संध्यायां च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ॥२०॥ हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥ वैश्यः प्राशितमात्राभिर्जिह्वागाभिः स्त्रियोंऽद्विजाः ॥ २१ ॥

फिर स्नानके उपरान्त आचमन करै; इस विधिके अनुसार आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र होजाताहै ॥ १५ ॥ पहले दोनों हाथ और दोनों पैरोंको धोकर तीनवार जलको देखकर पिये; फिर अंगूठेकी जडसे तीनवार मुखको पोंछै ॥ १६ ॥ और तीनअंगुली मिलाकर प्रथम मुखका स्पर्श करै; इसके पीछे पैरोंको छिडककर अंगोंका स्पर्शकरै ॥ १७ ॥ अंगूठे और प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्शकरै; इसके पीछे अंगूठे और अनामिकासे वारंवार नेत्र और कानोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ अंगूठे और कनिष्ठिकासे नाभिका और हाथके तलसे हृदयका स्पर्शकरै, सम्पूर्ण उंगलियोंसे शिरका, और हाथके अग्रभागसे भुजाओंका स्पर्शकरै ॥ १९ ॥ सन्ध्याके समय, प्रातःकाल और मध्याह्नके समयमें पूर्वोक्त आचमनकरै ॥ २० ॥ हृदयतक आचमनका जल पहुंचनेसे ब्राह्मण, कंठतक पहुंचनेसे क्षत्रिय, प्राशितमात्र जल पहुंचनेसे वैश्य, और जिह्वातक जलके स्पर्शसे स्त्री और शूद्र पवित्र होतेहैं ॥ २१ ॥

संध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥ स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ॥ २२ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२३॥ संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ॥ स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥ २४ ॥ ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः ॥ एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव तु ॥ २५ ॥ देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमंगलमीक्षणम् ॥ देवकार्यस्य सर्वस्य पूर्वाह्णे तु विधीयते ॥ २६ ॥ देवकार्याणि पूर्वाह्णे मनुष्याणां तु मध्यमे ॥ पितॄणामपराह्णे तु कार्याण्येतानि यत्नतः ॥ २७ ॥ पौर्वाह्णिकं तु यत्कर्म यदि तत्सायमाचरेत् ॥ न तस्य फलमाप्नोति वंध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ २८ ॥ दिवसस्याद्यभागे तु सर्वमेतद्विधीयते ॥ द्वितीये चैव भागे तु वेदाभ्यासो विधीयते ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण सन्ध्या उपासना नहीं करता वह जीताहुआही शूद्र है; और मरकर वह कुत्तेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ २२ ॥ सन्ध्याहीन मनुष्य नित्य अशुद्ध है, और वह सम्पूर्ण कर्मोंके अयोग्य है, वह जो कुछ कर्म करताहै उसका फल उसे नहीं मिलता ॥ २३ ॥

सन्ध्याके उपरान्त स्वयं हवन करना कहाहै; कारण कि जो फल स्वयं होम करनेका है वह दूसरेसे करानेसे नहीं मिलता ॥ २४ ॥ ऋत्विजका पुत्र, गुरुभाई, भानजा, और राजा इह्नोंने जो हवन कियाहै वह स्वयं कियेही की समान है ॥ २५ ॥ सन्ध्या उपासना करने उपरान्त होम और देवपूजा करके गुरुकी पूजा और मंगलद्रव्योंका दर्शन करै; और दैवकार्य मध्याह्नसे पहलेही करना कहाहै ॥ २६ ॥ देवकार्य पूर्वाह्णमें, मनुष्योंके कार्य मध्याह्नमें, और पितरोंके कार्य मध्याह्नसे पीछे यत्नसहित करै ॥ २७ ॥ पूर्वाह्णमें कर्तव्य कर्मको जो मनुष्य सायंकालमें करताहै वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता, जिस भांति वंध्यास्त्रीके मैथुनसे फल प्राप्तनहीं होता ॥ २८॥ दिनके प्रथम भागमें सन्ध्या इत्यादि सम्पूर्ण कर्मको कर दूसरे भागमें वेदको पढै ॥ २९ ॥

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते ॥ ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडंगसहितस्तु यः ॥ ३० ॥ वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ॥ प्रदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा ॥ ३१ ॥ समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ॥

ब्राह्मणोंको षडंगसहित वेदशास्त्रका अभ्यास पंचयज्ञकी समान है, और यही महातप है ॥ ३० ॥ प्रथम वेदका अभ्यास पांच प्रकारका है, एक तो गुरुके मुखसे वेदको सुनना, दूसरा वेदका विचार, तीसरा अभ्यास, चौथा जप, पांचवां शिष्योंको पढाना ॥ ३१ ॥ समिधें, पुष्प, कुशा इत्यादिका संग्रह दूसरे भागमें करै,

तृतीये चैव भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ३२ ॥ माता पिता गुरुर्भार्या प्रजा दीनः समाश्रितः॥ अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥ ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः ॥ अन्योऽप्यधनयुक्तश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३४ ॥ सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यं तु विशेषतः ॥ ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥ नरकः पीडने तस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥ ३६ ॥ स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ॥ जीवंतो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरंभराः॥३७॥ बह्वर्थं जीव्यते कैश्चित्कुटुंबार्थे तथा परैः ॥ आत्मार्थेऽन्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ॥ ३८ ॥ दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ अदत्तदाना जायंते परभाग्योपजीविनः ॥ ३९ ॥ यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यज्जुहोषि दिने दिने ॥ तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ ४० ॥

तीसरे भागमें पोष्यवर्ग और अर्थकी चिन्ता करनी कर्तव्य है ॥ ३२ ॥ माता, पिता, गुरु, स्त्री, संतान, दीन, समाश्रित, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि इनको पोष्यवर्ग कहाहै ॥ ३३ ॥ तथा जाति, बंधु, असमर्थ, अनाथ, समाश्रित और धनी इन्हेंभी पोष्यवर्ग कहाहै ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके निमित्त अन्नआदि बनावै, और ज्ञानवान् मनुष्यको दे, जो इसके विपरीत करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३५ ॥ पोष्यवर्गके पालन करनेसे उत्तम-

स्थान स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै, और पोष्यवर्गको पीडित करनेसे नरकमें जाताहै, इसकारण यत्नसहित पोष्यवर्गका पालन करै ॥ ३६ ॥ उसी मनुष्यका जीवन सार्थक है, जो कि बहुतोंका जीवनमूल है; और जो केवल अपनेही उदरभरनेमें आसक्त हैं वह जीतेहुएभी मृतककी समान हैं ॥ ३७ ॥ कोई मनुष्य तो बहुतोंके लिये ही जीवन धारण करतेहैं; और कोई मनुष्य केवल अपने कुटुम्बके लिये जीवन धारण करतेहैं और कोई अपने उदर भरनेके लियेही दुःखी होकर अपने पालनमेंभी समर्थ नहीं होते ॥ ३८ ॥ इसकारण अपनी वृद्धिकी इच्छा करनेवाला दीन, अनाथ और सज्जन इनको दान दे; कारण कि जिन्होंनें दान नहीं दियाहै वह पराये भाग्यसेही जीविका निर्वाह करनेंके लिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥ जो बुद्धिमान् और सज्जनको दान करताहै, जो प्रतिदिन हवन करताहै वह धन्य है; और उसीको मैंभी धन्य मानताहूं; जो धन दान वा हवनमें नहीं लगाता वह मनुष्य धनकी रक्षा करनेवाला है ॥ ४० ॥

चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥ तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रिमे जले ॥ ४१ ॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥ तेषां मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्विद्यते त्रिधा ॥ ४२ ॥ मलापकर्षणं पश्चान्मंत्रवत्तु जले स्मृतम् ॥ संध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥ मार्जनं जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः ॥ उपस्थानं ततः पश्चाद्गायत्रीजप उच्यते ॥ ४४ ॥ सविता देवता यस्य मुखमग्निस्त्रिपात्स्थिता ॥ विश्वामित्र ऋषिश्छंदो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ४५ ॥

दिनके चौथे भागमें स्नानके निमित्त जल, तिल, फल और कुशा आदि लावै और नदीआदिके अकृत्रिम जलमें स्नान करै ॥ ४१ ॥ स्नान तीनप्रकारका कहाहै; नित्य जो प्रतिदिन किया जाताहै, नैमित्तिक जो सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण इत्यादिमें कियाजाताहै, और काम्य जो स्वर्गादिकी कामनासे कियाजाताहै ॥ ४२ ॥ नित्य स्नानभी तीनप्रकारका है, जिस स्नानसे सम्पूर्ण शरीरका मैल धुलजाय इसका नाम मलापहरण स्नान है, इसके पीछे जलमें संकल्प करकै मंत्रोंसहित जो स्नान कियाजाताहै वह दूसरा है; दोनों रीतिसे जो सन्ध्यामें स्नान किया जाताहै यही तीनप्रकारका स्नान हुआ ॥ ४३ ॥ जलके बीचमें मार्जन करै, प्राणायाम करै इसके पीछे स्तुतिकर गायत्रीका जपकरै ॥ ४४ ॥ जिस गायत्रीके सूर्य देवता हैं, मुख अग्नि, विश्वामित्र ऋषि, और त्रिपाद गायत्री छन्द है, वह गायत्री सर्वोत्तम है ॥ ४५ ॥

पंचमे तु तथा भागे संविभागो यथार्थतः ॥ पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ॥ ४६ ॥ देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ॥ गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४७ ॥ त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ॥ सीदमानेन तेनैव सीदंतीहेतरे त्रयः ॥ ४८ ॥ मूलत्राणे भवेत्स्कंधः स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः ॥ मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति॥४९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ॥ राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च

सर्वदा ॥ ५० ॥ गृहस्थोपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ॥ नचैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ५१ ॥ अहुत्वा च तथा जप्त्वा अदत्त्वा यश्च भुंजते ॥ देवादीनामृणी भूत्वा दरिद्रश्च भवेन्नरः ॥ ५२ ॥ एक एव हि भुंक्तेन्नमपरोन्नेन भुज्यते ॥ न भुज्यते स एवैको यो भुंक्ते तु समांशकम् ॥ ५३॥ विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयालुकः ॥ देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ॥ ५४ ॥ दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ॥ गुणा यस्य भवंत्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥ ५५ ॥ संविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ॥ ५६ ॥

दिनके पांच भागमें यथायोग्य विभाग करै; पितृ, देवता, मनुष्य और कीट पतंग इनका विभाग करदे; यह दक्ष ऋषिने कहाहै ॥ ४६ ॥ देवता, मनुष्य और कीट पतंग यह प्रतिदिन गृहस्थीद्वारा जीविका निर्वाह करतेहैं, इसकारण गृहस्थाश्रमही श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ तीनों आश्रमोंकी योनि गृहस्थीकोही कहाहै, संसारमें उसके दुःखी रहनेसे अन्य आश्रमीभी दुःखी होजातेहैं ॥ ४८ ॥ जिस भांति वृक्षकी जडकी रक्षाकरनेसे डाली और डालियोंसे पत्ते होजातेहैं; और एक जडके नाश होनेसेही सब नष्ट होजातेहैं ॥ ४९ ॥ इसकारण यत्नसहित गृहस्थीकी रक्षा और उसकी पूजा तथा सर्वदा मान राजा और तीनों आश्रमी करैं ॥ ५० ॥ कर्ममें परायण गृहस्थी घरमें रहनेसेही गृहस्थी नहीं होता, अर्थात् घर उसका बन्धन नहींहै; और जो गृहस्थी अपने कर्मसे हीनहै वह स्त्री पुत्रसे गृहस्थी नहीं होता, अर्थात् पुत्र इत्यादि उसके नरकमें सहायक नहीं होते ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य हवन और जपके विना किये भोजन करते हैं वह देवता और मनुष्य आदिके ऋणीहोकर दरिद्री होतेहैं ॥ ५२ ॥ कोई मनुष्य तौ अन्न खातेहैं और किसी मनुष्यको अन्नही खाताहै; जो देवता आदिको भागदेकर खाताहै केवल उसीको अन्न नहीं खाता ॥ ५३ ॥ जिसका स्वभाव बांटकर खानेका है; जिसमें क्षमा और दया है वा जो देवता और अतिथियोंका भक्त है वह गृहस्थीही धार्मिक है ॥ ५४ ॥ दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धि, त्याग, कृतज्ञता इतने गुण जिसमें विद्यमानहों वही यथार्थ गृहस्थी है ॥ ५५ ॥ गृहस्थीको उचित है सबको बांटकर पीछे आप भोजनकर आनन्दसहित उस अन्नको पचावै ॥ ५६ ॥

इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठं वा सप्तमं नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु बहिःसंध्या ततः पुनः ॥ ५७ ॥ होमं भोजनकृत्यं च यच्चान्यद्गृहकृत्यकम् ॥ कृत्वा चैवं ततः पश्चात्स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥ ५८ ॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ॥ यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५९ ॥

दिनका छठा वा सातवां भाग इतिहास और पुराणादिके पाठसे बितावै; लोककी यात्रा आठवें भागमें करै; इसके पीछे सन्ध्या करनेको बाहर जाय ॥ ५७ ॥ फिर हवन, भोजनादि तथा जो कुछ घरका काम काज हो उसको समाप्तकर इसप्रकार कुछ पढै ॥ ५८ ॥ प्रदोषके पहले पिछले दोनों पहरोंको वेदाभ्याससे व्यतीत करै, और दोपहर शयनकरै, जो द्विज इसभांति आचरण करताहै वह ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥

नैमित्तिकानि कर्माणि निपतंति यथायथा ॥ तथातथा तु कार्याणि न कालस्तु विधीयते ॥ ६० ॥ यस्मिन्नेव प्रयुंजानो यस्मिन्नेव प्रलीयते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वाध्यायं च समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥

नैमित्तिक या काम्यकर्म जिस समय जिसभांति उपस्थित हो उसे उसी भावसे निर्वाह करै, स्वस्थकालकी प्रतीक्षा न करै ॥ ६० ॥ वेदके अभ्यासमें लगकर वेदमेंही लीन होजाताहै; इसकारण यत्नपूर्वक वेदका अभ्यासकरना उचित है ॥ ६१ ॥

सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ॥
भुंजानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६२ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सर्वदा मध्यके दोनों पहरोंमें हवनसे बचाहुआ जो घृत और भात है उसकाही भोजनकरै, यथासमय भोजन और शयन करनेसे ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होता ॥ ६२ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुधा नव गृहस्थस्य ईषद्दानानि वै नव॥ नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवैव तु ॥ १ ॥ प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव ॥ सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥ २ ॥ अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा ॥ नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥

गृहस्थीको नौ अमृत, नौ ईषत्दान, नौ कर्म और नौ विकर्म कहेहैं ॥ १ ॥ और नौ गुप्त, नौ प्रकाशके योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल हैं ॥ २ ॥ सर्वदा नौ वस्तु अदेय हैं, यही नौ वस्तु गृहस्थीकी उन्नतिका कारण हैं ॥ ३ ॥

सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ॥ मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दत्त्वा चतुष्टयम् ॥ ४॥ अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः॥उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥

अब नौ सुधावस्तुओंको कहताहूं; यदि सज्जन पुरुष अपने घरपर आवे तौ मन, नेत्र, मुख, वाणी इन चारोंको सौम्य रक्खै ॥ ४ ॥ इसके पीछे देखतेही उठ खडाहो आनेका कारण पूछे, प्रीतिसहित वार्तालाप करै, सेवाकरै, चलते समय पीछेर कुछ दूर चलै, इसभांति नौओंको प्रतिदिन करै ॥ ५ ॥

ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ॥ पादशौचं तथाभ्यंग आश्रयः शयनानि च ॥ ६ ॥ किंचिद्द्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥ मृज्जलं चार्थने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥

और यह नौ ईषत् (तुच्छ) ९ दान हैं; भूमि, जल, तृण, पैरधोना, उबटन, आश्रय, शय्या, ॥ ६ ॥ और अपनी शक्तिके अनुसार थोडा २ दे, कारण कि विना भोजनके

गृहस्थीके घरमें निवास नहींहै; और अतिथिको मट्टी वा जल दे यह नौ ईषद्दान घरमें सर्वदा होतेहैं ॥ ७ ॥

संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥वैश्वदेवं क्षमातिथ्यमुद्धृतं चापि शक्तितः ॥ ८ ॥ पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ॥ गुरुमातृपितॄणां च संविभागो यथार्हतः ॥९॥ एतानि नव कर्माणि

सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवताका पूजन, बलि वैश्वदेव, अपनी शक्तिके अनुसार अन्न देकर अतिथिका सत्कार, ॥ ८ ॥ और पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता, पिता इन सबका यथारीतिसे विभाग ॥ ९ ॥ यह नौ कर्म हैं;

विकर्माणि तथा पुनः॥ १० ॥ अनृतं पारदार्यं च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥ अगम्यागमनापेयपानं स्तेयं च हिंसनम् ॥ ११ ॥ अश्रौतकर्माचरणं मैत्रधर्मबहिष्कृतम् ॥ नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

और यह नौ विकर्म हैं ॥ १० ॥ कि झूंठ, पराई स्त्री, अभक्ष्यका भक्षण, अगम्यस्त्रीमें गमन, पीनेके अयोग्य वस्तुका पान, चोरी, हिंसा ॥ ११ ॥ वेदरहित कर्मोका करना, मैत्रकर्मसे बाह्य रहना, यह नौ कर्म निन्दित हैं इन सबको त्यागदे ॥ १२ ॥

पैशुन्यमनृतं माया कामः क्रोधस्तथाऽप्रियम् ॥ द्वेषो दंभः परद्रोहः

और चुगली, झूंठ, माया, काम, क्रोध, अप्रिय, द्वेष, दंभ, दूसरोंसे द्रोह, येभी नौ विकर्मही हैं. इन सबकोभी त्यागदे;

प्रच्छन्नानि तथा नव ॥ १३ ॥ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो मैथुनभेषजे ॥ तपो दानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ १४ ॥

नौ प्रच्छन्न ये हैं कि,॥ १३ ॥ अवस्था, धन, घरका छिद्र, मन्त्र, मैथुन, भेषज,तप, दान, अपमान यह नौ सर्वदा छिपाने योग्य हैं ॥ १४ ॥

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥ कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापमकुत्सनम् ॥ "प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा" ॥ १५ ॥

और प्रायोग्य कर्म (अर्थात् उत्तमर्णने अधमर्णको ऋणदेना) ऋणकी शुद्धि,(वापीस देदेना) दान, पढना, बेचना, कन्याका दान, वृषोत्सर्ग, एकान्तमें कियाहुआ पाप, और अनिंदा, ये नौ प्रकाशित करैं ॥ १५ ॥

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥
दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत् ॥ १६ ॥

माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र,उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन इनको देना सफल है॥१६॥

धूर्त्ते वंदिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे ॥
चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥

और धूर्त्त, बन्दी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु, चारण, चोर इनका देना निष्फल है ॥ १७ ॥

सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ॥ अन्वाहितं च निक्षेपं सर्वस्वं चान्वये सति ॥ १८ ॥ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ॥ यो ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

इकट्ठी भिक्षा, न्यास, कोश, स्त्री और स्त्रियोंका धन, अन्वाहित, निक्षेप, और वंशके होते सर्वस्व यह नौ वस्तुऐं आपत्तिकाल आजानेपरभी देनी उचित नहीं; उन्है देनेवाला मूर्ख है और वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥

नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ॥
इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव मुंचति ॥ २० ॥

इन पूर्वोक्त नवनवक इक्यासीको जो मनुष्य जानताहै वह मनुष्योंका अधिपति है; उसको नीति इस लोक और परलोकमें नहीं छोडती ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्वद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ॥ सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ॥ २१ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित्क्रियते परे ॥ यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने सुखकी अभिलाषा करताहै वह अपनेही समान दूसरेकोभी देखै कारण कि जिस भांति सुख दुःख अपनेको होताहै उसी भांति दूसरेकोभी होताहै ॥२१ ॥ जो सुख दुःख दूसरेके लिये किया जाताहै वह सब अपनी आत्मामेंही आकर प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ॥ क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥ २३ ॥ सुखं वांछंति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ॥ तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

और क्लेशके विना पाये धन नहीं मिलता और विना धनके कर्म नहीं होता; कर्महीन मनुष्यसे धर्म नहीं बनता, धर्महीनको सुख नहीं मिलता ॥ २३ ॥ सुखकी अभिलाषा सभी करतेहैं; और वह सुख धर्मसेही मिलताहै; इसकारण सम्पूर्ण वर्णोंको यत्नसहित धर्म करना उचित है ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥ दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥ २५ ॥ समद्विगुणसाहस्रमानंत्यं च यथाक्रमम् ॥ दाने फलविशेषः स्याद्धिंसायां तावदेव तु ॥ २६ ॥

आर जो धन न्यायसे प्राप्तहुआहै उस धनसे परलोकके कर्म करने उचित हैं; और उत्तम अवसरमें विधिसहित सुपात्रको दानदे ॥ २५ ॥ उस दानका फल क्रमानुसार सम, दूना, सहस्रगुना और अनन्त इस भांति विशेषरीतिसे होताहै और उतनाही हिंसामें पापकी वृद्धि जानलेना ॥ २६ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्य्ये त्वनंतं वेदपारगे ॥ २७ ॥ विधिहीने यथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥ न केवलं तद्विनश्येच्छेषमप्यस्य नश्यति ॥ २८ ॥

ब्राह्मणसे अन्यको देना सम है, अर्थात् जितना दिया उतनाही उसका फल है, और ब्राह्मणब्रुवके देनेसे दुगुना है; आचार्यको देनेसे सहस्रगुना, और जो वेदके पारको जानताहै उसके देनेसे अनंत फल होताहै ॥ २७ ॥ और जो पात्र विधिसे हीन है उसे जो प्रतिग्रह दियाजाताहै वही केवल व्यर्थ नहीं है वरन उसका शेषदानभी नष्ट होजाताहै ॥ २८ ॥

व्यसनप्रतिकारार्थं कुटुंबार्थं च याचते ॥
एवमन्विष्य दातव्यमन्यथा न फलं भवेत् ॥ २९ ॥

दुःखके दूर करनेके लिये और जीवनके लिये जो मांगे उसको ढूंढकरभी दे यह विधि है ॥ २९ ॥

मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥ यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ३० ॥ यच्छ्रेयो नाग्निहोत्रेण नाग्निष्टोमेन लभ्यते ॥ तच्छ्रेयः प्राप्नुयाद्विप्रो विप्रेण स्थापितेन वै ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य माता पितासे हीन किसीभी बालकका संस्कार तथा विवाहआदि कराकर गृहस्थधर्ममें स्थितकरताहै उसके पुण्यकी संख्या नहीं हो सकती ॥ ३० ॥ जो कल्याण अग्निहोत्र और अग्निष्टोम यज्ञके करनेसे नहीं मिलता उस कल्याणको वही ब्राह्मण प्राप्तकरताहै जो उपरोक्त प्रकारसे विवाहादि संस्कार कराकर अपने कर्ममें स्थित है ॥ ३१ ॥

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चात्मदयितं भवेत् ॥
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ३२ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो अपनेको संसारमें इष्ट और प्रिय है उसी २ वस्तुको अक्षय पुण्यकी अभिलाषा करनेवाला गुणवान् मनुष्य दान करै ॥ ३२ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छंदानुवर्तिनी ॥ गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ १ ॥ तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ २ ॥

पुरुषोंकी स्त्रीही गृहाश्रमका मूल है यदि स्त्री आज्ञाकारिणी हो, तथा वशमें हो तो गृहस्थाश्रमसे परे और कोई श्रेष्ठ सुखका साधन नहींहै ॥ १ ॥ यदि स्त्री वशवर्तिनी है तौ पुरुष स्त्रीके साथ धर्म, अर्थ, काम इन तीनों वर्गोंके फलको भोगताहै ॥ २ ॥

प्राकाम्ये वर्तमाना या स्नेहान्न तु निवारिता ॥
अवश्या सा भवेत्पश्चाद्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३ ॥

यदि स्त्री इच्छानुसार नहीं चलनेवाली है उस स्त्रीको पुरुष स्नेहके वशसे निवारण नहीं करै तौ वह स्त्री फिर बिलकुल काबूसे बाहर होजातीहै, जिस भांति अल्परोगके होनेपर उसकी चिकित्सा न करनेसे पीछे वह बडा कष्टदायक होजाताहै ॥ ३ ॥

अनुकूला नवाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा ॥
आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥ ४ ॥

जो स्त्री स्वामीके अनुकूल आचरण करती है वाक्यदोषरहित (अर्थात् विनययुक्त भाषण-करनेवाली), कार्यमें कुशल, सती, मीठे वचन बोलनेवाली और जो स्वयंही धर्मकी रक्षा करतीहै और पतिमें भक्ति करनेवाली है वह स्त्री मनुष्य नहीं वरन देवताकी समान है ॥४॥

अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य इहैव हि ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥५॥ स्वर्गेपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ॥ रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तदा कष्टतरं नु किम् ॥ ६ ॥ गृहवासः सुखार्थो हि पत्नीमूलं च तत्सुखम् ॥ सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥ ७ ॥ दुःखायान्या सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ८ ॥ जलौका इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ॥ सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति ॥ ९ ॥ जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ॥ इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ १० ॥ साशंका बालभावे तु यौवनेऽभिमुखी भवेत् ॥ तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥ ११ ॥ अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ॥ एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ १२ ॥ प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ॥ भर्तुः प्रीतिकरी या तु भार्या सा चेतरा जरा ॥ १३ ॥

जिस पुरुषकी स्त्री वशमें है वह इसीलोकमें स्वर्ग भोगताहै; और जिसकी स्त्री वशमें नहींहै वह नरक भोगताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ स्वर्गभी एक दुर्लभ पदार्थ है स्त्री पुरुषोंमें परस्पर प्रेम होना; स्त्री पुरुषोंमें एक अनुराग करनेवाला और एक विरक्त हो; तो इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ॥ ६ ॥ गृहस्थाश्रममें निवास केवल सुखकेही लिये है, परन्तु गृहस्थाश्रममें स्त्रीही सुखका मूल है; जो स्त्री विनययुक्त और मनके भावको जानतीहै और जो वशमें है वह यथार्थ स्त्री कहनेके योग्य है ॥ ७ ॥ उपरोक्त गुणोंके विपरीत स्वभाव होनेपर स्त्रियें केवल दुःख भोगतीहैं और उनका मन सर्वदा दुःखी रहताहै; पुरुषोंकी स्त्रीही यदि प्रतिकूल आचरणकरनेवाली है, तौ परस्परमें चित्त नहीं मिलता, यदि पुरुषके दो स्त्री हों तौ दोनोंका चित्त दुःखी रहताहै ॥ ८ ॥ सब स्त्रियें जलौकाकी समान हैं, अलंकार, वस्त्र, और अन्न इत्यादिसे भलीभांति पालित होनेपर सर्वदा पुरुषोंके रक्तशोषण करतीहैं ॥९॥ वह क्षुद्र जलौका केवल रक्तशोषण करती है; परन्तु स्त्रीरूप जलौका पुरुषोंके रक्त, धन, मांस, वीर्य्य, बल, और सुख सबका शोषण करतीहै, अर्थात् स्त्रियें पुरुषोंको एक दंड(घडी) भी स्वच्छन्दतासे नहीं रहने देती ॥ १० ॥ जब परस्परमें दोनोंकी अवस्था अल्प है तब स्त्रियोंको सर्वदा शंका रहती है, जब परस्परमें दोनोंकी युवा अवस्था होजातीहै तब स्वामीके प्रति स्त्रीका टेढापन (रोष) होताहै, अर्थात् इच्छानुसार न चलतीहै और जब स्वामीकी अवस्था वृद्ध होजातीहै तब उसको तृणकी समान तुच्छ जानतीहै ॥ ११ ॥ जो स्त्री पतिके वशमें है, वाक्यदोषसे रहित है, (अर्थात् विनययुक्त भाषण करनेवाली हो,) कर्ममें दक्ष, सती

और पतिव्रता है, और यह सम्पूर्ण गुण जिस स्त्रीमें विद्यमान हैं वह स्त्री निश्चयही लक्ष्मीका स्वरूप है ॥१२॥ जो स्त्रियें सर्वदा प्रसन्नचित्त रहतीहैं स्थान और मानकी ज्ञाता स्वामीमें प्रीति करनेवाली गृहोपकरण, द्रव्योंमें अवस्थान और परिमाणविषयमें अभिज्ञ वह स्त्रीही स्त्री कहनेके योग्य है और जिसमें यह गुण न हों वह केवल शरीरको क्षयकरनेवाली जरास्वरूप है ॥१३॥

शिष्यो भार्या शिशुर्भ्राता पुत्रो दासः समाश्रितः ॥
यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥ १४ ॥

जिस गृहस्थके शिष्य, स्त्री, बालक, भाई, मित्र, दास और आश्रित नियमसहित चलतेहैं उसका संसारमें गौरव होताहै ॥ १४ ॥

प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी ॥ दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥ १५ ॥ धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ॥ दोषे सति न दोषः स्यादन्या भार्या गुणान्विता ॥ १६ ॥

पहली विवाहीहुई स्त्री धर्मपत्नी है, दूसरी विवाहिता स्त्री केवल रति बढानेके निमित्त है, उस स्त्रीका फल केवल इस लोकमेंही है परलोकमें नहीं ॥ १५ ॥ यदि पहली विवाहिता स्त्रीमें कोई दोष नहींहो तौ उसे धर्मपत्नी कहतेहैं; और यदि उसमें कोई दोष हो और दूसरी स्त्रीमें कोई गुण हो तौ दूसरे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होगा ॥१६॥

अदुष्टाऽपतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत् ॥
स जीवनांते स्त्रीत्वं च वंध्यत्वं च समाप्नुयात् ॥ १७ ॥

जो पुरुष दोषरहित विना पतित ऐसी स्त्रीको यौवनअवस्थामें त्यागताहै, वह पुरुष मरकर स्त्रीयोनिको प्राप्त हो वंध्यत्वको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ॥
शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १८ ॥

जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पतिका तिरस्कार करतीहै वह स्त्री, कुतिया, गीधनी, मकरी वारंवार होतीहै ॥ १८ ॥

मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् ॥ सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ २० ॥ चण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ॥ तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैस्सह वासयेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और पतिके मरनेके उपरान्त जो स्त्री सती होजातीहै; वह शुभ आचरण करनेवाली होती है, और स्वर्गमें देवताओंसे पूजित होतीहै, ॥ १९ ॥ सर्पका पकडनेवाला बिलमेंसे जिसप्रकार सर्पको निकालताहै उसी प्रकार वह स्त्री पतिका उद्धार कर उसके साथ आनंद भोगतीहै ॥ २० ॥ चांडाल, अंत्यज, संन्यासी और तापस इनके उत्पन्नहुए संतानोंको चांडालके साथही रक्खै ॥ २१ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

उक्तं शौचमशौचं च कार्यं त्याज्यं मनीषिभिः ॥
विशेषार्थं तयोः किंचिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

बुद्धिमानोंनें शौचको करना और अशौचका त्याग जो कहाहै, उन दोनोंको हितकी इच्छासे में विशेषतासे कहताहूं ॥ १ ॥

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥ शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ २ ॥ शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथांतरम् ॥ ३ ॥ अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यंतरं वरम् ॥ उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरःशुचिः ॥ ४ ॥

शौचके विषयमें सर्वदा यत्नकरना कर्तव्य है ब्राह्मणोंके पक्षमें शौचही सम्पूर्ण धर्म और कर्मोंका मूल है; शौच आचाररहित हुए ब्राह्मणोंके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजातेहैं ॥ २ ॥ शौच दो प्रकारका है एक तो बाह्य और दूसरा आभ्यंतर. मट्टी और जलसे बाह्य शौच होता है और मनकी शुद्धिसे आन्तरिक शौच होताहै ॥ ३ ॥ अशौचमें बाह्य शौच श्रेष्ठ है, और बाह्य शौचसे आन्तरिक शौच श्रेष्ठ है, जो इन दोनोंसे शुद्ध है वही शुद्ध है दूसरा नहीं ॥ ४ ॥

एका लिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ॥ उभयोः सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः ॥५॥ गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥ द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥

बाह्य शौचका नियम कहताहूं, प्रथम मलत्याग करनेंके विषयमें जो करना कर्तव्य है उसे श्रवणकरो. लिंगको एकवार, गुदामें तीनवार वा दोनोंमें तीन या चारवार, और बांये हाथमें दशवार तथा दोनों हाथोंमें सातवार और दोनों पैरोंमें तीनवार मट्टी लगावै ॥ ५ ॥ यह शौच गृहस्थियोंको कहाहै; ब्रह्मचारियोंको दुगुना वानप्रस्थको तिगुना, संन्यासीको चौगुना करना कहाहै ॥ ६ ॥

अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ॥ द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्तिता ॥ ७ ॥ लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वी पूर्यते यया ॥ एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥ ९ ॥

गुदामें तीनवार मिट्टी लगानेको कहाहै, इससे पहलीवार मट्टी आधी पसलीकी बराबर और दूसरी तीसरी वारमें उससेभी आधी हो ॥ ७ ॥ और तीन अंगुल भरजांय इतनी मट्टी लिंगमें लगावै यह शौचका परिमाण गृहस्थियोंके लिये कहाहै, ब्रह्मचारियोंको इससे दुगुना करना उचित है ॥ ८ ॥ वानप्रस्थोंको तिगुना, और संन्यासियोंको चौगुना कहाहै; इतना जल लगावै जिससे मट्टीका लेप दूरहोजाय ॥ ९ ॥

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च ॥
न शुद्ध्यंति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥ १० ॥

जिन पुरुषोंका अन्तःकरण शुद्ध नहींहै वह दुष्टात्मा हजार वार मट्टीसे व सौ घडे जलसे भी शुद्ध नहीं होसक्ते ॥ १० ॥

मृदा तोयेन शुद्धिः स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः ॥
यस्य शौचेपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥

मट्टी और जलसेही शुद्धि होतीहै, कुछ धन खर्च नहीं होता और न कुछ क्लेश होताहै (इसकारण शौचके विषयमें यत्नकरना उचित है) जिनका शौचके विषयमें ध्यान नहींहै, वह धर्मकर्ममें प्रवृत्त नहींहैं ॥ ११ ॥

अन्यदेव दिवा शौचमन्यद्रात्रौ विधीयते ॥ अन्यदापदि निर्दिष्टं ह्यन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥ दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते ॥ तदर्धमातुरस्याहुस्त्वरायां त्वर्द्धमध्वनि ॥ १३ ॥

जो शौच कहागयाहै यह दिनमें करना कर्तव्य है, रात्रिके समय अन्यप्रकारका करना कर्तव्य है; ब्राह्मणोंको आपत्तिकालमें एकप्रकारका और स्वस्थकालमें अन्य प्रकारका शौच करना कर्तव्य है ॥ १२ ॥ दिनमें जो शौच कहागयाहै, उससे आधा शौच रात्रिके समय करनेसे शुद्ध होजाताहै; रोगी मनुष्यके लिये जो शौच रात्रिमें कहागयाहै उससे आधा कहाहै अर्थात् दिनके शौचका एकपाद करनेसेही शुद्ध होजाताहै; विदेश जानेके समय मार्गमें अतिशीघ्रताके कारण एकपादसे आधा शौच करनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम् ॥
तदर्धं चातुरे काले पथि शूद्रवदाचरेत् ॥ १४ ॥

जिस कर्मको दिनमें करनेके लिये कहाहै उससे आधा रात्रिमें करै, और रुग्णावस्थामें उसका आधा करै, और मार्गमें शूद्रकी समान आचरण करना योग्य है ॥ १४ ॥

न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता ॥
प्रायश्चित्तेन युज्येत विहिताऽतिक्रमे कृते ॥ १५ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिससमय, जिस स्थानमें जितना शौच कहागयाहै उससे अल्प या अधिक करना उचित नहीं, न्यून या अधिक शौच करनेसे शुद्ध नहींहोता जो इस विधिको उलंघन करताहै वह प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अशौचं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ॥
यावज्जीवं तृतीयं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

अब जन्म और मरणमें जो अशौच होताहै और जीवनपर्यन्त जो अशौच होताहै, ऐसे तीन अशौच शास्त्रमें कहेहुए हैं उनको अब कहताहूं ॥ १ ॥

सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥ मरणांतं तथा चान्यद्दश पक्षास्तु सूतके ॥ उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥

सद्यःशौच, एकदिन, दोदिन, तीनदिन, चारदिन, छैः दिन, दसदिन, बारहदिन, पन्द्रह दिन और एकमास ॥ २ ॥ और मरणपर्यन्त यह दस पक्ष सूतकमें हैं, वर्णके क्रमसे इन सबको मैं कहताहूं ॥ ३ ॥

ग्रंथार्थतो विजानाति वेदमंगैः समन्वितम् ॥ सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥ ४ ॥ राजर्त्विग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा ॥ व्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥ एकाहस्तु समाख्यातो योग्निवेदसमन्वितः॥ हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ ६ ॥ जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥ वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुंजते ॥ एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥ व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥ न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं तु सूतकम् ॥ एवंगुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥

षडङ्गसहित कल्प और रहस्यसहित वेदको जो मनुष्य जानताहै जो मनुष्य वेदोक्त कर्मकांडको करताहै उसको सूतक नहीं होता ॥ ४ ॥ राजा, ऋत्विज्, दीक्षित, बालक, परदेशमें जो रहताहो, व्रती, सत्री इनको सद्यःशौच कहाहै ॥ ५ ॥ जो वेदपाठी और अग्निहोत्री ब्राह्मण है उसे एकदिनका,हीनको तीनदिनका और अधिक हीनको चारदिनका अशौच होताहै ॥६॥जो मनुष्य जातिमात्रका ब्राह्मण है उसे दशदिनका, क्षत्रियको बारह दिनका,वैश्यको पंद्रह दिनका और शूद्रको महीनेका अशौच होताहै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य स्नान, आचमन, जप, दान और विना हवनके किये भोजन करतेहैं उन सबको जीवनपर्यन्त अशौच होताहै ॥ ८ ॥ रोगी, कायर, कृपण, ऋणी, क्रियाकर्मसे हीन, मूर्ख और जिसे स्त्रीने जीतलियाहो ॥ ९ ॥ जिसका चित्त सर्वदा व्यसनमें आसक्त हो और जो नित्य पराये आधीन रहताहो जो श्रद्धा और त्यागसे हीन हो उसका भस्मांत सूतक होताहै ॥१०॥ सूतक कभी नहींहै और जीनेंतक सूतक है इसप्रकार गुणकी विशेषतासे सूतक कहाहै ॥ ११ ॥

सूतके मृतके चैव तथाच मृतसूतके ॥
एतत्संहतशौचानां मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि जन्मसूतकमें मरणसूतक और मरणसूतकमें जन्मसूतक होजाय तौ दोनोंकी शुद्धि मरण अशौचके साथ होजातीहै ॥ १२ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥ दशाहात्तु परं शौचं विप्रोर्हति च धर्म्मवित् ॥ १३ ॥ दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् ॥ मृतकांते

मृतो यस्तु सूतकांते च सूतकम् ॥ १४ ॥ एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्धयति ॥ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, हवन, वेदपाठ सूतकमें इन सबका निषेध है, धर्मज्ञ ब्राह्मण दशदिनके उपरान्त शुद्धि प्राप्त करताहै ॥ १३ ॥ उससमय विधिपूर्वक दानकरना उचित है कारण कि वह दानही अमंगलसे उद्धार करताहै; मरणाशौचके बीचमें जो मरण अशौच होजाय अथवा जन्मसूतकके बीचमें जन्मसूतक होजाय ॥ १४ ॥ तौ इन एकत्रहुए सूतकोंमें पूर्व अशौचके शेषदिनोंमें शुद्धि होजातीहै; दोनों सूतकोंमें दशदिनतक कुलका अन्न भोजन न करै॥१५॥

चतुर्थेहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥
ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥

विद्वान् मनुष्य चौथेदिन अस्थिसंचय न करै फिर अस्थिसंचयनके उपरान्त अंगका स्पर्श करै ॥ १६ ॥

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ॥ दशषट्त्र्यहमेकाहः प्रसवे सूतक भवेत ॥ १७ ॥ स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्त्तितम् ॥ आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

यदि एक पतिके अनुलोमके क्रमसे चार स्त्री हो तौ उन स्त्रियोंकी सन्तान होनेके सूतकमें पतिको क्रमसे दशदिन, छैः दिन, तीनदिन, वा एकदिनका सूतक होताहै ॥ १७ ॥ यह सम्पूर्ण अशौच स्वस्थ अवस्थामें कहाहै, आपत्तिकालमें सूतकके समयमेंभी सूतक नहीं होता ॥ १८ ॥

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा ॥ पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥ यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च ॥ हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

इति दाक्षे धर्म्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यज्ञके होनेके समयमें यदि कोई जन्मै वा मृतक होजाय तौ पूर्वसंकल्प कियेहुएमें दोष नहींहै ॥ १९ ॥ यज्ञके समय, विवाहमें, और देवपूजन तथा अग्निहोत्रमें अशौच और सूतक दोनों नहीं होते ॥ २० ॥

इति दक्षस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

लोका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृतः ॥
इंद्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥

जिससे जगत् वशमें कियाजाताहै, जिसके द्वारा आत्मा वशीभूत होताहै जिससे इन्द्रियें जीतीजातीहैं उसी योगकी कथाको कहताहूं ॥ १ ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥
तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते ॥ २ ॥

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क, समाधि ये जिसके छैः अंग हैं उसीको योग कहतेहैं ॥ २ ॥

मैत्रीक्रियामुदे सर्वा सर्वप्राणिव्यवस्थिता ॥
ब्रह्मलोकं नयत्याशु धातारमिव धारणा ॥ ३ ॥

सब प्राणियोंमें आनंदकी जो एक क्रिया है वह ब्रह्मलोकमें इसभांति लेजातीहै जिसभांति धारणा ब्रह्माको ॥ ३ ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथचिंतनात् ॥ व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्यचिद्भवेत् ॥ ४ ॥ नच पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ॥ नच शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित् ॥ ५ ॥ न मंत्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ॥ लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥ ६ ॥

वनमें निवास, अनेक ग्रंथोंका विचार, व्रत, यज्ञ, और तप, इनसे किसीको योग प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ पथ्यभोजन, नाकके अग्रभागका देखना, शास्त्रोंकी अधिकता और शौच इनसेभी योग नहींहोता ॥ ५ ॥ मंत्र, मौन, कपट, अनेक प्रकारके पुण्य और लोकके व्यवहारमें तत्पर इनसेभी योग नहीं होता ॥ ६ ॥

अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात्॥ पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ७ ॥ आत्मचिंताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च ॥ सर्वभूतसमत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ८ ॥ यश्चात्मनिरतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च ॥ आत्मानंदस्तु सततमात्मन्येव सुभावितः ॥ ९ ॥ रतश्चैव सुतुष्टश्च संतुष्टो नान्यमानसः ॥ आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥ १० ॥ सुप्तोऽपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः ॥ ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ॥ ब्रह्मभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥

अभियोग, अभ्यास, योगमेंही निश्चयसे और वारंवार निर्वेद विरक्तिसे योग सिद्ध होताहै ॥ ७ ॥ आत्माकी चिन्ताके आनंदसे, शौच, आत्मामें क्रीडा, सब भूतोंमें ममता इनके द्वारा योग सिद्धहोताहै, इसके अतिरिक्त नहीं ॥ ८ ॥ सर्वदा आत्मामें मिला, आत्मामें क्रीडाशील, आत्मामें आनन्दस्वभाव, और निरन्तर आत्मामें प्रीतिमान् ॥ ९ ॥ आत्मामें रमा आत्मामें सन्तुष्ट जिसका मन अन्यत्र न हो; और: जो भलीभांतिसे आत्मामें तृप्त हो उसी पुरुषको योग सिद्ध होताहै ॥१०॥ योगी सोताहुआभी जागतेकी समान है जिसकी ऐसी चेष्टाहो वही श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियोंमें बडा कहागयाहै ॥११॥ इस संसारमें आत्माके विना जो दूसरेको न देखै वही ब्रह्मरूप है, यह दक्षऋषिके पक्षमें कहाहै ॥ १२ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति ॥ यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥ १३ ॥ विषयेंद्रियसंयोगं केचिद्योगं वदंति वै ॥ अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपंडितैः ॥१४॥ आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम्॥ उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवंचिताः ॥ १५ ॥

जिसका चित्त विषयमें आसक्त हो वह यती मोक्षको प्राप्त नहीं होता; इसकारण योगी विषयकी ओरसे अपना मन हटाले ॥ १३ ॥ कोई मनुष्य विषय और इन्द्रियोंके संयोगको योग कहतेहैं उन निर्बुद्धियोंने अधर्मको धर्मबुद्धिसे जानाहै ॥ १४ ॥ उनसे अन्य कोई आत्मा और मनके संयोगको योग कहतेहैं यह योग पूर्वोक्त ठगोंसेभी अधिक है ॥ १५ ॥

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥

सब वृत्तियोंसे मनको हटाकर और जीवको परमात्मामें लगानेसे मुक्त होजाताहै; यही योग मुख्य है ॥ १६ ॥

कषायमोहविक्षेपलज्जाशंकादिचेतसः ॥
व्यापारास्तु समाख्यातास्ताञ्जित्वा वशमानयेत् ॥ १७ ॥

कषाय, मोह और विक्षेपका जो नाश है उसका वही व्यापार कहाहै; जिसका मन वशमें होजाय, इसकारण कषायआदिसे रहित मनको अपने वशमें करै ॥ १७ ॥

कुटुंबैः पंचभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः ॥ देवासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतुं नैव शक्यते ॥ १८ ॥ बलेन परराष्ट्राणि गृह्णञ्छूरस्तु नोच्यते ॥ जितो येनेंद्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥ बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ॥ मनस्येवेंद्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥ सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ॥ एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रंथविस्तरः ॥ २१ ॥

पांच कुटुम्बियोंका ग्राम होताहै; और उस ग्राममें छठा (मन) सबसे बडा है; उसको जीतनेको देवता मनुष्य, असुर यह कोई भी समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ जो बलपूर्वक दूसरेके देशोंको छीन लेताहै वह शूर नहीं कहाता; परन्तु वास्तवमें वही शूर है जिसने इन्द्रियरूपी ग्रामको जीत लियाहो ॥ १९ ॥ सर्व बहिर्मुख इन्द्रियोंको अंतर्मुख करै, फिर उन इंद्रियोंको मनमें युक्तकरै; मनको आत्मामें योजित करै ॥ २० ॥ और सब भावोंसे रहित क्षेत्रज्ञको ब्रह्ममें मिलावै इसीका नाम ध्यान और ज्ञानहै, शेष तौ सब ग्रंथका विस्तारही है ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा विषयभोगास्तु मनो निश्चलतां गतम् ॥
आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥

जो मन विषय भोगोंको त्यागकर आत्माकी शक्तिरूपसे निश्चल होजाताहै उसे समाधि कहतेहैं ॥ २२ ॥

चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं यत्तदशाश्वतम् ॥ द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ॥ २३ ॥ यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति निरुच्यते ॥ कथ्यमानं तथान्यस्य हृदये नाधितिष्ठति ॥ २४ ॥ स्वयंवेद्यं च तद्ब्रह्म कुमारी मैथुनं यथा ॥ अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ २५ ॥ नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् ॥ तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥

चारके संनिकर्षसे जो फल होताहै वह अनित्य है, और पिछले अंगोंसे जो फल होताहै वह सनातन और नित्य तथा अक्षय होताहै ॥ २३ ॥ सब लोकोंको जो ब्रह्म नास्ति प्रतीत होताहै, और जो अस्तिशब्दसे पुकारा जाताहै; तथा कहाहुआभी जो दूसरेके हृदयमें स्थित नहीं होता ॥ २४ ॥ वही ब्रह्म इसभांति स्वयं जानने योग्य है, जिसप्रकार कुमारीका मैथुन, और योगमार्गसे हीन उसी ब्रह्मको इसभांति नहीं जानता, जिसप्रकार जन्मांधपुरुष घटको ॥ २५ ॥ नित्य अभ्यासशील मनुष्यको भलीभांति अनायाससे जानने योग्य है; और सूक्ष्म होनेके कारण वह सनातन परब्रह्म अनिर्देश्य है ॥ २६ ॥

बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा ॥ मन्यंते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यते ॥ २७ ॥ सत्वोत्कटाः सुरास्तेपि विषयेण वशीकृताः ॥ प्रमादिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥ तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दंडधारणम् ॥ इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥ न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ॥ वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥

पंडितोंका विचार और मनसे जो ब्रह्मका देखना है इसको भूषण मानतेहैं, स्त्री और मूर्ख यह भूषणकोही बहुत उत्तम मानतेहैं ॥ २७ ॥ विषयोंनें जब सत्वगुणी देवताओंकोभी अपने वशमें करलिया तब फिर प्रमादी मनुष्योंको वशमें करलेनेकी तो क्या बात है ॥ २८ ॥ इसकारण जिसनें मनके मैलका त्याग करदियाहो वही दंडको धारण करै और जिसनें त्याग न कियाहो उसको दंडधारण करनेकी सामर्थ्य नहींहै और विषय उसका तिरस्कार करतेहैं ॥ २९ ॥ जिसभांति तरंगोंके कारण जल क्षणमात्रकोभी स्थिर नहीं रहता, इसीभांति वासनाओंसे रहताहुआ चित्तभी स्थिर नहीं रहसकता, इसकारण उसका विश्वास न करै ॥ ३० ॥

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

जिसकी रक्षा आठ प्रकारकी है इसकारण उस ब्रह्मचर्यकी सर्वदा रक्षा करै कि, स्मरण, कीर्तन, क्रीडा, प्रेक्षण, गुप्तबोलना, ॥ ३१ ॥ संकल्प, विकल्प, अध्यवसाय, क्रियाकी निवृत्ति, यह आठप्रकारका मैथुन बुद्धिमानोंनें कहाहै ॥ ३२ ॥

त्रिदंडव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः ॥ यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडी हि स स्मृतः ॥ ३३ ॥ नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ॥ एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

त्रिदंडके बहानेसे बहुतसे मनुष्य जीवन धारण करतेहैं परन्तु जो ब्रह्मको नहीं जानता वह त्रिदंडी नहीं कहाता ॥ ३३ ॥ न पढना, न बोलना, न किसीप्रकार सुनना, जो इन सब गुणोंसे युक्त हो वही संन्यासी है दूसरा नहीं ॥ ३४ ॥

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥
श्वपदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५ ॥

जो संन्यास लेकर अपने धर्ममें स्थिर न रहै उसको राजा अपने नगरसे कुत्तेके पैरका दाग देकर निकाल दे ॥ ३५ ॥

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम् ॥ त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥ ३६॥ नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा ॥ एतत्त्रयं तु कुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥ ३७ ॥ राजवार्तादि तेषां तु भिक्षावार्ता परस्परम् ॥ स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥ ३८ ॥ लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ॥ एते चान्ये च बहवः प्रपंचास्तु तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त धर्मवाला एकव्यक्ति हो तो उसकी भिक्षुक संज्ञा है, दो व्यक्ति हों तो वे मिथुन संज्ञकहैं,॥ तीनके समूहको ग्राम कहतेहैं, इससे अधिकोंका संग नगर कहाताहै ॥ ३६ ॥ इसकारण सन्यासी ग्राम, नगर और मिथुन इनकी संगति न करै इन तीनों कर्मोंको जो यति करताहै वह उत्तम धर्मसे पतित होजाताहै ॥ ३७ ॥ कारण कि, उनमें राजाकी अथवा भिक्षाकी वात परस्पर होतीहै, स्नेह, चुगलपन, मत्सरता, वार्ताआदि यह संनिकर्षसे होतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ पढना, कहना, और धनप्राप्तिके निमित्त शिष्योंको रखना यह पूजाके निमित्त हैं, यह सब तथा अन्य सबभी तपस्वियोंके प्रपंच हैं ॥ ३९ ॥

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांतशीलता ॥
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते ॥ ४० ॥

ध्यान, शौच, भिक्षा, एकांतमें निवास भिक्षुकके यह चार कर्म हैं पांचवां नहीं ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे भवेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ॥
सोपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बांधवः ॥ ४१ ॥

ध्यान और योगमें पंडित जिस देशमें निवास करताहो वह देशभी पवित्र होजाताहै; फिर उसके बंधु बांधव क्यों न होंगे ॥ ४१ ॥

तपोभिर्ये वशीभूता व्याधितावसथावहाः ॥ वृद्धा रोगगृहीताश्च ये चान्ये विकलेंद्रियाः ॥ ४२ ॥ नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथार्हणः ॥ स दूषयति तत्स्थानं वृद्धादीन्पीडयत्यपि ॥ ४३ ॥ नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्याद्विनश्यति॥ ब्रह्मचर्याद्विनष्टश्च कुलं गोत्रं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

तपस्या और जपके द्वारा जो दुर्बल होगयेहैं, रोगी, वृद्ध, और जिनकी इन्द्रियें विकारयुक्त हैं ॥४२॥ यह घरमें निवास करसकतेहैं, परन्तु रोगरहित युवा भिक्षुक घरमें वासकरनेके योग्य नहींहै, कारण कि, उसके ठहरनेसे उस स्थानकोभी दोष लगताहै और वह वृद्धोंको पीडित करताहै ॥ ४३ ॥ आरोग्य युवा भिक्षुक इसभांति आचरण करनेसे ब्रह्मचर्यसे पतित होजाताहै, और फिर वह ब्रह्मचर्यसे नष्ट होकर अपने वंशकोभी नष्ट करताहै ॥ ४४ ॥

यस्य त्वावसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ॥
तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृंतति ॥ ४५ ॥

भिक्षुक जिसके घरमें वासकरै यदि मैथुन करै तौ वह उस घरके स्वामीको जडमूलसे नष्ट करताहै ॥ ४५ ॥

आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत् ॥ किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्यो हि जायते ॥ ४६ ॥ संचितं यद्गृहस्थेन पापमामरणांतिकम् ॥ स निर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥ ४७ ॥ ध्यानयोगपरिश्रांतं यस्तु भोजयते यतिम् ॥ अखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥

और जिसके आश्रममें संन्यासी एकमुहूर्त्तको ठहरजाय, उसको अन्य धर्मका प्रयोजन क्या है वह उससेही कृतार्थ होजाताहै ॥ ४६ ॥ गृहस्थीने अपने शरीरमें जो पापसंचय कियेहैं यति उसके घरमें एकरात्रि निवासकर उसके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करदेताहै ॥४७ ॥ जो मनुष्य योगाश्रममें परिश्रांत यतिको भोजन करावाहै; सो चराचर त्रिलोकीके निवासीको भोजन करानेका जो फल है वही फल उसको मिलताहै ॥ ४८ ॥

द्वैतं चैव तथाद्वैतं द्वैताद्वैतं तथैव च ॥ न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम् ॥ ४९ ॥ नाहं नैव तु संबंधो ब्रह्मभावेन भावितः ॥ ईदृशायां त्ववस्थायामवाप्यं परमं पदम् ॥ ५० ॥ द्वैतपक्षः समाख्यातो ये द्वैते तु व्यवस्थिताः ॥ अद्वैतानां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥ ५१ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो विपश्यति ॥ अतः शास्त्राण्यधीयंते श्रूयते ग्रंथविस्तरः ॥ ५२ ॥

द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत इन तीनोंमें द्वैत नहींहै यही पारमार्थिक ज्ञान है ॥ ४९ ॥ मैं नहीं हूं, और न मेरा है, और न मेरा किसीसे सम्बन्ध है परन्तु मैं ब्रह्मरूपमें स्थित हूं; इस अवस्थामें ब्रह्मपद प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ द्वैतमें स्थितिवालोंको द्वैतपक्षका कहाहै और अद्वैतपक्षवालोंका धर्म भलीभांति निश्चित है उसको मैं कहताहूं ॥ ५१ ॥ इसमें जो आत्माके अतिरिक्त दूसरी वस्तुको देखताहै उसीने मानों शास्त्र पढेहैं, और ग्रंथोंके विस्तारको सुनाहै॥५२॥

दक्षशास्त्रे यथा प्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ॥ अधीयते तु ये विप्रास्ते यांति परलोकताम् ॥ ५३ ॥ य इदं पठते भक्त्या शृणुयादपि यो नरः ॥ स पुत्रपौत्रपशुमान्कीर्तिं च समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ श्रावयित्वा त्विदं शास्त्रं श्राद्धकालेऽपि यो द्विजः ॥ अक्षय्यं भवति श्राद्धं पितॄंश्चैवोपतिष्ठते ॥ ५५ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण दक्षऋषिके इस शास्त्रमें कहेहुए आश्रमोंका प्रतिपालन करतेहैं वा जो इस शास्त्रको पढतेहैं वह परलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ५३ ॥ जो इसे पढताहै, या नीच वर्णभी इसे सुनताहै वह पुत्रपौत्रयुक्त तथा पशुवाला होकर कीर्तिको पाताहै ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्धके समय इस शास्त्रको सुनवाताहै उसका श्राद्ध अक्षयफलका देनवाला होताहै और पितरोंके निकट प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥ १५ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ गौतमस्मृतिः १६.

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ गौतमस्मृतिप्रारंभः ॥ वेदो धर्म्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशीले दृष्टो धर्म्मव्यतिक्रमः ॥ साहसं च महतां न तु दृष्टोऽर्थो वरदौर्बल्यान्न तुल्यबलविरोधे विकल्पाः ।

वेदही धर्मका मूल है, स्मृति और शीलभी धर्मका मूल है, धर्म्मका व्यतिक्रम और साहसभी दृष्टि आताहै; परन्तु महापुरुषोंका कर्म कोई दृष्ट अर्थ नहींहै प्रबल और दुर्बलसे समान बलवाले शास्त्रोंके विरोधमें विकल्पभी होताहै, अर्थात् जहां दो वाक्योंसे दो प्रकार कर्म प्राप्तहो वहां दोनों करने उचित हैं;

उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पंचमे वा काम्यं गर्भादिः संख्या वर्षाणां तद्द्वितीयजन्म तद्यस्मात्स आचार्यो वेदानुवचनाच्च एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः आषोडशाद्ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य द्व्यधिका या वैश्यस्य। मौंजीज्यामौर्वीसौत्र्यो मेखलाः क्रमेण कृष्णरुरुबस्ताजिनानि वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं चाविकृतं काषायमप्येके, वार्क्षं ब्राह्मणस्य मांजिष्ठहारिद्रे इतरयोर्बैल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दंडौ आश्वत्थपैलवौ शेषे यज्ञियो वा सर्व्वेषाम्। अपीडिता यूपचक्राः सवल्कला मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणाः मुंडजटिलशिखाजटाश्च ।

ब्राह्मणका आठ या नौ वर्षमें यज्ञोपवीत करै, यदि ब्रह्मतेजकी इच्छा करै तौ पांचवें वर्षमेंभी होसकताहै, पांचवें वर्षकी गणना गर्भसे करले, यह यज्ञोपवीत दूसरा जन्म है जिससे आचार्य वेदका उपदेश करताहै, क्षत्रिय और वैश्यका क्रमानुसार ग्यारह और बारहवर्षतक यज्ञोपवीत करनेकी विधि है, सोलहवर्षतक ब्राह्मणकी और क्षत्रियकी बाईसवर्षतक और वैश्यकी चौवीस वर्षतक गायत्री पतित नहीं होती अर्थात् गौणअधिकार रहताहै, उपनयनके समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यथाक्रमसे मेखला मूंजकी और सूतकी ज्या और मूर्वाकी बनावैं, और काले तथा रुरुमृगका और मेंढेका चर्म, शन, रेशम, और कुशा इनके वस्त्र बनावें और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि तीनों वर्णोंको कपासके नवीन और गेरू तथा मजीठ वृक्षके लालरंगके वस्त्र धारण करने उचित हैं; ब्राह्मणको हलदीमें रंगाहुआ क्षत्रिय और वैश्यको भी धारण करना उचित है, ब्राह्मण बेल, या पलाशके काष्ठका दंड, और दोनोंजाति क्रमसे पीपल और पीलुका दंड धारण करैं, तथा और जाति किसी यज्ञिय

वृक्ष का सवल्कल काष्ठका दंड धारण करसकताहै परन्तु वह दंड फटे न हों. दंडका परिमाण तीनों जातियोंको यथाक्रमसे मस्तक, ललाट और नासिकाके अग्रभागतक हो, ब्राह्मण सब मुंडन करावै, क्षत्रिय मस्तकपर जटा रक्खै और वैश्य शिखा रक्खै ।

द्रव्यहस्त उच्छिष्टोऽनिधायाचामेत् ॥

कोई द्रव्य यदि हाथमें हो और वह यदि उच्छिष्ट होजाय तौ इस द्रव्यको विना पृथ्वीपर रक्खे आचमन करै.

द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसमार्त्तिकदारवतांतवानां तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां दारुवदस्थिभूम्योः आवपनं च भूमेः । चैलवद्रज्जुविदलचर्म्मणाम् उत्सर्गो वात्यंतोपहतानाम् ।

धातु, मट्टी, काष्ठ, शुक्तिनिर्मितवस्तु इन चारों द्रव्योंकी शुद्धि क्रमसे मांजने, तपाने, छीलने और धोनेसे होजातीहै; और पत्थर, मणि, शंख, सीपी इनकी शुद्धि धातुके समान है, काष्ठके समान हाड और भूमिकी शुद्धि है, और भूमिकी शुद्धि हलसे खनन करनेंपरभी होजातीहै, बांसके पात्रकी शुद्धि वस्त्रके समान है और जो अत्यन्त भ्रष्ट हो तौ उसे त्याग दे.

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत् । शुचौ देश आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वंतरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिबंधनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रिश्चतुर्वाऽप आचामेत् । द्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि मूर्द्धनि च दद्यात् । सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुनः दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात् । प्राक् च्युतेरित्येके । च्युते स्वास्त्रावविद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वंति ताश्चेदंगे निपतंति । लेपगंधापकर्षणे शौचममेध्यस्य तदद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविस्रंसनाभ्यवहारसंयोगेषु च यत्र चाम्नायो विदध्यात् ।

पूर्व वा उत्तरको मुख करके शौचका प्रारंभ करै, पवित्रस्थानमें बैठकर दोनों घुटनोंके भीतर दहिनी भुजाको रखकर नियमसहित यज्ञोपवीत धारणकर मणिबंधतक दोनों हाथोंको धोकर मौन धारणकर हृदयका स्पर्शकर तीन या चारवार जलसे आचमन करै, और दो वार मुखका मार्जन करै, पैरोंको छिडकै; और शिरके सातों छिद्रोंका स्पर्श करै, फिर मूर्द्धापर भी जलका स्पर्श करै; यदि जिह्वासे स्पर्श न हो तौ दांतोंमें लगा अन्नादि दांतोंकेही समान है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि जबतक वह दांतोंसे पृथक् न हो तबतकही दांतोंके समान है; और पृथक् होनेपर आस्रावके समान होजाताहै; इसकारण उसको मुखसे बाहर निकालनेसेही शुद्धि होतीहै; जो मुखकी बूंद अपने शरीरपर गिरजाय उससे शरीर अशुद्ध नहीं होता; अशुद्ध वस्तुका लेप और गंधको दूरकरनेके लिये शौच करे यदि पवित्र वस्तु लगी हो वा मूत्र, विष्ठा, वीर्यस्खलन भोजनके समयमें होजाय तौ वेद और स्मृतियोंमें कही रीतिके अनुसार वहां मट्टी और जलसे शौच करना उचित है;

पाणिना सव्यमुपसंगृह्यांगुष्ठमधीहि भो इत्यामंत्रयेत गुरुः । तत्र चक्षुर्मनःप्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामास्त्रयः पंचदश मात्राः प्राक्कूलेष्वासनं च ॐ पूर्वा

व्याहृतयः पंचसप्तांताः गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातर्ब्रह्मानुवचने चाद्यंतयोरनुज्ञात उपविशेत् । प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्रीं चानुवचनमादितो ब्रह्मण आदाने ॐकारस्यान्यत्रापि ।

गुरु अपने हाथसे शिष्यका अंगूठा पकडकर "भो शिष्य तू पढ" यह कहकर बुलावे इसके उपरान्त शिष्य गुरुमें अपने नेत्र और मनको लगाकर कुशाओंसे अपने प्राणोंको स्पर्शकर तीन प्राणायाम करै; आचमनका प्रमाण पन्द्रह बूंदतक है और पूर्वकी ओरको अग्रभागवाली कुशाओंके आसनपर बैठकर ॐकारपूर्वक पांच वा सात व्याहृतियोंका पाठ करै प्रातःकालमें वेद पढनेके प्रारंभ और अन्तमें शिष्य गुरुके चरणोंको ग्रहण करै और गुरुकी आज्ञा लेकर गुरुके दक्षिण भागमें, पूर्व या उत्तरको मुख करके बैठे प्रथम गायत्री तथा वेद और ॐकारके पढनेके समयमेंभी इसीभांति बैठे;

अंतरागमने पुनरुपसदने श्वनकुलमंडूकसर्प्पमार्जाराणां त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च प्राणायामा घृतप्राशनं चेतरेषां श्मशानाभ्यध्ययने चैवम् ॥ १ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कुत्ता, मेंडक, सर्प, बिलाव यह यदि पढनेके समय गुरु शिष्यके बीचमें होकर निकलजांय तौ ब्राह्मण तीनदिन वनमें निवासकर उपवास करै और क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि प्राणायाम और घृतका भोजन करै, स्मशानके निकट जो पढताहै उसके लियेभी यही प्रायश्चित्त है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षः अहुतो ब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यते अन्यत्रापमार्ज्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचम् ॥ न त्वेवैनमभिहवनबलिहरणयोर्नियुंज्यात न ब्रह्माभिव्याहारेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥

यज्ञोपवीतसे प्रथम इच्छानुसार बोलने और इच्छानुसार भोजनकरनेमें कोई दोष नहीं है, उस समय हवन और ब्रह्मचर्यका अधिकार नहीं होता, ऐसे मनुष्यका मलमूत्र त्यागनेका भी कोई नियम नहीं है; उसको शरीरका मार्जन, धोना, और ऊपर जल छिडकनेके लिये शुद्धिके निमित्त आचमनकाभी विधान नहींहै, न छूनेयोग्य वस्तुके स्पर्शकरनेसे भी इसे दोष नहीं लगता उसको अग्निमें हवन वा बलिवैश्वदेवकार्यमेंभी नियुक्त न करै, और पितृकार्यके अतिरिक्त उसको वेदका मन्त्र न पढावै,

उपनयनादिर्नियमः ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यम् अग्नीन्धनभैक्षचरणे सत्यवचनम् ॥ अपामुपस्पर्शनमेक आगोदानादि । बहिः संध्यार्थं तिष्ठेत्पूर्वामासीतोत्तरां सज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षयेत् वर्जयेन्मधुमांसगंधमाल्यादि वा स्वप्नांजनाभ्यंजनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदंतधावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ।

यज्ञोपवीत होनेसेही सब नियमोंकी रक्षा करनी होतीहै, उपनयन होजानेपर जो ब्रह्मचर्य कहाहै उसे करै, अग्निकी रक्षा, ईंधन, भिक्षा मांगना, सत्य बोलना, जलोंसे आचमन करना कोई २ इन नियमोंको गोदानसे पहले कहतेहैं कि, संध्या करनेके निमित्त ग्रामसे बाहर जाय, और प्रातःकालकी संध्या उससमय करै कि जिस समय आकाशमें तारागण स्थित हों, और सायंकालकी संध्या नक्षत्रोंके उदय होनेपर मौन धारणकर करै; सूर्यको न देखे, ब्रह्मचारी, मधु, मांस, गन्ध, फूलमाला, दिनमें शयन, अंजन, उबटना, सवारी, जूता, छत्री, काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाजा, बजाना, अधिक स्नान, दतोन, हर्ष, नृत्य, गाना, निन्दा, मदिरा और भय इन सबको त्यागदे ॥

गुरुदर्शने कंठमावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवितहसितजृंभितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालंभने मैथुनशंकायां द्यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसा आचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः अधःशय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वागुदरकर्म्मसंयतः नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्दिशेत् ॥ अर्चिते श्रेयसि चैवम् ॥ शय्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमं वचनाद्दृष्टेन अधःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायां गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत्। गच्छंतमनुव्रजेत् कर्म्म विज्ञाप्याख्यायाऽऽहूताध्यायी युक्तः प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम्, नोच्छिष्टाशनस्नपनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि विप्रोष्योपसंग्रहणं गुरुभार्याणां तत्पुत्रस्य च नैके युवतीनाम् ॥

और गुरुको देखकर कंठ रोकले, घुटने फैलाकर बैठना, पैरोंका फैलाना, थूकना, हसना, जंभाई लेना अंगको हाथ से बजाना इनकाभी त्याग करदे, स्त्रीको देखना, स्पर्श करना, तथा मैथुनकी शंका, जुआ, नीचकी सेवा, विनादिये लेना, हिंसा, आचार्य और आचार्यके पुत्र स्त्री तथा दीक्षित इनका नाम लेना, सूखी वाणी, मदिराका पीना इन सब कार्योंको एकवारही त्यागदे; ब्राह्मणको सर्वदा पृथ्वीपर शयन करना उचित है; गुरुसे प्रथम उठै नीचे आसनपर बैठे और गुरुके सोजानेपर पीछे शयनकरै; वाणी, भुजा और उदर इनको अपने वशमें रक्खै, मान अर्थात् आदरसहित गुरुका नाम और गोत्र उच्चारण सब करै; सब भांति से पूजने योग्य और श्रेष्ठ मनुष्यके साथभी इसीप्रकारका व्यवहार करै, गुरुकी शय्या, आसन और स्थानका त्यागकरै नीचे बैठ अथवा नम्रभावसे स्थित होकर गुरुके वचनोंको श्रवणकरै, और गुरुके वचनके अनुसार चलै; गुरुको देखतेही उठ खड़ाहो, उनके चलनेपर पीछे २ चलै, यदि गुरु किसी बातको पूछैं तो उनको यथार्थ उत्तर दे, वह जब पढनेके लिये बुलावैं तभी जाकर पढै, और सर्वदा उनका प्रिय और हितकारी कार्य करतारहै और उच्छिष्टभोजन, स्नान कराना, प्रसाधन, पैरधोना, उबटना चरणोंका स्पर्श इनके अतिरिक्त उनकी स्त्री और पुत्रोंके साथभी इसी प्रकारका व्यवहार करै, और परदेशसे आनेपर गुरुकी स्त्रीपुत्रोंकेभी चरण स्पर्श करै, कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि गुरुकी युवती स्त्रियोंके साथ उक्त व्यवहार न करै ॥

व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तं पतितवर्ज्जमादिमध्यांतेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपूर्व्येण आचार्यज्ञातिगुरुस्वेच्छालाभेऽन्यत्र तेषां पूर्वं परिहरेत् निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुंजीत । असंनिधौ तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारिसद्भ्यः । वाग्यतस्तृप्यन्नलोलुप्यमानस्सन्निधायोदकं स्पृशेत् ।

आवश्यकता होनेपर पतित और निन्दित वर्णके अतिरिक्त और सबके यहांसे भिक्षा लेआवै, भिक्षाके समय वर्णके क्रमसे प्रथम मध्य और अन्तमें "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, ब्राह्मण भिक्षाके समय पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, क्षत्रिय मध्यमें और वैश्य अंतमें; आचार्य, कुल, जाति, गुरू और अन्यान्य आत्मियोंके निकट भिक्षा न मांगै, यदि अन्यत्र कहीं भिक्षा न मिलै तौ इनमेंसे प्रथम कहेहुएको त्यागकर औरोंसे भिक्षा मांगै; भिक्षासे जो कुछ मिलै उसे गुरुके आगे निवेदन करै, इसके पीछे गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करै गुरुके विद्यमान न होनेपर उनकी स्त्री, पुत्र और अपने साथके पढनेवाले शिष्योंके आगे रक्खै और भिक्षाका अन्न समर्पण करै; इसके पीछे तृप्ति होनेतक मौन होकर भोजन करै, और भोजनको रखकर जलसे आचमन करै;

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्याम्, अन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः ।

शिष्यको किसीप्रकारका आघात न पहुंचै ऐसी ताडना गुरु करै, और अशक्तको रस्सी, वेंत, वांस वा हाथ आदिसे शिक्षा करै; और जो गुरु अन्य वस्तुसे करताहै राजा उसे दंड दे;

द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्य्यं चरेत् । प्रतिद्वादश सर्वेषु ग्रहणांतं वा । विद्यांते गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम् । आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

एक वेदके पढनेमें बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य धारणकरै, प्रत्येक वेदमें इसीप्रकार ब्रह्मचर्य है; जबतक भली भांतिसे विद्या प्राप्त न हो तबतक पढताहै; जब पढचुकै तौ गुरुको दक्षिणा दे, इसके पीछे गुरुकी आज्ञासे स्नानकरै, सब गुरुओंमें आचार्यही श्रेष्ठ है; और कोई २ माताको श्रेष्ठ बताते हैं ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते । ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति । तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् । तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्मशेषेण जपेत् । गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमेवाप्नोति जितेंद्रियः । उत्तरेषां चैतदविरोधी अनिचयो भिक्षुः ऊर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु भिक्षार्थी ग्राममियात् । जघन्यमनिवृत्तं चरेत् ॥ निवृत्ताशीर्वाक्चक्षुःकर्म्मसंयतः कौपीनाच्छादनार्थं वासो बिभृयात्

प्रहीणमेके निर्णेजनाविप्रयुक्तमौषधीवनस्पतीनामंगमुपाददीत न द्वितीयामपहर्तु रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वा वर्जयेज्जीववधसमीभूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभो वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्यभाजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्ज्जं भैक्ष्यमप्युपयुंजीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत् जटिलश्चीराजिनवासाः नातिसांवत्सरं भुंजीत ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थस्य गार्हस्थ्यस्य ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कोई२ ब्रह्मचारीको इसभांति आश्रमोंका विकल्प कहतेहैं कि ब्रह्मचारी, गृहस्थी, भिक्षुक, वैखानस इन सबके क्रमसे इनका मूल केवल गृहस्थही है, कारण कि और तीनोंमें संतान उत्पन्न नहीं होती, और इन चार प्रकारके आश्रमोंमें ब्रह्मचारीके लिये सर्वदा आधीनताही कहीहै गुरुके निमित्त कर्मको करनेसेही वह लोकोंको जीतताहै यदि गुरु न हो तौ गुरुकी संतानके प्रति गुरुके समान व्यवहार करै; यदि गुरुकी कोई संतान न हो तौ वृद्धगुरुका शिष्य वा अग्निके प्रतिही इसप्रकारका आचरण करै, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इसप्रकारका व्यवहार करताहै वह ब्रह्मलोकको जाताहै, और यह भिक्षुक पिछले तीनों आश्रमोंका विरोधी न हो संचयन करै, ऊर्ध्वरेता और स्थिरस्वभाव होकर वर्षाऋतुमें भिक्षाके अर्थ ग्राममें जाय, निषिद्ध शूद्रजातिके अतिरिक्त उत्तम जातिमें भिक्षा मांगै भिक्षुक किसीको आशीर्वाद न दे और वाणी, नेत्र तथा अपना कर्म इनको छिपावै, कौपीनमात्र और ओढनेके वस्त्रको धारणकरै; कोई२ ऐसा भी कहते हैं कि किसीके त्यागे उस वस्त्रको धारणकरै जो साफ और नया हो, अथवा औषधी वा वनस्पतिकी छालको धारणकरै; और भोजनके निमित्त दूसरी रात्रिमें ग्राममें निवास न करै; मुंडन कराये रहै, शिखाको राखै और जीवकी हिंसाको त्यागदे, प्राणियोंका वध न करै, सब प्राणियोंको समदर्शी हो देखै; और किसीके ऊपर हिंसा वा दया न करै, वैखानसका धर्म है कि फल मूल भोजनकर वनमें निवास करै, तपस्या करै; और तपस्वियोंकी अग्नि स्थापनकरै, ग्राममें भोजन न करै, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य इनकी पूजा करै; निषिद्ध जातिके अतिरिक्त सबका अतिथि बने, और कभी २ भिक्षा मांगकरभी जीवन धारण करले; परन्तु जो अन्न जोतनेसे उत्पन्न हो उस अन्नको न खाय किसी ग्राममें भी प्रवेश न करै, मस्तकपर जटा रक्खै, चीर वा मृगछालाके वस्त्र धारणकरै, वर्षदिनसे अधिकके अन्नको न खाय आचार्योंने कहाहै कि गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ और प्रत्यक्ष फलका देनेवाला है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विंदेतानन्यपूर्वां यवीयसीम् असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबंधुभ्यो जीविनश्च मातृबंधुभ्यः पंचमात् ॥

वेद पढनेके उपरान्त गृहस्थी होकर अपने अनुरूप, जिसका किसीके साथ विवाह न हुआहो और अपनी समान थोडी अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करै, जो अपने प्रवरकी होतीह

उसके साथ परस्परमें विवाह नहीं होता । पिताके बंधुओंकी सातवीं पीढीसे ऊपर और माताके बंधुओंकी पांचवीं पीढीसे ऊपर विवाह होजाताहै;

ब्राह्मो विद्याचारित्रबंधुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृतां संयोगमंत्रः । प्राजापत्ये सह धर्म्म चरतामिति । आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यात् । अंतर्वेद्यृत्विजे दानं दैवः । अलंकृत्येच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गांधर्वः। वित्तेनानतिस्त्रीमतामासुरः। प्रसह्यादानाद्राक्षसः । असंविज्ञानोपसंगमनात्पैशाचः । चत्वारो धर्म्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥

कन्याको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जितकर उत्तम चरित्रवाले और शीलवान् मनुष्यको कन्या देनेका नामही ब्राह्म विवाह है. "तुम दोनों जने एकत्र होकर धर्मका आचरण करो" यह कहकर जो विवाहमें कन्या और वरका संयोग कराना है उसका नाम प्राजापत्य विवाह है;कन्याके पिताको दो गौ देकर जो कन्या विवाही जाय उसका नाम आर्ष विवाह है, वेदीके यज्ञमें व्रती पुरोहितको कन्या देनेका नाम दैवविवाह है, अलंकृत और अभिलाषिणी स्त्रीके साथ पुरुषका परस्परमें इच्छानुसार जो संयोग होजाताहै उसका नाम गांधर्व विवाह है धन दान करके अधिक स्त्रीवाले मनुष्यको जो कन्या दी जातीहै वह आसुर विवाह है । बलपूर्वक कन्याको हरण करलेआनेका नाम राक्षस विवाह है; और कन्याको कन्याकी अज्ञान अवस्थामें लेआवै उसका नाम पैशाच विवाह है, इन आठों प्रकारके विवाहोंमें प्रथमके चार धर्मानुगत हैं, और कोई २ कहतेहैं कि प्रथमके छैःही धर्मानुगत हैं;

अनुलोमानंतरैकांतरद्व्यंतरासु जाताः सवर्णाम्बष्ठोग्रनिषाददौष्यंतपारशवाः प्रतिलोमासु सूतमागधायोगवक्षत्तृवैदेहकचंडालाः ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्यात् ब्राह्मणसूतमागधचंडालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्धावसिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान् तेभ्य एव वैश्या भृज्जुकंटकमाहिष्यवैश्यवैदेहान् तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके । वर्णांतरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पंचमेन चाचार्याः सृष्ट्यंतरजातानां च प्रतिलोमास्तु धर्म्महीनाः शूद्रायां च असमानायां च शूद्रात्पतितवृत्तिः अंत्यः पापिष्ठः ॥

अनुलोमविवाहके अनन्तर जिसमें एकका अंतर हो वह अनुलोम और जिसमें दोका अंतर हो वह प्रतिलोम, इन स्त्रियोंमें ब्राह्मणइत्यादिसे उत्पन्नहुए पुत्र यह होते हैं, विप्रसे सुनार, अम्बष्ट, क्षत्रीसे क्षत्रियां, उग्र, निषाद, वैश्यामें दौष्यंत और पारशव वैश्यसे शूद्रामें जन्म है, प्रतिलोम स्त्रियोंमें ब्राह्मणमें क्षत्रीसे सूत, मागध, क्षत्रियामें वैश्यसे आयोगव, क्षत्ता, और शूद्रसे वैश्यामें वैदेहक चांडाल उत्पन्न होते हैं, कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि क्रमानुसार चारों वर्णोंके पतियोंसे इन पुत्रोंको उत्पन्नकरती है ब्राह्मणसे ब्राह्मण, क्षत्रियोंसे सूत, वैश्यसे मागध, शूद्रसे चांडाल और इनसेही क्षत्रियाब्राह्मणसे मूर्द्धावसिक्त, क्षत्रियसे क्षत्री, वैश्यसे धीमर, और शूद्रसे: पुल्कसको उत्पन्न करतीहै, और इनसेही वैश्या स्त्री भृज्जु, कंटक, और क्षत्रियसे माहिष्य और वैश्यसे वैश्य और शूद्रसे वैदेहको उत्पन्न करती है और इसीभांति चारों वर्णोंके योगसे शूद्रा क्रमानुसार पारशव, यवन, करण और शूद्र यह चारप्रकारके पुत्र

उत्पन्नकरती है, आचार्य कहते हैं कि छोटी और बडी जातिके विवाहसे सातवीं वा पांचवी पीढीमें दूसरा वर्ण होजाताहै; और जो अन्यवर्णमें उत्पन्न हुए हैं उनमें प्रतिलोम और शूद्रामें उत्पन्न अन्यवर्णकी स्त्रीमें शूद्रसे जो उत्पन्नहुए हैं वह पतितवृत्ति अन्त्यज और पापी हैं;

पुनंति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्षाद्दश दैवाद्दशैव प्राजापत्याद्दश पूर्वान्दशापरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सज्जनपुत्र तीनपीढीतक और आर्ष तथा दैवविवाहसे जो पुत्र उत्पन्न हुआहै वह दश पिछले और दश अगले पुरुषोंको पवित्र करता है और जो ब्राह्म विवाहसे पुत्र उत्पन्न है वह पूर्वोक्त बीस पीढी और अपनेको पवित्र करता है ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥ देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः नित्यस्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् । यथोत्साहमन्यद्भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा तस्मिन् गृह्याणि देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च बलिकर्म्माग्नावग्निर्धन्वंतरिर्विश्वदेवाः प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु मरुद्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्भ्य उदकुंभे आकाशायेत्यंतरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च सायं स्वस्तिवाच्य भिक्षादानमप्पूर्वं तु ददातिषु चैवं धर्म्मेषु समद्विगुणसाहस्रानंत्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु प्रतिश्रुत्याप्यधर्म्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

ऋतुमती स्त्रीमें तथा निषिद्ध दिनोंमें स्त्रीसंसर्ग नकरै और प्रतिदिन देवता, पितर, मनुष्य, भूत और ऋषि इनकी पूजा करताहै, सर्वदा वेदको पढै, पितरोंको जलदान करै, और उत्साह सहित अन्यकर्मकोभी करै, स्त्री, अग्नि और पुत्रादिके होनेपर गृहस्थके कर्म होतेहैं; देव, पितर, मनुष्य, स्वाध्याय और बलि वैश्वदेव यह यज्ञ हैं, अग्निमें बलिकर्म करै, अग्नि, धन्वन्तरि, विश्वदेव, प्रजापति और स्विष्टकृत् इनमें हवन करै, जिस दिशाका जो अधिपति है उसी औरको उसके निमित्त बलिप्रदान करै, दिशाके द्वारपरभी अन्न दे ४९ मरुत् और घरके देवताओंके निमित्तभी बलिप्रदानकरै घरके भीतर जाकर ब्रह्माके निमित्त बलिप्रदानकरै, और जलके कलशमें जलकी पूजाकरै अन्तारिक्षमें आकाशको बलिप्रदानकरै, और सायंकालमें राक्षसोंको बलिप्रदानकरै स्वस्तिवाचन कराकर ब्राह्मणको दे व अब्राह्मणको देनेमें इसी प्रकारके धर्मोंमें समान फल है अथवा भिक्षासे ब्राह्मणको दानकरै, या किसी धर्मके विषयमें दानकरै, दानकारी अब्राह्मण, श्रोत्रिय और वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दानकरनेसे समान फलहोताहै, दुगुना, सहस्रगुना, और अनन्तगुना फल प्राप्तहोताहै गुरुओंके निमित्त और औषधिके लिये भिखारी दरिद्र, यज्ञ करनेके लिये उद्यत, विद्यार्थी, निर्बल,

पथिक, और विश्वजित्यज्ञकारी इनको विभाग करके देना उचित है, वेदीके बाहरे मांगनेवालेको अन्नदान देना उचित है, यदि किसी मनुष्यको कुछ देना स्वीकार करलियाहो फिर उसको विधर्मी जानले तौ उसको अंगीकार कीहुई भी वस्तु न दे.

क्रुद्धहृष्टभीतार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि । भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवासिनीस्थविरान् जघन्यांश्च आचार्यपितृसखीनां च निवेद्य वचनाक्रियाः ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृमातुलानामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञश्च श्रोत्रियस्य अश्रोत्रियस्यासनोदके श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नविशेषांश्च प्रकारयेत् नित्यं वा संस्कारविशिष्टं मध्यतोन्नदानं वैद्ये साधुवृत्ते विपरीतेषु तृणोदकभूमिः स्वागतं ततः पूज्यानत्याशश्च शय्यासनावसथानुव्रज्योपासनानि सदृक्श्रेयसोः समानानि अल्पशोपि हीने।

क्रोधी, आनन्दी, डरपोक, रोगी, लोभी, बालक, वृद्ध, मूढ, मत्त, और उन्मत्त, इनको मिथ्या बात कहनेमेंभी पातक नहींहै, अतिथि, कुमार, (बालक) गर्भिणी, सुहागिनी स्त्री, और अपनेसे बडे तथा छोटे इनको पहले भोजन कराकर गृहस्थी पीछे आप भोजनकरै; ऋत्विक्, श्वशुर, पिता, मामा, आचार्य इनकी पूजामें वर्ष दिनमें एकवार मधुपर्क यज्ञकरै; और आचार्य, पिता और मित्र इनको निवेदन करके पीछे किसी कर्मको करै, विवाहके समयमें राजासे प्रथम वेदपाठी ब्राह्मणको मधुपर्क दे अश्रोत्रियके आनेपर आसन और जल दे; और कभी श्रोत्रिय आजाय तौ उसी समय पाद्य अर्घ्य और विविध भांतिके अन्न बनवाकर दे, चतुर वैद्यको बनायेहुए अन्नमेंसे प्रतिदिन अन्न दे, और वैद्य यदि अच्छा न हो तौ तृण, जल, भूमि इनका दानकरै, जो कुछभी न हो तो स्वागत तो अवश्यही करै; और पूजन करनेके योग्यका अवलंघन करके भोजन न करै; और शय्या, आसन, घर, पीछे चलना, सेवा अपने समान और उत्तम मनुष्य इन दोनोंके निमित्त एकभावसे करै; जो अपनेसे हीन हो, उसको पूर्वोक्त सत्कारसे किंचित् सत्कार करै;

असमानग्रामोतिथिरेकरात्रिकोधिवृक्षसूर्योपस्थायी कुशलानामयारोग्याणामनुप्रश्नोऽथ शूद्रस्याब्राह्मणस्यानतिथिरब्राह्मणो यज्ञे संवृत्तश्चेत् भोजनं तु क्षत्रियस्योर्ध्वं ब्राह्मणेभ्यः अन्यान् भृत्यैः सहानृशंसार्थमानृशंसार्थम् ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो अपने ग्रामका न हो किसी वृक्षके नीचे एक रात्रि निवास करताहो, सूर्यकी स्तुति करताहो उसीको अतिथि कहतेहैं, उसकी कुशल क्षेम और आरोग्यताका प्रश्न करै, शूद्र और अंत्यज यह अतिथि नहीं होसकता; अब्राह्मण यदि यज्ञमें आजाय तौ वह अतिथि होताहै; परन्तु क्षत्रियको ब्राह्मणसे पीछे भोजन करावै, और अन्यजातियोंको भृत्योंके साथ दयाके परवश होकर भोजनकरावै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् । अभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृतद्बंधूनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां च सन्निपाते परस्य स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादोऽज्ञसमवाये स्त्रीपुंयोगेऽभिवादतोऽनियममेकेनाविप्रोष्य स्त्रीणाममातृपितृव्यभार्याभगिनीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां श्वश्र्वाश्च ऋत्विक्छ्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्याः तथान्यः पूर्व्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोऽप्यपत्यसमेन अवरोऽप्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्ज्जयेत् ॥

प्रतिदिन गुरुओंका समागम होनेपर उनके चरणोंको ग्रहण करै और यदि विदेशसे माता, पिता, इनके बंधु तथा बडाभाई और विद्यागुरु यह आजाँय तौ इनके सन्मुख जाकर चरणोंको ग्रहणकरै, और यदि यह सब इकट्ठे होकर मिलै तौ जो सबके गुरु हैं पहले उनके चरण ग्रहण करै "आपको यह मैं नमस्कार करताहूं" इस भांति अपने नामको लेकर नमस्कारकरै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि मूर्खोंके समागम तथा स्त्रियोंके मिलनस्थानसे नमस्कारका कुछ नियम नहीं है, और जो स्त्री, माता, चाचा, ताई, भगिनी, भाईकी स्त्री, सास यह परदेशसे आई हैं तौ इनके चरणोंको ग्रहण न करै, ऋत्विज, श्वशुर, चाचा, मामा, और अपनेसे दश वर्ष बडा अन्यजाति पुरवासी हो तौ इनको देखतेही उठकर खडा होजाय परन्तु नमस्कार न करै; और अस्सी वर्षका शूद्रभी अपने पुत्रके समान बैठाने योग्य है; और उसका नाम शूद्रके समान लेना उचित नहीं;

राज्ञश्चाजपः प्रेष्यः भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि जातो दशवर्षवृद्धः पौरः पंचभिः कलाधरः श्रोत्रियश्चारणस्त्रिभी राजन्यवैश्यकर्म्मोविद्याहीनाः दीक्षितश्च प्राक्क्रियात् वित्तबंधुकर्मजातिविद्यावयांसि सामान्यानि परबलीयांसि श्रुतं तु सर्व्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥

यदि राजाका भृत्य अजप हो तौ उसको भी भवत्शब्दका प्रयोग करै; जो एक दिनही उत्पन्न हुआ हो उसे वयस्य और अपनेसे जो पांच वर्ष बडा हो उसे कलाधर वा श्रोत्रिय कहतेहैं और जो अपनेसे तीन वर्ष बडा है वह चारण कहाताहै, और कर्म विद्यासे हीन क्षत्रिय, वैश्य, दीक्षित, धन, बंधु, कर्म, जाति, विद्या, अवस्था इन सबमें पहला बडा है, और वेद तौ सबसेही बडा है, कारण कि वही धर्म और श्रुतिका मूल है;

चक्रिदशमीस्थाणुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथोदानं राज्ञा तु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रथवान्, नव्वै वर्षसे अधिक अवस्थाका मनुष्य, दयाकरने योग्य, वधू, स्नातक, ब्रह्मचारी, यह सब राजाको मार्ग छोडदे, और राजा वेदपाठीको मार्ग छोडदे ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा । समाप्तेर्ब्राह्मणो गुरुः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्व्वेषां पूर्वः पूर्वो गुरुः तदभावे क्षत्रवृत्तिः तदभावे वैश्यवृत्तिः तस्यापण्यं गंधरसकृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिक्ते वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोदकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशा कुमारी वेहतश्च नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके विनिमयस्तु रसानां रसैः पशूनां च न लवणाकृतान्नयोस्तिलानां च समेनामेन तु पक्कस्य संप्रत्यर्थे सर्वधातुवृत्तिरशक्तावशूद्रेण तदप्येके प्राणसंशये तद्वर्णसंकराभक्ष्यनियमस्तु प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आपत्तिकालमें ब्राह्मण जातिके अतिरिक्त अन्यजातिसे विद्या पढे और जबतक पढतारहै तबतक उसकी सेवा शुश्रूषा करतारहै, अथवा पीछे २ चले फिर जब विद्या पढ चुके तब ब्राह्मणही गुरु होताहै, यज्ञकराना,पढाना, दानलेना यह सब धर्म ब्राह्मणोंकेही हैं,इनमें पहला धर्म श्रेष्ठ है; यदि ब्राह्मणोंको यह वृत्ति न मिलै तौ वह क्षत्रियवृत्तिको करनेलगे; और उसमें सफल मनोरथ न हो तौ वैश्यकी वृत्तिसे जीविका निर्वाह करै; परन्तु ब्राह्मण गंध, रस, पक्का अन्न, तिल, सन, मृगचर्म, रंगेवस्त्र, दूध, दूधके विकार, मूल,फल,फूल, औषधि, शहत, मांस, तृण, जल, अपथ्यवस्तु, हिंसाके संयोगमें पशु, पुरुष, वांझ स्त्री, कुमारी, जिसका गर्भ गिरजाताहो, भूमि, धान, जौ, बकरी, भेड इनको कदापि न वेचै, और कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि औषधि, गौ, बैल, इनकाभी बेचना उचित नहीं, एक प्रकारके रसके साथ दूसरे प्रकारके रसका बदला नकरै; पशुके साथ पशुका बदला न करै लवणके साथ लवणका, पके अन्नके साथ पके अन्नका, और तिलोंसे तिलकाभी बदला न करै, भोजनकी आवश्यकता होनेपर उसीसमय कच्चे अन्नसे पके अन्नका बदला करले; और अशक्त होनेपर सब धातुओंके द्वारा अपनी आजीविका करले, शूद्रके साथ कभी न करै; परन्तु वर्णसंकरके अभक्ष्यका नियम रक्खै, प्राण संशय उपस्थित होनेपर ब्राह्मण भी शस्त्रधारण करले, और क्षत्रिय वैश्य कर्मको करै ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः । तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यांतःसंज्ञानां चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः । स एष बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदांगवित् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिः चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वासामया-

चारिकेष्वभिविनीतःषड्भिः परिहार्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादंडयश्चाबहिष्कार्यश्चापरिवाद्यश्चापरिहार्यश्चेति।

इस लोकमें राजा और बहुश्रुत ब्राह्मण यह दोहीजन व्रत धारण करनेवाले हैं इसके बीचमें बहुश्रुत ब्राह्मणही श्रेष्ठ है. चार प्रकारकी मनुष्यजातिमें ज्ञानका अंश है, इनका जीवन, चलन, पतन, पठन, यह उत्सर्पणके आधीनहै, प्रसूतिकी रक्षाही पवित्र धर्म है, वह मनुष्यही बहुश्रुत कहाजाता है जो लोकरीति तथा वेद वेदांगका जाननेवाला और वाकोवाक्यमें चतुर तथा इतिहास और पुराण इनमें कुशल हो; सर्व वेदादि शास्त्र की अपेक्षा करनेवाला (उसका अनुसरण करनेवाला) जिसके चालीस प्रकारके संस्कार हुएहों, तीन प्रकारके कर्मोंमें अभिरत और जो छैः कर्मोंमें तत्पर हो; और जो समय २ के आचरणोंमें भलीप्रकार शिक्षित हो और जिसमें ऊपर कहे हुए छैःहों कर्म नहीं वह राजाके मारने योग्य है; जो उपरोक्त छैःहो कर्मको करताहै उसे राजा दण्ड न दे और न उसकी निन्दा करै तथा वह राजाके देशसे बाहर निकालने योग्य भी नहींहै॥

गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनं जातकर्म्मनामकरणान्नप्राशनं चौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्म्मचारिणीसंयोगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां च अष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्तपाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ आग्रहायणं चातुर्मास्यानि निरूढपशुबंधसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः अग्निष्टोमोत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी वाजपेयातिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः। अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्व्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमनायासो मंगलमकार्प्पण्यमस्पृहेति। यस्यैते न चत्वारिंशत्संस्काराः न चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति॥ यस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणाः अथ स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति गच्छति॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन, चारों वेदोंका अध्ययनके अर्थ ब्रह्मचर्य, स्नान, विवाह, देव, पितर, मनुष्य, भूत, ब्रह्म इन पांचों यज्ञोंका अनुष्ठान, अष्टका और पार्वण श्राद्ध, श्रावण, अगहन, चैत्र, और क्वारके महीनेमें की १५पूर्णमासी, यह सात पाकयज्ञके भेद हैं और अग्निका आधान, अग्निहोत्र, दर्शयज्ञ, पूर्णमासयज्ञ, आग्रहायणयज्ञ, चातुर्मास्ययज्ञ, पशुबंधयज्ञ, सौत्रामणि यह सात हविर्यज्ञके भेद हैं, और अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, यह सात सोमयज्ञके भेद हैं, और यह चालीस गर्भाधानआदि संस्कार हैं; आठ प्रकारके आत्माके गुण हैं, प्राणीमात्रमेंही दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मंगलविधान, कृपणताराहित्य; और अस्पृहा, यह चालीस प्रकारके संस्कार और आठ प्रकारके गुण जिसमें नहींहैं वह कभी भी

ब्रह्मलोक वा सायुज्यमुक्तिको प्राप्त नहीं होता और जिसमें चालीस प्रकारके संस्कारमेंसे कुछभी हों और आठ प्रकारके गुण हों वह सायुज्य वा सालोक्यको प्राप्त होताहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

स विधिपूर्वं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थधर्मान् प्रयुंजान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातकः नित्यं शुचिः सुगंधिः स्नानशीलः सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात्। न रक्तमुल्बणमन्यधृतं वा वासो बिभृयात् । न स्रगुपानहौ निर्णिक्तमशक्तौ न रूढश्मश्रुरकस्मात्राग्निमपश्च युगपद्धारयेत् । नापोऽमेध्येन संसृजेत् । नांजलिना पिबेत् । न तिष्ठन् उद्धृतेनोदकेनाचामेत् । न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निं विप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येत् नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेत् । न पर्णलोष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेशनखतुषकपालामेध्यान्यधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत्। ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत । अधेनुं धेनुभव्येति ब्रूयात् । अभद्रं भद्रमिति कपालं भगालमिति मणिधनुरितींद्रधनुः । गां धयंतीं परस्मै नाचक्षीत । नचैनां वारयेत् । न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलंबेत् । न च तस्मिन् शयने स्वाध्यायमधीयीत । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेत् । नाकल्पां नारीमभिरमयेत् । न रजस्वलां न चैनां श्लिष्येत न कन्याम् । अग्निमुखोपधमनविगृह्यवादबहिर्गंधमाल्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोजनांजनावेक्षणकुद्वारप्रवेशनपादधावनासंदिग्धभोजननदीबाहुतरणवृक्षपर्वतारोहणावरोहणप्राणनाव्यवस्थां च विवर्ज्जयेत् । न संदिग्धां नावमधिरोहेत । सर्वत एव आत्मानं गोपायेत् । न प्रावृत्य शिरोऽहनि पर्यटेत् । प्रावृत्य रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावनंतर्द्धाय नाराच्चावसथान्न भस्मकरीषकृष्टछायापथिकाम्येषूभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यात् । उदङ्मुखः संध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखः पालाशमासनं पादुके दंतधावनमिति च वर्जयेत् । सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्ज्जयेत् । न पूर्वाह्णमध्यन्दिनापराह्णानफलान् कुर्याद्वा यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु च धर्मोत्तरः स्यात्। न नग्नां परयोषितमीक्षेत न पदासनमाकर्षेत् । न शिश्नोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्यात् । छेदनभेदनविलेखनविमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥ नोपरिवत्सतंत्रीं गच्छेत् । न जलंकुलः स्यात । न यज्ञमवृतो गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । न भक्ष्यानुत्संगे भक्षयेत् । न रात्रौ प्रेष्याहृतमुद्धृतस्नेहविलेपनपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याण्य-

श्नीयात् । सायंप्रातस्त्वन्नमभिपूजितमनिंदन् भुंजीत । न कदाचिद् रात्रौ नग्नः स्वपेत् स्नायाद्वा । यच्चात्मवंतो वृद्धाः सम्यग्विनीता दंभलोभमोहवियुक्ता वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत् ॥ योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्म्मिकेभ्यः प्रभूतैधोदकयवसकुशमाल्योपनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्म्मिकाधिष्ठितं निकेतनमावसितुं यतेत । प्रशस्तमंगल्यदेवतायनचतुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत। मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पः सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौचशिष्टः श्रुतिनिरतः स्यात्। नित्यमहिंस्रो मृदुदृढकारी दमदानशील एवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरांश्च संबद्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकान्न च्यवते न च्यवते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रथमःपाठकः ॥ १ ॥

वेदको पढकर ब्राह्मण विधिसहित स्नानकर विवाह करै; इसके पीछे शास्त्रोक्त नियमके अनुसार गृहस्थधर्मका अनुष्ठानकर इन व्रतोंको करै, स्नातक होकर सर्वदा पवित्र रहै; उत्तम२ गंधवाले द्रव्योंका सेवनकरै, और प्रतिदिन स्नान करै, शील रक्खै, धनके होतेहुए पुराने और मलीन वस्त्रोंको न पहरे; मलीन और रंगेहुए वस्त्रोंको न पहरै, दूसरेके पहरेहुए वस्त्रोंको न पहरै; पहरीहुई माला और टूटे जूते आदिको न पहरे, सामर्थ्य होनेपर जीर्णवस्त्रको धारण न करै, और एक कालमें अग्नि और जलको धारण न करै, अंजुलीसे जल न पियै, खडे होकर निकालेहुए जलसे आचमन न करै; और शूद्र, अशुद्ध तथा एक हाथसे निकालेहुए जलसे आचमन न करै, वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, देवता, जल, गौ इनके सन्मुख मूत्र, विष्टा तथा किसी अपवित्र वस्तुका त्याग न करै, देवताओंके ओरको पैर न फैलावे; पत्ते, डेला, पत्थर इनसे मूत्र और विष्ठाको दूर न करै; और भस्म, केश, नख, भुस्सी, कपाल, अपवित्र वस्तु इनपर भी न बैठे; म्लेच्छ, अशुद्ध, अधर्मी मनुष्य इनके साथ सम्भाषण न करै; यदि सम्भाषण करै तो मनही मन पुण्यात्माओंका स्मरणकरै; दूध न देतीहो उस गौको धेनुभव्या इस भांति कहै; अमंगल वस्तुको मंगल कहै, कपालको भगाल कहै, इन्द्रधनुको मणिधनु कहै; चुगती हुई गौको और बछडेको न बतावे और न उसे आप हटावै, मैथुनकरके शौचकरनेमें विलम्ब न करै, मैथुनकी शय्यापर वेद न पढै, पिछली रात्रिमें पढकर फिर शयन न करै, असमर्थ स्त्रीके साथ तथा रजस्वला स्त्रीके साथ भोग न करै, रजस्वलाका स्पर्शभी न करै, कन्याके साथ मैथुन न करै, अग्निको मुखसे न फूँके, गर्हित वचन न बोलै, बाहर गंध वा माला धारण न करै, पापीके साथ अवलेखन न करै, भार्याके साथ भोजन न करै, जिससमय स्त्री नेत्रोंमें अंजन लगाती हो उस समय उसे न देखे, खोटे द्वार में न जाय, दूसरेसे पैरोंको न धुलावै, और संदिग्ध स्थानमें भोजन न करै, हाथोंसे नदीको न पैरै, विषवृक्षपर चढना वा उतरना जिनमें प्राणोंकी शंकाहो उन सब को त्यागदे, टूटीहुई नौकापर न चढै, सब प्रकारसे आत्माकी रक्षाकरै दिनमें नंगे शिर न

फिरै, और रात्रिमें शिर ढककर मलमूत्रका त्यागकरै, परन्तु पृथ्वीको तृणआदिसे विनाढके मूत्रविष्ठाका त्याग न करै; भस्म, सूका गोबर, जूता, खेत, छाया, मार्ग अच्छी वस्तु इनमें मलका त्याग न करै, दिनके समयमें उत्तरको सन्ध्या और रात्रिके समयमें दक्षिणको मुखकर-कै मलमूत्रका त्यागकरै; और ढाकका आसन, खडाऊं, दतौन इनको त्यागदे, जूता, पैरोंमें पहरेहुए भोजन, उपवेशन, शयन, स्तुति और नमस्कार न करै। यथाशक्ति पूर्वाह्न और अपराह्न इनको निष्फल न जानेदे, परन्तु यथाशक्ति धर्म अर्थ और कामोंमें समयको व्यतीत करै, इन तीनोंमें धर्महीं उत्तम है, दूसरेकी नंगी स्त्रीको न देखै, पैरसे आसनको न खैंचे, लिंग, उदर, हाथ, पैर, वाणी, नेत्र इनको चपल न करै, और छेदन, भेदन, विलेखन, मल-ना, हाथसे हाथ बजाना इनको विना प्रयोजन न करै, रस्सीके ऊपर जलके तटपर न बैठे, वरणीके विना हुये यज्ञमें न जाय; और देखनेके लिये तौ इच्छानुसार जाय; खानेकी वस्तुको गोदीमें रखकर न खाय, सेवककी लाई हुई रात्रिमें विना चिकनी खल और विलपन निर्जलमट्ठा, गरिष्ठवस्तु इनको न खाय, सायंकाल और प्रातःकालमें पूजाकरकै विना अन्नकी निन्दा किये भोजनकरै, रात्रिके समय नंगा शयन न करै, नंगा स्नान न करै, जिस कर्मके करनेको आत्मज्ञानी वृद्धपुरुष भली भांति दीक्षित, दंभ, लोभ, मोहसे रहित और वेदके जाननेवाले कहैं उस कर्मको सर्वदा करतारहै, और योगक्षेमके निमित्त धनीके समीप जाय; देवता, गुरु, धर्मज्ञ इनको छोडकर अन्य घरोंमें निवास करनेके लिये यत्न न करै, जिस स्थानमें काठ, जल, भुसा, कुशा, फल और मार्ग यह अधिक प्राप्तहों और जहां बहुतसे सज्जन पुरुष निवास करते हों, जिस स्थानमें अग्निहोत्र हो ऐसे स्थानमें निवास करै, श्रेष्ठ और मांगालिक वस्तु और चौराहे इनको दहिनीओर देकर गमन करै; पीडादि आपत्ति ग्रस्त होने-पर भी मनही मनमें सम्पूर्ण धर्माचरणोंका पालन करै, सर्वदा सत्यधर्मसे सज्जनोंका आच-रणकरै, सत्पुरुषोंको पढावै, शौचकी शिक्षा दे और वेदको पढतारहै, प्रतिदिन हिंसा न करै, नम्रतासे दृढ कर्म करै, इन्द्रियोंको दमन करै, दान करै, शील रक्खै, इस प्रकार आचरण करताहुआ माता, पिता और पहले पिछले सम्बंधियोंको पापसे मुक्त करनेकी इच्छा करताहुआ गृहस्थी सनातन:ब्रह्मलोकमें निवास करताहै।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् । ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः सर्व्वेषु नियमस्तु आचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्यानियमेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तान् कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं च राज्ञोधिकं रक्षणं सर्व्वभूतानां न्याय्यदंडत्वं बिभृयात् ॥ ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चो-पकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भये विशेषेण चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानम-निवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवे अन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृतांजलिप्रकी-र्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षादिरूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः क्षत्रियश्चेदन्यस्त-मुपजीवेत त्तैः स्यात् जेता लभेत सांग्रामिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञ उद्धारश्चा-

पृथक् जये अन्यत्तु यथार्हं भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पंचाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये मूले फलमधुमांसपुष्पौषधतृणेंधनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्म्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात्। अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासिमास्येकैकं कर्म्म कुर्युः। एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः। नौचक्रिवंतश्च भक्तं तेभ्योपि दद्यात्। पण्यं वणिग्भिरर्थापचयेन देयम्। प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्द्ध्वमाधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेष. स्वामी। रिक्थाक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्यधिगमा राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके। चौरहृतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत्। कोशाद्वा दद्यात्। रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणाद्वा समावृत्तेर्वा।

तीनों द्विजातियोंको अध्ययन, यज्ञ, और दान इन तीनों कर्मोंका अधिकार है; इन तीनोंमें ब्राह्मणको अधिक पढाना, यज्ञकराना, और दानलेना यह विशेष है, और सबमें यह नियम है कि आचार्य जाति गुरु धन विद्या इनके नियममें ब्राह्मणही उपदेश करनेंवाला होताहै, और शास्त्रमें कहेहुए कर्मोंको छोडकर लैंन दैंन भृत्योंसे कृषी कराना यह क्षत्रिय और वैश्यके धर्म हैं, परन्तु राजाका यह अधिक धर्म है कि सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा, दंडकरनेयोग्य दुष्ट मनुष्यको दंड, वेदपाठी और उद्योगहीन, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, विनाकरवाले, इनकी पालनाकरै, युद्धक्षेत्रमें रथपर चढकर धनुष, बाण धारण कियेरहै, युद्ध करतेमें विमुख न हो, युद्धके समयमें प्राणियोंकी हिंसासे पाप नहींहै, विजयमें और भयमें अशक्त न हो, परन्तु हताश, सारथीहीन, घोडेरहित, शस्त्रहीन, जो कृतांजलि हो, जिसके बाल खुले हों, जो मुखफेरे बैठाहो, वृक्षपर चढाहो, दूत हो और जो अपनेको गौ अथवा ब्राह्मण कहै, यदि दूसराभी क्षत्रिय हो तो उसीके आश्रय होकर अपनी जीविकासे उसका निर्वाह करै; संग्रामको जीतनेवाला भृत्यभी संग्रामकी वस्तुओंके लेनेका अधिकारी है, परन्तु धन और सवारी यह राजाही लेनेका अधिकारी है; यदि युद्धमें राजाभी साथ हो तो अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु वा कुछ एक द्रव्यका भागभी राजाओंका होताहै; और राजा अन्य वस्तुओंको यथायोग्य बांटदे, खेतीकरनेंवाला राजाको छटा, दशवां वा आठवां भाग दे. ईंधन, तृण इनका छठाभाग राजाको दे कारण कि इनकी रक्षा करना राजाकाही धर्म है; राजा इनमें नित्य सावधानी रक्खै; प्रत्येक महीनेंमें एकदिन राजाका काम कारीगर करतारहै, और अपना निर्वाह अधिकसे करै; यही धर्म मजूर, नौकावान, तथा रथवानोंकाभी है, वहभी राजाको भागदेने योग्य हैं; और वैश्य धनके विना बेचनेकी वस्तुको न दे. जिसका स्वामी न हो यदि उसका नष्ट धन मिलजाय तौ राजासे कहदै; और उस धनकी पहले राजा एकवर्षतक रक्षाकरै, एक वर्षके उपरान्त जिसको वह धन मिलाहो उसको चौथाई दे और शेष धनको अपने पास रक्खै, और भाग, क्रय, विभाग, परिग्रह, अधिगम, लोभ इनमें ब्राह्मणका लब्धमें क्षत्रियका विजितमें और वैश्यका निर्विष्टमें जो सेवाकरनेसे मिलजाय वह अधिक भाग होताहै, और खजानेके मिलनेमें

राजाको भाग दे. कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि पशु और सुवर्णमेंभी पांचवां भाग है और चलनेकी वस्तुमें बीसवां भाग राजाका है परन्तु पंडित ब्राह्मणोंके अतिरिक्त कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि यदि ब्राह्मणसे अतिरिक्त वर्ण विख्यात हो तौ छटे भागका अधिकारी है; चोरीके द्रव्यको पाकर राजा उस धनको यथास्थानपर पहुंचादे, या अपने खजानेसे देदे; जबतक बालक व्यवहारको न जाने तबतक अथवा गृहस्थी होनेतक बालकके धनकी रक्षा करतारहै यही राजाका धर्म है;

वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यं कुसीदं शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधमशौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्म्म भृत्यभरणं स्वदारतुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषां वृत्तिं लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासःकूर्चान्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च । यं चायमाश्रयते भर्तव्यस्तेन क्षीणोपि तेन चोत्तरस्तदर्थोस्य निचयः स्यात् । अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः । पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके । सर्व्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुः । आर्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मणः साम्यं साम्यम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैश्यकी खेती, व्यवहार, पशुओंका पालन, कुसीद सूदके लेनेसे अधिक धर्म है. और चौथा वर्ण शूद्र है एकजाति अर्थात् द्विजातिसंस्कारसे यह हीन होताहै, उसकेभी यही धर्म हैं; सत्य, क्रोधहीन, शौच, आचमनके निमित्त हाथ पैरोंका धोना, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि, श्राद्धकरना, भृत्योंकी पालना, शुल्क, फल, सहत, मीठा, मांस, फूल, औषधि, अपने द्वारपर सन्तोष, उत्तर द्विजातियोंकी सेवा, और उनसे अपनी जीविकाकी इच्छा करतारहै, और उनके पुराने जूते, छत्री, वस्त्र, कूर्च तथा कुशाकी मुष्टिको धारण करै; उनकी उच्छिष्ट भोजन करै, अपनी इच्छानुसार किसी शिल्पकार्यद्वारा अपनी जीविका निर्वाह करै, शूद्र सेवाके निमित्त जिसका आश्रय ले वही इसकी पालना करता रहे. दीनअवस्था होनेपर उसे शूद्रभी प्रतिपालन करै वही इस शूद्रको बडाई देनेवाला है उसके निमित्त इसके संचय हैं, और शूद्रको नमस्कारके मन्त्रकाभी अधिकार है, कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि पाकयज्ञोंसे शूद्रभी स्वयं पूजन करले, और चारों वर्णोंमें पिछले २ पूर्व २ वर्णकी सेवा करै; और सज्जन, दुर्जन इनका व्यतिक्षेप तथा उलटापलटीमें दोनों कर्म समान हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

राजा सर्व्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः । शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्व्वीत तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेप्येनं मन्येरन् । वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चैनान्स्वधर्म्मे एव स्थापयेत् । धर्म्मस्थोंऽशभाग्भवतीति विज्ञायते । ब्राह्मणं च पुरो दधीत विद्याभिजन-

वाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनम् । तत्प्रसूतः कर्म्माणि कुर्व्वीत ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ।

ब्राह्मणके अतिरिक्त राजा सभीका ईश्वर है, वह सर्वदा लोकोंका हित करतारहै; सर्वदा मधुरवचन कहतारहै,कर्मकांड और ब्रह्मविद्यामें शिक्षित शुद्ध जितेंद्रिय और जिसके सहायक गुणवान् हों उपायोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण प्रजामें समदर्शी रहै, उनका हित करतारहै, सबसे ऊंचे आसनपर बैठेहुए उस राजाकी ब्राह्मणके अतिरिक्त और सब जातियें सेवाकरैं, ब्राह्मणभी उसका मान्यकरै जो चारोंवर्णोंकी न्यायसे रक्षाकरै और आप धर्मके मार्गमें स्थित रहकर धर्मपथसे स्खलित चारों वर्णोंको अपने २ धर्मपर स्थापित करै, वही राजा धर्मके अंशका भागी कहागया; यह बात शास्त्रसे जानीगई है, विद्या, देश, वाणी, रूप, अवस्था, शीलवान्, न्याययुक्त तपस्वी जो ब्राह्मण है उसे पुरोहित करै. ब्राह्मणसे उत्पन्नहुआ क्षत्रिय अर्थात् ब्राह्मणसे संस्कार कियाहुआ कर्मोंको करतारहै, कारण कि ब्राह्मणसे उत्पन्नहुआ (अर्थात् संस्कार कियाहुआ) क्षत्रिय बढताहै, और दुःखी नहींहोता यह शास्त्रके अनुसार जानागयाहै.

यानि च दैवोत्पातचिंतकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते । शांतिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषणसंवलनाभिचारद्विषद्व्यृद्धियुक्तानि च शालाग्नौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ।

दैविक उत्पातोंकी चिन्ता करनेवालोंने जो कहाहै उसको आदरपूर्वक श्रवणकरै. कोई२ ऐसाभी कहतेहैं कि योग, क्षेम उनकेही आधीन है.अग्निशालामें ग्रहशांति,पुण्याह, स्वस्त्ययन, आयुर्वृद्धि और मंगलदायक कार्य, नान्दीमुख, शत्रुओंकी पराजय, विनाश और पीडादायक कर्मोंका अनुष्ठान करै; और अन्यकर्मोंको ऋत्विजोंकी आज्ञानुसार करै.

तस्य व्यवहारो वेदो धर्म्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्म्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिकपशुपालकुसीदकारवः स्वेस्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्म्मव्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोभ्युपायः तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां गमयेत् । तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति । ब्रह्म क्षत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते ।

राजा प्रजाओंके विवादस्थानमें विचारकर निर्णय करै, वेद, धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग, उपवेद, पुराण, शास्त्रोंके अविरुद्ध, देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, उसका प्रमाण, कृषि, वाणिज्य, पशुपाल, व्यापारी, और शिल्पकारियोंको अपने २ वर्गमें स्थितकरै, अधिकारके अनुसार इनसे धन लेकर धर्मकी व्यवस्था करै; और न्यायके ढूंढनेमें उसका निर्णय करै, उससेही निश्चय करके जहांका तहां पहुंचादे और विवाद होनेपर अधिक विद्वानोंको सौंपकर निर्णय करावै कारण कि ऐसा करनेसेही राजाका कल्याण होताहै, ब्रह्मवीर्य क्षत्रियके तेजके साथ मिलनेसे राजा ब्राह्मण, देवता, पितर और मनुष्य इनकी पालना करताहै, यह बात शास्त्रसे विदित है, और बढोंनेभी यही कहाहै.

दंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान् दमयेत् वर्णाश्चाश्रमाश्च स्वकर्म्मनिष्ठाः प्रेत्य फलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यंते । विष्वंचो विपरीता नश्यंति तानाचार्योपदेशो दंडश्च पालयते । तस्मात् राजाचार्यावनिंद्यावनिंद्यौ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दमनके निमित्तही दंडकी सृष्टि है इसकारण सर्वदा सृष्टिका दमन करतारहै, स्वधर्ममें स्थित वर्ण और आश्रम मरनेके उपरान्त अपने २ कर्मोंके फलको भोगकर पुण्यके अंतमें इसभांति जन्म लेतेहैं; जहां यह उत्तम हों कि देश, जाति, कुल, रूप, अवस्था, विद्या, धन, आचरण, सुख और बुद्धि. अपने धर्मसे विपरीत आचरण करतेहुए वर्ण और आश्रम नष्ट होजातेहैं, नष्टहुए उनको आचार्यका उपदेश और दंड पालना करताहै, इसकारण राजा और आचार्य यह निन्दाकरनेके योग्य नहींहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगं मोच्यो येनोपहन्यात् । आर्यस्त्र्यभिगमने लिंगोद्धारः स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोधिकः । अथाहास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेदः धारणे शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दंड्यः शतम् । क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दंडपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अध्यर्द्धं वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रिये पंचाशत् तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित् ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यौ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषाम् । प्रतिवर्णं विदुषोतिक्रमे दंडभूयस्त्वम् । पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पंचमाषा गवि षडुष्ट्रखरे अश्वमहिष्योर्दश अजाविषु द्वौ द्वौ सर्व्वविनाशे शतं शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चेलपिंडादूर्ध्वं स्वहरणं गोग्न्यर्थे तृणमेधोवीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

शूद्र यदि किसी द्विजातिके प्रति तिरस्कारसूचक वाक्य कहै और कठोरभावसे आघात करै; तब वह जिस अंगसे आघात करै राजा उसके उसी अंगको कटवादे; और अपनेसे बडोंकी स्त्रियोंके संग यदि गमन करै तौ उसका लिंग कटवादे; और जो वह स्वयंही मरजाय या अपनी किसी भांति रक्षाकरै तौ उसका अधिकदंड यहहै कि, राजा उसका वध करै. शूद्र यदि वेदको सुनले तो राजा शीशे और लाखसे उसके कान भरदे, वेदमंत्रका

उच्चारण करनेपर उसकी जिह्वा कटवाले, और जो वेदको पढै तौ शरीरका छेदन करै, आसन, शयन, वाणी, मार्ग यदि इनमें शूद्र बराबरी करै तौ सौरुपये दंडकरै और वैश्य कुछ ऊपर आधा दंड दे यदि ब्राह्मण, क्षत्रियकी निन्दा करै तौ पचासरुपये और वैश्यकी निन्दा करनेपर पचीस रुपये दंड, और शूद्रकी निन्दा करनेपर कुछ दंड नहीं है; और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रकी निन्दा करनेमें ब्राह्मण और राजाके समान है, विद्वानोंके अवलंघनमें प्रत्येक वर्णको और शूद्रको मणिचोरी करनेका जो पाप होताहै, वही विद्वानोंकी निन्दा करनेवालोंको होताहै. थोडेसे फल; हरिद्रा, धान्य और शाक इनकी चोरीमें पांच कृष्णल (रत्ती सोना,) और किंचित् पशुकी पीडामें खेतके स्वामीको दोष है; और ग्वालियोंके साथमें जो खेतको बिगाडै तौ पालकोंको दोष है, यदि खेत मार्गमें हो या खेतका आवरण न हो, तौ खेतके स्वामी और पालक दोनोंको दोष है, गौकी पीडामें पांच मासे सुवर्ण, उंट और खरकी पीडामें छैः मासे, घोडे, और भैंसकी पीडामें दसमासे, बकरी और भेडकी पीडामें दोमासे सुवर्णका दंड कहाहै, और यदि सब खेतोंको नष्टकरदे तौ सौमासे सुवर्णका दंड करना उचित है, शिष्ट शास्त्रमें कहेहुएके न करने और कपडे धोनेसे अन्य निषिद्धोंकी सेवामें धनका हरना लिखा है; गौ और अग्निके निमित्त तृण, रखायेहुए वनस्पतियोंके फल रखवालेके नहोनेपर उन फलोंको अपना समझकर लेले.

कुसीदवृद्धिर्द्धर्म्या विंशतिः पंचमासिकी मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य मुक्ताभिर्न वर्द्धते दित्सतोवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिता कायिकाशिकाऽधिभोगाश्च कुसीदं पशूपलोमजक्षेत्रशतवाह्येषु नापि पंचगुणम् । अजडापोगंडधनं दशवर्षमुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुः न श्रोत्रियप्रव्रजितराजपुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगः रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्युः प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदंडान् पुत्रानध्याभवेयुः निध्यंवाचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वा न निंदिता न पुरुषापराधेन स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात् कर्माचक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामघ्नन्नेनस्वी राजा न शारीरो ब्राह्मणदंडः कर्म्मवियोगविख्यापनविवासनांककरणानि अप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती सः चोरसमः सचिवो मतिपूर्वे प्रतिगृहीताप्यधर्म्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबंधविज्ञानाद्दंडनियोगः अनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवचनात् वेदवित्समवायवचनात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूद और व्याजका बढाना विंशति भाग धर्मका है, और एक महीनेके लिये रुपये लेनेसे पांचमासे प्रत्येक रुपये पर है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि, पांचमासे एकवर्षतक है पीछे नहीं, और अधिक दिन ऋणरहनेसे सूदसे दुगना होजाताहै छोटी हुई वृद्धि देनेके पीछे नहीं बढती; और जो वृद्धिको रोककर रखताहै उनपर कालचक्रकी वृद्धि होतीहै, वृद्धि कारिता अधिभोगा, कायिका; यह तीन प्रकारकी होतीहै;और पशुओंके लोम, ऊन और सैकडोंवार जोतेहुए खेतोंमें पांचगुणोंसे अधिक वृद्धि नहीं होती; बुद्धिमान्का धन दशवर्षसे अधिक उसके समीपमें न

रहते यदि दूसरा पुरुषतक भोगै तौ उसकीवृद्धि सूद और वेदपाठी संन्यासी और राजाकेपुरुष भोगलें तौ उनका वह धन नहीं होसकता, निध्य कोशका द्रव्य, मांगाहुआ, मोललिया, सोंपाहुआ आधि, वा धरोहर, यह यदि नष्ट होजायँ तौ दोष नहींहै अर्थात् यह धन जिसको मिलजाय वह पुरुष दंडदेनेके योग्य नहींहै, यदि इनके मिलनेमें किसी मनुष्यका कुछ अपराध होजाय तौ दोष है, और चोर अपने वालोंको खोलकर हाथमें मूसल ले राजाके सन्मुख जाकर अपना अपराध कहदे; वह चोर राजाके बांधने वा छोडदेनेसे शुद्ध होताहै, राजा यदि उस मूशलसे न मारै, तौ पापका भागी राजा होताहै परन्तु राजा ब्राह्मणको शरीरका दंड न दे, वरन कामसे वियुक्त करदे और सबके सन्मुख विदित करै, वा अपने देशसे निकालदे, और शरीरपर दाग लगादे, यदि जो राजा ब्राह्मणको उपरोक्त दंड न दे तौ वह पापका भागी होताहै. और मंत्री और पापी चोरके समान है और राजा जानकर अधर्मीको पकड पुरुषकी शक्ति और अपराधके न्यूनाधिकके विधानसे दंडदे, अथवा वेदके जाननेवाले जैसा कहैं वैसाही दंडदे ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

विप्रतिपत्तौ साक्षिणि मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्युरनिंदिताः स्वकर्म्मसु प्रात्ययिका राज्ञां निःप्रीत्यनभितायाश्चान्यतरस्मिन्नपिशूद्राः ब्राह्मणस्त्वब्राह्मण- वचनादनवरोध्योऽनिबद्धश्चेत् नासमवेतापृष्टाः प्रब्रूयुः अवचनेन्यथावचने च दोषिणः स्युः स्वर्ग्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः अनिबद्धैरपि वक्तव्यं पीडा- कृते निबंधः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्यराजकर्तृषु दोषो धर्म्मतंत्रपीडायाम् । शपथेनैके सत्यकर्म्मणा तद्देवराजब्राह्मणसंसदि स्यात् ।

विवादके स्थानमें साक्षीके द्वारा कौन झूंठाहै और कौन सच्चा है राजा इस बातका स्थिर करै; दोनों पक्षमें निजकर्म अनिन्दित हो, राजाका विश्वासी पक्षपाती और द्वेषशून्य शूद्रजा- तिभी साक्षी होसकताहै, परन्तु साक्षीकी संख्या अनेक होनी आवश्यक है, अब्राह्मणोंके वचनकी अपेक्षा ब्राह्मणोंके वचनका आदर करै; साक्षी यदि साक्षी देनेके लिये सन्नद्ध न हो, तौ उसे राजाके घरपर जानेकी आवश्यकता नहींहै, परन्तु ऐसे साक्षीसे यदि राजा पूछै तो वह सत्य २ कहदे कारण कि सत्य कहनेसे स्वर्ग और मिथ्या कहनेसे नरककी प्राप्ति होतीहै. अनिरुद्धभी साक्षी देसकताहै; कारण कि किसीकी पीडासे वा रोकनेसे अथवा प्रम- त्तहोकर कहनेसे साक्षीको और सभासद् तथा राजाके कर्मचारी इनको दोष है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि धर्मके आधीन दुःखमें सच्चे कर्मसेभी शपथद्वारा निर्णय होताहै; और उससे वह सौगंध, देवता, राजा या ब्राह्मण इनकी सभामें लीजाय;

अब्राह्मणानां क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हंति गोश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् । सर्वं वा भूमौ हरणे नरकः भूमिवदप्सु मैथुनसंयोगेषु च पशुवन्मधुसर्पिषोः गोवद्वस्त्रहिरण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववत् मिथ्यावचने याप्यो दंड्यश्च साक्षी नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनं नतु पापीयसो जीवनं राजा प्राड्विवाको

ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् माड्विवाको मध्यो भवेत् । संवत्सरं प्रतीक्षेत प्रतिभार्या धेन्वनडुत्स्त्रीप्रजनसंयुक्तेषु शीघ्रम् । आत्ययिके सर्वधर्म्मेभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मणसे छोटे २ पशुओंके विषयमें यदि झूंठ कहै तौ वह दश पशुओंको मारताहै, गौ, घोडा, पुरुष, भूमि इनके विषयमें यदि झूंठ कहै तौ दशगुनी क्रमसे वा सम्पूर्ण हत्या करताहै, पृथ्वीकी चोरी करनेवालेको नरककी प्राप्ति होतीहै जलके चुराने वा दूसरेकी स्त्रीके साथ मैथुन करनेमेंभी नरक मिलताहै, मीठा और घीकी चोरी करनेमें पशुकी चोरीकी समान दोष होताहै; जो साक्षी झूंठ कहै वोह निकालने वा दण्ड देनेके योग्य है, यदि साक्षीकी जीविका उसीके अधीन हो तो इसमें दोष नहींहै, अर्थात् झूंठबोलदे तौभी पापका भागी नहीं होता; वस्त्र, सुवर्ण, अन्न, और वेदमें गौके समान दोष हैं, सवारी की चोरीमें घोडेकी समान दोष है; यदि अत्यन्त पापीसे जीविका हो, तौ राजा वकील और शास्त्रोंका जाननेवाला ब्राह्मण यह झूंठ न बोलें; और जो वकील बीचमें रहै वह एक वर्षतक प्रतिभाके लौटनेकी बाटदेखें, गौ, बैल, स्त्रीके संतान होना और मैथुन इनमें शीघ्र न्याय करै; और आवश्यकीय कार्योंमें वकीलका सत्य वचन प्रामाणिक हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ५ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिंडानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदंतः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्ध्येरन् । रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्च । युद्धमायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बंधनमपतनैश्चेच्छतां पिंडनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा जननेप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः स्रंसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी असपिण्डे योनिसंबंधे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमशौचमभिसंधाय चेत् उक्तं वैश्यशूद्रयोः आर्तवीर्वा पूर्वयोश्च त्र्यहं वा आचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् । अवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वावरं तत्र शावोक्तम् आशौचे पतितचंडालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् । शवानुगमे शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदानं सपिंडैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानतिभाग एकेऽप्रत्तानाम् ।

ऋत्विक् दीक्षित और ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त इनको दशदिन और सपिंडियोंको ग्यारह दिन, क्षत्रियको बारहदिन, वैश्यको पंद्रहदिन, और शूद्रको एकमहीनेतक शवका सूतक होता है; एक अशौचके बीचमेंही यदि दूसरा अशौच होजाय तौ पहलेके साथही उसकी शुद्धि

होती है; पहला अशौच जिसदिन समाप्त होगा उसकी एकरात्रि रहनेपर यदि प्रातःकालही दूसरा अशौच और होजाय तौ तीनदिन में शुद्धि होती है; गौ या ब्राह्मणके द्वारा मृतक होनेपर तीनदिन अशौच रहता है, राजाके क्रोधसे, युद्धमें, बैठने, और भोजन त्यागनेके व्रतमें यदि पुरुप मरजाय, या शस्त्र, अग्नि, विप, जलसे ऊंचेपरसे गिरकर, वा फाँसीखाकर, या वर्षाके जलसे जो मनुष्य मरजाय उसकी सातवीपीढी व पांचवी पीढीमें पिंडोंका अधिकार नहीं रहता; और जन्मसूतकमेंभी इसीभांति शुद्धि होती है, गर्भ गिरजानेपर जितने महीनोंका गर्भ हो उतनीही रात्रितक माता पिता अथवा माताहीको अशौच रहताहै, और गर्भके पडनेमें तीनदिनका सूतक होता है; यदि दशदिनके उपरान्त सूतक विदित जानपडे तो एकरात दोदिनतक होता है, जो अपना सपिंड नहो, जिसके साथ योनिक सम्बन्धहो या अपनेसाथ पढनेवाला हो, वा ब्रह्मचर्यमें साथीहो या वेद पढनेवाला हो इनके मरजानेमें एकदिनका सूतक होता है; और जो मनुष्य जानकर प्रेतका स्पर्श करै उसको दशदिनका सूतक होता है; वैश्य और शूद्रका सूतक प्रथम कहआये हैं; रजस्वला स्त्रीके स्पर्श करनेवाले तथा मृतकी ब्राह्मण और क्षत्रियको स्पर्श करनेवाले मनुष्यको तीनदिनका सूतक होता है; पूर्वकेहहुओंमें और आचार्य तथा आचार्यका पुत्र, स्त्री, यजमान, शिष्य इनका स्पर्शकरने-वालेकोभी पहले कहेहुओंको तीनदिनका अशौच होता है; यदि नीचवर्णका मनुष्य श्रेष्ठवर्णके शवका स्पर्श करले, अथवा श्रेष्ठवर्ण हीनवर्णके शवका स्पर्शकरले, तौ उसेभी मरणका अशौच होता है; पतित, चांडाल, सूतिका, ऋतुमती और शवके स्पर्श तथा इन सबके स्पर्श करनेवालोंके स्पर्श करनेवाला जलमें मग्नहोकर वस्त्रोंसहित स्नान, शवके साथ जानेवाले और कुत्तेका स्पर्श करनेवालाभी वस्त्रोंसहित स्नानकरै, और चूडाकरण होनेके उपरान्त मृतक होजाय तौ उसको सपिंड जलदान करै, कोई कोई ऐसाभी कहते हैं कि बिना विवाही कन्याओंको जलदेनेका अधिकार नहीं है; अर्थात् मरनेपर जलदान न करै ॥

अधःशय्यासानिनो ब्रह्मचारिणः सर्व्वे न मार्जयेरन् । न मांसं भक्षयेयुराप्रदा-नात् । प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससां च त्यागः । अंत्ये त्वंत्यानां दंतजन्मादिमातापितृभ्यां तूष्णीं माता बालदेशांतरितप्रव्रजितासपिंडानां सद्यः शौचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थं स्वध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जलदानसे प्रथम भूमिपर शयन करै ब्रह्मचारी रहै, मांसका भक्षण न करै, प्रथम, तीसरे, सातवें, नवें दिन जलदान और वस्त्रोंका त्याग करै, अन्त्यजोंका जलदान और वस्त्रोंका त्यागना यह दशमें दिन होताहै, और दांतोंके जमआनेपर यदि बालक मरजाय तौ माता पिताको अथवा केवल माताहीको सूतक लगताहै, और बालक, परदेशी, संन्यासी, असपिंड इनको और जिस कार्यमें विघ्न उपस्थित न हो इसकारणसे राजाओंकी और वेदपाठमें विघ्न न होजाय इसकारण ब्राह्मणकी उसीसमय शुद्धि होजातीहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति चापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्व्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षे गुणसंस्कारविधिरन्नस्य नवावरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् वाग्रूपवयःशीलसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवत् । न च तेन मित्रकर्म्म कुर्यात् । पुत्राभावे सपिंडा मातृसपिंडाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ । तिलमाषव्रीहियवोदकदानैर्मासं पितरः प्रीणंति । मत्स्यहरिणरुरुशशकूर्म्मवराहमेषमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि वार्ध्रीणसेन मांसेन कालशाकच्छागलोहखड्गमांसैर्मधुमिश्रैश्चानंत्यम् ।

इससमय श्राद्धके विषयमें कहतेहैं, अमावस्याके दिन पितरोंके लिये श्राद्धकरै, अपरपक्षमें (अर्थात् महालयमें) पंचमी इत्यादि तिथियोंमें भी पितरोंके निमित्त श्राद्ध करै, श्राद्धमें कहेहुए द्रव्य, देश और ब्राह्मणके समागममें भी श्राद्धकरै, श्राद्धमें जो समय नियत कियागयाहै, उसमें भी श्राद्धकरै, शक्तिके अनुसार अन्नके गुणोंका संस्कार करै, और अपनी शक्तिके अनुसार कमसे कम नौ ९ ब्राह्मणोंको जिमावै, अथवा उत्साहके अनुसार अयुग्म आदि वेदपाठी, वाणीरूप अवस्थाशील, इनसे युक्त ब्राह्मणोंको जिमावै, प्रथम युवा पितरोंके ब्राह्मणोंको अन्नदान करै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि सबको पिताकी समान समझकर श्राद्धकरै, और श्राद्धके दिन सन्ध्या उपासना न करै, यदि पुत्र न हो तो सपिंड वा शिष्यही पिंडदे, और यहभी न हो तौ ऋत्विज और आचार्य यह दे; तिल, उडद, चावल, जौ और जलके देनेसे पितर एक महीनेतक तृप्त होतेहैं; और मत्स्य, हरिण, रुरु, शशा, कछुआ, सूअर इनके मांससे एकवर्षतक, खारसे और गौके दुग्धसे बारह वर्षतक, वार्ध्रीणसके मांससे और कालशाक, बकरी, गैंडा; तथा मीठे मिलेहुए इनके मांससे पितृ अनन्त तृप्त होतेहैं;

न भोजयेत् स्तेनक्लीबपतिततद्वृत्तिनास्तिकवीरहाग्रेदिधिषूदिधिषूपतिस्त्रीग्रामयाजकाजपालोत्सृष्टाग्निमद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडाशी सोमविक्रय्यगारदाही गरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंस्रपरिवित्तिपरिवेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्वालान् कुनखिश्यावदंतश्वित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रापतिनिराकृतिकिलासिकुसीदिवणिक्शिल्पोपजीविज्यावादित्रतालनृत्यगीतशीलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् ।

चोर, नपुंसक, पतित, और जिसकी जीविका पतितसे हो उसे, नास्तिक, वीरकी हत्या करनेवाला, जो दूसरी विवाही स्त्रीको मुख्य समझता हो, वा जिसने दूसरी स्त्रीके साथ विवाह कियाहो, जो स्त्री और ग्रामवासियोंको यज्ञ करावै, बकरियोंकी रक्षा करनेवाला; जिसने अग्निहोत्र लेकर छोडदियाहो; मदिरा पीकर जो पृथ्वीमें विचरण करै; झूंठी साक्षी देनेवाला, दूत, जिसको यह मालूम न हो कि यह कौन है. कुंडाशी, सोमको बेचनेवाला,

घरमें अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, व्रतलेकर जिसने छोडदियाहो, बहुतोंका दूत, अयोग्य स्त्रीके साथ गमन करनेवाला, हिंसक, परिविवित्ति परिवेत्ता, पर्याहित, सब स्थानोंमें फिरनेवाला, त्यक्तात्मा, जिसका मन वशमें न हो, बुरे नखोंवाला, काले दांतवाला, दादवाला, दूसरी विवाहिता स्त्रीका पुत्र, कपटी बकरोंको पालनेवाला, राजाका दूत, बैरूपिया, शूद्रा स्त्रीका पति, तिरस्कारसे जीविका करनेवाला, कुष्ठरोगी, व्याजलेनेवाला, जो लेनदेन करता हो, कारीगरीसे जीविका करनेवाला, प्रत्यंचा, बाजा, ताल, नृत्य, गीत, जिसका इनमें मन लगताहो; जिसे विना इच्छाके पिताने जुदा करदियाहो, इन्होंको श्राद्धमें जिमावे नहीं;

शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवंतं सद्यः श्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुत्ररोषे मासं नयति पितॄन् तस्मात् तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचंडालपतितावेक्षणे दुष्टं तस्मात् परिश्रुते दद्यात् तिलैर्वा विकिरेत् । पंक्तिपावनौ वा शमयेत् ।

कितनेक महर्षि कहते हैं कि शिष्य तथा तीनपुरुषोंसे अधिक पीढोंके सगोत्रियोंकोभी श्राद्धमें भोजन करावे, और गुणवानको शीघ्रही जिमावै; यदि श्राद्धकरनेवाला शूद्राकी शय्यापर गमन करै तौ शूद्रापुत्रके क्रोधमें एकमहीनेतक पितरोंको नरकमें वास होता है; इसकारण श्राद्धके दिन ब्रह्मचर्यसे रहै, कुत्ता, चांडाल, पतित इनके देखनेसभी श्राद्ध दूषित होजाता है; इसकारण एकांत में श्राद्ध करै, तिलोंको बखेर दे, अथवा पंक्तिको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण शांति करदेते हैं;

पंक्तिपावनाः षडंगवित् ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पंचाग्निः स्नातको मंत्रब्राह्मणवित् धर्म्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसंधान इति हविःषु चैव दुर्बलादीञ्छ्राद्ध एवैक एवैके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जो षडंग वेदको जाननेवाला ज्येष्ठ उत्तम सामका जो गानकरे; जिसने तीनवार अग्नि चिनीहो ऋग्वेदके मधुवाता आदि तीनों मंत्रोंका जाननेवाला त्रिसुपर्ण मंत्रोंका ज्ञाता, पंचाग्नि मंत्र और ब्राह्मणोंका ज्ञाता, स्नातक, गृहस्थी, धर्मज्ञ, ब्रह्मदेयानुसन्धान वेदमें जो भलीभांति से द्रव्यआदि दे इतने षडंगके ज्ञाताओंको पंक्तिका पवित्रकरनेवाला कहा है, हवन इत्यादि कार्यमेंभी इसीप्रकार दुर्बल मनुष्योंको भोजन करावै और कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि यह नियम केवल श्राद्धकाही है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

श्रावणादिवार्षिकीं प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीतच्छंदांसि अर्धपंचमासान् । पंचदक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न मांसं भुंजीत द्वैमास्यो वा नियमः ।

वर्षाऋतुमें श्रावणकी पूर्णिमा और भादोंकी पूर्णिमाको वा दक्षिणायनके पांच महीनों में ब्रह्मचारी नियमपूर्वक लोमोंको त्यागकर वेदको पढै मांस भोजन न करै अथवा दो महीनेमें मुण्डन करावे,

नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदंगगर्जनार्तश-ब्देषु च श्वसृगालगर्द्दभसंह्रादे लोहितेंद्रधनुर्नीहारेषु अभ्रदर्शने चापर्तौ मूत्रित उच्चारिते निशासंध्योदके वर्षति चैके वलीकसंतानमाचार्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतमहापथाशौचेषु पूतिगंधांतःशवदिवाकीर्तिशूद्रसन्निधाने शुल्कके चोद्गारे ऋग्यजुषं च सामश-ब्दो यावत् । आकालिकाः निर्घातभूमिकंपराहुदर्शनोल्काः स्तनयित्नुवर्षविद्यु-तश्च प्रादुष्कृताग्निषु अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयितुरपराह्णे अपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रात् । अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्थे च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपा-हितवेदसमाप्तिः छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् अमावास्यायां च द्व्यहं वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढीपौर्णमासीतिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्याग्न्येके अभितो वा-र्षिकं सर्व्वं वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसंनिपाते प्रस्पंदिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृ-तान्नश्राद्धिकसंयोगेपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरंति यावत्स्मरंति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यदि दिनके शब्द धूल उडानेवाली वायु चलै और रात्रि के समय कानोंमें फुंकारतीहुई पवन चले, तौ वेदको न पढै. वाण, भेरी, नकारा, मृदंग, रोगीका भयंकर शब्द, कुत्ता, गीध, गधा इनका शब्द होता हो, वा इन्द्रधनुष दीखपडै तथा नीहार और कुसमय मेघ दृष्टि पडै मलमूत्र त्याग करनेके उपरान्त तथा रात्रि और संध्याके समयमें वेदको न पढै; और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षा होते समयमेंभी न पढै, अपने कुटीके वलीक (अर्थात्-प्रांतभाग वरौती) से बरसातका पानी टपके इतनी बरसात होवै तौ निकट और जहां आचार्यके चारोंओर मनुष्य बैठे हों वहां, चन्द्रमा सूर्यके निकट मंडलबननेके समय, इन समयोंमेंभी वेदको न पढै, किसीकारणसे भयभीत होकर, सवारीमें चढकर, लेटकर, घुटनोंको खडा करके भी वेदको न पढै, श्मशानमें ग्रामके निकट बडे मार्गमें, और अशौ-चके निकट वेदको न पढै; दुर्गके निकट, शव, नाई, शूद्र, और शुल्कमहसूलके स्थानपर भाग-ताहुआ वेद न पढै, जहांतक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदका शब्द सुनाईजाय, अकालमें निर्घात, भूमिकंप, राहुदर्शन, उल्कापात, मेघवर्षण, और बिजलीका गिरना, अग्निका लगना इतने समयमेंभी वेदको न पढै; विना ऋतुके बिजली चमकै, और रात्रिके पहले पहरमें तारे टूटैं तौ वेदको न पढै, यदि मध्याह्नके समय गरजै, अथवा प्रदोषकालमें गरजै; और आधीरातके समयमें भी वेदको न पढै; दिनके समय तारे दीखैं अपने देशके राजाकी मृत्यु होनेपर वेद पढनेका निषेध है, परदेशमें जाकर दूसरेके साथ वेदकी समाप्ति करै. वमन, श्राद्ध, मनुष्य, यज्ञभोजन इनमें एक दिनका अमावसमें दो दिनका; कार्तिक, फाल्गुन, तथा, आषाढकी पूर्णिमा और तीनों अष्टका इनमें तीन रात्रिका वेदका अनध्याय होताहै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षाऋतुके आदि अन्तमेंभी वेदके पढ-

नेका निषेध है, वर्षा होतीहो बादल गर्जता हो, और नही २ बूंदें पडती हों उस समयभी वेद न पढै भोजनकरनेके उपरान्त और उत्सवमें वेद पढनेका निषेध है, पढेहुए वेदको रात्रिमें चारमुहूर्त्तसे अधिक न पढै; और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि मन नगरमें नित्य अशुद्ध रहताहै; इसकारण नगरमें वेदको न पढै और श्राद्ध करनेवालोंको विना अनध्यायके समयभी अनध्याय होताहै, और अकृतान्नश्राद्धमेंभी सब विद्याओंका अनध्याय होताहै, यह ऋषिका वचन है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

प्रशस्तानां स्वकर्म्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत प्रतिगृह्णीयात् । एधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनावसथयानपयोदधिधानाशफरिप्रियंगुस्रङ्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्व्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यत् । वृत्तिश्चेत् नांतरेण शूद्रान् पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारयितृपरिचारका भोज्यान्ना वणिकुचाशिल्पी । नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भ्रूणघ्नावेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं शुक्तं केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहम।समधूनि उत्सृष्टपुंश्चल्यभिशस्तानपदेश्यदंडिकतक्षककदर्यबंधनिकाचिकित्सकमृगयुवार्युच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपांक्तानां प्राक् दुर्बलान् वृथान्नानि च मनोत्थानव्यपेतानि समासमाभ्यां विषमसमे पूजान्तरानर्चितश्च गोश्च क्षीरमनिर्दशायाः सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमेकशफं च स्यंदिनीयमसूसंधिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः पंचनखाश्च शल्यकशशकश्वाविट्गोधाखड्गकच्छपाः उभयतोदत्केश्यलोमैकशफकलविंकप्लवचक्रवाकहंसाः काककंकगृध्रश्येना जलजा रक्तपादतुंडाः ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ धेन्वनडुहौ च आपन्नदावसन्नवृथामांसानि किसलयक्याकुलशुनानिर्य्यासलोहिताव्रश्चनाश्चानिचिदारुबकबलाकाःशुकद्दुटिट्टिभमांधातनक्तंचरा अभक्ष्याः । भक्ष्याःप्रतुदाविष्किराजालपादाः मत्स्याश्चाविकृतावध्याश्च धर्मार्थव्यालहताद्दृष्टदोषवाक्प्रशस्तान्यभ्युक्ष्योपयुंजीतोपयुंजीत ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अपने कर्मोंमें तत्पर द्विजातियोंके यहां ब्राह्मण भोजन करै, और उनसे प्रतिग्रह ले, ईंधन, जल, भुस, मूल, मठा, भयसे रहित हो स्वयं दीहुई शय्या, आसन, सवारी, घर, दूध, दही, धाना, मत्स्य, कांगुनी, माला, और मार्गका शाक, यह शूद्रके यहांसेभी लेने योग्य हैं. और पिता, गुरु, देवता, भृत्य इनकी पालनाके निमित्त सबके यहांसे लेनेयोग्य है, यदि और कोई आजीविका हो तौ शूद्रोंसे लेले अन्यसे न ले, और शूद्रोंमें भी उसके यहांसे ले जो कि पशुओंकी पालना करनेवाला, किशान, कुलका संगी, पिताका सेवक हो; इनका अन्न खाने-

योग्य है; और जो व्यापारी शिल्पी न हो उसका भी अन्न खानेयोग्य है; जो अन्न केश और कीडासे दूषित हुआहो रजस्वला स्त्री और पक्षीके पैरसे जिसका स्पर्श होगयाहो, बालककी हत्या करनेवालेने जो देखाहो, गौका सूंघाहुआ, भावदुष्ट, दहीके अतिरिक्त शुक्त, दुवारा पकाया शाकसे भिन्न बासी ऐसे खाने योग्य पदार्थ, स्नेह, मांस, और सहत ये अभक्ष्य हैं, जिसको व्यभिचारके कारण त्यागदियाहो, या जिसे व्यभिचारका दोष लगायाहो, जिसके लेनेको स्वामीने आज्ञा न दीहो, जिसको कुछ दंड हुआहो, बढई, उपकार न माननेवाला; बंधनिक, व्याध, उच्छिष्ट जलका पीनेवाला, बहुतोंका शत्रु, और पंक्तिसे बाह्य इनके यहांका अन्न न खाय, दुर्बलसे प्रथम भोजन न करै, भोजन, आचमन और उत्थान, इनको वृथा न करै, समकी विषम पूजा, और विषमकी सम पूजा तथा सूर्यादिक तारोंकी पूजाका त्याग न करै; और दसदिनसे पहले (व्याईहुई) गौ, बकरी, भैंस, इनका दूध न पिये, भेड ऊंटनी, घोडी, रजस्वला, दो बच्चेवाले, संधिनी, दूध देनेवाली मृतवत्सा इनका दूध पीने योग्य नहींहै; सेह, खरगोस, गोह, गेंडा, कछुआ यह सेहके अतिरिक्त सब अभक्ष्य हैं, दोनोंओर दांतवाले, बडे २ रोम जिनके हों, एकखुरवाले और कलविंक चिडिया, जलमुरगी, चकवा, हंस, काक, कंक, गीध, वाज, जिनके चौंच और पैर लाल हों यह जलके जीव, ग्रामका मुरगा, शूकर, गौ और बैल यह स्वयं मरजाँय, और वनमें अग्निसे जो उक्त जीव मरजाय उसका मांस और वृथामांस, पत्तेका रस आदि स्वयंहतेका मांस जिनमें लाली हो ऐसा निकलाहुआ गोंद, अश्व, निचि दारू, (?) बक, बगला, तोता, टुट्टु, टटीरी, मांधातृ, और चिमगादर यह जीव सब अभक्ष्य हैं, चोंचसे खोदनेवाले, जालकी समान पैरनेवाले और विकाररहित मछली यह भक्षणीय हैं और मारने योग्य है, धर्मके लिये सर्पसे मरेहुए तथा निर्दोष और जिन्हे कोई बुरा न कहै उनको भी जलसे छिडककर काममें लेलेना योग्य है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अस्वतंत्रा धर्म्मे स्त्री नातिचरेद्भर्तारं वाक्चक्षुःकर्म्मसंयता यद्यपत्यलिप्सुर्देवरात् गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात् पिंडगोत्रऋषिसंबंधेभ्यः योनिमात्राद्वा नादेवरादित्येके । नातिद्वितीयं जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्र परस्मात्तस्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव । नष्टे भर्तरि पाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात् तस्य द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबंधे भ्रातरि चैवं ज्यायसि यवीयान् कन्याग्न्युपयमनेषु षडित्येके । त्रीन्कुमार्य्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येतानिंदितेनोत्सृज्य पित्र्यानलंकारान् । प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दोषी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके । द्रव्यादानं विवाहसिद्ध्यर्थं धर्म्मतंत्रप्रसंगे च शूद्रात् । अन्यत्रापि शूद्रात् बहुपशोर्हीनकर्म्मणः शतगोरनाहिताग्नेः सहस्रगोर्वा सोमपात् सप्तमीं चाभुक्त्वा निचयाय अप्यहीनकर्मभ्यः आचक्षीत राज्ञा

पृष्ठस्तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्म्मतंत्रपीडायां तस्याकरणे दोषोऽदोषः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" इस मनुवाक्यके अनुसार स्त्री धर्म करनेमेंभी पतिके आधीन है, इससे स्वामीकी आज्ञाको कभी उल्लंघन न करै. और पतिकी मृत्यु होजाय तो मनवाणीसे नियमपूर्वक सुकर्ममें तत्पर रहै, यदि उस अवसरमें उसको सन्तानकी इच्छा हो तो पतिके सहोदर अर्थात् अपने देवरसे ऋतुकालमें समागमकर सन्तान उत्पन्न करले विना ऋतुके गमन न करै, और यदि देवर न हो तो जिसके साथ ऋषि पिंड और गोत्रका सम्बन्ध है वा केवल योनिसम्बन्धवाले देवरसे सन्तान उत्पन्न करले, परन्तु ऋतुकालके सिवाय गमन न करै, किन्हीका यह मत है कि देवरके सिवाय अन्य किसीसे गमन न करै, और ऋतुकालके विना गमन न करै, देवरसेभी दो सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करै ऋतुकालके विना दूसरेकी सन्तान उसके पतिकी नहीं होती, अर्थात् यदि किसीप्रकारका सत्व न हो तो यह सन्तान उत्पन्न करनेवालेकीही होगी कारण कि अविधिसेही जीतेहुए पतिके उसके क्षेत्रमें यदि सन्तान उत्पन्न हो तो यह सन्तान क्षेत्रीकीही होगी अथवा उस क्षेत्रके स्वामी और उत्पन्न करनेवाला इन दोनोंकीही यह सन्तान होगी वास्तवमें तो जो पालेगा उसीकीही वह सन्तान होगी (यह उपपतिका धर्म द्विजातिसे पृथक् जनोंके निमित्त है कारण कि मनुने इसका निषेध कियाहै "नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः") और दूसरे यह कलिवर्ज्यभी है इससे द्विजातिमें आदरके योग्य नहींहै, अब पतिके अज्ञातवासके धर्म कहते हैं, यदि पतिकी कुछ खबर न मिलै तो छः वर्षतक उसकी वाट देखे, यदि समाचार मिलजाय तो स्वयं उसके पास चलीजाय यदि संन्यासी होगयाहो तो उसके पास न जाय. अब पिताके मरनेपर ज्येष्ठभ्राताके पढनेको जानेमें क्या कर्तव्य है सो कहतेहैं । ब्राह्मणके विद्यासम्बन्धमें ज्येष्ठभ्राताभी यदि इसीप्रकार समाचाररहित होजाय उसकी खबर न मिले तौ छोटा भाई उसका कन्यादान अग्निरक्षा यज्ञोपवीत तथा विवाह करनेको बारहवर्षतक उसके आनेकी वाट देखे पीछे उसका विवाह करदे, कोई कहतेहैं कि, छःवर्षतक वाट देखे यदि पिताआदि उसको न विवाहतेहों तो कुमारी तीन ऋतु बिताकर पिताके दियेहुए अलंकार भूषण त्यागकर स्वयं किसी श्रेष्ठ कुलके वरसे विवाह करले, ऋतुके पहलेही कन्या दानकरना उचित है ऋतुके पहले कन्यादान न करनेसे कन्याका पिताआदि पापयुक्त होताहै; कोई कहतेहैं कि, कन्या ऋतुमती होनेसे पहले विवाहना उचित है यदि द्रव्य न हो तो इस विवाह सम्पन्न करने अथवा किसी धर्मकार्यके करनेके निमित्त शूद्रसेभी द्रव्य लेलेनेमें दोष नहींहै दूसरे कार्यके निमित्तभी बहुत पशुवाले शूद्रसे, हीनकर्मवाले सौ गौके स्वामीसे अग्निहोत्ररहित ब्राह्मणसे तथा सहस्रगौके स्वामी सोमपीनेवाले ब्राह्मणसे धन ग्रहण करै जब भोजन न मिलै और सातवीं वेला आजाय तब अहीनकर्म (श्रेष्ठकर्मवाले) के यहांसे भोजन ग्रहणकरले यदि राजा पूछे तो उसे सत्य २ कहदे, धर्मके आचरणमें वाधा हो तो राजा वेदवित् तथा शास्त्रसम्पन्न सुशील ब्राह्मण भरण पोषण करतारहे ऐसा न करनेसे उसको दोष लगैगा पालनसे दोष न होगा ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितियः प्रपाठकः ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

उक्तो वर्णधर्म्मश्चाश्रमधर्म्मश्च ॥ अथ खल्वयं पुरुषो येन कर्म्मणा लिप्यते यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं शिष्टस्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसंते न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म्म क्षीयत इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्ट्वा पुनः सवनमायांतीति विज्ञायते । व्रात्यस्तोमैश्चेष्ट्वा तरति सर्व्वं पाप्मानम् । तरति ब्रह्महत्यां योश्वमेधेन यजते । अग्निष्टुताभिशस्यमानं याजयेदिति च । तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिषदो वेदांताः सर्व्वच्छंदःसुसंहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथंतरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमं बहिष्पवमानं कूष्मांडानि पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि । पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च मेध्यानि । सर्व्वे शिलोच्चयाः सर्वा स्रवंत्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थानि ऋषिनिवासा गोष्ठपरिस्कंदा इति देशाः । ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताधःशायिताऽनाशक इति तपांसि । हिरण्य गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिलघृतमन्नमिति देयानि । संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहःषडहस्त्र्यहोहोरात्र इति कालाः एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्नेनासि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चांद्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तम् ॥

इति श्रीगौतमीयेधर्मशास्त्र एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वर्णधर्म, और आश्रमोंका धर्म कहागया, इस समय जिस कर्मके करनेसे मनुष्य पापसे लिप्त होते है, उसको कहते हैं; यज्ञ न करने योग्यको यज्ञ कराना, और भक्षणके अयोग्यको भक्षण कराना, तथा नमस्कार करने अयोग्यको नमस्कार करना, शास्त्रोक्त कर्मका न करना, नीचकी सेवा करना, निषिद्ध कर्मोंके करनेपर प्रायश्चित्त करे अथवा न करे उसकी मीमांसा कीजाती है; कोई २ ऋषि कहते हैं कि प्रायश्चित्त न करे, कारण कि कर्मोंका क्षय नहीं होता, कोई २ कहतेहैं कि प्रायश्चित्त करे कारण कि शास्त्रसे यह विदित होता है कि पुनर्वार स्तोमयज्ञके करनेसे पवित्र होजाते हैं; और व्रात्यस्तोम यज्ञके करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाता है, अश्वमेध यज्ञका करनेवाला ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाता है; शापकी निन्दासे लिप्तहुआ मनुष्य अग्निष्टुत् यज्ञको करे और उपरोक्त पापोंका प्रायश्चित्त यह है कि जप, तप, हवन, उपवास, दान, उपनिषद्, वेदान्त, चारों वेदोंकी संहिता, मधु, अघमर्षण, अथर्वण वेदके शिरोमंत्र, पुरुषसूक्त, राजन और रोहिणी मंत्र, बृहत् और रथन्तर साम, पुरुषगति, महानाम्नी ऋचा, महावैराज, महादिवाकीर्त्य और ज्येष्ठसामोंका कोईसा भाग बहिष्पवमान, कूष्मांड, पावमानी ऋचा, गायत्री यह सभी मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं;

प्रतिगृह्य जपेत् शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं योरोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरत्समंदीभिः पावमानीभिः कूष्मांडैश्चाज्यं जुहुयात् । हिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्यात् गां चाचार्याय च यस्य च प्राणांतिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत् तस्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शांत्युदकं सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्र एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे राजाकी हत्या करके भी पुरुष यदि शुद्ध होगयाहो तौ वह शुद्ध होजानेके उपरान्त सुवर्णके घडेको पवित्र कुंडमें वा झरनोंमेंसे भरकर उसका स्पर्श करै और सुवर्णके घडेको उसे देदे फिर वह उस घडेको लेकर "शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि" इन मंत्रोंको जपै,और यजुर्वेदकी ऋचा,पावमानी तथा कूष्मांडीसे घृतका हवन करै, ब्राह्मणको सुवर्णका दान दे, आचार्यको गौदान करै. जिस पापीका प्रायश्चित्त प्राणान्तिक है वह मरनेके पीछे शुद्ध होता है, उसके उदकदानआदि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करने में उन समस्त पापोंमें यही शांतिका उदक कहा है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां मेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसंबंधगस्तेन नास्तिकनिंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः । पातकसंयोजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन् द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेके नरकं त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यानि मनुः । न स्त्रीष्वगुरुतल्पगः पततीत्येके । भ्रूणहनि हीनवर्णसेवायां च स्त्री पतति कौटसाक्ष्यं राजगामि पैशुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि अपांक्त्यानां प्राग्दुर्बलात् । गोहंतृब्रह्मोज्झतन्मंत्रकृदवकीर्णिपतितसावित्रिकेषूपपातकं याजनाध्यापनादृत्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेयौ अन्यत्र हानात्पतति तस्य च प्रतिग्रहीत्येके न कर्हिचिन्मातापित्रोरवृत्तिः दायं तु न भजेरन् ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्तावान् द्विरनेनसि दुर्बलहिंसायां चापि मोचने शक्तश्चेत् । अभिक्रुद्ध्यावगूरणं ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निपातने निर्घाते सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कंद्य पांसून् संगृह्णीयात्संगृह्णीयात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला, माता और पिताके पक्षकी योनिसम्बन्धकी स्त्रियोंके साथ गमन करनेवाला नास्तिक, निंदित कर्मोंको करनेवाला, पतितका संसर्ग करनेवाला, अपतितका त्यागनेवाला यह सभी पतित हैं इनके साथ जो मनुष्य एक वर्षतक संसर्ग करता है वह भी पातकी होजाता है, वह पतित द्विजातियोंके कर्मसे हीन होकर घर और परलोकमें अगतिको प्राप्त होता है; और कोई २

ऐसा भी कहते हैं कि, उस मनुष्यको नरक होता है यह मनुका मत है कि पहले तीन (ब्रह्महत्याकारी, मदिरा पीनेवाला, गुरुशय्यापर गमनकारी)का प्रायश्चित्त नहीं है, कोई २ यह कहते हैं कि गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला पतित होता है अन्य स्त्रीमें गमनकरनेवाला पतित नहीं होती. भ्रूणहत्या करनेवाली और नीच वर्णकी सेवा करनेसे स्त्री पतित होती है, झूठी साक्षी, राजाकी चुगली, गुरुकी झूंठी निन्दा यह भी महापातकके समान है; पंक्तिके बीचमें हत्यारा, वेदका त्यागी, (वेदमंत्रोंके व्यवहारसे रहित) अवकीर्णी और गायत्री से पतित होकर जो ऋत्विक् आचार्य हो तो यहभी त्यागनेके योग्य हैं; जो पतितकी सेवाको करतेहैं जो इनको नहीं त्यागता है वह भी पतित होता है. और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पतितके प्रतिग्रहसे यह पतित होते हैं पुत्र माता पिताकी आज्ञाका उल्लंघन न करै, और विना उनकी आज्ञाके भाग भी न बांटै, ब्राह्मणकी निन्दा तथा पूर्वोक्त निरपराधी और दुर्बलकी हिंसा में भी दुगना दोष है; यदि छुटानेमें सामर्थ्यवान् होकर ब्राह्मणको हिंसा करावे, और गुरुपर क्रोध करै तौ ब्राह्मणको सौ वर्षतक नरक होताहै मारनेमें सहस्र वर्षतक और रुधिरके निकलनेपर जितने रुधिरसे पृथ्वीके परमाणु भीजैं उतनेही वर्षतक नरक प्राप्त होता है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवच्छादितस्य लक्ष्येण वा स्याज्जन्यशस्त्रभृतां खट्वांगकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्ष्याय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्म्माचक्षाणः पथोपक्रामेत्संदर्शनादार्य्यस्य स्नानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् । प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेप्यग्निष्टुदन्तश्चोत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे हत्वापि आत्रेय्यां चैवं गर्भे चाविज्ञाते ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्य्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात् । शूद्रे संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात् । अनात्रेय्यां चैवं गां च वैश्यवत् मंडूकनकुलकाकबिडराहमूषिकाश्वहिंसासु च । अस्थिमतां सहस्रं हत्वा अनस्थिमतामनड्वाहं च अपि वाऽस्थिमतामेकैकस्मिन् किंचिद्दद्यात् । पंडे च पलालभारः सीसमाषकश्च वराहे घृतघटः सर्प्पे लोहदंडः ब्रह्मबंध्वां च ललनायां जीवो वैशिके न किंचित् तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गः यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमत्र योगे सहस्रवाक् चेत् अग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिंडं तु लभेत् । अमानुषीषु गोवर्ज्जं स्त्रीकृते कूष्मांडैर्घृतहोमो घृतहोमः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

ब्रह्महत्या करनेवालोंका प्रायश्चित्त यह है कि वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करै अथवा तीनवार शस्त्रधारियोंके शस्त्रसे काटेजांय, फिर वह खट्वांग और कपालको हाथमें लेकर बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य

व्रतको धारण किये भिक्षाके निमित्त अपने कर्मको कहतेहुए ग्राममें जायँ, सज्जन मनुष्यको देखकर मार्ग छोडदें. और तीर्थोंमें स्नान, आसन और जलके आचमनसेही शुद्ध होतेहैं, यदि ब्रह्महत्याके निमित्तसे किसी ब्राह्मणके प्राण बचजांय, अथवा नष्टहुआ द्रव्य मिलजाय; तौ तीसरा भाग कम प्रायश्चित्त करै, राजा अश्वमेध अथवा अन्य यज्ञोंमें अग्निकी स्तुति करै; और जो अंतःकरणसे ब्राह्मणके वधकी इच्छा न करताहो यदि वह ब्राह्मण मरजाय तो, ऋतुमती स्त्रीके मरनेमें वा विना जाने गर्भके नष्ट करनेमें भी नौ वर्षका प्रायश्चित्त है; ब्राह्मण क्षत्रियोंके मारनेमें छैः वर्षका स्वभावसे ब्रह्मचर्य करै, और सहस्र गौ दे तथा वैश्यके मारनेमें तीन वर्षका ब्रह्मचर्य करै एक बैल और सौ गौ दे, शूद्रकी हत्यामें एक वर्षका ब्रह्मचर्य कर एक बैल और ग्यारह गौ दे, रजस्वलाके अतिरिक्त स्त्रीका मारनेवाला एक वर्षतक ब्रह्मचर्य्य कर एक बैल और सौ गौओंका दान करै, मेंडक, काक, नौला, बिंव, अश्व,दहर, मूसा, इनकी हिंसामें भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै; सहस्र अस्थिवाले और अस्थियोंसे रहितोंकी हत्यामेंभी तथा अधिक भारसे बैलकी हत्यामेंभी यही प्रायश्चित्त है; और अस्थिवाले छोटे २ जीवोंकी एक २ हत्यामें थोडा २ दान करै, षंढ जीवकी हत्यामें पलालका एक भार, और मासा सीसा दानकरै. शूकरकी हत्यामें घीका घडा, सर्पकी हत्यामें लोहेकी दंडको ब्राह्मणको दे; ब्राह्मणकी व्यभिचारिणी स्त्रीकी हत्या शय्या, अन्न और धनके लोभसे विना जाने होजाय तो भिन्न २ वर्षके प्रायश्चित्त करनेकी विधि है. दूसरेकी स्त्रीकी हत्या करनेवाला दो और वेदपाठीकी स्त्रीकी हत्यामें तीन वर्षतक प्रायश्चित्त करै, यदि द्रव्य मिलजाय तो अपराधी छोड देनेके योग्य है, अथवा उसको उसके घर पहुंचादे, यदि इस अपराधमें हजार वारभी सच्चा हो अग्निका त्यागी, तिरस्कारी और उपपातक हो उनमें भी यही प्रायश्चित्त है; स्त्रीके व्यभिचारिणी होनेपर उसे घरमें रखछोडै और पिंड दे. गौके अतिरिक्त स्त्रीसे भिन्न स्त्रीकी कीहुई हत्यामें कूष्मांडमंत्रोंसे घीका हवन करै ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिंचेयुः सुरामास्ये मृतः शुद्ध्येत् अमत्या पाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तानि सकृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः मूत्रपुरीषरेतसां च प्राशने श्वापदोष्ट्रखराणां चांगस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गंधाघ्राणे सुरापस्य प्राणायामो घृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य तल्पे लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत । सूर्मीं वा ज्वलंतीं चाश्लिष्येत् । लिंगं वा सवृषणमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणां प्रतीचीं दिशं व्रजेत् । अजिह्ममाशरीरनिपातात् मृतः शुद्ध्येत् । सखीसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमोऽवकर इत्येके श्वभिरादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशं पुमांसं घातयेत् । यथोक्तं वा गर्दभेनावकीर्णो निर्ऋतिं चतुष्पथे यजते । तस्याजिनमूर्द्धवालं परिधाय लोहि-

तपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्म्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्ध्येत् । रेतःस्कंदने भये रोगे स्वप्नेग्नींधनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः · साभिसंधेर्वारे तस्याभ्याम् ॥

मदिरा पीनेवाले ब्राह्मणके मुखमें उष्ण मदिराको डाले तौ वह मृत्युको पाकर पापसे मुक्त होताहै; यदि अज्ञानतासे मदिरापान कीहै तो तीन दिनतक क्रमानुसार दूध, घृत, उदक और वायुको भोजनकर तप्तकृच्छ्र व्रतको करै इसके उपरान्त पुनर्वार यज्ञोपवीत करावै, मूत्र, विष्ठा, वीर्य, भेडिया, ऊंट, गधा, ग्रामका मुरगा इनके भक्षण करनेमेंभी पूर्वोक्त संस्कार करै, मदिरा पीनेवालोंकी दुर्गंधिको सूंघने और पूर्वोक्त भेडियेआदिके काट-खानेमें प्राणायाम और घृतका भोजन करै, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तपाईहुई लोहेकी शय्यापर शयन करै, और जलतीहुई लोहेकी स्त्रीका स्पर्श करै; अथवा अण्डकोश-सहित इन्द्रियको काट हाथमें रखकर दक्षिण अथवा पश्चिम दिशाको चलाजाय और मरण-पर्यंत निष्कपट रहै, फिर मरनेके उपरान्त शुद्ध होजाताहै. मित्रकी स्त्री, कुलगोत्रकी स्त्री, शिष्य और पुत्रवधू, गौ इनके साथ गमन करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरनेके समान प्रायश्चित्त करै, यदि कोई उत्तम वर्णकी स्त्री नीच वर्णके पुरुषके साथ व्यभिचार करै, तौ राजा उसको सबके सम्मुख मरवा दे, और वह पुरुष भी वध करनेके योग्य है, गधीके योनिमें वीर्य डालनेवाला चौराहेमें निर्ऋति देवताका पूजन करै, और बालोंसहित उस गधेकी चामको ओढकर लोहेका पात्र हाथमें ले अपने कर्मोंको कहताहुआ सात घरोंसे भिक्षा मांगै, एक वर्षतक इस भांति करनेसे शुद्ध होजाताहै; भय, रोग, या सुषुप्ति अवस्थामें वीर्य स्खलित होजाय तो सात दिनतक अग्निहोत्र करनेके लिये ईंधन और भिक्षा मांगकर घृतसे हवन करै ।

सूर्याभ्युदित ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुंजानोभ्यस्तमिते च रात्रिं जपन् सावित्रीम्, अशुचिं दृष्ट्वादित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वा अमेध्यप्राशने वा अभोज्यभोजने निष्पुरीषीभावः त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा, स्वयं शीर्णान्युपयुंजानः फलान्यनतिक्रामन् प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दिनो घृतप्राशनं च आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः सत्यवाक्ये चेद्वारुणीभिः पावमानीभिर्होमः । विवाहमैथुननिर्मातृसंयोगेष्वदोषमेके । अनृतं चेत् न तु खलु गुर्वर्थेषु यतः सप्त पुरुषानितश्च परतश्च हंति । मनसापि गुरोरनृतं वदन्नल्पेष्वप्यर्थेषु । अंत्यावसायिनीगमने कृच्छ्राब्दः अमत्या द्वादशरात्रम्, उदक्यागमने त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूर्यके उदय होनेपर ब्रह्मचारी रहै प्रतिदिन एक वार भोजन करै; सूर्यके अस्त होनेपर गायत्रीका जप करताहुआ रात्रिको व्यतीत करै, अपवित्र वस्तुको देखकर सूर्यका दर्शन करै; और अपवित्र वस्तुको भक्षण करके प्राणायाम और सूर्यका दर्शन करै, अभोज्य वस्तुका यदि भोजन करले तो जबतक उस अन्नका मल शरीरमेंसे न निकले तबतक (तीन रात्रितक)

भोजन न करै अथवा सात दिनतक आपसे टूटेहुए फलोंका भक्षण करै, पांचों पंचनख पशुओंके अतिरिक्त अन्य पशुओंके भक्षणमें वमन करके घृतका भक्षण करै; निन्दा, मिथ्या, हिंसा इनमें सत्य वचनके विषै अर्थात् जो सच्चे निन्दक हों तौ वारुणी पावमानी ऋचाओंसे हवन करै और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि विवाह, मैथुन और माताके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंके साथ झूंठ बोलनेका दोष नहीं है, गुरुके निमित्त झूंठ बोलनेवाला सात पिछली और सात अगली पीढियोंको नष्ट करता है। मनसे भी गुरुके निमित्त तुच्छ कामोंमें जान बूझकर यदि झूंठ बोले अथवा भीलादिके साथ यदि गमन करै, पूर्वोक्त कर्मोंको यदि अज्ञानसे करै तौ बारह रात्रितक कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होती है, और रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तीन रात्रि कृच्छ्र करै ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः २५.

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं तरत्समंदीत्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वा अभोज्यं बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेत् ऋत्वंतरमण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्भिस्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासाः लोमानि नखानि त्वचं मांसं शोणितं स्नाय्वस्थिमज्जानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यंततः सर्व्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायाः। अथान्य उक्तो नियमः। अग्ने त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात्। कूष्मांडैश्चाज्यं तद्व्रत एव वा ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः। स्नातोऽघमर्षणं जपेत्। सममश्वमेधभृथेन सावित्रीं वा सहस्रकृत्व आवर्तयन् पुनीते हैवात्मानमंतर्जले वाघमर्षणं त्रिरावर्त्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अज्ञानतासे जो अपराध किया है उसका यह प्रायश्चित्त है कि जलमें बैठकर "तरत्समंदी" इस ऋचाको चार बार जपै, और प्रतिग्रहके अयोग्य को लेनेकी इच्छा करनेवाला वा लेनेवाला भी जल में बैठकर पूर्वोक्त ऋचा को जपै, और अभोज्य भोजन की इच्छा करनेवाला पृथ्वीपर्यटन करै, ऋतुमती स्त्रीके साथ गमन करनेवाला स्नान वा आचमन करनेसे ही शुद्ध होजाता है, और कोई २ ऐसा कहते हैं कि स्त्रियोंके साथमें यह प्रायश्चित्त है कि जो भ्रूणहत्या करै वह दशरात्रितक दूध पीनेका व्रत करै;आगेकी दश रात्रितक घी पिये; और अगली दश रात्रियोंमें जलही पिये; दिनमें एकवार भोजन करै, और भीजेहुए वस्त्रोंको पहनकर लोम, नख, मांस, रुधिर, स्नायु, मज्जा, शरीर यह सब "आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि" इस मंत्रसे हवनकरै, सम्पूर्ण भ्रूणहत्या करनेवालोंकाभी यही प्रायश्चित्त है तथा उपरोक्त नियमसे रहकर "अग्ने त्वं पारय" यह कहकर सात महाव्याहृतियोंसे हवन करै और कूष्मांडमंत्रोंसे घीका हवन करै, ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला इन दोषोंमेंभी पूर्वोक्त व्रतको

कर प्राणायाम और स्नान करके अघमर्षणका जप करै तथा सहस्रवार गायत्रीको जपे, तब वह अश्वमेधके अवभृथके समान आत्माको पवित्र करताहै; और जलके बीचमें तीनवार अघमर्षणको जपनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

तदाहुः कतिधावकीर्णी प्रविशतीति। मरुतः प्राणेनेंद्रं बलेन बृहस्पतिं ब्रह्मवर्चसेनाग्निमेवेतरेण सर्वेणेति । सोमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा । कामाभिदुग्धोस्म्यभिदुग्धोस्मि कामकामाय स्वाहेति।समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तुं कृत्वोपस्थाय समासिंचन्त्वित्यनया त्रिरुपतिष्ठेत।त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रांत्या इति । एतदेवैकेषां कर्म्माधिकृत्ययोः पूत इव स्यात्स इत्थं जुहुयादित्थमनुमंत्रयेत् वरोदक्षिणेति । प्रायश्चित्तमविशेषात अनार्ज्जवपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राशनेषु शूद्रायां च रेतः सिक्त्वा योनौ च दोषवति कर्म्मण्यभिसंधिपूर्वेऽप्यब्लिंगाभिरप उपस्पृशेद्वारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः प्रतिषिद्धवाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः संख्याताः पंच सर्वास्वपो वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्रातः रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् अष्टौ वा समिध आदध्याद्देवकृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कितने प्रकारसे अवकीर्णी[1] प्रवेश करताहै; विद्वानोंने यह कहाहै कि पवनमें प्राण, इन्द्रमें बल, बृहस्पतिमें ब्रह्मतेज और अन्य समस्त देहकी वस्तु अग्निमें प्रवेश करतेहैं; वह अवकीर्णी अमावसकी रात्रिको अग्नि स्थापन करै, प्रायश्चित्तकी "कामावकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा" और "कामाभिदुग्धोस्म्यभिदुग्धोस्मि कामकामाय स्वाहा" इन मंत्रोंसे आहुति दे, समिधकी लकडी रखकर छिडके, और यज्ञवास्तुका चक्र बनावे, 'समासिंचंतु' इस मन्त्रसे तीनवार स्तुति करै, और उसी वास्तुमें "त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रांत्या", यह मन्त्र पढे, यहभी कितने ऋषियोंका वचन है कि, कर्मका प्रारंभ कर जो पवित्र करनेकी अभिलाषा करनेवाले हैं वह भी इसी प्रकार होम करैं; और 'वरो दक्षिणा' इससे स्तुति करै, इसी भांति सामान्यमेंभी प्रायश्चित्त है, कठोरता, चुगली, निषिद्ध आचरण, अभक्ष्यभक्षण इनमें और शूद्रा स्त्रीमें वीर्य डालकर, वा आग्रहसे जो दूषित कर्म कियाहै तो वरुणदेवतावाली और जलके चिह्नयुक्त ऋचाओंसे या अन्यान्य पवित्र मंत्रोंसे आचमन करै, मन और वाणीके निषिद्ध आचरणमें पांच व्याहृतियोंसे अथवा सभी व्याहृतियोंसे आचमन करै; प्रातःकालमें "अहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहा" इस मन्त्रसे, और सायंकालमें "रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनातु" इस मन्त्रसे आठ समिधें रक्खै; और "देवकृतस्य" इस मंत्रद्वारा हवन करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

१ जिस मनुष्यका व्रत भंग होजाय उसे अवकीर्णी कहते हैं ।

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामः । हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयात् । अथापरं त्र्यहं नक्तं भुंजीत । अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेत । अथापरं त्र्यहमुपवसेत् । संतिष्ठदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् । अनार्यैर्न संभाषेत । रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुंजीत । अनुसवनमुदकोपस्पर्शनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत् । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः॥अथोदकतर्पणम्।ॐ नमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तापसाय पुनर्वसवे नमो नमो मौंज्यायोर्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदाय नमो नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वायेशानाय शिवाय शांतायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय शितिकंठाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेंद्राय हरिकेशायोर्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चंद्रललाटाय नमो नमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नमः इति। एतदेवादित्योपस्थानम्। एता एवाज्याहुतयः। द्वादशरात्रस्यांते चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इंद्राग्निभ्यामिंद्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातः।यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात् अब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्यत् महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते । अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस समय कृच्छ्रव्रतोंके विषयमें कहते हैं,प्रातःकालमें केवल हविष्यान्नको भोजन कर तीन रात्रितक कुछ न खाय, पीछे तीन दिनतक नक्त व्रत करै, इसके पीछे तीन दिन अयाचित व्रतका अनुष्ठान करै, अर्थात् किसीसे कुछ न मांगै, फिर तीन दिनतक उपवास करै, दिनके समय खडा रहै,रात्रिके समय बैठे,बहुत शीघ्र फलकी इच्छाकरनेवाला सत्य बोले,दुष्टोंके साथ वार्त्तालाप न करै, नित्य रुरु, यौध इनकी मृगछाला ओढै, त्रिकालमें आचमन कर "आपो हि ष्ठा" आदि तीन ऋचाओंसे और "हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः" इत्यादि आठ पवित्र

ऋचाओंसे मार्जन करै; फिर इसभांति जलसे तर्पण करै कि हम, मोहम, संहम, धुन्वत्, तापस, पुनर्वसु, मौंज्य, औम्यै, वसुविन्द, सर्वविन्द, पार, सुपार, महापार, पारयिष्णु, रुद्र, पशुपति, महान् देव, त्र्यंबक, एकचर, अधिपति, हर, शिव, शांत, उग्र, वज्रि, घृणि, कपर्दी, सूर्य, आदित्य, नीलग्रीव, शितिकंठ, कृष्ण, पिंगल, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वृद्ध, हरिकेश, ऊर्ध्वरेतः, सत्य, पावक, पावकवर्ण, काम, कामरूपी, दीप्त, दीप्तरूपी, तीक्ष्ण, तीक्ष्णरूपी, सौम्य, सुपुरुष, महापुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष, ब्रह्मचारी, चन्द्रललाट, कृत्तिवासा, पिनाकहस्त इन सबको मेरा नमस्कार है, यह तर्पण है और सूर्यकी स्तुति भी यही है, घृतकी आहुति भी यही है, इस प्रकार व्यतीतहुए बारह दिनके उपरान्त चरुको पकाकर इन देवताओंके निमित्त हवन करै, और "अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, इंद्राग्निभ्यां स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" इस हवन के पीछे वेदके मंत्रोंसे तर्पण करै; इसी प्रकार अतिकृच्छ्र भी कहागया है, जितना एकवार मुखमें आवै उतनाही भोजन करै और जलकोही भक्षण करै, यह कृच्छ्रातिकृच्छ्र है; प्रथम कृच्छ्रको शुद्धतासे करकै पवित्र और कर्मका अधिकारी होता है; दूसरे अतिकृच्छ्रको करकै महापातकसे अन्य जो पाप करताहै उससे मुक्त होजाता है, और तीसरे कृच्छ्रोंके करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है; और इन तीनों कृच्छ्रोंको करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंमें स्नात होताहै उसको सभी देवता जानतेहैं इस प्रकार जानै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातश्चांद्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् । श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् । आप्यायस्व संते पयांसि नवोनव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमौ हविषश्चानुमंत्रणम् उपस्थानं चंद्रमसो यद्देवा देवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयात् । देवकृतस्येति चांते समिद्भिः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीः रूपं गीरोजस्तेजः पुरुषो धर्म्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वग्रासप्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसक्तुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान् भुक्त्वैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं, विपरीतमेकेषाम् । एष चांद्रायणो मासो मासमेतमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हंति द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दशापरानात्मानं चैकविंशं पंक्तीश्च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामाप्नोत्याप्नोति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अब चान्द्रायण व्रतके विषयमें कहतेहैं, चान्द्रायणका नियम यह है कि चतुर्दशीमें कृच्छ्र व्रतकरके मुंडन करै; और प्रातःकाल पूर्णमासीके दिन उपवास करै "आप्यायस्व सं ते पयांसि नवो नव" इत्यादि मंत्रोंसे पाठकर तर्पण करै; घृतका हवनकरै, हविका अनुमंत्रण और चन्द्रमाकी

स्तुति इन सबको करै और "यद्देवा देवहेळनं" इत्यादि चार ऋचाओंसे घृतका हवनकरै, इसके पीछे "देवकृतस्य" इत्यादि मंत्रोंसे समिधोंका हवनकरै और "भूः,भुवः,स्वः,तपः, सत्यं, यशः श्रीः,रूपं, गीः, ओजः,तेजः, पुरुषः,धर्मः, शिवः" इन चौदह मंत्रोंसे ग्रासोंका अनुमंत्रण क्रमानुसार करै, इसके पीछे प्रत्येकमंत्रसे मनसे 'नमः स्वाहा' यह पढै; सम्पूर्ण ग्रासोंका प्रमाण यह है कि जितनेसे विकार उत्पन्न न हो, चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तू, कण, जौ, दूध, दही, घृत, मूल, फल, उदक, हवि, यह एक २ क्रमानुसार श्रेष्ठ हैं; पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको खाकर प्रतिदिन एकग्रास कम करकै कृष्णपक्षमें भोजनकरै, अमावसके दिन उपवासकर प्रतिदिन एक २ ग्रासको बढावै शुक्लपक्षमें भक्षणकरै; किसी ऋषियोंके मतमें इससे विपरीत चांद्रायणकी विधि है; और यह चांद्रायणमास है, इसका पवित्र होकर प्रथम एक-महीनेतक (व्रत) करकै मनुष्य सब पापोंसे छूटकर मुक्ति पाताहै; और दूसरीवार करनेसे दसपीढी पिछली और दसपीढी अगली तथा इकीसवी अपनी आत्माको और जिन पंक्तियोंमें बैठे उन पंक्तियोंकोभी पवित्र करताहै; और एक वर्षतक चांद्रायण करनेसे चन्द्रलोकको प्राप्त होताहै।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं भजेरन् निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति । सर्व्वं वा पूर्व्वजस्येतरान्बिभृयात् पितृवत् । विभागे तु धर्मवृद्धिं विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदद्युक्तो वृषो गोवृषः काणखोरकूटखंजा मध्यमस्थानेकाश्चेत् अविर्धान्यायसी ग्रहमनोयुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यवीयसः समं चेतरत् सर्व्वं द्व्यंशी वा पूर्वजः स्यात् । एकैकमितरेषाम् एकैकं वा काम्यं पूर्व्वः पूर्वो लभेत दशतः पशूनामेकशफा द्विपदांना वृषभोधिको ज्येष्ठस्य ऋषभषोडशा ज्यैष्ठिने यस्य समं वा ज्यैष्ठिने । येन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषं पितोत्सृजेत्।पुत्रिकामनपत्योमिं प्रजापतिं चेष्ट्वास्मदर्थमपत्यमिति संवाद्य अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशयान्नोपयच्छेदभ्रातृकां पिंडगोत्रर्षिसंबंधा ऋक्थं भजेरन् । स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेत् । देवरवत्यामन्यतोजातमभागं स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च भगिनीशुल्कं सोदराणामूर्द्ध्वं मातुः पूर्व्वं चैके संसृष्टविभागः प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेतेऽसंसृष्टिऋक्थभाक् । विभक्तजः पित्र्यमेव स्वयमर्जितमवेद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात् अवेद्याः समं विभजेरन् पुत्राः औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा ऋक्थभाजः कानीनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्तक्रीता गोत्रभाजः । चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य ॥ राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाक् । ज्येष्ठांशहीनमन्यत् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण क्षत्रियाचेत् शूद्रापुत्रोप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमंतेवासिविधिना सवर्णापुत्रोप्यन्या-

यवृत्ती न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्य श्रोत्रियां अनपत्यस्य ऋक्थं भजेरन् । राजेतरेषां जडक्लीबौ भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलोमासूदकयोगक्षेमकृतान्नेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तासु अनाज्ञाते दशावरैः शिष्टैरूहवद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमास्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदिति आचक्षते । असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह । यतो यमप्रभावो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्म्मिणं विशेषेण स्वर्ग्गलोकं धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्म्मः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्र एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति श्रीगौतमधर्मशास्त्रं संपूर्णम् ॥ १६ ॥

पिताकी मृत्युके पीछे पिताके धनको पुत्रही विभाग (बांट) करले, पिताकी जीवित अवस्थामें माताकी रजोनिवृत्ति होजाय; और पिता इच्छा करै तौ धन वांटदे, या सम्पूर्ण धन बडे पुत्रको देकर अन्य पुत्रोंको केवल भरणपोषणके निमित्तही देसकताहै; या बडा भाई छोटे भाइयोंको पिताकी समान पालनाकरै और विभाग करै तौ धर्मसे बीसवां भाग अधिक धन और दोनों ओरके दांतवाला बैल ज्येष्ठभाईको दे, काना, लंगडा, गंजा, यह बैल मध्यम पुत्रको दे; और यदि अनेक बैल हों तौ गौ, कवच, गाडी और एक २ पशु छोटे भाइयोंको दियाजाय; और शेष सब धनको बराबर २ बांटलै. बडे भाईको दो भाग, और छोटे भाइयोंको एक २ भाग देना उचित है, और अपनी इच्छासेही सबभाई एक २ भाग लेलें, दश घोडे वा बैल आदि पशुओंमेंसे क्रमसे सबभाई एक २ लेलें, परन्तु बडे भाईको एक अधिक देना उचित है; और सबसे बडी स्त्रीके पुत्रको सोलह बैलदे; अथवा छोटे भाइयोंको भी उसके समानही दे; और माताको भी उसीकी समान भाग पिता देदे; जिसके पुत्र न हो वह पुरुष यह प्रतिज्ञा करै कि मेरे लिये अपत्य पुत्र इसमें हो, और अग्नि प्रजापतिका पूजनकर पिता पुत्रिकाको दान करै; कोई २ ऐसा कहतेहैं कि अभिसंधि होनेसेही पुत्रिका हो सकतीहै, इस कारण पुत्रिकाके संदेहसे जिसके भाई न हो उस स्त्रीसे विवाह न करै पिंड, गोत्र, ऋषी इनके सम्बन्धी धनको बांटलें,' और जिसके पुत्र न हो उसकी स्त्रीभी धन लेलें, या देवरसे पुत्रको उत्पन्न करै; और जिसके देवर हो वह यदि किसी अन्यसे उत्पन्न करले, तौ उसका धन विना विवाही और अप्रतिष्ठित कन्याओंका होता है, भगिनीयोंका शुल्क माताकी मृत्यु होजानेपर पीछे भाइयोंका होता है, मृतकहुए संसृष्टियोंका धन बडे भाईका है, और उस संसृष्टिके मृतक हो जानेपर यदि जो संसृष्टि न हो तौ उस धनका अधिकारी भाई है; विभाग हो जानेके पीछे जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताकेही भागका भोगनेवाला है, जिस विद्वान् मनुष्यने स्वयं धन संग्रह कियाहै, वह मूर्ख विद्यारहित भाईयोंको यथेच्छ न दे, और जो पुत्र भी विद्यासे हीन हो तौ समविभाग करले, और धर्मसे विवाहीका पुत्र, देवर से उत्पन्न पुत्र, गोदलिया पुत्र, स्वयं आया हुआ, जिसकी यह खबर न हो कि यह किसके वीर्यसे उत्पन्न है वह, जो जीवन आदिमें पडा मिलाहो यह छैहो पुत्र धनके भागी हैं. कारी कन्याका पुत्र जो

विवाहके समय गर्भ में हो एक स्थानपर सम्बन्ध करके फिर दूसरी जिस कन्याका विवाह होगयाहो उसका पुत्र, पुत्रिकाका पुत्र, जिसको पिता माता प्रसन्नतासे देजांय वह, मोललिया यह भी छैहो पुत्र गोत्रके भागी हैं और धनके चौथे भागमें इनका अधिकार है, क्षत्रियोंमें उत्पन्न हुआ बडा और ब्राह्मणका पुत्र और सआदिपुत्रोंके न होनेपर तुल्य अंशका अधिकारी है परन्तु बडे भाईको वीसमा भाग आदि क्षत्रिय और वैश्यके पुत्रके समागम होनेपर भागी नहीं होता; परन्तु समभागका अंशी होताहै; जो पुत्र क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नहो वह पुत्र ब्राह्मणीके पुत्रकी समान है और पुत्रहीन मनुष्यकी शूद्रास्त्रीका पुत्रभी यदि शिष्यभावसे सेवा करै तौ भोजन वस्त्रमात्रका अधिकारी होसकताहै, और जो अपने वर्णकी स्त्रीकाभी पुत्र न्यायके विरुद्ध चलताहै वह वृत्तिका भागी नहीं है, कोई २ ऐसा कहते हैं कि उस पुत्ररहित ब्राह्मणके धनको, वेदपाठी क्षत्रिय इत्यादिके धनको राजा लेले, अज्ञानी और नपुंसकभी पालनेके योग्य है; और जडका पुत्रभी भागका अधिकारी है, शूद्राके पुत्रके समान प्रतिलोमभी अंशके भागी हैं, और जल, योगक्षेम, तथा सिद्धअन्न इनका और इकट्ठी रहती स्त्रियोंका विभाग नहीं है, जिस पापका प्रायश्चित्त शास्त्रमें विदित नहो तौ क्रमानुसार तर्ककरनेवाले लोभसे हीन दसजनोंसे निर्णय करले; चारों वेदोंके पारको जाननेवाले तीन आश्रमी और तीन पृथक् २ धर्मके ज्ञाता हों, इन दश मनुष्योंके एकत्रहोनेको सभा कहा है, यदि इस प्रकारके परिषदोंका अभाव हो तौ वेदके जाननेवाले शिष्ट, यह दोनोंजने विवादके विषयमें मीमांसा करदे, उसीभांतिका आचरण करै, कारण कि शास्त्रमेंभी यही कहाहै कि वेदका जाननेवाला सम्पूर्ण भूतोंका दुःख और दया करनेमें समर्थ होनेसे सर्व भूतोंपर निग्रहानुग्रहसमर्थ यमधर्मराजके समान प्रभावशाली है, धर्मके विषयमें धर्मका जाननेवाला स्वर्गलोकमें ज्ञान और निर्णय करनेके कारण प्राप्त होताहै, यही धर्म है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति गौतमस्मृतिः समाप्ता ॥ १६ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ शातातपस्मृतिः १७.

भाषाटीकासमेता।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शातातपस्मृतिप्रारंभः ॥ प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनां नृणाम् ॥ नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नांकितशरीरिणाम् ॥ १ ॥ प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ॥ प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवतां पुनः ॥ २ ॥

जिन महापातकी मनुष्योंने प्रायश्चित्त नहीं कियाहै, वह नरक भोगनेके उपरान्त उन्हीं उन पापसूचक चिह्नोंसे युक्त होकर जन्म लेतेहैं ॥ १ ॥ जबतक उस पापका प्रायश्चित्त न कियाजाय तबतक पापकी सूचना देनेवाला चिह्न प्रत्येक जन्ममें होताहै, प्रायश्चित्त करने और पश्चात्ताप करनेसे वह पापका चिह्न जाता रहताहै ॥ २ ॥

महापातकजं चिह्नं सप्त जन्मानि जायते ॥ उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ॥ जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ॥ बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥

महापातक पापका चिह्न सात जन्मतक प्रकाश पाताहै; उपपातकका चिह्न पांच जन्मतक प्रकाश पाताहै और पापका चिह्न तीन जन्मतक प्रकाश पाताहै ॥ ३ ॥ मनुष्योंके दुष्कर्मोंसे उत्पन्नहुए रोग उपायोंसे शांत होतेहैं; जप, देवपूजा, हवन, इन सम्पूर्ण कार्योंसे समस्तरोगोंकी शांति होतीहै ॥ ४ ॥ पूर्वजन्ममें जो पाप कियाहै वह नरक भोगनेके अन्तमें व्याधिरूपसे पापियोंको पीडित करताहै, उसकी शांतिका उपाय जप इत्यादि कार्य जानैं ॥ ५ ॥

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी कासा अतिसारभगन्दरौ ॥ ६ ॥ दुष्टव्रणं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ॥ इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥ जलोदरं यकृत्प्लीहाशूलरोगव्रणानि च ॥ श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥ रक्तार्बुदविसर्प्पाद्या उपपापोद्भवागदाः ॥ दंडापतानकश्चित्रवपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥ वल्मीकपुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ॥ अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति हि ॥ १० ॥ अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकरात् ॥ उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥

कुष्ठरोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, अतिसार और भगंदर ॥ ६ ॥ दुष्टघाव, गंडमाला, पक्षाघात, नेत्रोंका नाश इत्यादि रोग महापातकोंसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ७ ॥ जलोदर, यकृत, दहिनी कुक्षिकोंमें प्लीहा (तिल्ली), शूल, घाव, सांस, अजीर्ण, ज्वर, छर्दी,

भ्रम, मोह, गलग्रह ॥ ८ ॥ रक्तार्बुद, विसर्प, इत्यादि रोग उपपातकोंसे उत्पन्न होतेहैं, दंडापतानक, चित्रवपु, कंप, खुजली, ॥ ९ ॥ चकद्दे, पुंडरीकआदि रोग पापोंसे उत्पन्न होतेहैं, अत्यन्त पापके करनेसे बवासीर रोग होताहै ॥ १० ॥ और अन्यभी बहुतसे वर्णसंकर रोग उत्पन्न होतेहैं; उनके कारण तथा प्रायश्चित्तोंको क्रमानुसार कहतेहैं ॥ ११॥

महापापेषु सर्व्वं स्यात्तदर्धमुपपातके ॥
दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिबलाबलम् ॥ १२ ॥

महापातकमें सम्पूर्ण उपपातकमें आधा और पापोंमें छठा भाग प्रायश्चित्त व्याधिकी न्यूनाधिकता देखकर कल्पना करना उचित है ॥ १२ ॥

अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कथ्यते ॥ गोदाने वत्सयुक्ता गौः सुशीला च पयस्विनी ॥ १३ ॥ वृषदाने शुभोऽनड्वाञ्छुक्लांबरसकांचनः ॥ निवर्तनानि भूदाने दश दद्याद्विजातये ॥ १४ ॥ दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दण्डं निवर्त्तनम् ॥ दश तान्येव गोचर्म्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥ सुवर्णशतनिष्कं तु तदर्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥ अश्वदाने मृदुश्लक्ष्णमश्वं सोपस्करं दिशेत् ॥ १६ ॥ महिषीं माहिषे दाने दद्यात्स्वर्णायुधान्विताम् ॥ दद्याद्गजं महादाने सुवर्णफलसंयुतम् ॥ १७ ॥ लक्षसंख्यार्हणं पुष्पं प्रदद्याद्देवतार्चने ॥ दद्याद्विजसहस्राय मिष्टान्नं द्विजभोजने ॥ १८ ॥ रुद्रं जपेल्लक्षपुष्पैः पूजयित्वा च त्र्यंबकम् ॥ एकादश जपेद्रुद्रान्दशांशं गुग्गुलैर्घृतैः ॥ १९ ॥ हुत्वाभिषेचनं कुर्यान्मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ शान्तिके गणशांतिश्च ग्रहशान्तिकपूर्वकम् ॥ २० ॥

अब गोदान इत्यादिमें साधारण विधि कहतेहैं, गोदानमें सुशील बछडेसहित दूध देनेवाली गौ देनी उचित है ॥ १३ ॥ बैलके दानमें शुभ और सुन्दर सफेद वस्त्र तथा कांचनसे विभूषितकर वृषभका दानकरै; पृथ्वीके दानमें ब्राह्मणोंको दशनिवर्तन पृथ्वीदान करै ॥ १४ ॥ दश हाथके बराबरके दंडसे तीस दंडका निवर्तन कहाहै; और दश निवर्त्तनकी बराबर पृथ्वीका गोचर्म होताहै, गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ १५ ॥ सो निष्क (तोले) के चौथाई निष्कको सुवर्ण कहाहै, और घोडेके दानमें कोमल सुलक्षण चिकना, अथवा सामग्री सहित सुन्दर घोडा दे ॥ १६ ॥ जिस स्थानमें भैंसका दान कहा गयाहै उस स्थानमें सुवर्ण और अस्त्र शस्त्रोंसे युक्तकर महिषका दान करै; और महादान अर्थात् हाथीके दानमें सुवर्ण और फलसहित हाथीका दान करै ॥ १७ ॥ देवताके पूजनमें उत्तम २ एक लाख फूल प्रदानकरै, और ब्राह्मणोंके भोजनमें एक सहस्र ब्राह्मणोंको मिष्टान्न दे ॥ १८ ॥ त्र्यम्बक महादेवके जपमें लाख फूलोंसे महादेवजीका पूजनकर ग्यारह रुद्रोंका जपकरै; गुग्गुल और घृतसे दशांश ॥ १९ ॥ हवन करके वरुणदेवताके मंत्रोंसे अभिषेक करै, और शांतिके कर्ममें ग्रहोंकी शांतिकर गणशांति करै॥२०॥

धान्यदाने शुभं धान्यं खारीषष्टिमितं स्मृतम् ॥ वस्त्रदाने पट्टवस्त्रद्वयं कर्पूरसंयुतम् ॥ २१ ॥ दशपंचाष्टचतुर उपवेश्य द्विजान् शुभान् ॥ विधाय वैष्णवीं

पूजां संकल्प्य निजकाम्यया ॥ २२ ॥ धेनुं दद्याद्विजातिभ्यो दक्षिणां चापि शक्तितः ॥ अलंकृत्य यथाशक्ति वस्त्रालंकरणैर्द्विजान् ॥ २३ ॥ याचेद्दंड-प्रमाणेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥ तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २४ ॥ पुनस्तान्परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिवद्द्विजान् ॥ संतुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां व्रतकारिणे ॥ २५ ॥

अन्नके दानमें ६० खारी अन्नका दान कहाहै, वस्त्रके दानमें कपूरसहित रेशमके वस्त्रका दानकरै ॥ २१ ॥ दस, पांच, या आठ अथवा चार उत्तम ब्राह्मणोंको पास बैठालकर अपनी कामनाके अनुसार संकल्प करनेके उपरान्त विष्णुका पूजनकर ॥ २२ ॥ ब्राह्म-णोंको गौ और यथाशक्ति दक्षिणा दे, फिर वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको शोभायमान कर ॥ २३ ॥ उनसे शास्त्रोक्त और पापके अनुसार प्रायश्चित्तको मांगै; और उनकी आज्ञा ले भलीभांति प्रायश्चित्तकर ॥ २४ ॥ मनोरथ पूर्ण करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजाकरै; इसके पीछे ब्राह्मण संतुष्टहोकर उस व्रत करनेवाले पुरुषको आज्ञा दें ॥ २५ ॥

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि॥सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यंते तानि देवताः ॥ सर्वदेव-मया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥ उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं तपः ॥ विप्रैस्सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ २८ ॥ सम्पन्नमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥ प्रणम्य शिरसा धार्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ॥ तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥३०॥ तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः ॥ भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या भुंजीत सह बंधुभिः ॥ ३१ ॥

इति श्रीशातातपीये कर्मविपाके साधारणविधिः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

जप, तप, तथा यज्ञ इत्यादिके कर्ममें जो न्यूनता रहजातीहै, वह ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दूर होजातीहै ॥ २६ ॥ ब्राह्मण जो कहतेहैं उसे देवताभी मानतेहैं, कारण कि ब्राह्मण देवताओंके स्वरूप हैं, इसीकारण उनका वचन मिथ्या नहीं होता ॥ २७ ॥ उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थयात्राका, फल, और तपस्या यह सब जिसके ब्राह्मणोंने करदियेहैं उसको इनका सम्पूर्ण फल होताहै ॥ २८ ॥ यदि जिस कार्यमें "तुम्हारा वह कार्य सिद्ध होगया" यह वचन ब्राह्मण कहदें, उनके उस वचनको नमस्कारकर शिरपर जो धारण करताहै वह अग्निष्टोम यज्ञके फलको पाताहै ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला, जलसे रहित जंगमतीर्थ ब्राह्मण है, उनके वचनरूपी जलसे मलिन मनुष्य शुद्ध होजातेहैं ॥ ३० ॥ इसके पीछे उनकी आज्ञा लेकर और उनके आशीर्वादको ग्रहणकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्म-णोंको भोजन कराय पीछे अपने बंधुओंसहित आप भोजन करै ॥ ३१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पांडुकुष्ठी प्रजायते ॥ प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशान्तये ॥ १ ॥ चत्वारः कलशाः कार्य्याः पंचरत्नसमन्विताः ॥ पंचपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥ अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः ॥ कषायपंचकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥ सर्वौषधिसमायुक्ताः स्थाप्याः प्रतिदिशं द्विजैः ॥ रौप्यमष्टदलं पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम् ॥ पलार्द्धार्द्धप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ ५ ॥ अर्चेत्पुरुषसूक्तेन त्रिकालं प्रतिवासरम् ॥ यजमानः शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥ पूर्वादिकुंभेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ॥ पठेयुः स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥ दशांशेन ततो होमो ग्रहशांतिपुरःसरम् ॥ मध्यकुंभे विधातव्यो घृताक्तैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमिदं कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥ तत्र पीठे यजमानमभिषिंचेद्यथाविधि ॥ ९ ॥ ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥ १० ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ प्रीताः सर्व्वे व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥ इत्युदीर्य मुहुर्भक्त्या तमाचार्यं क्षमापयेत् ॥ एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

ब्रह्महत्याकरनेवाला पापी नरक भोगकर दूसरे जन्ममें श्वेतकुष्ठी होताहै, वह उस पापकी शांतिके निमित्त प्रायश्चित्त करै ॥ १ ॥ चार कलशोंमें पंचरत्न डाले, और कलशोंके मुखोंपर पंचपल्लव रखकर सफेद वस्त्रसे बांध दे ॥ २ ॥ अश्वशालाआदि सात स्थानोंकी मट्टी इन कलशोंमें डालकर तीर्थके जलसे इनको भरै, पीछे पंचकषाय (कषैलीवस्तु) और अनेक भांतिके फलोंसे युक्त करै ॥ ३ ॥ पीछे सर्वौषधियोंसे युक्त करके चारोंदिशाओंमें रक्खै; और बीचके कलशके ऊपर चांदीका बना आठदलका कमल रक्खै ॥ ४ ॥ फिर उस कमलके ऊपर चतुर्मुखी छैःमासे सुवर्णकी बनी ब्रह्माजीकी मूर्ति स्थापित करै ॥ ५ ॥ फिर यजमान प्रतिदिन उत्तम गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादिसे तीनों कालमें पुरुषसूक्तका जपकर ब्रह्माका विधिसहित पूजन करै॥६॥ ऋग्वेदआदि ब्राह्मण ब्रह्मचर्य धारणकर पूर्वआदि दिशाओंमें स्थित घटोंके निकट धीरे २ वेदोंको पढैं ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त ग्रहशांति करके बीचके घटपर घृतसंयुक्तकर तिल और सुवर्णसे दशांशहवन करै ॥ ८ ॥ इसके पीछे द्विजोंमें श्रेष्ठ बारहदिनतक उक्त कार्यको समाप्तकर आसनपर बैठेहुए यजमानका विधिसहित अभिषेक करै ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और तिल इन्हें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दानकरै; और आचार्यको देनेयोग्य वस्तु दे ॥ १० ॥ "इसके पीछे सूर्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा मरुद्गण यह" सब प्रसन्न होकर मेरे कठिन पापको दूरकरैं ॥ ११ ॥ इसप्रकार वारम्वार भक्ति सहित प्रार्थनाकर आचार्यके निकट क्षमा प्रार्थना करै; इसभांति नियम सहित प्रायश्चित्त करनेसे श्वेत कुष्ठी शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥ स्थापयेद्धटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्य संयुतम् ॥ १३ ॥ रक्तचंदनलिप्तांगं रक्तपुष्पांबरान्वितम् ॥ रक्तकुंभन्तु तं कृत्वा स्थापयेद्दक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥ ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरितम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन पापं मे शाम्यतामिति ॥ सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामवित् ॥ १६ ॥ दशांशं सर्षपैर्हुत्वा पावमान्यभिषेचने ॥ विहिते धर्म्मराजानमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥ १७ ॥ यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ॥ दक्षिणाशापतिर्देवो मम पापं व्यपोहतु ॥ १८ ॥ इत्युच्चार्य्य विसृज्यैनं मासं सद्भक्तिमाचरेत्॥ ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥

गौकी हत्या करनेवाला कुष्ठी होताहै और नरक भोगनेके अंतमें उसका प्रायश्चित्त इसभांति है कि पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्तकर एक घटको स्थापित करै ॥ १३ ॥ और लाल चंदनसे उस घटपर लेपकरै, फिर लाल फूल और लाल वस्त्र उस घटके ऊपर रक्खै, इसभांति उस घटको लालकरके दक्षिण दिशामें रक्खै ॥ १४ ॥ इसके पीछे तिलका चून तांबेके पात्रमें भरकर उस पात्रको घटके ऊपर स्थापितकरै, और उस पात्रपर सुवर्णके निष्क (तोलाका भेद) से बनवाय यमराजकी मूर्ति स्थापित करै ॥ १५ ॥ मेरे पापोंकी शांति होजाय, यह कहकर पुरुषसूक्त मंत्रद्वारा यमराजका पूजन करै; इसके पीछे सामवेदका जाननेवाला ब्राह्मण उस कलशके ऊपर सामवेदकी पारायण करै ॥ १६ ॥ फिर सरसोंसे दशांशहवनकर पावमानी ऋचाओंसे अभिषेक करनेके उपरान्त धर्मराजकी मूर्ति आचार्यको दे ॥ १७ ॥ भैंसेपर चढा हाथमें भयंकर दंडलिये दक्षिणदिशाका स्वामी यमराज देवता मेरे पापोंको दूरकरै ॥ १८ ॥ यह कहकर आचार्यको विदाकर एकमहीनेतक उत्तम भक्ति करै; ब्राह्मण और गौके मारनेवालेकी यह शुद्धि कही ॥ १९ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ॥ नरकांते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २० ॥ प्राजापत्यानि कुर्व्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ॥ व्रतान्ते कारयेन्नावं सौवर्णफलसम्मिताम् ॥ २१ ॥ कुंभं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्ववत् ॥ निष्कहेम्ना तु कर्तव्यो देवः श्रीवत्सलांछनः ॥ २२ ॥ पट्टवस्त्रेण संवेष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ॥ नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥ वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूताशयस्थित ॥ पातकार्णवमग्नं मां तारय प्रणतार्तिहृत् ॥ २४ ॥ इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥ २५ ॥

पिताकी हत्या करनेवाला, बुद्धिहीन और महामूर्ख होता है, माताका मारनेवाला अंधा होता है वह नरक भोगनेके उपरान्त विधिसहित यह प्रायश्चित्त करै ॥ २० ॥ तीस प्राजापत्य विधिसहित करै और व्रतकी समाप्तिमें पलभर सुवर्णकी नाव बनवावै ॥ २१ ॥ चांदीका घडा पूर्वोक्त प्रकारसे तांबेके पात्र बनवावै, और तोलेभर सुवर्णकी विष्णुकी मूर्ति बनवावै

॥ २२ ॥ इसके उपरान्त रेशमके वस्त्र में उस मूर्तिको लपेटकर विधिसहित विष्णुभगवानका पूजन करै; और सामग्रीसहित उस नावको ब्राह्मणको दे ॥ २३ ॥ हेवासुदेव ! हेजगत्के नाथ, हेसम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थिति करनेवाले हेनमस्कारकरनेवालोंके दुःखको दूर करने-वाले पापरूपी समुद्रमें डूबेहुए मेरा उद्धार करो ॥ २४ ॥ यह कहकर नमस्कार कर ब्राह्मणोंको बिदाकरै, और अपनी शक्तिके अनुसार अन्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ॥ २५ ॥

स्वसृघाती तु बधिरो नरकान्ते प्रजायते ॥ मूको भ्रातृवधे चैव तस्येयं निष्कृतिः स्मृता ॥ २६ ॥ सोऽपि पापविशुद्ध्यर्थं चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात्सुवर्णफलसंयुतम् ॥ २७ ॥ इमं मंत्रं समुच्चार्य ब्रह्माणीं तां विसर्जयेत् ॥ सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्माधिदेवते ॥ २८ ॥ दुष्कर्मकरणात्पापात् पाहि मां परमेश्वरि ॥

भगिनी (बहन) की हत्याकरनेवाला बहरा और भाईको मारनेवाला गूंगा होताहै, उसका प्रायश्चित्त नरकके अंतमें यह कहाहै॥२६॥वह अपने पापसे शुद्धिके निमित्त चांद्रायण व्रत करै, और व्रतकी समाप्तिमें सुवर्णके पलसहित पुस्तकका दान करै ॥ २७ ॥ इस मंत्रको पढकर देवीसरस्वतीका विसर्जन करै कि हेसरस्वति ! हेजगन्माता, हेवेदकी देवता, हे परमेश्वरि ! निंदितकर्म करनेसे जो पाप उत्पन्न हुआहै उससे मेरी रक्षा करो २८ ॥

बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ॥ २९ ॥ ब्राह्मणोद्वाहनं चैव कर्तव्यं तेन शुद्धये ॥ श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥ ३० ॥ महारुद्रजपं चैव कारयेच्च यथाविधि ॥ षडंगैकादशै रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥ ३१ ॥ रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रः प्रकीर्तितः ॥ एकादशभिरेतैस्तु अतिरुद्रश्च कथ्यते ॥ ३२ ॥ जुहुयाच्च दशांशेन दूर्वयायुतसंख्यया ॥ एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्याः सदक्षिणाः ॥ ३३ ॥ पलान्येकादश तथा दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥ ३४ ॥ स्नापयेद्दम्पतीः पश्चान्मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥

बालककी हत्या करनेवाला मनुष्य मृतवत्स होताहै ॥ २९ ॥ वह शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणोंको कंधेपर चढाकर चलै, और विधानसे हरिवंश पुराणको श्रवण करै ॥ ३० ॥ पीछे महारुद्रका जप करावै, षडंगकी ग्यारह रुद्रीको रुद्र कहते हैं ॥ ३१ ॥ ग्यारह रुद्रोंको महारुद्र कहाहै; और ग्यारह महारुद्रोंको एक अतिरुद्र कहतेहैं ॥ ३२ ॥ दशहजार दूर्वाओंसे दशांश हवनकरै और ग्यारह तोलेभर सुवर्णकी दक्षिणा दे ॥ ३३ ॥ धनके अनुसार ग्यारह पल सुवर्णदे, और अन्य ब्राह्मणोंकोभी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणादे ॥ ३४ ॥ पीछे वरुण देवतावाले मंत्रोंसे स्त्रीसहित यजमानको स्नानकरावै, और आचार्यको वस्त्र तथा आभूषणदे ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वंशश्चोपजायते ॥ स च पापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥ ३६ ॥ व्रतान्ते मेदिनीं दत्वा शृणुयादथ भारतम् ॥

गोत्रकी हत्याकरनेवाला पुरुष कुष्ठी और वंशसेहीन होताहै वह अपने पापसे मुक्तहोनेके लिये सौ प्राजापत्यकरै ॥ ३६ ॥ व्रतकी समाप्तिमें पृथ्वीका दानकर महाभारतको श्रवण करै,

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थारोपयेद्दश ॥ ३७ ॥
दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

स्त्रीकी हत्या करनेवाला अतिसार रोगवाला होताहै, वह दश पीपलके वृक्ष लगावै ॥ ३७ ॥ और सक्करकी गौका दानकरै; तथा सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावै;

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥ ३८ ॥ गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः ॥ घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ ३९ ॥ इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥

राजाका मारनेवाला क्षयरोगसे युक्त होताहै, उसका प्रायश्चित्त यहहै ॥ ३८ ॥ गौ, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतकी और तिलकी गौ इनका दान ॥ ३९ ॥ क्रमानुसार करै तौ वह मनुष्य क्षयीरोगसे मुक्त होजाताहै.

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥ ४० ॥
प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥

वैश्यकी हत्याकरनेवाला मनुष्य रक्तअर्बुद (लहड) रोगसे युक्त होताहै ॥ ४० ॥ वह चार प्राजापत्य व्रतकर सतनजेका दानकरै,

दंडापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥ ४१ ॥
प्राजापत्यं सकृच्चैवं दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥

शूद्रकी हत्याकरनेवाला मनुष्य दंडापतानक रोगवाला होताहै ॥ ४१ ॥ वह एक प्राजापत्यकर दक्षिणासहित गौका दानकरै,

कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥ ४२ ॥
तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥

शिल्पीकी हत्याकरनेवाला रूखा (सूखा) होताहै ॥ ४२ ॥ वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये सफेद बैलका दानकरै,

सर्वकार्य्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥ ४३ ॥ प्रासादं कारयित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥ गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥ ४४ ॥ कुलित्थशाकैः पुष्पैश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥

हाथीकी हत्याकरनेवाला मनुष्य सब कामोंमें अधूरा होताहै ॥ ४३ ॥ वह मनुष्य मंदिर बनवाकर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापितकरै, और मन्त्रोंका ज्ञाता उस मन्दिरमें गणेशजीका एक लक्ष मंत्र जपै ॥ ४४ ॥ कुलथीका शाक और फूलोंसे गणेशजीका हवनकरै,

उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥ ४५ ॥
स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥

ऊंटकी हत्याकरनेवाला तोतला होताहै ॥ ४५ ॥ वह अपने पापसे छूटनेके लिये कपूरका फलदे,

अश्वे विनिहते चैव वक्रतुंडः प्रजायते ॥ ४६ ॥
शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यघनुत्तये ॥

घोडेको मारनेवाला टेढे मुखका होताहै ॥ ४६ ॥ वह अपने उस पापसे मुक्त होनेके लिये सौ पल (चारसौ तोले) चंदनका दानकरै.

महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ॥ ४७ ॥ खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते ॥ निष्कत्रयस्य प्रकृतिं संप्रदद्याद्धिरण्मयीम् ॥ ४८ ॥

भैंसकी हत्याकरनेवाले मनुष्यको गुल्मरोग होताहै ॥ ४७ ॥ खरकी हत्याकरनेवाला खररोमवाला होताहै, वह उस पापसे मुक्त होनेके लिये तीन तोले सुवर्णकी प्रतिमाका दानकरै ॥ ४८ ॥

तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः ॥
दद्याद्रत्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४९ ॥

तरक्षुजीवकी हत्या करनेवाले मनुष्यके केकर नेत्र होतेहैं वह उस पापकी शांतिके निमित्त रत्नमयी गौका दानकरै ॥ ४९ ॥

शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः ॥
स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुंभं सदक्षिणम् ॥ ५० ॥

सूकरकी हत्या करनेवाला मनुष्य ऊंचे दांतोंका होताहै वह अपने पापसे शुद्ध होनेके लिये दक्षिणासहित घीके घडेका दानकरै ॥ ५० ॥

हरिणे निहते खंजः शृगाले तु विपादकः ॥
अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्म्मितः ॥ ५१ ॥

मृगकी हत्या करनेवाला लंगडा होताहै, गीदडकी हत्या करनेवाला एक पैरवाला होताहै, वह अपने पापसे शुद्ध होनेके लिये सुवर्णसे बने घोडेका दानकरै ॥ ५१ ॥

अजाभिघातने चैव अधिकांगः प्रजायते ॥
अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५२ ॥

बकरीकी हत्या करनेवाले मनुष्यके अधिक अंग होतेहैं, वह विचित्र वस्त्रोंसहित बकरीका दान करै ॥ ५२ ॥

उरभ्रे निहते चैव पांडुरोगः प्रजायते ॥
कस्तूरिकापलं दद्याद्ब्राह्मणाय विशुद्धये ॥ ५३ ॥

बकरेका मारनेवाला पांडुरोगी होताहै; वह अपनी शुद्धिके लिये पलभर कस्तूरी ब्राह्मणको दानकरै ॥ ५३ ॥

मार्जारे निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ॥
पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥

बिलावकी हत्या करनेवाला पीले हाथोंका होताहै; वह एक तोले सुवर्णके कबूतरका दान करै ॥ ५४ ॥

शुकसारिकयोर्घाते नरः स्खलितवाग्भवेत् ॥
सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात्स विप्राय सदक्षिणम् ॥ ५५ ॥

तोते और मैनाकी हत्या करनेवाला मनुष्य तोतला होताहै, वह दक्षिणाके साथ शास्त्रकी उत्तम पुस्तक ब्राह्मणको दानकरै ॥ ५५ ॥

बकघाती दीर्घनासो दद्याद्गां धवलप्रभाम् ॥
काकघाती कर्णहीनो दद्याद्गामसितप्रभाम् ॥ ५६ ॥

बगलेका मारनेवाला मनुष्य बडीनाकका होताहै, वह सफेद गौका दान करै, और काककी हत्या करनेवाला कानोंसे हीन होताहै; वह काली गौके दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५६ ॥

हिंसायां निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता ॥
तदर्धार्द्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥ ५७ ॥

इति शातातपीये कर्म्मविपाके हिंसाप्रायश्चित्तविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह हिंसाओंमें पूर्वोक्त प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंका कहा इससे आधा प्रायश्चित्त क्षत्रियोंका और चौथाई वैश्यका है; और इससे आठवां भाग शूद्रको क्रमसे करनेके लिये कहाहै ॥ ५७ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुरापः श्यावदन्तः स्यात्प्राजापत्यन्तरं तथा ॥ शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात्पापविशुद्धये ॥ १ ॥ जपित्वा तु महारुद्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ ततोऽभिषेकः कर्तव्यो मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ २ ॥ मद्यपो रक्तपित्ती स्यात्स दद्यात्सर्पिषो घटम् ॥ मधुनोऽर्धघटं चैव सहिरण्यं विशुद्धये ॥ ३ ॥

मदिरा पीनेवाले मनुष्यके दांत काले होतेहैं, वह अपने इस पापसे मुक्त होनेके लिये प्राजापत्यव्रत करनेके उपरान्त शक्करकी सात तुलाओंका दान करै ॥ १ ॥ पीछे महारुद्रका जपकर तिलोंसे दशांश हवन करै; फिर वरुणदेवतावाले मन्त्रोंसे अभिषेक करै ॥ २ ॥ मदिरा पीनेवाले मनुष्यको रक्तपित्त रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये घीसे भराहुआ घडा मीठे वा सहतका दे ॥ ३ ॥

अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः ॥
यथावत्तेन शुद्ध्यर्थमुपोष्यं भीष्मपंचकम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण करताहै उसके उदरमें कीडे होतेहैं, वह मनुष्य भीष्मपंचक शास्त्रकी रीतिसे उपवास करै ॥ ४ ॥

उदक्यावीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ॥
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

रजस्वलाके देखे हुए पदार्थको खानेवाला मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह मनुष्य गोमूत्र और जौको खाकर तीन रात्रिमें शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्य संस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः ॥
त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

अयोग्य मनुष्यके स्पर्श कियेहुए पदार्थको खाकर मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह तीनरात्रतक उपवास करके उस पापसे मुक्त होताहै ॥ ६ ॥

परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ॥ लक्षहोमं स कुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ ७ ॥ मन्दोदराग्निर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः ॥ प्राजापत्यत्रयं कुर्याद्भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य दूसरेके अन्न में विघ्न करताहै उसे अजीर्ण रोग होताहै, वह मनुष्य विधिसहित एकलाख गायत्रीके जपसे हवनकर प्रायश्चित्त करै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य धन होनेपर भी कुत्सित अन्नको देताहै, वह मंदाग्निरोगसे पीडित होताहै, वह अपने पापसे मुक्त होनेकेलिये तीन प्राजापत्य व्रतकरै और फिर सौ ब्राह्मणोंको जिमावै ॥ ८ ॥

विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीः ॥

जो मनुष्य विष देताहै उसे छर्दीका रोग होता है; वह दूध देनेवाली दश गौओंका दान करै,

मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥

मार्गको नष्टकरनेवाला पैरोंका रोगी होताहै, उसकी शुद्धि घोडेके दान करनेसे होतीहै॥९॥

पिशुनो नरकस्यांते जायते श्वासकासवान् ॥
घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥

चुगली करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके अंतमें स्वांस और खांसीरोगसे युक्त होताहै, वह सहस्र टकेभर घीके दानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

धूर्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्धये ॥
ब्रह्मकूर्चमयीं धेनुं दद्याद्गाश्च सदक्षिणाः ॥ ११ ॥

धूर्त मनुष्यको मिरगीका रोग होताहै; वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये ब्रह्मकूर्चमयी गौको दे और पीछे दक्षिणा दे ॥ ११ ॥

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने ॥
सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य दूसरेको दुःख देताहै, वह शूल रोगसे युक्त होताहै; वह अन्नदानकरनेसे पापसे छूटजाताहै और पीछे रुद्रका जप करै ॥ १२ ॥

दावाग्निदायकश्चैव रक्तातिसारवान्भवेत् ॥
तेनोदपानं कर्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥ १३ ॥

बनमें अग्नि लगानेवालेको रक्तातीसार रोग होताहै, वह मनुष्य जलको पिलावै और बडके वृक्षके लगानेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः ॥ गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥ मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥ प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिर वा जल में मलमूत्र करताहै उसके पापका रूप दारुण रोग गुदामें होताहै ॥ १४ ॥ गुदाके रोगवाला मनुष्य एकमहीनेतक देवताका पूजन करै, और दो गौ दानकर एक प्राजापत्य व्रतसे उसकी शांति होतीहै ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥ तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १६ ॥ एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः ॥ सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य गर्भको गिराताहै उसके यकृत्, तिल्ली, जलोदर आदि रोग होतेहैं; उसके पापों की शांतिके निमित्त यह प्रायश्चित्त कहाहै कि ॥ १६ ॥ विधिसहित सुवर्ण, चाँदी, ताँबा इनके तीनपलसहित जलधेनुको दे ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ॥ संवत्सरत्रयं सिंचेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥ १८ ॥ उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराजं सुपूजितम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य प्रतिमाको भंगकरताहै वह प्रतिष्ठासे हीन होता है, वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये तीनवर्षतक प्रतिदिन पीपलको सींचता रहै ॥ १८ ॥ फिर अपने गृह्योक्तविधिसे पीपलका विवाह करै इसके पीछे भलीभांतिसे पूजाकर गणेशजीकी स्थापनाकरै ॥ १९ ॥

दुष्टवादी खंडितः स्यात्स वै दद्याद्द्विजातये ॥
रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २० ॥

दुष्टवचनको कहनेवाला मनुष्य अंगहीन होताहै, वह मनुष्य दो पल चाँदी और दुग्धके दो घटोंको दानकरै ॥ २० ॥

खल्वाटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम् ॥

दूसरेकी निन्दा करनेवाला गंजा होताहै; वह सुवर्ण सहित गौका दान करै,

परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २१ ॥

दूसरेकी हँसी करनेवाला काना होताहै, वह मोती और गौका दान करनेसे दोषहीन होजाता है ॥ २१ ॥

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान् ॥
निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्त्तिनाम् ॥ २२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके प्रकीर्णप्रायश्चित्तं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सभाके बीचमें पक्षपात करनेवाले मनुष्यको पक्षाघात होताहै वह मनुष्य तीन तोले सोना सत्यवादियोंको दे ॥ २२ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

कुलघ्नो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहृत् ॥
स तु स्वर्णशतं दद्यात्कृत्वा चांद्रायणत्रयम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके उपरान्त निर्वंश (हीनवंश) होताहै; वह तीन चांद्रायणव्रतकर सौ तोले सुवर्णका दानकरै ॥ १ ॥

औदुंबरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते ॥
प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतं दिशेत् ॥ २ ॥

जो मनुष्य ताँबेकी चोरी करताहै वह नरक भोगनेके अन्तमें उदुंबर कुष्ठरोगसे युक्तहोताहै; इस पापका प्रायश्चित्त यह है कि वह प्राजापत्यव्रत करकै सौ पल ताँबा दानकरै ॥२॥

कांस्यहारी च भवति पुंडरीकसमन्वितः ॥ कांस्यं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजातये ॥ ३ ॥

काँसीकी चोरी करनेवाला पुंडरीक रोगवाला होताहै; वह ब्राह्मणोंको भूषणोंसे शोभायमानकर सौ पल काँसीका दानकरै ॥ ३ ॥

रीतिहृत्पिंगलाक्षः स्यादुपोष्य हरिवासरम् ॥ रीतिं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजं शुभम् ॥ ४ ॥

पीतलकी चोरी करनेवाले मनुष्यके पीले नेत्र होतेहैं; उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह एकादशी तिथिमें उपवासकर एकसौ पल पीतल उत्तम ब्राह्मणोंको अलंकृतकर दे ॥ ४ ॥

मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिंगमूर्द्धजः ॥
मुक्ताफलशतं दद्यादुपोष्य स विधानतः ॥ ५ ॥

मोतियोंकी चोरी करनेवाले मनुष्यके केश पीले होतेहैं. वह विधिपूर्वक उपवासकर सौ मोती दानकरै ॥ ५ ॥

त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान ॥
उपोष्य दिवसं सोऽपि दद्यात्पलशतं त्रपु ॥ ६ ॥

त्रपुकी चोरी करनेवाले मनुष्यको नेत्ररोग होताहै, वह मनुष्य एकदिन उपवासकर सौ पल सीसेका दान करै ॥ ६ ॥

सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान् ॥
उपोष्य दिवसं दद्याद्घृतधेनुं विधानतः ॥ ७ ॥

शीशेकी चोरी करनेवाले मनुष्यके शिरमें रोगहोताहै, उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह विधिसहित एकदिन उपवासकर घीकी गौका दान करै ॥ ७ ॥

दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः ॥
स दद्याद्दुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ८ ॥

दूधकी चोरी करनेवाले मनुष्यको बहुमूत्र रोग होता है; वह ब्राह्मणको दुग्धवती गौ दान करै ॥ ८ ॥

दधिचौर्य्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः ॥
दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥ ९ ॥

दहीका चोर मदवाला होताहै; वह अपनी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको दही और गौका दान करै ॥ ९ ॥

मधुचोरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥
स दद्यान्मधुधेनुं च समुपोष्य द्विजातये ॥ १० ॥

जो मनुष्य सहतकी चोरी करताहै; वह नेत्रोंका रोगी होताहै; वह व्रत उपवासकर ब्राह्मणको सहत और गौदान करै ॥ १० ॥

इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान् ॥
गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशांतये ॥ ११ ॥

जो मनुष्य ईखके रसको चुराता है उसको गुल्मरोग होताहै; वह अपने उस दोषकी शांतिके निमित्त गुडकी गौका दान करै ॥ ११ ॥

लोहहारी च पुरुषः कर्बुरांगः प्रजायते ॥
लोहं पलशतं दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य लोहेको चुराताहै वह कबरा होताहै; वह अपनी शुद्धिके निमित्त एकदिन उपवास कर सौ टके भर लोहेका दानकरै ॥ १२ ॥

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत्कंड्वादिपीडितः ॥
उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥

जो तेलको चुराता है उसको खुजली आदिका रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये एकदिन उपवासकर दो घडे तेल ब्राह्मणोंको दे ॥ १३ ॥

आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते ॥
स दद्यादश्विनौ हेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥

जो मनुष्य कच्चे अन्नको चुराताहै वह दरिद्री होताहै; वह दो तोले सुवर्णकी मूर्ति अश्विनीकुमारकी बनवाकर ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोगः प्रजायते ॥
गायत्र्याः स जपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥

पक्वान्नकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी जिह्वामें रोग होताहै, वह मनुष्य एक लक्ष गायत्री का जपकरै और तिलोंसे दशांश हवन करै ॥ १५ ॥

फलहारी च पुरुषो जायते व्रणितांगुलिः ॥
नानाफलानामयुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥ १६ ॥

फलकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी उंगलियोंमें घाव होतेहैं; वह मनुष्य भांति २ के फल ब्राह्मणोंको दान करै ॥ १६ ॥

तांबूलहरणाच्चैव श्वेतौष्ठः संप्रजायते ॥
स दक्षिणां प्रदद्याच्च विद्रुमस्य द्वयं वरम् ॥ १७ ॥

पानीकी चोरी करनेवाले मनुष्यके होठ सफेद होतेहैं; वह उत्तम दो मूगोंकी दक्षिणा दे ॥ १७ ॥

शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः ॥
ब्राह्मणाय प्रदद्याद्वै महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥

शाककी चोरी करनेवाले मनुष्यके नीले नेत्र होतेहैं वह दो महानील मणि ब्राह्मणको दे१८

कन्दमूलस्य हरणाद्ध्रस्वपाणिः प्रजायते ॥
देवतायतनं कार्य्यमुद्यानं तेन शक्तितः ॥ १९ ॥

जो मनुष्य कंदमूलकी चोरी करताहै उसके हाथ छोटे छोटे होते हैं, वह मनुष्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार देवताका मंदिर और बगीचा बनवावै ॥ १९ ॥

सौगन्धिकस्य हरणाद्दुर्गन्धाङ्गः प्रजायते ॥
स लक्षमेकं पद्मानां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ २० ॥

जो मनुष्य सुगंधिकी चोरी करताहै उसके अंगमें दुर्गंध आती रहतीहै, वह मनुष्य अग्निमें एक लक्ष कमलोंका हवन करै ॥ २०॥

दारुहारी च पुरुषः स्विन्नपाणिः प्रजायते ॥
स दद्याद्विदुषे शुद्धौ काश्मीरजपलद्वयम् ॥ २१ ॥

काठकी चोरीकरनेवाले मनुष्यके हाथमें पसीना बहुत होताहै वह मनुष्य अपनी शुद्धिके लिये विद्वान्को दो पल हीरेका दानकरे ॥ २१ ॥

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ॥
न्यायेतिहासं दद्यात्स ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥

शास्त्रकी पुस्तककी चोरी करनेवाला मनुष्य गूंगा होताहै, वह ब्राह्मणको दक्षिणासहित न्याय और इतिहासके ग्रन्थोंका दानकरै ॥ २२ ॥

वस्त्रहारी भवेत्कुष्ठी संप्रदद्यात्प्रजापतिम् ॥
हेमनिष्कमितं चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥

वस्त्रोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य कुष्ठरोगी होताहै; वह एक तोले सुवर्णकी मूर्ति और दो वस्त्र ब्राह्मणको दे ॥ २३ ॥

ऊर्णाहारी लोमशः स्यात्स दद्यात्कंबलान्वितम् ॥
स्वर्णनिष्कमितं हेम वह्निं दद्याद्विजातये ॥ २४ ॥

ऊनकी चोरी करनेवाले मनुष्यके शरीरपर जगह २ रोग होतेहैं, वह तोलेभर सुवर्णकी अग्निकी मूर्ति और कम्बल ब्राह्मणकोदे ॥ २४ ॥

पट्टसूत्रस्य हरणान्निर्लोमा जायते नरः ॥
तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध्यर्थं द्विजन्मने ॥ २५ ॥

जो मनुष्य रेशमकी चोरी करताहै उसके मुखआदिपर रोम नहींहोते वह अपने दोषकी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको गौदान करै ॥ २५ ॥

औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ॥
सूर्यायार्घ्यः प्रदातव्यो मासं देयं च कांचनम् ॥ २६ ॥

जो मनुष्य औषधको चोरी करताहै उसके आधा शीशीका रोग होताहै; वह मनुष्य सूर्य भगवान्को अर्घ और ब्राह्मणको एकमासा सुवर्ण दानकरै ॥ २६ ॥

रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्यारक्तवातवान् ॥
सवस्त्रां महिषीं दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥

जो मनुष्य लाल वस्त्र और मूंगेकी चोरी करताहै उसे रक्तवातका रोग होताहै, वह मनुष्य वस्त्र और मणिके साथ भैंसका दानकरै ॥ २७ ॥

विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ॥ तेन कार्य्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥ मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ॥ दशांशहोमः कर्तव्यो पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥

ब्राह्मणके रत्नोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य संतानसे हीन होताहै, वह अपनी शुद्धिके निमित्त महारुद्रका जपकरै ॥ २८ ॥ जिसके पुत्र मर २ जातेहैं उसको जो प्रायश्चित्त करना कहाहै उस सभी प्रायश्चित्तको करै; और ढाककी लकडियोंमें दशांश हवन करै॥२९॥

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ॥ ज्वरो महाज्वरश्चैवं रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ३० ॥ ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ॥ अतिरौद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्द्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

देवताकी मूर्तिकी चोरी करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारका ज्वर होताहै, ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर, वैष्णवज्वर, ॥ ३० ॥ यदि जो ज्वर होय तौ रोगीके कानमें रौद्र जपकरै, यदि महाज्वर होय तौ महारुद्रका जपकरै यदि रौद्रज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै और वैष्णव ज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ॥
तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तितः ॥ ३२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारके चोरी करनेवाले मनुष्यको ग्रहणी रोग होताहै वह मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार अन्न जल वस्त्र सुवर्ण इनका दानकरै ॥ ३२ ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

मातृगामी भवेद्यस्तु लिंगं तस्य विनश्यति ॥ चांडालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुंभमुत्तरतो न्यसेत् ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्व-

रम् ॥ सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं नरवाहनम् ॥ ३ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन धनदं विश्वरूपिणम् ॥ अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ॥ ४ ॥ सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ ५ ॥ निधीनामधिपो देवः शंकरस्य प्रियस्सखा ॥ सौम्याशाधिपतिः श्रीमान्मम पापं व्यपोहतु ॥ ६ ॥ इमं मंत्रं समुच्चार्य्य आचार्याय यथाविधि ॥ दद्याद्देवं हीनकोशे लिंगनाशे विशुद्धये ॥ ७ ॥

माताके साथ गमन करनेवाले मनुष्यका लिंग नष्ट होताहै, चांडालकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यके अंडकोश नहीं होते ॥ १ ॥ वह अपने प्रायश्चित्तके निमित्त उत्तरदिशामें काले वस्त्रसे ढका और काले फूलोंसे शोभायमान घडेको स्थापित करै ॥ २ ॥ उस घडेके ऊपर कांसीके पात्रमें छैः तोले सुवर्णसे बनीहुई नरवाहन कुबेरकी मूर्ति स्थापित करै ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त पुरुषसूक्तसे सब विश्वरूपी कुबेरका पूजनकरै; और अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मणसे अथर्ववेदका पाठ करावै ॥ ४ ॥ और "मैं पापरहित हूं" इस भांति कहताहुआ बीसतोले सुवर्णकी प्रतिमाका पूजन करकै ब्राह्मणको दे ॥ ५ ॥ "हे निधियोंके स्वामी और महादेवके प्यारेमित्र, उत्तरदिशाके स्वामी और लक्ष्मीवान् कुबेरदेव मेरे पापको दूरकरो ॥ ६॥ इस मंत्रका उच्चारणकर विधिसहित कुबेरकी मूर्ति लिंगहीन और नष्टकोशवाला मनुष्य आचार्यको दे ॥ ७ ॥

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रः प्रजायते ॥ तनापि निष्कृतिः कार्य्या शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा ॥८॥ स्थापयेत्कुंभमेकं तु पश्चिमायां शुभे दिने ॥ नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम्॥ सुवर्णनिष्कषट्केन निर्म्मितं यादसांपतिम् ॥ १० ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणं विश्वरूपिणम् ॥ सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥ ११ ॥ सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥ यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावनः ॥ संसाराब्धौ कर्णधारो वरुणः पावनोऽस्तु मे ॥१३॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि॥ दद्याद्देवमलंकृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥

जो मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साथ रमण करताहै उसे मूत्रकृच्छ्र रोग होताहै, वह मनुष्यभी शास्त्रकी रीति से प्रायश्चित्त करै ॥ ८ ॥ वह पुरुष पश्चिम दिशामें नीले वस्त्रोंसे ढके और नीले फूलोंसे शोभायमान एक घडेको शुभ मुहूर्तमें स्थापनकरै ॥ ९ ॥ फिर उस घडेके ऊपर ताँबेके पात्रमें छैः तोले सुवर्णसे बने और जलके जीवोंके स्वामी वरुण देवताको स्थापित करै ॥ १० ॥ और विश्वके रूपी वरुणका पुरुषसूक्तसे पूजन करै उस घडेके समीप सामवेदका जाननेवाला ब्राह्मण सामवेदका पाठ करै ॥ ११ ॥ और बीसतोले सुवर्णकी मूर्ति बनाकर ब्राह्मणका पूजनकर "मैं पाप रहितहूं" इस भांति कहता हुआ दे ॥ १२ ॥ जलके जीवोंके स्वामी सबको पवित्र करनेवाले और संसाररूपी समुद्रमें कर्णधार जो वरुणहैं वह मेरेको पवित्र करैं ॥ १३ ॥ इस मंत्रको पाठकर विधिसहित वरुण देवताकी मूर्तिको शोभायमानकर मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके निमित्त ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ॥ भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥ १५ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्त्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत ॥ पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥ तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ॥ सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् ॥ यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥ सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १९ ॥ देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ॥ शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु ॥ २० ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य आचार्याय यथाविधि ॥ दद्याद्देवं सहस्राक्षं सपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥

अपनी कन्याके साथ गमनकरनेवाला मनुष्य रक्तकुष्ठका रोगी होता है, बहिनके साथ गमनकरनेवाले मनुष्यको पीतकुष्ठ होताहै ॥ १५ ॥ वह मनुष्य उसपापसे छूटनेके निमित्त पीलेवस्त्रसे ढका और पीले फूलोंसे शोभायमान घडेको पूर्वदिशामें स्थापित करै ॥ १६ ॥ उसके ऊपर सुवर्णके पात्रमें छः तोले सुवर्णसे बनी और हाथमें वज्रसहित देवताओंके ईश्वर इन्द्र-देवताकी मूर्तिको स्थापितकरै ॥ १७ ॥ और पुरुषसूक्तसे विश्वरूपी देवराज इन्द्रका पूजन करै; फिर उस घडेके निकट यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद इनका पाठकरै ॥ १८ ॥ पीछे दस सुवर्णकी प्रतिमा बनवायकर ब्राह्मणोंका पूजन करकै; "मैं पापसे हीनहूं" इसभांति कहताहुआ दे ॥ १९ ॥ "देवताओंका स्वामी वज्रसहित जिसका स्थान विष्णुहै जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं, हजार जिसके नेत्र हैं वह देवराज इन्द्र मेरे सम्पूर्ण पापोंको दूर करै" ॥ २० ॥ इस मंत्रको पढकर विधिपूर्वक आचार्यको इन्द्रकी मूर्ति सब पापोंकी निवृत्तिके लियेदे ॥२१॥

भ्रातृभार्याभिगमनाद्गलत्कुष्ठं प्रजायते ॥ स्ववधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते ॥ २२ ॥ तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि ॥ दशांशहोमः सर्वत्र घृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य भाईकी स्त्रीके साथ गमन करताहै उसके गलित कुष्ठ होता है और पुत्र वधूके साथ गमन करनेसे काला कुष्ठ होताहै ॥ २२ ॥ वह मनुष्य अपने पापोंसे छूटनेके निमित्त पहले कहेहुएमेंसे आधा प्रायश्चित्त करै, और पूर्वोक्त सब प्रायश्चित्तोंमें घीसे भीगेहुए तिलोंसे दशांश हवनकरै ॥ २३ ॥

यदगम्याभिगमनाज्जायते भ्रुवमंडलम् ॥ कृत्वा लोहमयीं धेनुं पिलषष्टिप्रमाणतः ॥ २४ ॥ कार्पासभांडसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ॥ दद्याद्विप्राय विधिवदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥ सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥

जो मनुष्य गमनकरने अयोग्य चांडाली स्त्रीके साथ गमनकरता है उस मनुष्यके शरीरमें चकत्ते होते हैं वह साठ तिलके प्रमाणसे लोहेकी गौ बनवाकर ॥ २४ ॥ और कपास पात्र काँसीकी दोहनी और बछडेवाली उस गौको विधिसहित ब्राह्मणको देऔर फिर यह मंत्र पढे; गौही विष्णु भगवान्की मूर्ति है, मातारूप है यह गौ मेरे पापका नाश करै ॥ २५ ॥

तपस्विनीसंगमने जायते चाश्मरीगदः ॥ स तु पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २६ ॥ दद्याद्विप्राय विदुषे मधुधेनुं यथोदिताम् ॥ तिलद्रोणशतं चैव हिरण्येन समन्वितम् ॥ २७ ॥

तपस्विनीके साथ गमनकरनेसे मनुष्यको पथरीका रोग होताहै, वह मनुष्य उस पापकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥ किसी विद्वान् ब्राह्मणको शास्त्रकी विधिके अनुसार गौदान करै, और सुवर्णसहित सौ द्रोण तिल दे ॥ २७ ॥

पितृष्वस्रभिगमनाद्दक्षिणांशव्रणी भवेत् ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या अजादानेन शक्तितः ॥ २८ ॥

पिताकी बहिनके साथ गमनकरनेसे मनुष्यके दाहिने कंधेपर घाव होतेहैं; बकरीके दानको करकै वहभी प्रायश्चित्त करै ॥ २८ ॥

मातुलान्यां तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ॥
कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २९ ॥

मांईके साथ गमन करनेवाला मनुष्य कुबडा होताहै, वह काली मृगछालाको देकर प्रायश्चित्त करै ॥ २९ ॥

मातृष्वस्रभिगमने वामांगे व्रणवान्भवेत् ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या सम्यग्दासप्रदानतः ॥ ३० ॥

मौसीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यके अंगमें घाव होतेहैं, वह मनुष्य भली प्रकार दासका दानकर प्रायश्चित्त करै ॥ ३० ॥

मृतभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते ॥
तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजमेकं विवाहयेत ॥ ३१ ॥

विधवा स्त्रीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यकी स्त्री मरजातीहै; वह मनुष्य उस पापसे छूटनेके निमित्त एक ब्राह्मणका विवाह करदे ॥ ३१ ॥

सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरः ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्नतः ॥ ३२ ॥

अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ गमन करनेसे मनुष्यको भगंदर रोग होताहै, इसका यही प्रायश्चित्त है कि यत्नसहित भैंसका दानकरै ॥ ३२ ॥

तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेही जायते नरः ॥
मासं रुद्रजपः कार्यो दद्याच्छक्त्या च कांचनम् ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य तपस्विनीके साथ गमन करताहै उसे प्रमेह रोग होताहै; वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका दानकरै और एक महीनेतक रुद्रका जप करतारहै ॥ ३३ ॥

दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायते दुष्टरक्तदृक् ॥
स पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य दीक्षावाले मनुष्यकी स्त्रीके साथ गमन करताहै वह दुष्ट होताहै और उसके नेत्र लाल होतेहैं, वह उस पापसे छूटनेके निमित्त दो प्राजापत्यव्रत करै ॥ ३४ ॥

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ॥
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३५ ॥

अपनी जातिकी स्त्रीके साथ जो मनुष्य गमन करताहै उस मनुष्यके हृदयमें घाव होताहै, वह दो प्राजापत्यव्रत कर उस पापसे छूटजाताहै ॥ ३५ ॥

पशुयोनौ च गमने मूत्राघातः प्रजायते ॥
तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्धये ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य पशुकी योनिमें गमन करताहै उसे मूत्राघात रोग होताहै; वह अपनी शुद्धिके लिये दो तिलपूरित पात्रोंको दे ॥ ३६ ॥

अश्वयोनौ च गमनाद्गुदस्तंभः प्रजायते ॥
सहस्रकमलस्नानं मासं कुर्याच्छिवस्य च ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य घोडीकी योनिमें गमन करताहै उसे गुदाका स्तंभ होताहै; वह एक महीनेतक सहस्रकमलोंसे शिवजीको स्नानकरावै ॥ ३७ ॥

एते दोषा नराणां स्युर्नरकांते न संशयः ॥
स्त्रीणामपि भवंत्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ३८ ॥

इति श्रीशातातपीये कर्मविपाकेऽगम्यागमनप्रायश्चित्तं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह ऊपर कहेहुए दोष मनुष्योंको नरकके अंतमें होतेहैं इसमें किंचित्भी संदेह नहीं; और उन उन पुरुषोंकी संगतिसे उपरोक्त दोष स्त्रियोंको भी होतेहैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अश्वशूकरशृंग्यद्रिद्रुमादिशकटेन च ॥ भृग्वग्निदारुशस्त्राश्मविषोद्बंधनजैर्मृताः ॥ १ ॥ व्याघ्राहिगजभूपालचोरवैरिवृकाहताः ॥ काष्ठशल्यमृता ये च शौचसंस्कारवर्जिताः ॥ २ ॥ विषूचिकान्नकवलदवातीसारतो मृताः ॥ डाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥ ३ ॥ अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ॥ पंचत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवंति गतिं मृताः ॥ ४ ॥ पित्राद्याः पिंडभाजः स्युस्त्रयो लेपभुजस्तथा ॥ ततो नांदीमुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यश्रुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥ द्वादशैते पितृगणास्तर्पिताः सन्ततिप्रदाः ॥ गतिहीनाः सुतादीनां सन्ततिं नाशयंति ते ॥ ६ ॥ दश व्याघ्रादिनिहता गर्भं विघ्नन्त्यमी क्रमात् ॥ द्वादशास्त्रादिनिहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥ ७ ॥ विषादिनिहता घ्नन्ति दशसु द्वादशस्वपि ॥ वर्षैकबालकं कुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥ व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च ॥ विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥ राज्ञा राजकुमारघ्नश्चौरेण पशुहिंसकः ॥ वैरिणा मित्रभेदी च वकवृत्तिर्वृकेणतु ॥ १० ॥ गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ॥ द्रोही संस्काररहितः शुना

निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥ नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः ॥ कृमिभिः कृत्तवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥ १२ ॥ शृंगिणा शंकरद्रोही शकटेन च सूचकः ॥ भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥ दवेन दक्षिणाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥ ॥ १४ ॥ उद्बंधनेन हिंस्रः स्यात्सेतुभेदी जलेन तु ॥ द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसारेण लोहहृत् ॥ १५ ॥ डाकिन्याद्यैश्च म्रियते स दर्पकार्यकारकः ॥ अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥ अस्पृश्यस्पर्शसंगी च वान्तमाश्रित्य शास्त्रहृत् ॥ पतितो मद्यविक्रेताऽनपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥ १७ ॥

यदि मनुष्य घोडा, सूकर, सींगवाले पशु, पर्वत, वृक्ष, गाडी, शिला, अग्नि, काष्ठ, शस्त्र, पत्थर, विष, और फाँसी इत्यादिसे मृतक होजाय ॥ १ ॥ जो मनुष्य सिंह, हाथी, राजा, चोर, वैरी, व्याघ्र और काठके आघातसे मरजाय, जो शौच और संस्कारसे हीन हो ॥ २ ॥ हैजा, अन्नका और अन्नका ग्रास बनकी अग्नि, अतीसार, शाकिनी आदिग्रह, बिजलीका गिरना और उत्पात इत्यादि इनसे जो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजांय ॥ ३ ॥ छूनेके अयोग्य, अपवित्र, पतित, पुत्रहीन, इन पूर्वोक्त पैंतीस प्रकारसे मरेहुए मनुष्योंकी गति नहीं होती ॥ ४ ॥ पितासे आदि लेकर तीन पिंडके भागी और उनसे पहले तीन लेपके भागी, और उनसे पहले तीन अश्रुमुख होतेहैं ॥ ५ ॥ तृप्तिको प्राप्त होकर वह बारह पितरोंके गण सन्तानको देतेहैं; और जो गतिसे हीन हैं वह अपने पुत्रादिकी सन्ततिको नष्टकरतेहैं ॥ ६ ॥ सिंह इत्यादि इस प्रकारके आघातसे मृतक हुए पितर गर्भको नष्ट करतेहैं; और अश्व इत्यादिके आघातसे मृतक हुए बारह जन बालकको नष्ट करतेहैं ॥ ७ ॥ विषादि द्वारा मृत्युको प्राप्तहुए दस या बारह पुरुष दस वर्षके बालकको नष्ट करतेहैं, वा मनुष्यको सन्तानहीन करदेते हैं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य कुमारी कन्यामें गमन करताहै, वह सिंहसे मारा जाताहै, जो मनुष्य किसीको विष देताहै, वह सर्पके आघातसे हत होताहै; और राजाके पुत्रको मारनेवाला तथा राजाके साथ दुष्टता करनेवाला हाथीसे मरताहै ॥ ९ ॥ जो राजपुत्रको मारताहै वह राजदंडसे मरताहै; पशुकी हिंसा करनेवाला चोरसे मारा जाताहै; और मित्रोंका भेद करनेवाला शत्रुके हाथसे माराजाताहै; जिसकी वकवृत्तिहै उसकी मृत्यु वृकसे होतीहै ॥ १० ॥ गुरुकी हत्याकरनेवाला शय्यापर मरताहै; मात्सर्ययुक्त मनुष्य शौचरहित होकर मरताहै; दूसरेका अपकार करनेवाला मनुष्य दाहादि संस्कारसे हीन होकर मरताहै; और धरोहरका चुरानेवाला कुत्तेके काटनेसे मरताहै ॥ ११ ॥ फांसीवाला मनुष्य वनमें शूकरसे मरताहै; और वस्त्रोंका चुरानेवाला कीडोंसे; और छेदनकरनेवाला भी कीडोंसे मरता है ॥ १२ ॥ शिवजीके साथ द्रोह करनेवाला सींगवाले पशुओंसे मरताहै; चुगली करनेवाला मनुष्य गाडीसे, पृथ्वीका चोर बडी शिलासे, और यज्ञमें हानि करनेवाला अग्निसे मरताहै ॥ १३ ॥ दक्षिणाका चौर वनकी अग्निसे वेदोंकी निन्दा करनेवाला शस्त्रसे, ब्राह्मणोंका निंदक पत्थरसे और कुबुद्धिका देनेवाला विषसे मरताहै ॥ १४ ॥ हिंसाकरनेवाला मनुष्य फांसीसे मृतक होताहै, पुलको तोडनेवाला जलसे, राजाके हाथीको चुरानेवाला वृक्षसे और लोहेका चुरानेवाला अतिसारसे मरताहै ॥ १५ ॥ अहंकारसे कार्यकरनेवाला शाकिनी आदिसे

और अनध्यायमें पढनेवाला बिजलीसे मरताहै ॥ १६ ॥ अयोग्यका स्पर्श करनेवाला, और शास्त्रको चुरानेवाला यह दोनों वमनरोगसे मरतेहैं; मदिराका बेचनेवाला पतित होताहै, ब्राह्मणके वस्त्रोंका चोर सन्तानहीन होताहै ॥ १७ ॥

अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ कारयेन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रेतरूपिणम् ॥ १८ ॥ चतुर्भुजं दंडहस्तं महिषासनसंस्थितम् ॥ पिष्टैः कृष्णतिलैः कुर्यात्पिंडं प्रस्थप्रमाणतः ॥ १९ ॥ मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुंडलसंयुतम् ॥ अकालमूलं कलशं पंचपल्लवसंयुतम् ॥ २० ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २१ ॥ सप्तधान्यं तु सफलं तत्र तत् सफलं न्यसेत् ॥ कुंभोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २२ ॥ कुर्यात्पुरुषसूक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् ॥ षडंगं च जपेद्रुद्रं कलशे तत्र वेदवित् ॥ २३ ॥ यमसूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा ॥ गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः स्वात्मविशुद्धये ॥ २४ ॥ गृहशांतिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ अज्ञातनामगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २५ ॥ प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिंडं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ इमं तिलमयं पिंडं मधुसर्पिःसमन्वितम् ॥ २६ ॥ ददामि तस्मै प्रेताय यः पीडां कुरुते मम ॥ सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २७ ॥ द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे ॥ ततोऽभिषिंचेदाचार्यो दम्पती कलशोदकैः ॥ २८ ॥ शुचिर्वरायुधधरो मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ यजमानस्ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणान् ॥ २९ ॥ ततो नारायणबलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् ॥ एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३० ॥ विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतेष्वपि ॥ व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३१ ॥ सर्पदंशे नागबलिर्देयः सर्वेषु कांचनम् ॥ चतुर्निष्कमितं हेम गजं दद्याद्गजैर्हते ॥ ३२ ॥ राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्मयम् ॥ चोरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् ॥ ॥ ३३ ॥ वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्ति च कांचनम् ॥ शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३४ ॥ निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३५ ॥ संस्कारहीने च मृते कुमारं च विवाहयेत् ॥ शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ ३६ ॥ शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥ कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूममात्रं द्विजातये ॥ ३७ ॥ शृंगिणा च हते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्करान्वितम् ॥ ३८ ॥ भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥ अग्निना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तितः ॥ ३९ ॥ दवेन निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥ शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥ अश्मनानिहते

दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥ उद्बंधनमृते चापि प्रदद्याद्गां पयस्विनीम् ॥ मृते जलेन वरुणं हैमं दद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४२ ॥ वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुतम् ॥ अतिसारमृते लक्षं सावित्र्याः संयतो जपेत् ॥ ४३ ॥ डाकिन्यादिमृते चैव जपेद्रुद्रं यथोचितम् ॥ विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४४ ॥ अस्पर्शे च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्भ्रान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४५ ॥ पातित्येन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश ॥ मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥ ४६ ॥ निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते ॥ कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४७ ॥ विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ तिलधेनुः प्रदातव्या कंठेऽन्नकवले मृते ॥ ४८ ॥ केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् ॥ एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्द्धदैहिकम् ॥ ४९ ॥ ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥ दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५० ॥

अब इन सबका क्रमानुसार प्रायश्चित्त कहतेहैं, कि, एक तोलेभर सुवर्णकी प्रेतकी मूर्ति बनावै ॥ १८ ॥ उस मूर्ति के चार भुजा हों हाथमें दंड देकर उस फिर भैंसेपर सवार करै, फिर काले तिलोंको पीस कर प्रस्थभरका एक पिंड बनावै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उस पिंडमें सहत घी मिलाकर सुवर्णके कुंडल उस पिंडपर रक्खै, नीचे से गोल एक कलश हो उसपर पंच पल्लव रक्खै ॥ २० ॥ फिर उसे काले वस्त्रसे ढकदे और उसमें सर्वौषधि डाले, फिर उसपर अन्न और फलसहित पात्र रक्खै, फिर उस पात्रपर देवताकी मूर्तिको स्थापित करै ॥ २१ ॥ पीछे फलके साथ सतनजा रक्खै और उस कलशपर प्रेतकी मूर्तिको रखकर ॥ २२ ॥ पुरुषसूक्तको पढताहुआ प्रतिदिन दूधसे तर्पणकरै, और उस कलशके निकट वेदोंका ज्ञाता षडंग रुद्रका जपकरै ॥ २३ ॥ इसके पीछे यमसूक्तसे यमराजकी पूजाकरै; और अपने आत्माकी शुद्धिके निमित्त गायत्रीकाभी जपकरै ॥ २४ ॥ ग्रहोंकी शांति कर तिलोंसे दशांश हवनकरै; जिस प्रेतके गोत्र और नामको नहीं जाना है उस प्रेतके निमित्त तिलांजलि दे ॥ २५ ॥ पितृतीर्थसे पिंड दे पीछे इस मंत्रको कहै कि सहत और घी मिलाहुआ यह तिलका पिंड ॥ २६ ॥ उस प्रेतके निमित्त देताहूं जो मुझे पीडादेताहै; और जिस जलमें काले तिल हों ऐसे जलसे भरेहुए काले घडे ॥ २७ ॥ बारह प्रेतको और एक विष्णु भगवान्को दे, इसके पीछे आचार्य कलशोंके जलसे स्त्रीपुरुष दोनोंका अभिषेक करै ॥ २८ ॥ फिर आचार्य शुद्धतापूर्वक उत्तम शस्त्रको धारणकर वरुणदेवतावाले मंत्रोंसे यजमानका अभिषेक करै; फिर यजमान आचार्यको श्रेष्ठ दक्षिणा दे ॥ २९ ॥ पीछे शास्त्रकी विधिके अनुसार नारायणबलि करै; यह साधारण विधि जिनकी गति नहीं हुई है उनकी कहीगई ॥ ३० ॥ *और जिनकी मृत्यु सिंह इत्यादिसे हुई है इनकी विशेष विधि यह है कि* जो मनुष्य व्याघ्रसे मरजाय उसकी गतिके निमित्त दूसरेकी कन्याका विवाह करदे ॥ ३१ ॥ जो सर्पके काटनेसे मरगये हैं उनके उद्धारकी इच्छासे नागोंको बलि दे, सब विषयोंमें सुवर्णकी दक्षिणा दे; जो हाथीके आघातसे मरगये हैं उनके उद्धारकी कामनासे चार तोले सुवर्ण दान करै ॥ ३२ ॥

राजदंडसे मरेहुए मनुष्यके निमित्त सुवर्णका पुरुष बनवाकर दे; चोरसे मरेहुए पुरुषके आशयसे गौदान करै; यदि मनुष्य शत्रुके आघातसे मृतक हुआ हो तौ बैलका दान करै॥३३॥ भिडाके द्वारा मृतकहुए मनुष्यके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण दानकरै; शय्यापर, मृतकहुए पुरुषको छुटकारा पानेकी इच्छासे रुईसहित शय्यादान करै ॥ ३४ ॥ और उस शय्यापर तोलेभर सुवर्णकी विष्णुभगवान्‌की मूर्ति रक्खै, यदि जो शुद्धिसे हीन होकर मृत्युको प्राप्तहो तौ दो तोले सुवर्णकी विष्णुकी मूर्तिदे ॥ ३५ ॥ यदि संस्काररहित होकर मरे तौ दूसरेके लडकेका विवाह करदे; कुत्तेके काटनेसे मनुष्यकी मृत्यु होजाय, तौ अपनी शक्तिके अनुसार कुछ धन मट्टीके नीचे गाड दे ॥ ३६ ॥ शूकरद्वारा मृतक हुए मनुष्यके उद्धारके निमित्त दक्षिणासहित भैंसेका दान करै;कृमिद्वारा मरे हुए मनुष्यके आशयसे ब्राह्मणको गेहूँ दे॥३७॥ यदि सींगवाले पशुसे मनुष्य मृतक हो तो वस्त्रसहित बैलका दान करै; गाडीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त सामग्री सहित घोडा दे ॥ ३८ ॥ पर्वतकी शिलासे पिचकर मरजाय तौ अन्नका पर्वत दे; यदि अग्निसे मरै तौ अपनी शक्तिके अनुसार जूते दान करै ॥ ३९ ॥ दावाग्निसे यदि मनुष्य मरजाय तौ किसी स्थानमें सभा बनावै, शस्त्रसे मरजाय तौ दक्षिणा सहित भैंसका दान करै ॥ ४० ॥ पत्थरसे मरजाय तौ बछडे सहित दूध देनेवाली गौका दान करै और विषसे मृतक होजाय तौ खेतीसहित पृथ्वीका दान करै ॥ ४१ ॥ फांसीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त दूध देनेवाली गौका दान करै, जलसे मरजाय तौ तीन तोलेभर सुवर्ण की मूर्त्ति वरुणकी दे ॥ ४२ ॥ वृक्षसे मरजाय तौ सुवर्णका वृक्ष दे और सुवर्ण दान करै; अतिसार रोगसे मरजाय तौ सावधानीसे एकलाख गायत्रीका जप करवावै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य शाकिनी आदिसे मृतक होजाय तौ यथारीति रुद्रका जप करवावै; बिजलीके गिरनेसे मरजाय तौ विद्याका दान करै ॥ ४४ ॥ छूनेके अयोग्यके स्पर्शसे मरजाय तो वेदका पाठ करावै; वमन करनेसे मृतक होजाय तौ उत्तम शास्त्रकी पुस्तक दान करै ॥ ४५ ॥ पतित होकर मृतक हो तौ १६ प्राजापत्य करै सन्तानहीन होकर मरै तो नब्बे कृच्छ्र करै ॥ ४६ ॥ और तीन तोले सुवर्ण दान करै, घोडेसे मरजाय तौ घोडा दे, बन्दरसे मृतक हो तौ सुवर्णका बन्दर बनवाकर दे ॥ ४७ ॥ विषूचिकासे मृतक होजाय तौ उत्तम भोजनसे सौ ब्राह्मण जिमावै, यदि कण्ठमें ग्रास अटकनेसे मरजाय तो तिलकी गौका दान करै ॥ ४८ ॥ केश और रोम आदिके रोगसे मृतक होजाय तौ उस मनुष्यके उद्धारके निमित्त आठ कृच्छ्र व्रत करै; इस प्रकार कर्म करनेके उपरान्त अन्त्येष्टि कर्मको करै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे प्रेतभावसे छूटकर तृप्त होकर पितर पुत्र, पोते, अवस्था, आरोग्यता और सम्पदा इत्यादिको देते हैं ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥ शिष्याय शरभंगाय विनयात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विनयपूर्वक शरभंग शिष्यके पूँछनेपर शातातप ऋषिने कर्मोंका विपाक कहा है ॥ ५१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥ १७ ॥

अथ वशिष्ठस्मृतिः १८.

प्रथमोऽध्यायः १.



श्रीगणेशाय नमः॥ अथ वासिष्ठस्मृतिप्रारंभः॥ अथातः पुरुषनिश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा॥ ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च। विहितो धर्म्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्। दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विंध्यस्य ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः न ह्यन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माः। एतदार्यावर्तमित्याचक्षते। गंगायमुनयोरंतराप्येके। यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमिति। अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरंति॥

इस समय मनुष्योंकी मुक्तिके लिये धर्मके जाननेकी अभिलाषा होती है; जो मनुष्य धर्मको जानकर उसके अनुसार कार्य करता है वह इस लोक और परलोकमें धार्मिक कहकर अत्यन्त प्रशंसाके योग्य होता है; शास्त्रमें जो कहा है वही धर्म है; यदि शास्त्रोंमें न मिलै तौ सज्जनोंका वचनही प्रामाणिक है, हिमालय पर्वतके दक्षिण और विन्ध्याचल पर्वतके उत्तर भागमें जो सब धर्म और सम्पूर्ण आचार प्रचलित हैं वह सभी जाननेके योग्य धर्म हैं, अन्य आचारोंके धर्मको न विचारै, कारण कि वह अतिशय गर्हित धर्म हैं; इसी स्थानका नाम आर्यावर्त्त है; गंगा और यमुनाके मध्यके स्थानको भी कोई २ आर्यावर्त्त कहते हैं; फलतः जिस २ स्थानमें काले मृग स्वभावसे ही विचरण करतेहैं, उस२ स्थानमें ब्रह्मतेज वर्तमान है ॥

पश्चात्सिंधुर्विहरिणीसूर्यस्योदयने पुनः॥ यावत्कृष्णोभिधावति तावद्वै ब्रह्मवर्चसम्॥ त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्मविदो जनाः॥ पवने पावने चैव सर्वतो नात्र संशयः॥ इति।

इसमें भी भाल्लवि पंडित इत्यादि मूल प्राचीन गाथाका कीर्तन करते हैं. "पश्चिम समुद्र और सूर्यके उदयाचलके मध्यके जिन २ स्थानोंमें काले मृग विचरण करते हैं, उन २ देशोंमें ब्रह्मतेज वर्त्तमान है" तीनों वेदोंमें बडे वृद्ध, धर्मके जाननेवाले शुद्धि और शोधनके विषयमें जिस धर्मका उपदेश करैं वही यथार्थ धर्म है इसमें संदेह नहीं"

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः।

श्रुतिके अभावमें मनुने देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्म इन सबका वर्णन कियाहै.

सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावदंतः परिवित्तिः परिवेत्ता अग्रेदिधिषूर्दिधिषूपतिर्वीरहा ब्रह्मघ्न इत्येत एनस्विनः। पंचमहापातकान्याचक्षते। गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्यां ब्राह्मणसुवर्णहरणं पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौनेन वा।

जिसके शयन (निद्रा) करनेमें सूर्य उदयहो, उसको सूर्याभ्युदित कहते हैं, और जिसके शयन (निद्रा) करनेमें सूर्यका अस्त हो उसको सूर्याभिनिर्मुक्त कहते हैं, ऐसे सूर्याभ्युदित

मनुष्य, सूर्याभिनिर्मुक्त मनुष्य बुरे नखवाला, काले दांतवाला, परिविचि,परिवेत्ता, अग्रेदिधिषु, और दिधिपूका पति, वीरकी हत्या करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, यह सब पापी हैं, निम्नलिखित पांच प्रकारके पापी महापापी कहे गयेहैं; जैसे, गुरुकी शय्यापर गमन करना, मदिरा पीना, ब्रह्महत्या, गर्भकी हत्या, ब्राह्मणका सुवर्ण चुराना, पतितके साथ पढना पढाना और यौन (सम्बन्ध) से मेल,

अथाप्युदाहरंति ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौनादन्नपानासनादपि ॥

इन सब विषयोंमें पंडितोंने कहाहै कि, पतितके साथ एक वर्षतक संग, एक वर्षतक यज्ञ करानां पढाना, सम्बन्ध करना, भोजन, जलपान, बैठना इनके करनेसे मनुष्य पतित होताहै,

अथाप्युदाहरंति । विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥ कुलापदेशेन हयोपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्वहंतीति ॥

और यहभी कहाहै कि "विद्या नष्ट होनेपर फिरभी मिल सकती है, परन्तु जातिका नाश होनेपर सर्वनाश होजाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोडा भी सन्मान पाताहै, इस कारण अच्छे वंशकी स्त्री के साथ विवाह करे;"

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत् । राजा तु धर्मेणानुशासत् पष्ठं पष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्युदयिकामिति ह विज्ञायते ॥ इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तीन वर्णोंको ब्राह्मण वशमें रक्खे, ब्राह्मण उनको जिस धर्मका उपदेश दे, राजा उसे प्रचलित करै, राजाके धर्मानुसार राज्य पालन करनेपर ब्राह्मणको छोडकर और सब प्रजासे राजा छठा भाग ले, राजा ब्राह्मणोंके इष्टापूर्त्त धर्मकार्यके छठे भागको लेता है, यह प्रसिद्ध है कि ब्राह्मणही वेदका आदि प्रकाशक है, ब्राह्मणही सबको आपत्तियोंसे उद्धार करता है, इस कारण ब्राह्मण अनादि है और करग्रहण करनेके अयोग्य है, चन्द्रमा ब्राह्मणोंका राजा है, यही इस लोक और परलोकका कल्याण करनेवाला है यह विदित है ।

इति वषिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः । तेषां मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौंजीबन्धनं तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते । वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीन द्विजाति हैं; इन तीनोंका जन्म पहले मातासे और दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसे होता है, दूसरे जन्ममें गायत्री माता है और आचार्य पिता कहागया है आचार्य वेदको पढाता है, इस कारण आचार्यको पिता कहागया है ।

अथाप्युदाहरंति । द्वयमिह वै पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं नाभेरर्वाचीनं मन्येत तद्यदूर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा जायते । यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधुकरोति । अथ यदर्वाचीनं नाभेस्तेनास्यौरसी प्रजा जायते तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमपूज्योऽसीति न वदंतीति हारीताः ॥

इसमें भी यह वचन है कि पुरुषके शरीरके दो भाग हैं जिससे ब्राह्मणके देहका नाभिके ऊपरका भाग और एक नाभिसे नीचेका भाग है जो भाग नाभिसे ऊपरका है इससे इस मनुष्यके अनौरसी प्रजा होती है, कि जो यज्ञोपवीत होता है और जननी (गायत्री) में उत्पन्न करता है वही अच्छा करनेवाला है और जो नाभिसे नीचेका भाग है तिससे मनुष्यके औरससे प्रजा होती है, इस कारण वेदपाठी और विद्यामें बडेको " तू अपूज्य है " यह वचन नहीं कहे ऐसा हारीत ऋषिका वचम है।

अथाप्युदाहरंति ॥ नह्यस्य विद्यते कर्म किंचिदामौंजीबंधनात् ॥ वृत्त्या शूद्रः समो ज्ञेयो यावद्वेदेन जायते ॥ अन्यत्रोदककर्म स्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ।

इसमें बडे महर्षि यह कहते हैं कि यज्ञोपवीतसे प्रथम इसको कोई कर्मका अधिकार नहीं है, जबतक यह वेदमें उत्पन्न नहीं होता तबतक जलदान स्वधा पितरोंका संयोग इनके अतिरिक्त और सब आचरणमें शूद्रके समान जानना ।

विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् । य आवृणात्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्चनाह । अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियंते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् । यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्च नाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्निति ॥ दहत्यग्निर्यथा कक्षं ब्रह्म त्वब्दमनादृतम् । न ब्रह्म तस्मै प्रब्रूयाच्छक्यमानमकृंतत इति ॥

विद्याने ब्राह्मणोंके निकट आकर कहा, कि "मेरी रक्षाकरो, मैं तुम्हारा गुप्त धन हूं, और निंदक कठोर तथा व्रतहीन मनुष्यके निकट मुझे प्रगट न करना, कारण कि उसीसे मैं वीर्यवाली हुई हूं । जो मनुष्य बहुतसा परिश्रमकर सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारढककर भी अत्यन्त सुख मानताहै उस गुरुको माता और पिता माने, उसके साथ कभी भी किसीभी प्रकारका द्रोह न करे. जो सम्पूर्ण ब्राह्मण पढकर मन, वचन और कर्मसे गुरुका सन्मान नहीं करते वह जिस भांति गुरुके उपकारमें नहीं आते उसी भांति शास्त्रज्ञान भी उनको स्पर्श नहीं कर सकता; और वह ब्राह्मण जिसको, शुद्ध, अप्रमत्त बुद्धिमान् और ब्रह्मचारी समझे और जो मनुष्य "मैंने किसीके निकट उपदेश नहीं पाया " यह कहकर गुरुसे द्रोह न करे (हे ब्रह्मन् !) "उस निधिप रक्षकके निकट मुझे कहिये" अग्नि जिसप्रकार तृणको दग्ध करतीहै उसीप्रकार अनादर किया ब्राह्मणभी दग्ध करताहै; इसकारण उस, अनादरके करनेवालेको शक्तिभर ब्रह्म (वेद) का उपदेश न करे, यह वेदका वचन है.

षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति । त्रीणि राजन्यस्याऽध्ययनं यजनं दानं शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन जीवेत् । एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यकुसीदानि च । एतेषां परिचर्या शूद्रस्य अनियता वृत्तिः अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखावर्जम्, अजीवंतः स्वधर्मेणान्यतरापापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन्नतु कदाचिज्ज्यायसीम् । वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवतोऽश्मलवणमपण्यं पाषाणकौपक्षौमाजिनानि च तांतवस्य रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च गंधरसा उदकं च ओषधीनां रसः सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं सविकारमपस्त्रपु जतु सीसं च ।

ब्राह्मणके छैः कर्म हैं, पढना, पढाना, यज्ञकरना, कराना, दान और प्रतिग्रह; क्षत्रियोंके तीन कर्म हैं, अध्ययन, याजन और दान; शास्त्रके अनुसार प्रजापालनभी क्षत्रियका धर्म है, उससेही जीविका निर्वाह करै, वैश्यके भी तीन हैं, खेती, लैनदैन, पशुओंका पालन, और सूद (व्याज) लेना, यह वैश्यकी वृत्ति है, और इन तीनों जातिकी सेवाकरना यह शूद्रका धर्म है और शूद्रकी जीविकाका नियम नहीं है, बालोंकी रक्षाका नियम नहीं है, और वेशका भी नियम नहीं है, तब केवल खुली चोटी होकर न रहै, स्वधर्म से जीविका निर्वाह न होनेपर जिसमें पाप नहो इसप्रकारकी दूसरी वृत्तिका अवलम्बन करले, परन्तु जिसमें पाप हो. ऐसी वृत्तिको कभी अवलम्बन न करै, वैश्यकी वृत्तिको अवलम्बनकर वाणिज्यद्वारा जीविका निर्वाह करै तौ निम्नलिखित द्रव्योंको न बेचै, "जैसे मणिमुक्ता इत्यादि, लवण, पाषाणकी वस्तु उपक्षौम, मृगचर्म, लालसूत्रका वस्त्र, और बनायाहुआ सबप्रकारका अन्न, पुष्प, मूल, फल, गंध, रस, जल, औषधियोंका रस, अमृतकी लता, शस्त्र, विष, मांस, दूध, और और दूधके विकार त्रपु, लाख, और सीसा इनके बेचनेका निषेध है;

अथाप्युदाहरंति ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

इसमें भी यह वचन कहतेहैं कि मांस, लाख, लवण इनके बेचनेसे ब्राह्मण शीघ्र पतित होताहै और दूधके बेचनेसे तीन दिनमें पतित होताहै;

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो वयांसि दंष्ट्रिणश्च । धान्यानां तिलानाहुः ।

ग्रामके पशुओंके बीचमें एक खुरके पशु और केशोंवाले पशु तथा वनके सब पशु पक्षी और डाढवाले पशु, अन्नोंमें तिल यह सब बेचनेके अयोग्य कहे हैं,

अथाप्युदाहरंति । भोजनाभ्यंजनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः स विष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् ।

इसमें यहभी वचन है कि भोजन उबटना इनसे अन्न जो तिलोंसे वह विष्ठामें कीडा होकर पितरोंसहित नरकमें डूबता है; और आप जोतकर जो तिलोंको उत्पन्न करै तौ इच्छाके अनुसार बेचै ।

(तस्मादाभ्यामनस्योताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कृषिः स्यात् ।निदाघेऽयः प्रयच्छेन्नातिपीडनलांगलं प्रवीरवसुशेवः सोमपित्सरु ॥ तदुद्वपतिगामविम्प्रफर्व्यंश्चपीवरीम्प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥ लांगलं प्रवीरवद्वीरं मनुष्यवदनलुब्धतासुशं कल्याणीह्यस्य नासिकोद्वयतिदूरेपविद्धति सोमापिष्टरु सोमोह्यस्य प्राप्नोति ॥ तत्सहतदुद्वपति गामरिमा अजानश्वनखरखरोष्ट्राणां च शफवांश्च दर्शनीयां पीवरीं कल्याणीं प्रथमयुवतीं कथं हि लांगलमुद्वपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥

इसकारण जिन्हें बधिया न कियाहो, जिनकी नाक में नाथ न डालीहो ऐसे बैलोंसे पृथ्वी को प्रातःकालके भोजनके पहले समयमें जोते, ग्रीष्मऋतुमें जलका दानकरै हल ऐसा होना उचित है जिससे अत्यन्त पीडा न हो, पैनी धारवाली जिसमें कुश हो, और जो हल सोमलताके पीनेवाले यजमानके लिये पृथ्वीको खोद सके वह हल धेनुरूपी पृथ्वीको खोद सकताहै, और रथको लेजानेवाले मेष और अश्वभी पृथ्वीको खोद सकतेहैं; जो पृथ्वीपर अश्व इत्यादि बडे वेगसे दौडते हैं, जो पुष्ट हैं और जो रथ तथा हलके लेजानेवाले बैल हैं, और घोडे बलसे ले जानेमें समर्थ हैं; और जिसमें बलवान् अच्छे बैल लगेहों और कुश सुख देनेवाली लगीहो, कारण कि जिस हलकी कुश अच्छी है वही हल जमीनमें दूरतक प्रवेश करसकता है उस हलमें बैल, मींढे, बकरी जोतना और रथमें घोडे खिच्चड तथा ऊंट जोतै, यदि बैल बलवान् और नये हों तौ ऐसे बैलोंके हलसे पुष्ट और कल्याणकारिणी प्रथमतरुणी इस पृथ्वीको यदि धान्यविक्रय करनेका न होय तौ कैसा भला जोतै, यदि जोतै तौ तिलोंको उत्पन्नकर उनके बेचनेमें कुछ दोष नहीं है (इसकारण वास्तविक तौ वाणिग्व्यापार ब्राह्मणको कहा नहीं अतएव ब्राह्मणको कृषिकर्म करना उचित नहीं)

रसारसैः समतो हानतो वा निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः ॥ तिलतंडुलपक्वान्नं विद्यान्मनुष्याश्च विहिताः परिवर्तकेन ।

रसोंको रसोंसे बराबर वा न्यूनतासे बेचे, परन्तु रसोंसे लवण को न बेचे, तिल, चावल, तथा पक्वान्नकोभी रसोंसे लेना उचित नहीं, और मनुष्यको भी मनुष्यके बदलेमें लेनेको कहाहै;

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ अथाप्युदाहरंति । समर्घं धान्यमुद्धृत्य महार्घं यः प्रयच्छति ॥ स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ वार्धुषिं ब्रह्महंतारं तुलया समतोलयत् ॥ अतिष्ठद्भ्रूणहा कोटयां वार्धुषिर्न्यक् पपातह॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय यह वार्द्धुषिकके अन्नका भोजन न करै, इसमें भी यह वचन कहाहै कि सस्ते अन्नको निकालकर महँगा अन्न ब्रह्मवादियोंमें निंदित है यही वार्द्धुषिक कहाताहै, यदि वार्द्धुषिक और ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य एक तराजूमें तोला गयाहो, ब्रह्महत्याकरनेवालेकी ओरका पल्ला ऊंचा होजाय और वार्द्धुषिक हिलातकभी न हो,

कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याद्द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यं धान्येनैव रसा व्याख्याताः ।

जो कर्मसे हीन और पापी हो उसको अपनी इच्छानुसार दुगुना करनेके लिये सुवर्ण और तिगुना करनेके लिये अन्नदेना उचित है, और उस अन्नसेही रसभी कहेगये हैं, अर्थात् रसोंका देना भी कहाहै;

पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतमष्टगुणम्। अथाप्युदाहरंति। राजाऽनुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत्॥ पुना राजाभिषेकेण द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत्॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शते स्मृतम्॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः॥ वसिष्ठवचने प्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके शृणु॥ पंचमाषांस्तु विंशत्यामेवं धर्मो न हीयते॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

फूल, फल, मूल यह तुलामें रक्खे गयेहों तो आठगुने लेने; इसमेंभी यह वचन कहा गयाहै कि राजा अपनी इच्छासे द्रव्यकी वृद्धिका नाश करदे और फिर राजाके अभिषेकसे द्रव्यकी वृद्धिको त्याग दे, और एक सौ रुपये पर चारों वर्णोंसे दो तीन चार, और पांच रुपये महीनेका ब्याज क्रमानुसार ग्रहण करै; और वशिष्ठके वचनमें कही हुई वार्द्धुषिक वृद्धिको श्रवण करो बीससेर पर पांचवां भाग अधिक अन्नका ले अर्थात् चौबीस सेर अन्न ले, इसरीतिसे करनेपर धर्मकी हानि नहीं होती।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अश्रोत्रियाननुवाक्या अनग्नयः शूद्रधर्माणो भवंति नानृग्ब्राह्मणो भवति।

वेदको न पढनेवाला, अनुवाकशून्य, अग्निहोत्ररहित यह तीनों वर्ण शूद्रकी समान हैं, विना वेदके पढे ब्राह्मण नहीं होता,

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरंति।

इस विषयमें (मनु) के श्लोकोंका प्रमाण दिखाते हैं कि,

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥ स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ १॥ न वणिङ्न कुसीदजीवी ये च शूद्रप्रेषणं कुर्वंति न स्तेनो न चिकित्सकः॥ अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः॥

"जो ब्राह्मण वेदको न पढकर अन्य विषयोंमें परिश्रम करताहै, वह इस जन्ममेंही अपने वंशसहित शूद्रत्वको प्राप्तहोता है॥१॥ वणिक, और ब्याजसे जीविका करनेवाला, शूद्र, चोर और वैद्य यह शूद्रत्वको प्राप्त नहीं होते, जिस ग्राममें व्रतसेहीन और अध्ययनसे वर्जित ब्राह्मण भिक्षा मांगकर अपनी जीविका निर्वाह करसकै, राजा उन ग्रामवासियोंको दंड दे कारण कि, यह सब ग्रामवासी चोरोंको आहार देकर उनका पालन करतेहैं;

चत्वारोपि त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः॥स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः॥ अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्॥ सहस्रशः समेतानां पर्षत्त्वं नैव विद्यते॥

चार जने वा तीनजने वेदके जाननेवाले मनुष्य जिस धर्मको कहैं वही यथार्थ धर्म कहकर जाननेके योग्य है, अन्य सहस्रों मनुष्योंका उपदेश कियाहुआ धर्म धर्म नहीं है । व्रत और मंत्रोंसे हीन केवल जातिमात्रसेही जीविका करनेवाले ब्राह्मण चाहैं हजारों इकट्ठे क्यों नहीं होजायँ परन्तु वह तौभी "पर्षत्" नहीं होसकते;

यद्वदंत्यन्यथा भूत्वा मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृष्वनुगच्छति ॥

मूर्ख मनुष्य जिस धर्मको न जानकर धर्मरहितकार्यको धर्म कहकर उसका उपदेश करते हैं, वह पाप सौ प्रकारसे विभक्त होकर कहनेवालोंकी मंडलीकी ओरको जाताहै;

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः ॥ अश्रोत्रियाय दत्तानि तृप्तिं नायांति देवताः ॥ यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव बहुश्रुतः ॥ बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलंतमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥

हव्य और कव्य प्रतिदिन वेदपाठी ब्राह्मणको दे; विना वेद पढेके देनेसे देवता तृप्त नहीं होते, गृहके निकटही जो मूर्ख रहताहो, और विद्वान् मनुष्य दूर रहता हो तो मूर्खको छोडकर विद्वान्कोही हव्य कव्य देना उचित है, मूर्खके उल्लंघनमें दोष नहीं है, कारण कि जलती हुई अग्निको त्यागकर भस्ममें हवन नहीं कियाजाता, काठका बना हाथी, चमडेका मृग और अध्ययनसे विमुख ब्राह्मण, यह तीनों नाममात्रके धारण करनेवाले हैं;

विद्वद्भोज्यानि चान्नानि मूर्खा राष्ट्रेषु भुंजते ॥
तदन्नं नाशमायाति महच्चापि भयं भवेत् ॥

अन्न विद्वानोंके भोजनकरने योग्य है; यदि मूर्ख अन्नको भोजन करेंगे तौ वह अन्न निरर्थक होजायगा और उस राज्यमें महाभय उपस्थित होगा;

अप्रज्ञायमानवित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेत् अधिगंत्रे षष्ठमंशं प्रदाय ब्राह्मणश्चेदधिगच्छेत् षट्कर्मसु वर्तमानो न राजा हरेत् ।

यदि किसीको दूसरेका विना जानाहुआ धन मिलजाय; तौ राजाको उचित है कि जिस मनुष्यको वह धन मिलाहै उससे वह धन लेकर उस धनके छै: भागकर उसमेंसे एकभाग उसे देदे, शेषधन अपने पास रक्खै; और यदि छै: कर्मोंमें युक्त ब्राह्मणको यह धन मिलजाय तौ राजा उसे ग्रहण न करै;

आततायिनं हत्वा नात्र प्राणेच्छोः किंचित्किल्बिषमाहुः । षड्विधास्त्वाततायिनः । अथाप्युदाहरंति ॥ अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥ आततायिनमायांतमपि वेदांतपारगम् ॥ जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वाध्यायिनं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ॥ न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तंमृत्युमृच्छति ॥

आत्मरक्षाके निमित्त आततायीके मारनेमें कुछ पाप नहीं होता, ऐसा कहाहै कि आततायी छैः प्रकारके हैं, इस विषयमें औरभी कहा है; अग्नि लगानेवाला, विषदेनेवाला, जिसके हाथमें शस्त्र हो, धनका चोर खेतकी चोरी करनेवाला, और स्त्रीकी चोरी करनेवाला यह छैः प्रकारके आततायी हैं, वेदांतके पार जाननेवाले भी हिंसा करनेवाले आततायीको मारनेकी इच्छा करै, इससे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न वेदपाठी आताताथीको जो मारता है, उस हत्यासे वह पाप नहीं होताहै, कारण कि इसका वह क्रोधही मारनेवाला है;

त्रिणाचिकेतः पंचाग्निस्त्रिसुपर्णवान् चतुर्मेधा वाजसनेयी षडंगविद्ब्रह्मदेयानुसंतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित् यस्य धर्मानधीते यस्य च पुरुषमातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः। चातुर्विद्यो विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः॥ आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिषत्स्याद्दशावरा॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स आचार्यः । यस्त्वेकदेशं स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।

यह मनुष्य पंक्तिको पवित्रकरनेवालेहैं कि त्रिणाचिकेत पंचाग्नि तीन सुपर्णको जो जानताहै; जिसकी बुद्धि चार प्रकारकी हो, वाजसनेयी संहिताको जानताहो; ब्रह्म वेदका भागी जिसकी संतान हो, छंद और ज्येष्ठ सामवेदको जाननेवाला मंत्रब्राह्मणका ज्ञाता जो धर्मोको पढताहो और जिसके ओर माता पिताका वंश वेदपाठी हो, जो विद्यावान् और स्नातक ये पंक्तिको पावन करनेवाले हैं; ब्रह्मचारी और चारों विद्याओंमें जो एकभी विद्याको जानता हो और छैः अंग जानताहो, धर्मशास्त्रको जो पढावै और आश्रमोंमें स्थित तीन मुख्य २ पुरुष तथा कमसेकम सभा होती है; जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर जो चारों वेदोंको पढावै वह आचार्य कहाता है और जो वेदका कोई भाग वा कोई अंग पढावै उसे उपाध्याय कहते हैं;

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥
क्षत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

अपनी रक्षाके समयमें, और वर्णोंकी संकर भ्रष्टताके समयमें ब्राह्मण और वैश्यभी शस्त्रोंको धारण करलें तौ शस्त्रधारणमें दोष नहीं है, कारण कि, क्षत्रियको तो रक्षाकरनेका अधिकार है.

प्राग्वोदग्वासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिबंधनात् । अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवत् द्विः प्रमृज्यात् खान्यद्भिः संस्पृशेत् मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये च पाणौ व्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् । हृदयंगमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कंठगाभिः क्षत्रियः शुचिः वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव चापुत्रद्वाराऽपि यागास्तर्पणानि स्युः ।

और पूर्व वा उत्तरकी ओरको मुखकरकै बैठे, पैर और हाथोंको पहुंचेतक धोकर अंगूठेकी जडमें जो रेखा उत्तर दिशाकी ओरको है वही ब्रह्मतीर्थ है उससे इसप्रकार आचमन करै, जिसप्रकार शब्द न हो, फिर दो वार मुखको पोंछकर कान आदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श करै,

मस्तकपर जल लगावै, बांये हाथसे चलता हुआ खडा सोती प्रणेता हुआ आचमन न करे और विना झागोंका जल जो हृदयतक पहुँचै ऐसे जलसे ब्राह्मण और जो जल कंठतक पहुँचै उससे क्षत्रिय, और जो मुखमें पहुँच जाय उससे वैश्य और जिसका स्पर्शही होठोंपर हो उनसे स्त्री और शूद्र पवित्र होतेहैं, जो पुत्र यज्ञ करताहै उससे तृप्ति होतीहै;

न वर्णगंधरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः । न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति । अनंगश्लिष्टाः । सुप्त्वा भुक्त्वा पीत्वा स्नात्वा चाचांतः पुनराचामेत् । वासश्च परिधाय ओष्ठौ संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतो लेपो दंतवद्दंतसक्तेषु यच्चांतर्मुखे भवेत् ॥ आचांतस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः । परानथाचामयतः पदौ या विप्रुषो गताः ॥ भूम्यां तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभाग्भवेत ॥ प्रचरन्नभ्यवहार्य्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत् ॥ भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचांतः प्रचरेत्पुनः ॥ यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तदद्भिः संस्पृशेत् ।

और जो जल, वर्ण, गंध, रस आदिसे दुष्ट हों, और जो अशुद्धमार्गसे आये हों उनसे आचमन करना उचित नहीं, और जो मुखकी बूंद अंगपर स्पर्श न करैं तौ वह उच्छिष्ट नहीं करती आचमनके उपरान्त शयन, भोजन और जलपान करके फिर आचमन करै, वस्त्रोंको पहन कर आचमन करनेकी विधि है; और ओष्ठका स्पर्शकरकै रोमोंके विना श्मश्रुका लेप शुद्ध नहीं है, दांतोंमें लगी हुई वस्तु दांतोंकेही समान है, और जो मुखके भीतरे आचमनका शेष जल रहजाय तौ उसके निगलतेही मुखकी शुद्धि है, और जो दूसरोंको आचमन कराते समयमें अपने पैरोंपर जलकी बूंद गिर जाय तौ वह पृथ्वीके समान है, उनसे अशुद्धि नहीं होती; भोजनके स्थानमें परोसते समयमें यदि उच्छिष्टका स्पर्श होजाय, तौ हाथ के द्रव्यको पृथ्वीपर रखकर आचमन करै, फिर परोसे, जिस जिसमें अपवित्रताकी शंका हो उसी उसमें जलका छींटा दे,

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगैः फलम् ॥ बालैरनुपविद्धान्तः स्त्रीभिराचरितं च यत् ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिः ॥ प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः स्त्रीमुखेषु च ॥ मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीली येनोपहन्यते ॥ क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां प्रीतिकराश्च याः ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिरिति ।

कुत्तेका माराहुआ मृग, पक्षियोंका गिराया फल, बालकोंका छुआ; और स्त्रियोंका कियाहुआ आचरण, प्रजापतिने विचारकर इन सबको पवित्र कियाहै दूकानोंपर फैली हुई वेचनेकी वस्तु, स्त्रीके मुखके दोष, मच्छर, और मक्खी जो नीलपर बैठजाय; जिनसे गौ की तृप्ति हो, पृथ्वीपर स्थितजल इन सबको गणना करकै प्रजापतिने शुद्ध कहाहै;

लेपं गंधापकर्षणम् । शौचममेध्यलिप्तस्य । अद्भिर्मृदा च तैजसमृण्मयदारवतांतवानां भस्मपरिमार्जनं प्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छंखशुक्तीनां दारुवदस्थ्नां रज्जुविदलचर्मणां चैलवच्छौचम् । गोवालैः फलचमसानां गौरसर्षपकल्केन क्षौमजानाम् ।

जिसमें अशुद्ध वस्तु लगीहो उसकी शुद्धि जिससे दुर्गंध जाती रहै ऐसे लेप वा जल तथा मट्टीसे होजातीहै; सुवर्णके, मट्टी, काठ, और तन्तुओंके पात्रोंकी शुद्धि क्रमसे भस्मके मांजने, पकाने छीलने और धोनेसेही होजाती है; पत्थर और मणियोंकी शुद्धि सुवर्ण आदिके पात्रोंके समान है, शंख और सीपीके पात्रोंकी शुद्धि मणिके समान है और हड्डीकी शुद्धि काष्ठके समान है, रस्सी, विदल, और चाम, इनकी शुद्धि वस्त्रोंके समान है, फल, यज्ञका पात्र, इनकी शुद्धि चँवरसे होतीहै, रेशमके वस्त्रोंकी शुद्धि सफेद सरसों-के खलसे होतीहै;

भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थाने दोषविशेषात्प्राजापत्यमुपैति ।

पृथ्वीकी शुद्धि जलके छिडकने, बुहारने तथा लीपने और खोदनेसे होजातीहै, और जो किसी स्थानमें अधिक दोष हो तो प्राजापत्य व्रत करै.

अथाप्युदाहरंति । खननाद्दहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि । चतुर्भिः शुद्ध्यते भूमिः पंचमाच्चोपलेपनात् ॥ रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति । भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥ अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यंति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयेत तथा राजतम् ।

इसमेंभी यह वचन प्रामाणिक है कि खोदने जलाने, वर्षामें गौओंके फिरनेमें इन चार प्रकारसे और पांचवें लीपनेसेभी शुद्धि होजाती है, स्त्रीकी शुद्धि रजसे है, नदीकी शुद्धि वेगसे है, काँसीके पात्रकी शुद्धि भस्मसे है, खटाई से ताँबके पात्रकी शुद्धि है, मदिरा, मूत्र, विष्ठा, कफ, राध, आंशु, रुधिर, जिस मट्टीके पात्रमें इनका स्पर्श होगयाहो वह अग्नि में पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता, जलसे शरीरकी शुद्धि होती है, सत्यसे मनकी शुद्धि है, विद्या और तपस्याके द्वारा भूतात्माकी शुद्धि होतीहै, ज्ञानके उदयसे बुद्धि निर्मल होतीहै सुवर्ण और चांदीके पात्रकी शुद्धि जलसे होती है.

अंगुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् । अंगुल्यग्रे मानुषम् । पाणिमध्य आग्नेयम् । प्रदेशिन्यंगुष्ठयोरंतरा पित्र्यम् । रोचंत इति सायंप्रातरशनान्यभिपूजयेत् । स्वदितमिति पित्र्येषु । संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कनिष्ठा उंगलीकी जडमें कायतीर्थ है; उंगलियोंके अग्रभागमें मनुष्यतीर्थ है अंगूठेके और प्रदेशिनीके बीचमें पितृतीर्थ कहाहै, सायंकाल और प्रातःकालमें अन्नकी पूजा करै, और ये रुचिकर अच्छे अन्नहैं ऐसी प्रशंसाकरे. और पितरोंके भोजनमें स्वदित, (अच्छाभोजन खाया) और विवाहआदिके भोजनमें "अच्छा संपन्नहुआ" ऐसा कहै ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रकृतिविशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इति निगमो भवति ॥ गायत्र्या छंदसा ब्राह्मणमसृजत् । त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचिच्छंदसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवासः स्यात्सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ।

प्रकृति और संस्कारके भेदसे चारों वर्णोंका विभाग है, और इतना भेदभी है कि इस ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, और जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं; गायत्री छंदसे ब्राह्मणकी सृष्टि है, और त्रिष्टुभछंदसे क्षत्रीकी सृष्टि है, और जगतीछंदके योगसे वैश्यकी सृष्टि ईश्वरनेकी है, अर्थात् उपरोक्त वेदके मंत्रोंसे इनका संस्कार होताहै, परन्तु शूद्रकी सृष्टि किसी छंदयोगसे नहीं की इससेही शूद्र संस्कारके हीन जानाजाताहै, प्रथम तीन वर्णोंमेंही संस्कारकी स्थिति है, सम्पूर्ण वर्णही सत्यवादी क्रोधरहित दानी और हिंसारहित हुए, और जातकर्मही उनका धर्म है;

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् । मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्म्मणि ॥ अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥ नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥ अथापि ब्राह्मणाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेदेवमस्यातिथ्यं कुर्वंतीति ॥

पितर, देवता, और अतिथि, इनकी पूजामें पशुकी हिंसा करै, कारण कि मनुका यह वचन है कि मधुपर्कमें यज्ञमें पितर और देवताओंके निमित्त जो कर्म हैं उनमें पशुकी हिंसा करै; तौ कुछ दोष नहीं है, अन्यथा हिंसा न करै; विना प्राणियोंकी हिंसाकिये मांस कहीं उत्पन्न नहीं होता; प्राणियोंकी हिंसाभी स्वर्गकी देनेवाली है; इस कारण यागयज्ञमें जो प्राणियोंकी हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है, विना हिंसाके हुए स्वर्ग नहीं मिलसकता, ब्राह्मण वा क्षत्रियके अभ्यागत होनेपर इनके लिये बडा बैल वा बडा बकरा पकावे; इसप्रकार इसके आतिथ्य करनेका नियम है;

उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृतिमृत उभयं कुर्यात् । दंतजननादित्येके । शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमाणा आपोऽभ्यवयंति ततस्तत्रस्था एव सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वंति । अयुग्मा दक्षिणामुखाः । पितॄणां वा एषा दिक् या दक्षिणा । गृहान्व्रजित्वा स्वस्तरे अहमश्नत आसीरन् । अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

दो वर्षसे अधिक अवस्थामें मरे तौ जलदान और अशौच दोनोंही करने उचित हैं, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं, कि यदि बालकके दांत जमआये हों तब वह मरजाय तौ दोनों कर्मोंका करना उचित है, मृतकके शरीरमें अग्निलगाकर चिताकी ओरको विनादेखे जलकी

ओरको चलाआवै और जलमें खडाहोकर दोनों हाथोंसे जलदान करै, और अयुग्म तथा दक्षिण दिशाको मुखकरै; कारण कि दक्षिण दिशा पितरोंकी है, फिर घरमें जाकर तीन दिनतक उपवासकर अच्छे आसनपर बैठे, शक्तिके न होनेपर मोल लेकर खाले;

दशाहं शावमाशौचं सपिंडेषु विधीयते । मरणात्प्रभृतिदिवसगणना । सपिंडता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्बीजानि निमित्तत्वात् ।

सपिंडियोंमें मरणअशौच दसदिनतक होता है, और मरनेके दिनसे दिनोंकी गिनती है, सात पीढीतक सपिंड जानेजातेहैं और कुमारी कन्याओंके मरनेका अशौच तीन पीढियोंमें तीन दिनतक होताहै, और विवाही हुई कन्याओंका आशौच जहां कन्या विवाहीहो वहीं होताहै; इसी भांति उन कन्याओंके जन्मसूतकमें भी भली भांति शुद्धि की इच्छाकरनेवालोंको अशौच है, कारण कि, माता और पिता बीजके निमित्त हैं,

अथाप्युदाहरंति । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्ग चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचिर्ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ ब्राह्मणो दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः । वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ अशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्तवान् ॥ स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ अनिर्दशाहे पक्वान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ॥ कृमिर्भूत्वा स देहांते तद्विष्ठामुपजीवति ।

इस विषयमें यह वचन है कि, यदि सूतकमें स्पर्श न करै तौ पुरुषको अशौच नहीं है, कारण कि जन्मसूतकमें रज अशुद्ध है और वह रज पुरुषमें नहीं है ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय, एक पक्षमें, वैश्य बीसरात्रिमें और शूद्र, एक महीनेमें शुद्ध होताहै, जो मनुष्य शूद्रके अशौच वा सूतकमें भोजन करताहै, वह पुरुष नरकोंमें जाता है या सर्पादि योनिमें उत्पन्न होताहै जो निमंत्रित होकर दस दिनके भीतर भोजन करे, वह कीडा होकर उसी वृत्तिसे जीविका निर्वाह करताहै,

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिंडानां त्रिरात्रमाशौचम् । सद्यः शौचमिति गौतमः । देशांतरस्थे प्रेते ऊर्ध्वं दशाहाच्चैकरात्रमाशौचम् । आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ।

उस पापसे मनुष्य बारह वा छैः महीनेतक उपवासकरे संहिताका पाठकरनेसे पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे जानागया है, कि दो वर्षसे कम अवस्थाका बालक मरजाय वा गर्भपात होजाय तौ सपिंडोंको तीन रात्रिका अशौच होताहै; और गौतम ऋषिका यह वचन है कि उसी समय शुद्धि होजातीहै,

भूपयतिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा अभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजा संन्यासी श्मशान रजस्वला, सूतिका, और अशुद्ध इनका स्पर्शकर शिर सहित जलमें स्नान करै तब पवित्र होताहै।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनग्निरनुदक्या च । अनृतमिति विज्ञायते ।

पुरुष स्वतंत्र है और स्त्री पराधीन है, अग्निहोत्रसे हीन और जप तथा दानके अयोग्य है झूठ, रूप है यह शास्त्रसे जाना जाताहै; ॥

अथाप्युदाहरंति । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥ तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

इस विषयमें यह भी वचन है कि बाल्यावस्थामें पिता रक्षा करताहै, यौवनअवस्थामें पति रक्षा करताहै, और वृद्धावस्थामें स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुत्र है, स्त्री कभी स्वाधीन नहीं होसकती; और प्रायश्चित्त तथा क्रीडाके समयमें स्त्रीको पतिका अवलंघन कहाहै;

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति । सा नाञ्ज्यान्नाभ्यंज्यान्नाप्सु स्नायात् । अधः शयीत दिवा न स्वप्यात् नाग्निं स्पृशेत् न रज्जुं प्रमृजेन्न दंतान्धावयेन्न मांसमश्नीयात् न ग्रहान्निरीक्षयेत् न हसेन्न किंचिदाचरेन्नांजलिना जलं पिबेत् न खर्परेण वा न लोहितायसेन वा विज्ञायते हींद्रस्त्रिशीर्षाणम् त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना गृहीतो मन्युत इति । तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन् भ्रूणहन् भ्रूणहन् भ्रूणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत् अस्यै मे ब्रह्महत्यायै तृतीयभागं गृह्णीतेति गत्वैवमुवाच ता अब्रुवन् किन्नोभूदिति सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति ता अब्रुवन्नृतौ प्रजां विंदामह इति कामं मा विजानीमोऽलं भवाम इति यथेच्छया आप्रसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवाम इति च एषोस्माकं वरस्तथेंद्रेणोक्तास्ता प्रतिजगृहुः तृतीयं भ्रूणहत्यायाः सैषा भ्रूणहत्या मासिमास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् । अतश्च भ्रूणहत्याया एवैतद्रूपं प्रतिमुच्यास्ते कंचुकमिव ।

ऐसा कहाहै कि, महीने २ में ऋतुमती होनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं; वह स्त्री रजस्वला होनेपर तीनदिनतक अशुद्ध रहतीहै, रजस्वला स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावै, उबटन न करै, जलमें स्नान न करै, पृथ्वीपर शयनकरै, अग्निका स्पर्श न करै, और रस्सीको न धोवै, दांतोंको न धोवै मांसको न खाय घरको न देखे, हँसे नहीं और कुछ कर्म न करै छोटे पात्रमें अंजुलिसे जल न पिये, और लोहेके पात्रसेभी जल पीनेका निषेध है यह शास्त्रसे जानागयाहै, कि इन्द्रने तीन शिरवाले त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मारकर अपनेको पापसे गृहीत माना तब उस इन्द्रको सब प्राणियोंने इस प्रकार कोशा कि हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३ तब वह इन्द्र स्त्रियोंके निकट जाकर यह बोला कि इस मेरी ब्रह्महत्याका तीसरा पापका भाग तुम ग्रहणकरो, स्त्रियोंने यह सुनकर कहा कि हमें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि वर

मांगो तब स्त्रियोंने कहा कि हमें ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो तब इन्द्रने कहा कि हम आज्ञा देतेहैं और प्रसन्न होकर कहतेहैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर स्त्रियोंने कहा कि गर्भके रहनेपरभी सन्तान होनेके समयतक हम पुरुषके साथ मैथुन करसकें एक वर हमको यहभी मिलै; तब इन्द्रने कहा कि "अच्छा" ऐसाही होगा, तब वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करतीहुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होतीहै; इसकारण रजस्वला स्त्रीका अन्न नहीं खाना. इसी कारण रजस्वला स्त्री रजरूपी ब्रह्महत्याको महीने महीनेमें छोडके मुक्त होतीहै जैसे सर्प केंचलीको छोडके मुक्त होजाताहै;

तदाहुर्ब्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यंते आचारा याश्च योषित इति सेयमुपयाति । उदक्यायास्त्वासते तेषां ये च केचिदनग्नयः गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यही ब्रह्मवादियोंने कहाहै कि; रजस्वला स्त्री अंजन न लगावे, उवटन न लगावै, इसनिमित्त ऐसी स्त्रीका अन्न लेना उचित नहीं; इसकारण उस समय उस अवीरा स्त्रीको इन कार्य्योंमें ब्रह्मवादियोंकी सम्मति नहीं है । जो रजस्वला स्त्रीके साथ संभोग करतेहैं, जो अग्निहोत्रसे हीन हैं, और जो वेदपाठी हैं, वह गृहस्थी होकर भी सदा शूद्रके समान हैं ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥ नैनं मयाति न ब्रह्म नाग्निहोत्रं न दक्षिणा ॥ हीनाचाराश्रितं भ्रष्टं तारयंति कथंचन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुंता इव तापतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा अखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अंधस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥ ४ ॥ नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयंति मायाविनं मायया वर्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥ ६ ॥ आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्दधानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

यह निश्चय है कि आचारही सबका परम धर्म है, आचारभ्रष्ट मनुष्य इसलोक और परलोकमें नष्ट होताहै जो मनुष्य आचारसे रहित और भ्रष्ट हैं उनको तपस्या, वेदाध्ययन, अग्निहोत्र और दक्षिणा यह किसी प्रकारभी उद्धार नहीं करसकते; यदि छःहों अंगोंसहित

वेदको पढताहुआ मनुष्य आचारहीन होनेके कारण किसी प्रकार शुद्ध नहीं होसकता जिसप्रकार अग्निसे तपायेहुए घोंसलेको पक्षी त्यागदेतेहैं उसी प्रकार आचारसे हीन ब्राह्मणको मृत्युके समयमें वेद त्याग देतेहैं; आचारसे हीन मनुष्यको सांगोपांग वेद और छैःहों अंग किस प्रीतिको उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं, जिस भांति अंधेको सुन्दर स्त्री, और मायासे वर्त्तमान और मायावी मनुष्यको दुःखसे वेद उसका उद्धार नहीं कर सकते, परन्तु भली भांतिसे पढाहुआ एक अक्षरभी वेदका मनुष्यको पवित्र करनेवाला है, दुराचारी मनुष्य लोकमें निंदित और सर्वदा दुःखका भागी है वह रोग ग्रस्त और अल्पायु होताहै; आचारका फल धर्म है, आचारका फल धन है, आचारसे सम्पत्तिकी प्राप्ति होतीहै, आचार दुष्ट लक्षणोंका नाश करताहै, जो मनुष्य सम्पूर्ण लक्षणोंसे हीन होकर भी केवल एक सदाचारके करनेवाला है; श्रद्धालु और निंदारहित वह मनुष्य सौ वर्षतक जीताहै,

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ॥
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनायुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥

धर्मज्ञ मनुष्य, भोजन, गमन, क्रीडा, वाणी, बुद्धि, वीर्य, तप और काम इनको गुप्तभावसे करै; ॥

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ रात्रौ कुर्याद्दक्षिणस्थ एवं ह्यायुर्न हीयते ॥ १० ॥ प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां प्रति च द्विजम् ॥ प्रति सोमोदकं संध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ११ ॥ न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न गोमये ॥ न वा कृष्टे न मार्गे च नोप्ते क्षेत्रे न शाद्वले ॥ १२ ॥ छायायामंधकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधभयेषु च ॥ १३ ॥ उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्स्नानमनुद्धृता भिरपि ॥ आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा ॥ १४ ॥ अंतर्जले देवगृहे वल्मीके मूषिकस्थले ॥ कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पंचः मृत्तिकाः ॥ १५ ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके ॥ पंच पाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ १६ ॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

मलमूत्रका त्याग दिनमें उत्तरकी ओरको मुखकरकै करै और रात्रिमें दक्षिणको मुखकरकै करै, कारण कि ऐसा करनेसे आयुकी हानि नहीं होती; अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, चन्द्रमा, जल, संध्या इनके सन्मुख जो मलकात्याग करताहै उसकी बुद्धि नष्ट होजातीहै, और नदी, भस्म, गोबर, जुता हुआ खेत; मार्ग और बोया खेत, घास, इनमें मलका त्याग न करै छाया वा अंधकारके समयमें रात्रि अथवा दिनमें और प्राणोंकी हिंसामें अपनी इच्छानुसार मुखकरकै मलका त्यागकरै, जलको आप निकालकर स्नान करै, विना निकाले जलसे किनारेपर मट्टी अथवा रेत बाहर निकालकर स्नान करले, जलके भीतरकी, देवताके स्थानकी मट्टी बाँमीकी मट्टी चुहोंकी खोदी हुई मट्टी और शौचसे बची यह पांच प्रकारकी मट्टी लेनी उचित नहीं लिंगमें एकवार, बांये हाथ तीन वार इसके पीछे दोनों हाथोंमें दोवार मट्टी लगावै, गुदामें पांचवार, बांये हाथमें दसवार और फिर दोनों हाथोंमें सातवार मट्टी लगावै

गृहस्थीको इसप्रकार शौच करना कर्तव्य है इससे दुगना ब्रह्मचारीको, तिगुना वानप्रस्थको, और यतिको चार गुना करना कर्तव्य है,

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥ अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुंजाना एव सिद्ध्यंति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु नियमेषु च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

आठ ग्रास यतिका भोजन है. सोलह ग्रास वानप्रस्थका भोजन है, बत्तीस ग्रास गृहस्थीका भोजन है; ब्रह्मचारीके भोजनका नियम नहीं है, बैल ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ यह तीनों भोजनसेही सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, और भोजन न करनेवाले इनकी सिद्धि नहीं है, तप, दान, व्रत, उपहार, नियम, यज्ञ, पढाना, धर्म जो इनमें आसक्त न हो वह निष्क्रियहै,

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दांताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

योग, तप, इन्द्रिय दमन, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विद्या, विज्ञान, आस्तिक्य, यह लक्षण ब्राह्मणके हैं, जो ब्राह्मण सबजगह इन्द्रियोंको दमन करनेवाले हैं; और जिनके कान वेदसे पूर्ण हैं, जो जितेन्द्रिय हैं जो प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त हैं और जो प्रतिग्रह लेनेमें संकोच करतेहैं वह ब्राह्मण उद्धारकरनेको समर्थ हैं.

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः कर्मचांडाला जन्मतश्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूयां च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ २४ ॥

निंदक, चुगल, कृतघ्नी, क्रोधी यह चारों जने कर्मसे चांडाल हैं, और इसके अतिरिक्त पांचवां जातिचांडाल है, अधिक वैर, निन्दा, झूंठ, ब्राह्मणको दोष लगाना, चुगलपन, निर्दयता यह सब लक्षण शूद्रके जानने;

किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् ॥
पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

कोई पात्र वेदसे हैं और कोई पात्र तपसे हैं और पात्रोंका भी पात्र वह है कि जो शूद्रके अन्नको नहीं खाताहै,

शूद्रान्नरसपुष्टांग अधीयानोपि नित्यशः ॥ जुह्वित्वापि यजित्वापि गतिमूर्ध्वां न विंदति ॥ २६ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥ स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ २७ ॥ शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥ २८ ॥

जिसका शरीर शूद्रके अन्नसे पुष्ट है वह चाहै नित्य वेद पढताहो, और अग्निहोत्र तथा यज्ञकोभी करताहो परन्तु तौभी वैकुंठको नहीं प्राप्त होसकता; जिस ब्राह्मणके मरतेसमय शूद्रका अन्न उदरमें रहजाताहै, वह सूकरकी योनि पाताहै, अथवा शूद्रके कुलमें जन्म लेताहै; शूद्रके अन्नको भोजन कर मैथुन करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह पुत्र जिसके अन्न खानेसे उत्पन्न हुआहै उसीका है, इसीकारण वह स्वर्गके जानेयोग्य नहींहै;

स्वाध्यायाढ्यं योनिमित्रं प्रशांतं चैतन्यस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ॥
स्त्रीयुक्तान्नं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

जो वेदके पढनेमें युक्त है, जातिका मित्र, शांतस्वभाव, चैतन्य (ब्रह्म) में स्थिति, पापसे डरनेवाला, बहुत जन और स्त्रीकी पालन पोषण करना, धर्मज्ञता, गौओंकी रक्षा करना, और जो व्रतोंसे थकाहो उसको पात्र कहतेहैं.

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३० ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं महीं तिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥ ३१ ॥

कच्चे पात्रमें रक्खाहुआ जो दूध, दही तथा सहत है जिसभाँति पात्रकी दुर्बलतासे वह पूर्वोक्त रस और वह पात्र नष्ट होजाताहै उसीप्रकार जो मूर्ख गौ, सुवर्ण, वस्त्र, घोडा, पृथ्वी, तिल, जौ इनको ग्रहण करताहै वह काष्ठके समान भस्म होजाताहै;

नांगं नखं च वादित्रं कुर्यान्नचापोंजलिना पिबेत् ॥ न पादेन न पाणिना वा राजानमभिहन्यात् । न जलेन जलं नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं न कल्कपुटको भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

अंग और नखोंसे बाजा न बजावै. हाथकी अंजुलीसे जल न पिये, और राजाको पैर तथा हाथसे न मारै; और जलसे जलको न मारै, ईंट मारकर फलको न तोडै, कल्कको दोनोंमें न रक्खै, म्लेच्छोंकी भाषा न सीखै;

अथाप्युदाहरंति । न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् । न चांगचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥ पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाःश्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ यत्र संतं नचासंतं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ॥ न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस बिषयमें यहभी कहाहै कि, हाथ पैर नेत्र आदि अंग इनको चपल न करै, और यह शिष्टोंका वचन है कि अंगप्रत्यंगसम्पन्न वेद जिन ब्राह्मणोंके वंशमें परंपरासे चला आया है, उन ब्राह्मणोंको वेदके प्रत्यक्ष करनेवाले जानना, और जो सत् असत्को और वेदके पाठक अपाठकको और सदाचारी और असदाचारी जो इनको जानताहै, अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानी है वही ब्राह्मण है वही यथार्थ ब्राह्मण है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः । तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्योपनिक्षेप्तुमावसेत् ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् आशरीरविमोक्षणात् । आचार्ये प्रमृते अग्निं परिचरेत् । विज्ञायते हि तवाग्निराचार्य इति । संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् । गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छंतमनुगच्छेत् । आसीनं चानुतिष्ठेत् । शयानं चासीन उपविशेत् । आहूताध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुंजीत खट्वाशयनदंतप्रक्षालनाभ्यंजनवर्जस्तिष्ठेत् । अहनि रात्रावासीतत्रिःकृत्वोऽभ्युपेयादपोऽभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, और संन्यास यह चार आश्रम हैं, इन चारोंके बीचमें ब्रह्मचारी एक वेद वा दो वेदोंको पढकर जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं हुआहै वह अपने शरीरको निवेदन करनेके लिये गुरुके घरमें निवास करै; और जबतक शरीरपात न हो तबतक गुरुकी सेवा करता रहै;आचार्यके परलोक जानेपर अग्निकी सेवा करै, कारण कि यह शास्त्रसे विदित हुआहै कि अग्निही तेरा आचार्य है, वचनको रोक कर चौथे, छठे वा आठवें समयमें भोजन करै, और भिक्षा मांगै, गुरुके आधीन रहै, जटा धारण करै, या केवल चोटी रक्खै, गुरुके चलनेपर आप पीछे २ चलै और गुरुके बैठनेपर आप बैठे, गुरुके शयन करनेके उपरान्त पीछे आप शयन करै, जब गुरु पढनेके लिये बुलावैं तौ पढनेको जाय; जो भिक्षा मांगकर लावै वह प्रथम सब गुरुदेवको निवेदन कर आज्ञा ले पीछे आप भोजन करै, शय्यापर शयन, दन्तधावन, और उबटन इनको त्यागदे, दिन रात गुरुके यहां रहे, प्रतिदिन तीनवार स्नान करै.

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विंदेत् । पंचमीं मातृबंधुभ्यः सप्तमीं पितृबंधुभ्यः । वैवाह्यमग्निमिंध्यात् । सायमागतमतिथिं नावरुंध्यात् । नास्यानश्नन् गृहे वसेत् । यस्य नाश्नाति वासार्थी ब्राह्मणो गृहमागतः ॥ सुकृतं तस्य यत्किंचित्सर्वमादाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि तिथिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ॥ काले प्राप्ते अकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

गृहस्थी होनेके समयमें, क्रोध और हर्षको रोकना आवश्यक है, गुरुकी आज्ञा लेकर समावर्तनस्नान कर, अन्य गोत्रकी जिसको मैथुनका स्पर्श न हुआहो, जो युवती तथा अपनी समान हो, और माताके बंधुओंसे पाँचवीं और पिताके बन्धुवोंसे जो सातवीं हो ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करै फिर वैवाहिक अग्निको प्रज्वलित करै, सन्ध्याके समय जो अतिथि आवै उसे अन्यत्र न जानेदे, गृहस्थीके घरमें विना भोजनके अतिथि निवास न करै, जिस गृहस्थीके घरमें प्रयोजनवाला आयाहुआ ब्राह्मण भोजन नहीं करताहै, उसका जो कुछ पुण्य है उस सबको लेकर चला जाताहै, जो ब्राह्मण एक रात्रितक रहताहै उसीको अतिथि कहते हैं. इसकारण उसकी तिथि अनियत है इसी कारणसे उसे अतिथि कहाहै, एक ग्रामका और सङ्ग आयाहुआ अतिथि नहीं होता, समय वा असमय पर आवै परन्तु उसे भूंखा न रक्खै,

श्रद्धाशीलोऽस्पृहालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः स्यात् । अलं च सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः सूनृताभिर्मानयेत् । यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि ।

गृहस्थी श्रद्धालु, और अलोलुप रहै, अग्निहोत्रके लिये समर्थ है इसकारण गृहस्थी अग्निहोत्रसे हीन न रहै, सोमपानमें सामर्थ होनेपर सोमयज्ञसे हीन न रहै, स्वाध्याय, सन्तानोत्पादन, और यज्ञ, यह गृहस्थीके लिये विशेष करकै करने कर्तव्य हैं, घरमें आयेहुएको देख उठना. आसन, शय्या, कोमल वचन, इनसे माने शक्तिके अनुसार अन्नसे गृहस्थीही सब भूतोंको समान है,

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रं यांति संस्थितिम् ॥ एवमाश्रमिणः सर्व गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥ यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः ॥ एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ॥ ऋतौ गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति वासिष्टे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गृहस्थीही यज्ञकरताहै, गृहस्थीही तप करताहै, इसकारण चारों आश्रमोंके बीचमें गृहस्थाश्रमही श्रेष्ठ है, जिसभांति सम्पूर्ण नदियें समुद्रमें मिलजातीहैं, उसीप्रकार सम्पूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रममें मिले रहतेहैं; जिसभांति सम्पूर्ण प्राणी जीवात्माके आश्रयसे जीवित रहते हैं, उसीप्रकार भिक्षासे जीविका करनेवाले गृहस्थीके आश्रमके बलसे गृहस्थीका आश्रयकर जीवित रहतेहैं, जो नित्य तर्पणकरै, जो नित्य यज्ञोपवीतको धारण करै, जो नित्य वेदको पढता रहै पतितके अन्नका त्याग करै, ऋतुकालमें स्त्रीसंसर्ग करै, विधिसे हवन करै, वह ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे पतित नहीं होता ।

इति वशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न विशेत् । न फालकृष्टमधितिष्ठेत् । अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत । ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयो मूलफलभैक्षेणाश्रमागतमतिथिमर्चयेत् । दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्रावणकेनाग्निमाधायाहिताग्निःस्याद्वृक्षमूलिकः ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योऽनग्निरनिकेतो दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानंत्यमानंत्यम् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थ जटा धारण करे रहै, चीरवस्त्र तथा मृगछाला धारण करै ग्राममें प्रवेश न करै, हलसे जुते हुए अन्नको न खाय, विना जुता अन्न तथा फल मूल इनको इकट्ठा करता रहै, ऊर्द्ध रेता रहै, पृथ्वीपर शयन करै, जो आश्रममें अतिथि आवै उसकी पूजा फल मूलसे करै, छैः महीनेके उपरान्त अग्नि और स्थानको त्याग दे, देवता, पितर, मनुष्य इनको अवश्य दे, वह अनन्त स्वर्गको जाता है ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत ॥ अथाप्युदाहरंति । अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु विवर्तते ॥ हंति जातानजातांश्च प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ॥ वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ उपवासात्परं भैक्ष्यं दयादानाद्विशिष्यते ॥

संन्यासी सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर प्रस्थान करै, इस विषयमें पंडितोंने कहा है, कि जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर विचरण करता है, उसे कभी किसी प्राणीसे भय नहीं होता, सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर जो स्थिति करता है उसे किसी प्राणीके निकट भय नहीं रहता; और जो ऐसा संन्यासी जिस गृहस्थीसे कुछ भी प्रतिग्रह करता है वह उस गृहस्थीके जात और अजात तथा पिछले और अगले सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करता है, एक अक्षर (ॐ) ही श्रेष्ठ वेद है और प्राणायाम परम तप है, उपवास करनेसे भिक्षाका अन्न श्रेष्ठ है, दानकी अपेक्षा दया प्रधान है ।

मुंडोऽममत्वपरिग्रहः सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम् । विधूमे सन्नमुसले एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तृणैर्वेष्टितशरीरः स्थंडिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत् । तथा ग्रामांते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसाज्ञानमधीयमानः अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥

मुंडित, ममता और परिग्रह शून्य होकर रहै; " आज उस २ के घर जाऊंगा " ऐसा विचार मनमें न कर सात घरोंसे भिक्षा मांगै, एक धोतीसे ढका अथवा मृगछाला और

गौके बालोंसे जिसका शरीर छिपा हो, वह संन्यासी पृथ्वीपर शयन करै; और अनित्य बसतीमें निवास करै, और इसीप्रकार ग्रामके निकट देवमंदिर वा शूने घर तथा वृक्षके नीचे निवास करै और मनसे ज्ञानको पढै; जिस स्थानपर ग्रामके पशु हों उस स्थानपर विहार न करै।

अथाप्युदाहरंति । अरण्यनित्यस्य जितेंद्रियस्य सर्वेंद्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मचिंतागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृत्तिरुपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिंगोऽव्यक्ताचारः अनुन्मत्त उन्मत्तवेषः ॥

इसमें यह भी वचन है कि, वनमें नित्य निवास करै, जितेन्द्रिय होकर रहै, जिस संन्यासीको इन्द्रियोंसे प्रीति न हो और जिसका मन आत्माकी चिन्तामें लगा रहै, उसे जन्म मरणका अभाव है, जिसके चिह्न प्रगट न हों और आचरण प्रगट हों, और जो उन्मत्त हो, जिसका वेष उन्मत्तकी समान हो ।

अथाप्युदाहरंति । न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य ॥ न भोजनाच्छादनतत्परस्य नचापि रम्यावसथप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ॥ अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ अलाभे न विषादी स्याल्लाभेनैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ न कुट्यां नोदके संगे न चैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे नासने शेते यः स वै मोक्षवित्तमः ॥

और यह भी कहा है कि, जो केवल वाक्पांडित्यमें तत्पर है (स्वयं स्वविहित क्रियाको नहीं करता), जो लौकिक व्यवहारमेंही तत्पर रहता है (पारमार्थिक ईश्वर प्रणिधानादि नहीं करता), जो केवल खान पान वस्त्र पात्रादिकोंमेंही आसक्त रहता है और उत्तम मठ मन्दिर और सुन्दर ग्राम आदिकोंमेंही तत्पर रहता है उस संन्यासीका मोक्ष नहीं होता है । संन्यासीने लौकिक व्यवहारसे उपजीविका सम्पादन करनेके लिये दिव्य भौम और आंतरिक्ष वृष्टि विद्युत् तेजी मन्दी वगैरह बातें, तथा नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्रानुसार तिथि नक्षत्र जन्मपत्रिका आदिकोंके फल, वैद्यकीय औषधियोंसे चिकित्सा, धर्मशास्त्रादिके अनुसार विधि और प्रायश्चित्तादिकोंका कथन, किसीका कथन सुनके अपने भी अनुवाद करके कहना. ऐसी वृत्ती रखके भिक्षा मिलानेकी इच्छा करना नहीं, भिक्षा नहीं मिले तो खेद न करै भिक्षा मिलजाय तो हर्ष भी न करै केवल अपने प्राणयात्रा जितने अन्नादिसे होसके उतनेसे निर्बाह करले. इंद्रियोंके विषयोंमें आसक्त न रहे. जो संन्यासी कुटीमें, उदकमें, दूसरेके संगमें, वस्त्रके ऊपर त्रिपुष्करमें, घरमें आसनके ऊपर शयन नहीं करता वह मोक्षका तत्त्व जाननेवाला तत्त्वज्ञ मोक्षगामी पुरुष है ।

ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत्तद्भुंजीत सायं मधुमांससर्पिःपरिवर्ज यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायंप्रातश्च तृप्येत् । ग्रामे वा वसेत् अजिह्मः अशरणः असंकसुकः । नचेंद्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित् । उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण पैशुन्यमत्सराभिमानाहंकाराश्रद्धानार्जवात्मस्तवपरगर्हादंभलोभमोहक्रोधविवर्ज-

नं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवीत्युदककमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्नपानवर्जो न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथवा संन्यासीने ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षा मांगना वहांसे जो मिलै वह भक्षण करै मीठा, मांस, घी, इनको त्याग दे, गृहस्थी, संन्यासी और साधुओंको प्रसन्न होकर तृप्त करता रहै, अथवा ग्राममें निवास करै कपटी न हो, शरण न रक्खै, दुर्जन न हो, इंद्रियोंका संयोग न करै, सब प्राणियोंकी हिंसा और अनुग्रहको त्याग कर उपेक्षा करता रहै, चुगलपन, मत्सरता, अभिमान, अहंकार, अश्रद्धा, कठोरता, मनका शोक, निंदा, दंभ, लोभ, मोह, क्रोध, इन सबको त्याग दे, यह सब आश्रमवालोंका इष्ट धर्म कहा गयाहै कि यज्ञोपवीतको धारण करे रहै, जलका कमंडल हाथमें रक्खै, पवित्र रहै, और ब्राह्मण शूद्रके अन्नको त्यागदे; इसभांति आचरण करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

षट्कर्म्मा गृहदेवताभ्यो बलिं हरेत् । श्रोत्रियायान्नं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वाऽनंतरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथिं भोजयेत् । स्वेष्टायासमानुपूर्व्येण स्वगृह्याणां कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृतींस्ततोऽपरा न्गृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्वपेच्छूद्रेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन पुनः पाको यदि निवृत्ते वैश्वदेवेऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा अन्नं कारयेद्विजातयेऽह्नि वैश्वानरः प्रविशत्यातिथिर्ब्राह्मणो गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तो हि शान्तिजना विद्धिरिति तं भोजयित्वोपासीतासीमान्तादनुव्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

छैः कर्मोंमें रत ब्राह्मण घरके देवताओंको बलिप्रदान करै । वेदपाठी और ब्रह्मचारीको अन्नदेकर फिर पितरोंको अन्नदे, इसके पीछे अतिथिको भोजन करावै, इसके पीछे बंधु बांधवोंको भोजन करावै, फिर वृद्ध, युवा, कुमार, बालक तथा घरके सेवकको जिमावै, इसके पीछे कुत्ते, चांडाल पतित तथा कौआआदिको भोजन करावै, फिर पृथ्वीपर बलि दे, और शूद्रोंको उच्छिष्ट दे तथा शेप अन्नको आप सावधानीसे भोजन करै; सब अन्नके उपभोग होजानेपर फिर पाककर, यदि वैश्वदेवकी निवृत्तिपर अतिथि आजाय तौ उसके लिये भोजन बनवावै, कारण कि जो ब्राह्मण अतिथि घरमें आजाय तौ दुबारा अग्नि उत्पन्न होतीहै; और वर्षाके समयके अतिरिक्त अतिथि भोजनके उपरान्त उस घरसे चलाजाय उसको शांतिवाले जन जानतेहैं, अतिथिको भोजन कराकर सेवा करै और ग्रामकी सीमातक उसके पीछे २ चलाजाय; अथवा जबतक वह लौटनेको न कहै तबतक चलै.

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्वेद्युर्ब्राह्मणान् सन्निपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः शिष्यानपि गुणवतो भोजयेद्दिलमशुक्कविगृधिश्यावदंतकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥

अथाप्युदाहरंति । अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥ अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ॥ खे पतन्ति हि या धारास्ताः पिबंत्यकृतोदकाः ॥ उच्छिष्टेन प्रपुष्टास्ते यावन्नास्तमितो रविः ॥ क्षीरधारास्ततो यान्त्यक्षयाः संचरभागिनः ॥ प्राक्संस्कारप्रमीतानां प्रवेशनमिति श्रुतिः ॥ भागधेयं मनुः प्राह उच्छिष्टोच्छेषणे उभे । उच्छेषणं भूमिगतं विकिरेल्लेपसोदकम् ॥ अनुप्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् । उभयोः शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्ननिवेदनम् ॥ तदन्तरं प्रतीक्षंते ह्यसुरा दुष्टचेतसः ॥ तस्मादशून्यहस्तेन कुर्य्यादन्यमुपागतम् ॥ भोजनं वा समालभ्य तिष्ठतोच्छेषणे उभे ॥

महालयपितृपक्षमें चतुर्थीके उपरान्त पितरोंको दे, पहलेदिन ब्राह्मणोंको नौतकर, संन्यासी गृहस्थी,साधु,वृद्ध,शुद्धकर्म करनेवाले,वेद पढनेवाले शिष्य तथा अपने शिष्य और गुणी इनको भोजन करावै, और जिसके सफेद दादहों, लोभीहो, दांत जिसके कालेहों, कुष्ठी और जिसके नख बुरेहों इन सबको त्यागदे, इसमें यहभी वचन है कि जो मंत्रोंका जाननेवाला हो, उसका शरीर वा वह पंक्तिको दुष्ट करनेवाला हो, यमने उसको दूषित नहीं कहा, कारण कि वह पंक्तिको पवित्र करनेवाला है; श्राद्धकी उच्छिष्टको दिन छिपनेसे पहले फेंकदे, आकाशमें जो जलकी धारा पडती है उसको वह पीते हैं, जिनको उदक दान दियाहो, जबतक सूर्यदेव न छिपतेहैं तब तक वह उच्छिष्टसेपुष्ट रहतेहैं, फिर वह उच्छिष्ट भागियोंके देनेसे अक्षय दूधकी धारा होजातीहै; जो विना संस्कारके मरगयेहैं अर्थात् जिनका संस्कार नहीं हुआहै उनका प्रवेश श्राद्धमें नहीं होताहै, उनके भागको मनुने उच्छिष्ट और उच्छेपण इन दोनोंको कहाहै; पृथ्वीपर जलसहित जो विकिरका लेप है उसे उच्छेपण कहतेहैं, विना संतानके हुए तथा विना अवस्थाके जो मरगयेहैं उनको विकिर देनी उचित है, दोनों शाखाओंके अतिरिक्त पृथक् २ हाथोंसे जो पितरोंको अन्न देताहै, उस अन्नकी बाट दुष्टचित्तवाले असुर देखतेहैं; इसकारण एक हाथसे अन्नको परोसना उचित नहीं; अथवा भोजनके पास बैठकर दोनों उच्छेपण दे,

द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरेत ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ॥ पंचैतान्विस्तरो हंति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शुभशीलोपसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥

दो विश्वदेवाके कार्यमें और तीन पितरोंके कार्यमें अथवा दोनों जगह एक २ ब्राह्मणको धनवान्भी भोजन करावै, और अधिकका जमाना उचित नहीं, और सत्कर्म, देश, समय, शौच, और ब्राह्मणकी सम्पत्ति विस्तार इन पांचोंको नष्ट करदेताहै; इसकारण अधिक ब्राह्मणोंको भोजन कराना उचित नहीं,या एकही वेदके पारको जाननेवाले एक ब्राह्मणको भोजन करावै, जो सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त शीलवान् और सबकुलक्षणोंसे हीनहो,

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते ॥ प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥

(प्रश्न) यदि श्राद्धमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै तौ वहां सब देव कैसे हों? (उत्तर) सम्पूर्ण अन्न एकपात्रमें रखकर देवताओंके स्थानमें रखकर फिर श्राद्ध प्रारंभ होताहै, और उस अन्नको अग्निमें डालदे तथा ब्रह्मचारीको देदे,

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नंति वाग्यताः ॥ तावद्धि पितरोऽश्नंति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरोऽभ्यवतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ नियुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे तं तु समुत्सृजेत् ॥ यावंति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥

जबतक अन्न गरम रहताहै तबतक पितर मौन धारण करके भोजन करतेहैं, अन्नके गुणोंका बखानना उचित नहीं, पितरोंके तृप्त होने पर अन्नकी प्रशंसा करनी उचित है; श्राद्धमें नियुक्त होकर यदि जो मनुष्य देवताओंके कार्य को त्यागदे तो जितने पशुके शरीरमें रोम होतेहैं उतने समयतक नरकमें वासकरताहै,

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्रशंसंति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मंदी भवति भास्करः ॥ स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

श्राद्धमें तीन वस्तु पवित्र हैं, दौहित्र, कुतप काल और तिल; इनसेही अन्नकी प्रशंसा है अक्रोध, और शीघ्रताका त्याग, और शौच, यह तीनों सामग्री श्राद्धके अन्नको श्रेष्ठ करतीहै; दिनके आठवें भागमें सूर्य मंद होताहै उस समयका नाम "कुतप" है उस समय पितरोंको जो दियाजाताहै सो अक्षय होताहै,

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥ भवंति पितरस्तस्य तन्मासं रेतसो भुजः ॥ यतस्ततो जायते च दत्त्वा भुक्त्वा च योऽभ्यसेत् ॥ न स विद्यामवाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥

जो मनुष्य श्राद्धकरके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके मैथुन करताहै उसके पितर उस महीनेमें मांस और रेत भोजन करतेहैं, जो श्राद्ध करके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके विद्या पढताहै; वह न जाने किस योनिमें उत्पन्न होगा, और उस जन्ममें उसे विद्या प्राप्त नहीं होती, और वह अल्पायु होताहै;

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥ मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन वा ॥ अयुना दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥ संतानवर्द्धनं पुत्रं तृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ देवब्राह्मणसंपन्नमभिनन्दंति पूर्वजाः ॥ नंदंति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिव कर्षकाः ॥ यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥

जिस भांति पक्षी पीपलके वृक्षको देखकर आशा करतेहैं, उसीप्रकार पितृ, पितामह, प्रपितामह उत्पन्नहुए पुत्रके प्रति आशा रखतेहैं कि हमारा पुत्र हमें मीठा, मांस, शाक, दूध, खीरआदि देगा, वर्षा और मघाओंमें हमारा श्राद्ध करेगा, जो पुत्र सन्तानको बढानेवाला पित्रोंके कार्यमें तृप्ति करनेवाला है, और देवताकी समान ब्राह्मणसम्पत्तियुक्त पूर्वपुरुषगण उसकी प्रशंसा करतेहैं, जिसभांति किसान उत्तम वर्षाको देखकर आनंदित होतेहैं, उसीप्रकार पितर उससे आनंदित होतेहैं, जो पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध करताहै, पितर उससेही पुत्रवान् होतेहैं;

श्रावण्याग्रहायण्योश्चाष्टकायां च पितृभ्यो दद्यात् द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमोऽवश्यम् ।

श्रावणी पूर्णिमा, आग्रहायण अगहनकी पूर्णिमा, और अष्टका इन दिनोंमें पित्रोंका श्राद्ध करै, अथवा जब उत्तम द्रव्य और देश तथा ब्राह्मण इनका समागम होजाय उस समयमेंभी श्राद्ध करनेका नियम है,

यो ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । दर्शपूर्णमासाग्रयणेष्टिचातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजते । नैयमिकं ह्येतदृणं संस्तुतं च विज्ञायते हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते। यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यो ब्रह्मचर्य्येण ऋषिभ्यः । इत्येष वा अनृणो यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ।

जो ब्राह्मण आहिताग्नि है वह दर्श पौर्णमासयज्ञ, आग्रहायणयज्ञ, चातुर्मास्ययज्ञ, पशु, तथा सोम इन यज्ञोंको अवश्य करै, कारण कि यह ऋण नियमसे है, देवताओंके निकट यज्ञका ऋण है, पितरोंके निकटसे मनुष्य सन्तानका ऋणी है, और ऋषियोंके निकटसे ब्रह्मचर्यका (वेदादिअध्ययनका) ऋण है, इन तीनोंके ऋणोंसे ऋणी होकर ब्राह्मण जन्म लेताहै, तब वह यज्ञशील और पुत्रवान् तथा ब्रह्मचर्य धारण करनेसेही ऋणसे छूटजाताहै,

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम् । पालाशो दंडो बैल्वो वा ब्राह्मणस्य नैयग्रोधः क्षत्रियस्य वा औदुंबरो वा वैश्यस्य कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गव्यं बस्ताजिनं वैश्यस्य शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य मांजिष्ठं क्षत्रियस्य हारिद्रं कौशेयं वैश्यस्य सर्वेषां वा तान्तवमरक्तं भवेत् । भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षां याचेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदंत्यां वैश्यश्च आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्वाविंशात्क्षत्रियस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवंति नैनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः । पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं माक्षिकेनाष्टरात्रं घृतेन षड्रात्रमयाचितं त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमेवोपवासम् । अश्वमेधावभृथं गच्छेद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गर्भसे लगाकर आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै, और गर्भसे लगाकर ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका, और गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत करानेकी विधि है, ब्राह्मणका

दंड ढाक वा बेलके वृक्षका है, और क्षत्रियका दंड वटके वृक्षका है, आर वैश्यका दंड गूलरके वृक्षका है, काले मृगकी छाल ब्राह्मणका दुपट्टा है, रुरु मृगका चर्म क्षत्रियका, और गौ या छागका चर्म वैश्यका वस्त्र है, सफेद और नवीन वस्त्र ब्राह्मणका है, मजीठसे रंगाहुआ वस्त्र क्षत्रियका, और रेशमका हलदीसे रंगाहुआ वस्त्र वैश्यका होताहै, अथवा तीनोंकाही विना रंगाहुआ सूतका वस्त्र धारण करनेयोग्यहै, ब्राह्मण पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, क्षत्रिय बीचमें "भवत्" शब्दका उच्चारणकरै, और वैश्य अंतमें "भवत्" शब्दका प्रयोग करै गर्भसे लगाकर सोलहवर्षतक ब्राह्मणका, और गर्भसे लेकर बाईस वर्षतक क्षत्रियका, और गर्भसे लेकर चौबीस वर्षतक वैश्यके यज्ञोपवीत करनेकी विधि है. इसके उपरान्त जो यज्ञोपवीत न हो तौ वह पतित होताहै और उसे गायत्रीका अधिकार नहीं होता, फिर उनका यज्ञोपवीत करना उचित नहीं, और न उन्हें वेद पढावै अथवा यज्ञ करानाभी कर्तव्य नहीं, उनके साथ विवाह न करै, जो मनुष्य गायत्रीसे पतित है वह उद्दालक व्रत करै; दो महीनेतक जौके आटेका भोजन करै, एक महीनेतक सहत खाय. आठ दिनतक घी पिये, छैः दिनतक जो विना मांगे मिले उससे निर्वाह करै, और तीन दिनतक केवल जलही पीकर जीवन धारण करै, एक अहोरात्र उपवासकरै, इसका नाम उद्दालक व्रत है, या किसीके अश्वमेधयज्ञमें अवभृथस्नान करै, अथवा व्रात्यस्तोम यज्ञ करै ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतानि स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजांतेवासिभ्यः क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं गामजाविकं सन्ततं हिरण्यं धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्वलाया-मयोग्यायां नकुलं कुलंस्याद्वत्संतीं विततां नातिक्रामेन्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न निष्ठीवेत् परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणामुखः संध्यामासीतोत्तरामुदाहरंति ।

इसके उपरान्त स्नातक व्रत कहते हैं, स्नातक ब्राह्मण किसीके निकट अन्नकी कभी याचना न करै; अथवा विना दिये राजा वा शिष्योंसे कुछ मांगले; क्षुधासे युक्त हो तौ कुछेक मांगले किया वा न किया अन्न वा खेत, गौ, बकरी, भेड, सुवर्ण, धान, और अन्न इनको मांगले यह उपदेश है कि, स्नातक मनुष्य क्षुधासे दुःखी न रहै, नदीमें सहसा प्रवेश न करै और रजस्वला तथा अयोग्य स्त्रीकी संगति न करै फैली हुई बछडेकी रस्सीको न उलांघै और उदय होते तथा मध्याह्नमें तपते हुए और अस्त होते हुए सूर्यका दर्शन न करै, जलमें

---

१ ब्राह्मण तो इसप्रकार कहै कि "भवति भिक्षां देहि" और क्षत्रिय भवत् शब्दको मध्यमें देकर "भिक्षां भवति देहि" यह कहकर भिक्षा मांगै, और वैश्य भवत्शब्दको अन्तमें कहकर "भिक्षां देहि भवति" इसभांति कहै.

विष्ठा मूत्रका त्याग न करै और उक्त समयमें मल, मूत्र तथा थूकका त्याग करै और विष्ठा मूत्र त्यागनेके समयमें मस्तकपर वस्त्र बांधले, यज्ञके अयोग्य तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर सन्ध्याके समय उत्तरको और रात्रिके समय दक्षिणको मुख करकै उसके ऊपर मल, मूत्र त्याग करै ।

स्नातकानां तु नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ॥ यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमंडलुः ॥ अप्सु पाणौ च काष्ठे च कथितं पावकं शुचिम् ॥ तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमंडलुम् ॥ पर्यग्निकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापतिः ॥ कृत्वा चावश्यकार्य्याणि आचामेच्छौचवित्तत इति ।

स्नातकोंके धर्मका यह भी वचन कहते हैं कि स्नातकोंका नित्य अन्तर्वास और उत्तर है, दो यज्ञोपवीत छाठी और कमण्डलु होता है, जल हाथ और काष्ठमें कमण्डलको कहा है, इस कारण जल और हाथोंसे कमण्डलको मांजै, यह मनुने पर्यग्निकरण कहा है, फिर आवश्यक कार्योंको कर शौचका जाननेवाला आचमन करै ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत । तूष्णीं सांगुष्ठं कृशग्रासं ग्रसेत नच मुखशब्दं कुर्यादृतुकालाभिगामी स्यात् । पर्व्ववर्जं स्वदारेषु वा तीर्थमुपेयात् ॥

पूर्वकी ओरको मुख करके भोजन करे और मौन धारण कर अंगूठे सहित उंगलियोंसे छोटा ग्रास खाय; और मुखका शब्द न करै ऋतुकालमें स्त्रीका संग करै और पर्वके समयमें स्त्रीका निषेध है; और अपनी स्त्रीके साथही संसर्ग करे, तीर्थकी यात्रा करै,

अथाप्युदाहरंति ॥ यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत मैथुनम् ॥ भवंति पितरस्तस्य तन्मासंरेतसो भुजः ॥ या स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसंश्रिता ॥ आप च पावकोऽपि ज्ञायते ॥ अद्य श्वो वा विजनिष्यमाणाः पतिभिः सहशयंत इति स्त्रीणामिंद्रदत्तो वरः ।

और इसमें यहभी वचन है कि, जो मनुष्य अपनी स्त्रीके मुखमें मैथुन करताहै, उसके पितर उस एकमहीनेभर तक वीर्यको भक्षण करतेहैं; और जो व्यभिचारको छोडकर रतिके धर्ममें स्थित रहताहै वही पवित्र जानाजाताहै "जो स्त्रियें आजकलमें सन्तान उत्पन्न करनेवाली (आसन्नप्रसूति) हैं वहभी स्वामीके साथ सहवास करसकती हैं" ऐसा जानाजाताहै कि, इन्द्रने स्त्रियोंको यह बरदान दियाहै,

न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्नाग्निं मुखेनोपधमेन्नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयान्नाग्निब्राह्मणयोरनुज्ञाप्य वा भार्य्यया सह नाश्नीयादवीर्य्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥ नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेन्मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ पालाशमासनं पादुके दंतधावनमिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेदधो न भुंजीत । वैणवं दंडं धारयेद्रुक्मकुंडले च । न बहिर्मालां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः सभासमवायांश्च वर्जयेत् ॥

वृक्षपर न चढै, कुएपर न बैठे मुखसे अग्निको प्रज्वलित न करै, ब्राह्मणके और अग्निके बीचमें होकर न निकले अथवा आज्ञा लेकर निकले. स्त्रीके साथ भोजन न करै, कारण कि, ऐसा करनेसे सन्तान बलहीन होतीहै यह वाजसनेयी संहिता ग्रंथमें कहाहै इन्द्र धनुषको नामसे न कहै, परन्तु मणिधनुको नाम लेकर पुकारै, ढाकका आसन, खडाऊं, दतौन, इनका निषेध है, गोदीमें रखकर अन्नको न खाय, बांसका दंड और सुवर्णके कुंडल धारण करै, और सुवर्णकी मालाके अतिरिक्त प्रत्यक्ष मालाको न पहरे; और सभाके समूहका त्याग करै.

अथाप्युदाहरन्ति । अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव दर्शनम् ॥ अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ इति । नानाहूतो यज्ञं गच्छेत् यदि व्रजेदधि वृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्यते । नावं च सांशयिकीं बाहुभ्यां न नदीं तरेदुत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्ते ब्राह्मणः स्वनियमाननुत्तिष्ठेदनुतिष्ठेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इसमें यहभी वचन कहाहै कि, वेदोंका प्रमाण न मानना, और सम्पूर्ण ऋषियोंके शास्त्रोंमें अव्यवस्था समझनी यही आत्माका नष्ट करनाहै, यज्ञमें विनाबुलाये कदापि न जाय अथवा केवल देखनेको चाहिये तो जाय ।

वृक्षोंके ऊपर तथा सन्मुखसे सूर्यके मार्गका आश्रय न करै, जिस नावमें डूबनेका सन्देह हो उसमें कदापि न बैठे और नदीमें न पैरै, पिछली रात्रिके पहरके समय उठकर और पढकर फिर शयन न करै, ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर अपने नियमोंको करै ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकर्म्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां वाग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्यश्छन्दोभ्यश्चेति । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य दधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत । अर्धपंचममासानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयात । कामं तु वेदांगान ।

इसके उपरान्त स्वाध्याय और उपाकर्मको वर्णन करते हैं, श्रावणकी पूर्णिमा अथवा भादोंकी पूर्णिमामें उपाकर्म करै, फिर देवता और वेदके उद्देश्यसे अग्निके समीप रखकर ब्राह्मण हवन करै, ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर दधिभोजनके उपरान्त साढे पांच वा साढे छः महीनेतक जप करै, इसके उपरान्त शुक्लपक्षमें पढै और वेदके अंगोंको इच्छानुसार पढै ।

तस्यानध्यायाः संध्यास्तमिते स्युस्तत्र शवे दिवाकीर्त्ये नगरेषु कामं गोमयपर्युषिते परिलिखिते वा श्मशानांते शयानस्य श्राद्धिकस्य ।

वेदाध्ययनके अनध्याय हैं कि संध्याके समयमें वेदके पढनेका निषेध है, ग्रामके बीचमें यदि चाण्डाल वा प्रेत आजाय तौ वेदको न पढे, धर्मके बढानेकी इच्छासे नगरमें भी वेदका पढना निषिद्ध है; जिस प्रदेशके लिपे हुए गोबर बासी होगये हैं उस भूमिपर बैठके न पढै और श्मशानके समीप और शयन करते करते और श्राद्ध करके भी वेद न पढै ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ फलान्यापस्तिलान्भक्ष्यमथान्यच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्या ब्राह्मणाः स्मृताः इति ।

इस विषयमें पंडितोंने मनुका श्लोक कहा है:–फल, जल, तिल, वा अन्य श्राद्धमें दिया हुआ भक्ष्य जो कुछ भी लेता है, तब भी पढनेका निषेध है, कारण कि ब्राह्मणोंके हाथोंको मुख कहा है ।

धावतः पूतिगंधिप्रसृतेरिरतवृक्षमारूढस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चार्धघ्राणे बाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थस्योपाश्रितस्य गुरुसमीपे मिथुनव्यपेतायां वाससा मिथुनव्यपेतेनानिर्मुक्तेन ग्रामांते छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चरितस्य यजुषां च सामशब्दे वा जीर्णे निर्घातभूमौ च न चंद्रसूर्य्योपरागेषु दिङ्नादपर्वतनादकंपप्रपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वकालिकमुल्काविद्युत्सज्योतिषमपर्त्वाकालिकं वा ।

दौडनेके समयमें वेद न पढै, वृक्षपर चढकर नौकापर चढकर और सेनाके बीचमें स्थितिके समय, भोजनके अन्तमें वेदाध्ययन न करै, बाणका शब्द होनेके समय भी अनध्याय है, चतुर्दशी अमावस्या अष्टमी और अष्टकाओंमें वेदको न पढै, पैरोंको फैलाकर वेद न पढै जिस समय गुरुके निकट नम्र और विनीत भावसे बैठा हो, उस समय भी न पढै, मैथुन करके छोडी हुई शय्याके ऊपर और बिना वस्त्रोंके त्यागे तथा ग्रामके समीप, वा वमन कर विष्ठा मूत्र त्यागनेके उपरान्त वेद पढनेका निषेध है, सामवेदके गानके समयमें यजुर्वेदको न पढै, जिस पृथ्वीपर बिजली गिरी हो उस पृथ्वीके ऊपर तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें, दिशाओंके शब्दमें, पर्वतके शब्दमें, भूकम्पमें, ओले, रुधिर, धूल, इनकी वर्षाके समयमें और अकालमें अनध्याय होता है और जिस समय विना अवसरके तारे और बिजली टूटकर गिरै, तब इनमें अकालिका अनध्याय होता है ।

आचार्य्ये च प्रेते त्रिरात्रमाचार्य्यपुत्रशिष्यभार्य्यास्वहोरात्रम् ऋत्विग्योनिसंबंधेषु च गुरोः पादोपसंग्रहणं कार्य्यं ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेद्ये चैव पादग्राह्यास्तेषां भार्य्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिवन्दितुमहमयं भोरिति ब्रूयाद्यश्च न विद्यात्प्रत्यभिवादे नाभिवदेत् ।

आचार्यके मरनेके उपरान्त तीन रात्रि आचार्यका पुत्र, शिष्य वा स्त्री इनके और ऋत्विज योनिसम्बन्धके मरनेपर अहोरात्रका अनध्याय होता है; गुरुके चरणोंको पकडै और ऋत्विज श्वशुर वा चाचा, मामा, तथा जो अवस्थामें बडे हों, जिनका पैर पकडने योग्य हो उनकी स्त्री तथा गुरुकी माता और पिता इनको नमस्कार करै, जो नमस्कार करना जानता हो वह " अयमहं भोः " (भो गुरु यह मैं) ऐसा कहै, और जो इस भांति कहना न जाने उसे आशीर्वाद न दे ।

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥ अथाप्युदाहरन्ति । उपाध्यायाद्दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं पिता ॥ पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ भार्य्याः पुत्राश्च शिष्याश्च संस्पृष्टाः पापकर्मभिः ॥ परिभाष्य परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा भवेत् ॥ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात् पतितो नान्यत्र पतितो भवतीत्याहुरन्यत्र स्त्रियाः ॥ सा हि परगमिता तद्भिन्नामक्षुण्णामुपेयात् ॥

और यदि पिता पतित हो तौ उसको त्याग दे; और माता पुत्रके लिये पतित नहीं होती इसमें यह भी वचन कहते हैं कि उपाध्याय पढानेवालेसे दशगुना आचार्य है और आचार्यसे दशगुना पिता है और पितासे सहस्रगुनी माता गौरवमें अधिक है, यदि स्त्री, पुत्र, शिष्य इनको पापकी संगति होजाय तौ निन्दनीय वचन कहकर उनको त्याग दे और जो इनको नहीं त्यागता वह पतित होता है, ऋत्विक् यदि यज्ञ न करावै और आचार्य न पढावै तो दोनोंको त्याग दे, और जो इनका त्याग नहीं करता वह पतित होता है, और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पतित नहीं होता अर्थात् स्त्रीके अतिरिक्त स्त्री पतित होती है जो स्त्री पर पुरुषके साथ गमन करती है, तौ दूसरी नई स्त्रीके साथ विवाह करले ।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ॥ गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः शास्त्रं वस्त्रं तथान्नानि प्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य विद्याविजयजः संबन्धः कर्म्म च मान्यम् पूर्वः पूर्वो गरीयान् । स्थविरबालातुरभारिकचक्रवतां पंथाः समागमे परस्मै देयो राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः । सर्वैरेव वा उच्चतमाय तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सूनृतानसूयाः सप्त गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन कदाचनेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गुरुका गुरु यदि सन्मुख हो तौ उसके साथभी गुरुके समान आचरण करै;और गुरुके पुत्रके साथ भी गुरुके समान वर्ताव करै, यह वेदमें कहा है, वस्त्र और अन्न यह ब्राह्मणके ग्रहण करनेसे, विद्या, विनय सबम्न्ध, कर्म, यह चारों माननेके योग्य हैं. इन सबमें पहलाही श्रेष्ठ है, वृद्ध, बालक, रोगी, भारी और चक्रचालक गाडीवान् मनुष्योंको मार्ग छोड दे राजा और स्नातकके उपस्थित होनेपर राजा स्नातकको मार्ग छोडदे और सबके एकत्र समागममें ऊंचे मनुष्यको पहले मार्ग छोडदेना उचित है, तृण, आसन, भूमि, अग्नि, जल, सूनृतवचन और अनसूया साधुओंके घरमें कदापि इनका अभाव न हो ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ चिकित्सकमृगयुपुंश्चलीदंडिकस्तेनाभिशस्तषंडपतितानामभोज्यं कदर्य्येक्षितबद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौंडिकसूचकवार्धुषिकचर्मावकृत्तानां शूद्रस्य चायज्ञस्योपयज्ञे यश्चोपपतिं मन्यते

यश्च गृहीततद्धेतुर्यश्च वधार्हं नोपहन्यात । कौ बंधमोक्षौ इति चाभिक्रुश्येत् गणान्नं गणिकान्नम् ॥

इसके उपरान्त जो वस्तु भक्षणके योग्य है और जो अयोग्य है उसका वर्णन करते हैं, वैद्य, व्याध, व्यभिचारिणी स्त्री, जो पशुओंको दंडसे मारै, और चोर, शापग्रस्त, नपुंसक, पतित, कृपण, कैदी, आतुर, मदिरा बेचनेवाला, बढई, धोबी, कलाल, चुगल, और जो व्याज लेता हो इनके यहांका अन्न भोजनकरना निषिद्ध है चर्मकारके यहांभी भोजन न करै, यज्ञके अनधिकारीके यहां उपयज्ञमें अन्न भोजन न करै. जो मनुष्य यज्ञमें दूसरेको स्वामी माने, जो मनुष्य पकडनेमें कारण हो तथा जो वध करने योग्यका वध न करै, और जो मनुष्य यह कहै कि बंध मोक्ष क्या है; गणका अन्न और वैश्याका अन्न यहभी भोजन करनेके योग्य नहीं है;

अथाप्युदाहरन्ति । नाश्नंति श्वपतेर्देवा नाश्नंति वृषलीपतेः ॥ भार्य्याजितस्य-नाश्नंति यस्यचोपपतिर्गृहे इति एधोदकसवत्सकुशलाभ्युद्यतपानावसथसफरिप्रि-यंगुस्तरजमधुमांसानि नैतेषां प्रतिगृह्णीयात् ।

इसमें यहभी वचन है, कि कुत्तोंके स्वामीके यहांका देवता अन्न भोजन नहीं करते और वृषलीपतिके यहांका अन्नभी भोजन नहीं करते, जो स्त्रीके वशमें हो उस मनुष्यके, और जिस स्त्रीके घरमें उपपति रहताहो उसके यहांका अन्नभी देवता भोजन नहीं करते हैं; इनके यहांसे काष्ठ, जल, फल, पुष्प, और विनयसे लायाहुआ दूधआदि पानी घर मत्स्य, कांगनी, अश्व, मधु, और मांस इनका ग्रहण करना उचित नहीं;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ गुर्वर्थदारमुज्जिहीषन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रति-गृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं तत इति ।

यह कहा है, कि "गुरुके निमित्त दक्षिणाका द्रव्य अपने विवाहके निमित्त तथा" कुटम्ब-पालन और देवता और अतिथियोंका पूजन तथा श्रेष्ठ कार्य करनेके निमित्त सबके निकटसे प्रतिग्रह लेले; परन्तु उस प्रतिग्रह लियेहुए द्रव्यसे स्वयं तृप्त न हो,

न मृगयोरिषुचारिणः परिवर्ज्यमन्नम् । विज्ञायते ह्यगस्त्यो वर्षसाहस्रिके सत्रे मृगयां चचार तस्यासंस्तु रसमयाः पुरोडाशा मृगपक्षिणां प्रशस्ता-नामपि ह्यन्नम् ॥

जो बाणसे पशुओंकी हिंसा करता है उसव्याधका अन्न त्यागने योग्य नहीं है यह शास्त्रसे विहित है, कारण कि अगस्त्य ऋषिने सहस्र वर्षके यज्ञमें मृगादिपक्षियोंकी मृगया की थी, उससे उनका प्रशस्त मृग और पक्षियोंका सुरसपूर्ण पुरोडाश और अन्न हुआथा,

प्राजापत्याञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥ उद्यतामाहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ॥ भोज्यं प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकारिणः ॥ श्रद्दधानैर्न भोक्तव्यं चौरस्यापि विशेषतः ॥ नत्वेव बहुधा तस्य यावानपहृता भवेत् ॥ न तस्य पितरोऽश्नंति दशवर्षाणि पंच च ॥ नच हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ चिकित्स-

कस्य मृगयाः शिल्पहस्तस्य पाशिनः ॥ षंढस्य कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते इति ॥

पंडितोंने प्रजापतिके कितने एक श्लोक कहेहैं; जो स्वयं दान लेनेके निमित्त आयाहुआ अयाचित, जिसकी पहले सूचना न हो, और दुष्कर्म करने वालेकी भी भिक्षा प्रजापतिने भोज्य मानीहै; तव फिर श्रद्धावाला मनुष्य चोरके अन्नको कदापि भोजन न करै, और जो भिक्षा चोरीकी न हो, उसको एक वारके अतिरिक्त न खाय, और जो पूर्वोक्त चोरीकी भिक्षाका अपमान करता है उसके यहां पंद्रह वर्षतक पितर भोजन नहीं करते, और अग्नि साकल्यको ग्रहण नहीं करती चिकित्सक, शास्त्रधारी, फाँसी देनेवाला, पशुओंको मारनेवाला, क्लीब और व्यभिचारिणी, इनकी स्वयं दीहुई भिक्षा ग्रहण करनेके योग्य नहीं है,

उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च यदशनं केशकीटोपहतं च कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनावकीर्य्य वाचा च प्रशस्तमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

गुरुके अतिरिक्त दूसरेकी उच्छिष्ट अपनी उच्छिष्ट और उच्छिष्टसे दूषित अन्नको भोजन न करै, केश वा कीड़ आदिसे दूषित हुआ अन्नभी भोजन करनेके योग्य नहीं है, और बाल तथा कीड़ आदिको निकालकर जल छिड़कनेसे वह खानेके योग्य होजाताहै, इसके उपरान्त वचनसे श्रेष्ठ बतायाहुआ अन्न भोजन करनेके योग्य है,

प्राज्यापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति । त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ॥ काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥ तस्मात्तदन्नमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ॥ द्रवाणां प्लावनेनैव घनानां क्षरणेन तु ॥ पाकेन मुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्भवेत् ॥ अन्नं पर्युषितं भावदुष्टं हल्लेखनं पुनः ॥ सिद्धमाममृजीषपक्वं च । कामं तु दद्याद्घृतेन चाभिघारितमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

इस विषयमें पंडितोंने प्रजापतिके श्लोक कहे हैं कि, शौचाशौचके विषयमें जिसकी शुद्धि न देखीहो जो जलसे छिड़का हो, जिसे वाणीसे श्रेष्ठ कहाहो, देवद्रोणी, विवाह, यज्ञक प्रस्तुत इनमें काक तथा कुत्तोंने जिस अन्नका स्पर्श कियाहो उसका त्यागना उचित नहीं, इसकारण उतनेही अन्नको निकालकर शेप अन्न संस्कारके योग्य है, उस अन्नमें द्रव्योंकी शुद्धि छिड़कनेसे होजातीहै और जिसमें मुखका स्पर्श हुआहो उसकी शुद्धि पकानेसे होजातीहै, वासी अन्न, भावदुष्ट अन्न हृदयको जो अच्छा न लगे, पकाहुआ अन्न, कच्चा अन्न, जो भूननेके पात्रमें पकाहो उस अन्नको घीमें भिगोकर इच्छानुसार देदे, और स्वयंभी खाले,

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यंजनानि च ॥ दातारं नोपतिष्ठंति भोक्ता भुंक्ते च किल्बिषमिति ॥ १ ॥

इस विषयमें प्रजापतिके श्लोक कहतेहैं कि हाथसे दियाहुआ घृतआदि लवण शाक उसका फल दाताको नहीं मिलता, और खानेवाला पापका भागी होताहै,

लशुनपलांडुक्रमुकगृंजनश्लेष्मांतवृक्षनिर्यासलोहिताव्रश्चनाश्वश्वकाकावलीढं शूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्र इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलविकर्षेष्वग्राम्यपशुविषयः संधिनीक्षीरमवत्सागोमहिष्यजातरोमानिर्दशाहानामनामंत्र्यं नाव्युदकमपूपधानाकरंभसक्तुचरकतैलपायसशाकानिलशुक्तानि वर्जयेदन्यांश्चक्षीरयवपिष्टवीरान् ।

और लस्सन, सलगम, क्रमुक, गाजर, बहेड़ा, वृक्षका गोंद, लालगोंद, जो वृक्षके काटनेसे उत्पन्न हो, घोडा, कुत्ता, काक, इनका चाटा हुआ, शूद्रका उच्छिष्ट जो मनुष्य इसका भोजन करले तो कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै और सहत, मांस, फल इनके अतिरिक्त अन्तमें प्रायश्चित्त भी करै, वनके पशुओंसे भिन्न, संधिनी और जिसके बछडा न हो इनका दूध गौ, भैंस और जिनके रुयें न फूटे हों, इनका दूध और व्यानेसे दस दिनके भीतरका दूध, यह खाने योग्य नहीं है, नावका जल, मालपुवे, धान, करम्भ, सत्तू, चरक, तेल, पायस, शाक, इनको त्यागदे; और अन्यभी क्षीर जौकी चूनकी मदिरा हैं इनको भी त्यागदे;

श्वाविच्छल्लकशशकच्छपगोधाः पंचनखा नाभक्ष्या अनुष्ट्राः पशूनामन्यतोदन्तश्च मत्स्यानां वा वेहगवयशिशुमारनक्रकुलीरा विकृतरूपाः सर्पशीर्षाश्च गौरगवयशलभाश्चानुद्दिष्टास्तथा ॥ धेन्वनडुाहौ मेध्यौ वाजसनेयने । खड्गे तु विवदंत्यग्राम्यशूकरे च शकुनानां च विशुविविष्किरजालपादाः कलविंकप्लवहंसचक्रवाकभासमद्गुटिट्टिभाटबांधनक्तंचरा दार्वाघाटाश्चटकवैलातकहारितखंजरीटग्राम्यकुक्कुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गैंडा, सेह, शशा, कछवा, गोह, यह पांचनखवाले पशु अभक्ष्य नहीं हैं; और ऊंटके अतिरिक्त अन्य पशुओंमें जो एकतरफ दांतवाले हैं वह भी अभक्ष्य नहीं हैं, और मत्स्योंमें वह नीलगाय, शिशमार, नाका, कुलीर, जिनका आकार बुरा न हो, जिनका सर्पके समान शिर हो, गोरे पक्षी, टीडी और जिनको नहीं कहा है वह अभक्ष्य नहीं हैं वाजसनेयमतमें गौ बैलभी पवित्र हैं, गैंडा और गामका सूकर इनमें विवाद ऋषि गण करते हैं कि कोई तो भक्ष्य है और कोई अभक्ष्य है, और पक्षियोंमें विशुवि विष्किर, जालपाद, कलविंक, प्लव, मुरगा, हंस, चकवा, भास, मद्गु, टिट्टिभ, बांध, रात्रिको उडनेवाले, दार्वाघाट जो काष्ठको चोंचसे खोदै, चिडियां, बैला, हारीत, खंजरीट, गांवका मुरगा, तोता, मैना, कोकिला मांसका भक्षक, ग्राममें जो जो विचरण करैं यह अभक्ष्य हैं ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः । नत्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।

मनुष्योंका उपादान कारण शुक्र है, रुधिर निमित्तसे पिता माता कारण हैं, इस कारण उसके देनेमें तथा विक्रयकरनेमें और त्यागनकरनेमें मातापिता समर्थ हैं, एक पुत्रके होनेपर उसे दान न करै, और उससे प्रतिग्रहभी न करै, कारण कि यह पुत्र पूर्वपुरुषोंकी धाराका रक्षा करनेवाला है, स्वामीकी विना आज्ञाके स्त्रियें दान वा प्रतिग्रह न करैं,

पुत्रं प्रतिगृहीष्यन् बंधूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतीर्हुत्वा दूरेबांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने दूरेबांधवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहु त्रायत इति ।

जो पुत्रको लेनेकी इच्छा करै तौ वह अपने बंधुबांधवोंको बुलाकर राजाके सन्मुख निवेदनकर घरके मध्यमें व्याहृतियोंसे हवन करके जिसके बंधुबांधव दूर हों, और जो संदेह आजाय तथा बंधु दूर हों उसे शूद्रके समान टिकावै, और शास्त्रसे यह जानागया है कि एक से बहुत होते हैं,

तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभागभागी स्यात् ।

दत्तकपुत्रके लेनेके उपरान्त जो अपने औरससे पुत्र उत्पन्न होजाय, तौ यह दत्तकपुत्र प्रतिगृहीता पिताके धनके चार भागका एक भाग पावै,

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लाविनः सव्येन पादेन प्रवृताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णं पात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्य्य केशान् ज्ञातयोऽन्वारभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येरन्नत ऊर्द्ध्वं तेन सह धर्ममीयुस्तद्धर्माणस्तद्धर्मापन्नाः पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ।

यदि दत्तक पुत्र आभ्युदयिककर्ममें युक्त न हो अथवा वेदको भ्रष्ट करदे तौ वामपादसे कुशाओंके अग्रभागको रखकर अथवा रक्त कुशाओंको रखकर इस दत्तक निमित्त पूर्णपात्र दे; और इसके घट देनेवालेको मुंडन कराकर जातिके मनुष्य इस कर्मका प्रारंभ करैं,और अपसव्य कराकर घरोंमें इच्छानुसार विचरण करने दें, इसके पीछे उसके धर्मको प्राप्त होते हैं उसके धर्म वालेभी उस के धर्मको प्राप्त होते हैं; और पतित यदि व्रतको करले तौ उसकाभी उद्धार होजाता है,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडंति च हसंति च ॥ यश्चोत्पातयतां गच्छेच्छौचमित्याचार्य्यमातृपितृहंतारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा । एषा प्रत्यापत्तिः । पूर्णाब्दात् प्रवृत्ताद्वा कांचनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वापोहिष्ठाभिरेव षड्भिर्ऋग्भिः सर्वत्र वाभिरिक्तस्य प्रत्युद्धारपुत्रजन्मना व्याख्यातः ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इसमें यह भी वचन है कि जो अग्निका उद्धार करताहै, उसके साथ गमन करनेवाला, क्रीड़ा करनेवाला, हँसनेवाला और पतितके साथ गमन करनेवाला, उनके मातापिताके मारनेवालोंकी शुद्धि मातापिताकी प्रसन्नता वा भयसे होतीहै वही प्रायश्चित्त है जो पूर्ण घटके दानमें प्रवृत्त है, सुवर्ण वा सुवर्णसे पृथ्वीका गट्टा भरकर “ आपो हि ष्ठा ” इन छैः ऋचाओंसे व सर्वत्र इन ऋचाओंसे मार्जन करै यह अभिरिक्त पतितका उद्धार पुत्रजन्मके समानहै।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ व्यवहाराः ॥ राजमंत्री सदःकार्य्याणि कुर्य्यात् । द्वयोर्विवदमानयोरत्र पक्षांतरं गच्छेद्यथासनमपराधो ह्यंते नापराधः समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयोर्विधानतः संपन्नतामाचरेद्राजा बालानामप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तद्वत् । लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् ॥ धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात् ॥ इति । मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन ऋणाग्रहेष्वर्थांतरेषु त्रिपादमात्रं गृहक्षेत्रविरोधे सामंतप्रत्ययः सामंतविरोधेऽपि लेख्यप्रत्ययः प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ।

इसके उपरान्त व्यवहारको कहते हैं. राजमंत्री सभाका कार्य करै । वादी प्रतिवादी दोनोंके बीचमें यदि मन्त्री एकका पक्षपात करै तौ वह अपराध राजाको होगा. सब प्राणियोंको बराबर दृष्टिसे देखै, यदि राजासे किसी प्रकारका अपराध होजाय तौ ब्राह्मण क्षत्रियकी विधिके अनुसार उसको शुद्ध करले अप्राप्त व्यवहारमें बालकोंका विचार राजा करै, प्राप्त व्यवहार होनेपर पहलेकी समान नियम जानै । लेख, साक्षी और भोग यह तीन प्रकारका प्रमाण है, इसके दिखातेही धनी धनको पाते हैं मार्ग और खेतके विवादमें त्याग वा बदलेसे निर्णय करले, ऋणके आग्रह वा अर्थान्तरमें तिहाई भाग दिलावै, घर वा खेतके विवादमें लम्बरदारोंकी बातका विश्वास करै, सामन्तियोंके वचनके विरोधमें लेखका विश्वास करना होगा । लेखके विरोधमें उस ग्रामके निवासी तथा वृद्धजनोंके वचनका विश्वास करै,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ य एकं क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रतिग्रहम् ॥ यज्ञादुपगमा वेनिस्तथा धूमशिखा ह्यमी ॥ इति । तत्र भुक्ते दशवर्षमेवोदाहरन्ति ।

इसमें यह भी वचन है कि एकक्रीत, आधेय, अन्वाधेय, प्रतिग्रह, यज्ञमें, वा बाणोंसे युद्धमें जो मिलजाय और धर्मशिखा यह निर्णयके कारण हैं तिनमें दस वर्षका भोग कहा है ।

आधिः सीमाधिकं चैव निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियद्रव्यं न राजाऽऽदातुमर्हति ॥ इति । तच्च संभोगेन ग्रहीतव्यम् । गृहिणां द्रव्याणि राजगामीनि भवंति ।

धरोहर, सीमा अधिक, निक्षेप, सौंपना, उपनिधि, स्त्री, राजाका और वेदपाठीका द्रव्य इनको राजा न ले और उसका संभोग उस धनसे कुछ उत्पन्न करके लेले, कारण कि गृहस्थियोंके द्रव्य राजाके यहां जानेवाले होते हैं ।

तथा राजा मंत्रिभिः सह नागरैश्च कार्य्याणि कुर्य्यादसौ वा राजा श्रेयान् वसुपरिवारः स्यादगृध्रं परिवारं वा राजा श्रेयान् गृध्रपरिवारः स्यान्नगृध्रोगृध्रपरिवारः स्यात् । परिवाराद्दोषाः प्रादुर्भवंति स्तेयहारविनाशनं तस्मात् पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥

और राजा मन्त्री, तथा नगर निवासी इनसे मिलकर कार्यको करै अथवा श्रेष्ठ राजाही इस धनको ग्रहण करै, और धनकी इच्छा राजाका परिवार न करै, तथा कुटुम्ब और राजा दोनोंही धनकी इच्छा न करैं, परिवारसे दोष उत्पन्न होते हैं कि चोरी हरना और विनाश होता है इस कारण पहलेही परिवारको धन मिलै ।

अथ साक्षिणः॥ श्रोत्रियो रूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः सर्वे एव वा । स्त्रीणां साक्षिणः स्त्रियः कुर्यात् । द्विजानां सदृशा द्विजाः शूद्राणां संतः शूद्राश्च अंत्यानामंत्याः॥

इसके उपरान्त साक्षियोंका वर्णन करते हैं, वेदपाठी रूपवान्, शीलस्वभाव, पुण्यात्मा और सत्यवादी मनुष्यही साक्षी होनेके योग्य है, अथवा दस्युतादिके स्थानमें सभी साक्षी हो सकते हैं, स्त्रियोंके कार्यमें स्त्रियां साक्षी उचित हैं ब्राह्मणोंके कार्यमें अनुरूप ब्राह्मण, शूद्रोंके कार्यमें श्रेष्ठ शूद्र, और अन्त्यज जातिके कार्यमें अन्त्यज जातिका साक्षी होना उचित है।

अथाप्युदाहरंति ॥ प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत ॥ दंडशुल्कावशिष्टं च न पुत्रोदातुमर्हतीति ॥

इसमें यह भी वचन है कि पिताके प्रतिभाव्य अर्थात् दर्शन और प्रत्यय प्रतिभू तद्देय अर्थ है, वृथा दान, साक्षी, शूरवीरता, दण्ड, शुल्क कन्याका मोल इनमें जो ऋण लिया हो, उसे पुत्र नहीं दे सकता।

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लंबंते पितरस्तव ॥ तव वाक्यमुदीर्यंतमुत्पतंति पतंति च ॥ नग्नो मुंडः कपाली च भिक्षार्थं क्षुत्पिपासितः ॥ अंधः शत्रुकुले गच्छेद्यस्तु साक्ष्यनृतं वदेत् ॥ पंच कन्यानृते हंति दश हंति गवानृते ॥ शतमश्वानृते हंति सहस्रं पुरुषानृते ॥ व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्ते कुले स्त्रियः ॥ तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यंते वागवादिभिः ॥

हे साक्षी देनेवाले ! सत्य २ कह, तेरे पितर लटक रहेहैं, तेरा वचन निकलतेही ऊपरको उठ जायँगे नहीं तो बीचमें लटकते रहेंगे, जो साक्षी झूंठ कहैगा तौ नंगे शिर मुडाये, अन्धे और क्षुधा तृष्णासे कातर हो कपाल हाथमें लेकर शत्रुओंके कुलमें भिक्षा मांगते फिरैंगे कन्याके निमित्त जो असत्य कहता है उसके पांच पुरुष नरकको जाते हैं, गौके निमित्त मिथ्या कहनेपर दश पुरुष नरकको जाते हैं, अश्वके निमित्त असत्य बोलनेपर एकसौ पुरुष नरकको जाते हैं और पुरुषके निमित्त मिथ्या कहनेपर सहस्र पुरुष नरकको जाते हैं, व्यवहारमें, मरणमें, वैवाहिक विधिमें, प्रायश्चित्तमें और (?) स्त्रीके कुलके विषयमें (?) मिथ्या साक्षी देनेवालोंके पूर्वके सम्बन्ध (?) छूटजाते हैं।

उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ॥ विप्रस्य चार्थे अनृतं वदेयुः पंचानृतान्याहुरपातकानि ॥

स्वजनस्यार्थे यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैव वदंति कार्य्यम् ॥ वेशब्दवादं स्वकुलानुपूर्वान्स्वर्गस्थितानपि पातयंत्यपि ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विवाहके समय, रतिकार्यमें प्राणनाशकी सम्भावना, सर्वस्व चौर्य्य और ब्राह्मणार्थ, इन पांच विषयोंमें असत्य कहनेसे पातक नहीं होता, अपने जनके लिये और धनके लोभसे किसीके पक्षमें होकर जो झूंठ बोलते हैं वह स्वर्गमें स्थित हुए अपने पुरुषोंको नरकमें गिराते हैं।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेऽ-ज्जीवतो मुखम् ॥ अनंताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते । प्रजाः संत्वपुत्रिण इत्यपि शापः ॥ प्रजाभिरग्नेस्त्वमृतत्वमश्युयामित्यपि निगमो भवति ॥ पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानंत्यमश्नुते ॥अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्न-स्याप्नोति विष्टपमिति ॥

पिता यदि जीवित अवस्थामें उत्पन्न हुए अपने पुत्रका मुख देखले तौ अपना पितृऋण उसके ऊपर सौंपता है और मोक्षको प्राप्त होता है पुत्रवालोंके लोक और स्वर्ग आदि अनन्त होते हैं और जिसके पुत्र न हो उसको लोककी प्राप्ति नहीं होती, यह शास्त्रमें विदित है, सन्तान पुत्रवान् न हो ऐसा शाप है और अग्निकी उपासनासे सन्तान होनेसे मोक्ष हो यह भी निगम है, पुत्रसे लोकोंको जीतता है और पोतेसे अनन्त लोक भोगता है और पुत्रके पोतेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है ।

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्र इति विवदंते तत्रोभयथाप्युदाहरन्ति ॥ यद्यन्यगोषु वृषभो वत्सान् जनयते सुतान् ॥ गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्यंदनमोक्षण-मिति । अप्रमत्ता रक्षंतु वैनं मा च क्षेत्रे परे बीजानि वासौ जनयितुः पुत्रो भवति संपरायो मोघं रेतोऽकुरुत तंतुमेतमिति ।

जिसकी स्त्री उसका पुत्र होता है, अथवा जिससे उत्पन्न हो उसका पुत्र होता है, इस विषयमें बहुतसे विवाद करते हैं इन दोनों विवादोंमें यह भी वचन कहते हैं कि जिस भांति अन्यकी गौमें जो बछडोंको उत्पन्न करता है, वह बछडे गौवालेकेही होते हैं, उसी भांति अन्य स्त्रीमें वीर्यका छोडना निष्फल है; अप्रमत्त हुए इस पुत्रकी रक्षा करनी उचित है और पराये क्षेत्रमें वीर्य डालना उचित नहीं, ऐसा जाननेवालोंका पुत्र होता है वीर्यको परलोकमें सफल करो कारण कि यह तन्तुरूप है ।

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवंत इति श्रुतिः ॥

एकसे उत्पन्नहुए बहुतसे मनुष्योंमें यदि एक पुत्रवाला हो तो वह सभी उससे पुत्रवाले हैं, यह वेदमें लिखा है,

बह्वीनां द्वादश ह्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते अभ्रातृका पुंसः पितॄनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥

और बहुत स्त्रियोंके बारह प्रकारके पुत्र होते हैं, यह पुराणोंमें देखाजाताहै, सत्कारकरके विवाही हुई अपनी स्त्रीमें जो अपने औरससे उत्पन्न हो वह प्रथम, वह न होय तो नियुक्त जिसके लिये गुरुआदिने आज्ञादी हो, अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्नहुआ पुत्र दूसरा, तीसरा पुत्रिका पुत्र, भाई जिसके न हो वह कन्या जो कन्या के पितासे पुरुषको मिलै उसका लडका कन्या-के पिताका होताहै,

श्लोकः ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥

यह श्लोकभी है कि विना भाईकी भूषणआदिसे शोभायमानकर कन्या मैं तुझे देताहूं इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा होगा।

पौनर्भवश्चतुर्थः पुनर्भूः कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्यैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुंबमाश्रयति सा पुनर्भूर्भवति। या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति।

पौनर्भव पुत्र चतुर्थ है; जो स्त्री वाग्दान करके स्वामीको त्यागकर दूसरेके साथ सहवास करती है और फिर स्वामीके कुटुम्बके साथ मिलती है वह पुनर्भू होतीहै, और जो नपुंसक पतित, तथा उन्मत्तको छोडकर या पतिके मरजानेके उपरान्त जो दूसरा पति करलेती है, वह पुनर्भू स्त्री होती है,

कानीनः पंचमो या पितुर्गृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेन्मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ अप्रत्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्दति तुल्यतः ॥ पुत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् इति ॥

पांचवां पुत्र कानीन होताहै जो कन्या संस्कारसे प्रथम अपनी इच्छासे पुत्रको उत्पन्न करले वह नानाका पुत्र होताहै, और ऐसा कहाहै कि विना विवाही कन्या सजातीय पुरुषसे यदि पुत्र उत्पन्न करले तो उस पुत्रसे नाना पुत्रवान् होताहै, और वह पुत्र नानाके धनका अधिकारी होताहै, और नानाको पिंडदान करै,

गूढे च गूढोत्पन्नः षष्ठः इत्येते। दायादा बांधवास्त्रातारो महतो भयात्॥इत्याहुः।

और छठा गुप्तस्थानमें जो उत्पन्न हो वह गूढोत्पन्न यह छैः भागके अधिकारी बांधव हैं, और बडे भयसे रक्षाकरनेवाले हैं, ऐसा कहा है,

अथादायादास्तत्र सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति। दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम्। क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेपेन व्याख्यातं हरिश्चंद्रो ह वै राजा सोऽजीगर्तस्य सौपवस्सैः पुत्रं विक्राय्य स्वयं क्रीतवान्। स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेपेन व्याख्यातं शुनःशेपो ह वै यूपे नियुक्तो देवतास्तुष्टाव तस्येह देवता पाशं विमुमुचुस्तमृत्विज ऊचुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति। तानाह न संपेदेते संपादयामासुरेष एव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति तस्येह विश्वामित्रो होतासीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥ अपविद्धः पंचमो यं माता पितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात्। शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुरित्येतेऽदायादा बांधवाः ॥

अब अदायाद पुत्र कहते हैं, तिनमें पहला सहोढ है, जिस कन्याका गर्भवतीकाही संस्कार होगया हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह सहोढ कहाताहै, दूसरा दत्तक, जिसे माता पिता देदें, तीसरा क्रीत, यह शुनःशेपसे व्याख्यान कहागया है; हरिश्चंद्र राजा हुआ

वह अजीगर्तके पुत्रको बिकवाकर आप मोल लेवाहुआ, और जो स्वयं आयाहो वह चौथा है, यहभी शुनःशेपसे व्याख्यान जानागया, शुनःशेप यूपमें नियुक्त होकर देवताओंकी स्तुति करताहुआ, देवताओंने उसके बंधनको छुटाया, तब उससे ऋत्विज बोले कि यह पुत्र मेराही हो, और उनसे कहा यह संमति करो कि जो ऋपि इसको पुत्र करनेकी इच्छा करे यह उसीका होजाय, उस यज्ञमें विश्वामित्र होता थे शुनःशेफ उसीका पुत्र हुआ, पांचवां अपविद्ध पुत्र जिसे मातापिताने त्याग दिया हो उसे ग्रहण करले, और शूद्रापुत्र छठा होता है. यह छैः पुत्र भागके अधिकारी नहीं हैं,

अथाप्युदाहरन्ति॥ यस्य पूर्वेषां वर्णानां न कश्चिद्दायादः स्यादेते तस्यापहरंति।

इस विषयमें यहभी वचन है कि जिसके पिछले वर्णोंमें कोई दायाद न हो उसके धनके यह छैःजने अधिकारी हैं,

अथ भ्रातॄणां दायविभागो द्व्यंशं ज्येष्ठो हरेद्गवाश्वस्य चानुसदशमजावयो गृहं च कनिष्ठस्य कार्ष्णं गां यवसं गृहोपकरणानि च। मध्यमस्य मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजेरन। यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः स्युस्त्र्यंशं ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेत्। द्व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः सममितरे विभजेरन्नन्येन चैषां स्वयमुत्पादितः स्यात् द्व्यंशमेव हरेदन्येषां त्वाश्रमान्तरगताः क्लीबोन्मत्तपतिताश्च भरणं क्लीबोन्मत्तानाम्।

अब भाइयोंका अंश विभाग कहा जाता है, बडा भाई घोडा और इनके समान बकरी और घर इनके दो भागोंका अधिकारी है और छोटे भाईको काष्ठ गौ और घासके लेनेका अधिकार है, बिचला भाई घरकी सम्पूर्ण सामग्रियोंके लेनेका अधिकार रखता है और माताके सन्मुखके धनको जो कि विवाहके समयका है बहुएं बांट लें, जो ब्राह्मणसे ब्राह्मणी क्षत्रिया और वैश्या स्त्रियोंमें जो पुत्र हों, तो ब्राह्मणीका पुत्र तीन भागका अधिकारी है और क्षत्रियाका पुत्र दो भागके लेनेका अधिकारी है, और अन्यान्य वैश्या तथा शूद्राका पुत्र यह समभागसे बांटलें, इनके बीचमें जिसने स्वयं धन पैदा किया है वह दो भाग लेनेका अधिकारी है, और जो अन्य आश्रममें रहता है तथा नपुंसक और पतित है, वह धनके भागका अधिकारी नहीं है, नपुंसक और उन्मत्त केवल भरण पोषणके निमित्त धनके अधिकारी होते हैं।

प्रेतपत्नी षण्मासं व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुंजाना शयीतोर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म गुरुयोनिसंबंधात्। सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्तपसे वोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुंज्यात्। ज्यायसीमपि षोडशवर्षा नचेदामयाविनी स्यात्। प्राजापत्ये मुहूर्ते पाणिग्रहणवदुपचारोऽन्यत्र संस्थाप्य वाक्पारुष्याद्दंडपारुष्याच्च ग्रासाच्छादनस्नानलेपनेषु प्राग्गामिनी स्यादनियुक्तायामुत्पन्न उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः स्याच्चेन्नियोगिनो दृष्टा लोभान्नास्ति नियोगः। प्रायश्चित्तं वाप्युपनियुंज्यादित्येके।

जिस स्त्रीका स्वामी मरगया है वह छेः महीनेतक व्रत करै, खारी वस्तु और लवणको न खाय, पृथ्वीपर शयन करै, फिर छेः महीनेके उपरान्त स्नान कर पतिका श्राद्ध करके विद्या वा कर्ममें बडे गुरु तथा अपने सम्बन्धियोंको इकट्ठा करके स्त्रीका पिता और भाई उस स्त्रीको नियोग करावै, अर्थात् दूसरे पुरुषसे गर्भ धारण करावै,*और जो उन्मत्त तथा वशमें न हो, वा रोगी हो, रिस्तेमें बडी तथा सोलह वर्षसे अधिक अवस्थाकी न हो उसको नियोग कराना उचित नहीं, और देवर आदि भी रोगी न हो, प्राजापत्य मुहूर्त्तमें नियोग करावै और पतिके समानही वह स्त्री उसकी सेवा करै, हँसना, कठोर वचन, कठोर दण्ड इनको न करै, जो पहला पति धन छोडगया है उससे भोजन वस्त्र और लेपन इनको करै, और जिस स्त्रीका नियोग न हुआ हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह उत्पन्न करनेवालेका होता है, यह शास्त्रके जाननेवालोंने कहा है; यदि नियोग करनेवाली स्त्रीको धनका लोभ हो तो नियोग नहीं है और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि वह प्रायश्चित्त करै ।

कुमार्य्यृतुमती त्रिवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विंदेत्तुल्यम् ॥ अथाप्युदाहरंति ॥ पितुः प्रदानात्तु यदा हि पूर्वं कन्या वयो यैः समतीत्य दीयते ॥ सा हंति दातारमपीक्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणे च ॥ प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता ॥ ऋतुमत्यां हि तिष्ठंत्यां दोषः पितरमृच्छति ॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशंति तुल्यैःसकामामभियाच्यमाना ॥ भ्रूणानि तावंति हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

कुमारी अवस्थामें रजस्वला होनेपर कुमारी कन्या तीन वर्षतक अपेक्षा करै, फिर स्वयं अपने तुल्य स्वामीकी खोज आप करले, इस विषयमें यह भी कहा है कि यदि पिताके दान करनेसे प्रथमही ऋतुकाल होजाय और पीछे वह कन्या विवाही जाय तो वह कन्या दृष्टि मात्रसेही दाताको हतती है, पिता ऋतुकालके भयसे शीघ्रही कन्याका विवाह कर देते हैं, जो कन्या कुमारी अवस्थामें ऋतुमती होती है तो उसका पिता पापका भागी है, अनुरूप वरकी इच्छा करनेवाली और जिस कन्याकी अन्य पुरुष अभिलाषा करते हो और उस अवस्थामें यदि कन्याका विवाह न कियाजाय, तो वह कन्या जितनीवार ऋतुमती होगी उतनीही वार पिता माताको भ्रूणहत्याका पाप लगता है यह धर्म कहागया,

अद्भिर्वाचा च दत्तानां म्रियेताथो वरो यदि ॥ न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥ यावच्चेदाहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता ॥ सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ॥

केवल जलके छींटे देने अथवा वचनमात्रसेही कन्यादान होजाताहै, वाग्दान होनेपर वरकी मृत्यु होजाय तो यह कुमारी कन्या पिताकीही होगी, कारण कि मंत्रोंसे विवाह तो हुआही

---

* यह विषय कलियुगातिरिक्त है कारण कि कलिमें पुरुष विशेषकर विषयासक्त होते हैं "अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत्" देवरादिसे नियोग करना कलियुगमें निषेध है ।

नहीं है; इतने हरीहुई कन्याका मंत्रोंसे संस्कार न हुआ हो तो वह कन्या विधिपूर्वक दूसरेको दे देनी, उचित है, कारण कि वह कन्याकेही समान है; जो पतिके मरजाने पर केवल मंत्रोंसे संस्कारकी हुई बालक कन्या अक्षतयोनि अर्थात् जिसे अन्यपुरुषका संबंध न हुआ हो वह पुनः विवाहके योग्य है,

प्रोषितपत्नी पंचवर्षा प्रत्सेधयकामा यथा प्रेतस्य एवं च वर्तितव्यं स्यात् । एवं पंच ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाताद्वे शूद्रा प्रजाता । अत ऊर्ध्वं समानोदकपिंडजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् । न खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ।

जिसका पति परदेशको गयाहो वह पांच वर्षतक बैठीरहै, इसके उपरान्त पतिके निकट चली जाय, यदि धर्म और धनके लोभसे परदेशकी इच्छा न करै तो मरनेकी स्त्रीके समान वर्ताव करै; इसीप्रकार ब्राणह्मकी संतान पांच वर्षतक, क्षत्रियाकी चारवर्षतक, वैश्याकी तीन बर्षतक और शूद्राकी दो वर्षतक प्रतीक्षा करै पीछे पर पतिपर चलीजाय, आगे समानोदक गोत्र, सपिंड इनमें पहलार श्रेष्ठ है; और कुलीनके विद्यमान होतेहुए पर पुरुषका संग न करै.

यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यात् सपिंडाः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरंस्तेषामलाभे आचार्यान्तेवासिनौ हरेयातां तयोरलाभे राजा हरेत् । न तु ब्राह्मणस्य राजा हरेद्ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् । न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् इति ॥ त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रयच्छेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जिस पुरुषके पहले दायके भागियोंमेंसे यदि कोईभी अंशका भागी न हो तो सपिंड वा पुत्रके स्थानी उसके धनको परस्परमें बांटलें, आर यदि यहभी न होय तो आचार्य और शिष्य उसके धनके अधिकारी हैं, और यदि यहभी न होय तो उस धनको राजा ले ले, और ब्राह्मणके धनको राजाके लेनेका अधिकार नहीं, कारण कि ब्राह्मणका धन घोर विष है, कारण कि यह कहाहै कि विष विष नहीं है, ब्राह्मणके धनको विष कहा है, विष तो केवल एक कोही मारताहै, और ब्राह्मणका धन पुत्र पौत्रोंको मारनेवाला है इस कारण राजाको उचित है कि ब्राह्मणके धनको राजा तीनों विद्याओंके जाननेवालोंको देदे ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चांडालो भवतीत्याहुः । राजन्यायां वैश्यायामन्त्यावसायी । वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः । राजन्यायां पुक्कसः । राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सुतोभवतीत्याहुः ॥

शूद्रसे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्नहो वह चांडाल होताहै, ऐसा कहागयाहै, क्षत्रिया और वैश्यामें जो शूद्रके औरससे उत्पन्नहुआ पुत्र अंत्यावसायी होताहै और ब्राह्मणीमें जो वैश्यसे पुत्र उत्पन्न

हुआहै वह रोमक कहाताहै; और क्षत्रिया स्त्रीमें जो वैश्यके औरससे पुत्र उत्पन्न हुआ है उसे पुल्कस पुत्र कहतेहैं; और क्षत्रियके औरससे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ है वह पुत्र सूत कहाता है;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः ॥ गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानियुरिति । एकांतरद्व्यंतरत्र्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरवच्छिन्ना अंबष्ठा निषादा भवंति । शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृताख्या एतच्छावं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

इसमें यहभी वचन कहेगये हैं कि इसभांति गुप्तभावसे उत्पन्न होकर नीचजातिभी समान गुणवाली होजातीहै इसकारण गुणहीन भ्रष्टाचार और हीनकर्मोंसे इनकी पहचान करै एक, दो, वा तीन वर्णके व्यवधानसे जो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंसे उत्पन्न हो वह क्रमानुसार अष्ट निषाद और भील होतेहैं, और शूद्रोंमें उत्पन्नहुआ पारशव होता है, वह जीता हुआही शव होताहै, यह शास्त्रमें विदित है, शव यह मृतकका नाम है और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि शूद्रही श्मशान है, इसकारण शूद्रके समीप कदापि न पढै;

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरंति ॥ श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पापचारिणः ॥ तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं कदाचन ॥ न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

यहांपर यम ऋषिके कहेहुए श्लोकोंको कहतेहैं, कि पापकरनेवाले शूद्रही प्रत्यक्ष श्मशानकी समानहैं, इसीकारणसे शूद्रके निकट पढनेका निषेधहै और शूद्रको ज्ञान, उच्छिष्ट, तथा साकल्य न दे, और धर्मोपदेश तथा व्रतका उपदेश भी शूद्रको देना उचित नहीं ॥

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥ सोऽसंवृतं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ॥ इति ।

जो मनुष्य शूद्रको धर्म और व्रतका उपदेश करताहै वह पुरुष शूद्रके साथ घोरनरकमें जाताहै;

व्रणद्वार कृमिर्यस्य संभवेत कदाचन ॥ प्राजापत्येन शुद्ध्येत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति ।

जिस पुरुषके घावमें कदाचित् कीडे होजायँ तो प्राजापत्य व्रतकर सुवर्ण गौ और वस्त्र इनकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होताहै;

नाग्निचित्परामुपेयात् कृष्णवर्णायाः सरमाया इव न धर्माय न धर्मायेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य अन्यस्त्रीका संग न करै, कारण कि कालेवर्ण (शूद्र) की स्त्री भोगके लियेही है धर्मके लिये नहीं है ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

धर्मे राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः । भयकारणं ह्यपालनं वै एतत् ॥ सूत्रमाहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्हस्थ्यनैयमिकेषु पुरोहिते दद्याद्विजातये ब्राह्मणः पुरोहितो राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसामर्थ्याच्च ॥

प्रजाकी पालना करनाही राजाका धर्म है, कारण कि, पालनाका न करना यही भयका कारण होजाताहै इस्से यही जीवनपर्यन्त करने योग्य है, इसी विषयमें विद्वानोंने सूत्र कहाहै, इस कारण गृहस्थके आवश्यकीय कार्योंमें पुरोहितको पालनका भार सौंपदे, कारण कि यह शास्त्रसे विदित हुआहै कि राजाका पुरोहित ब्राह्मण देशकी पालना करता है. अपालन और सामर्थ्यके अभावसे राजाको भय होताहै;

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् सर्वान् वैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान् स्वधर्मे स्थापयेत्तेष्वधर्मपरेषु दंडं तुं देशकालधर्माधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्दिशेत् आगमाद्दृष्टाभावात् पुष्पफलोपगान्यदेयानि हिंस्यात् कर्षणकरणार्थं चोपहत्या । गार्हस्थ्यं गां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् । अधिष्ठानान्नो नीहारसार्थानामस्मान्न मूल्यमात्रं नैहारिकं स्यान्महामहस्थः स्यात । संमानयेदवाहनीयद्विगुणकारिणी स्यात । प्रत्येकं प्रयास्यः पुमान् शतं वाराद्धर्यं वा तदेतदध्यर्थाः स्त्रियः स्युः कराष्टौ मानाधारमध्यमः पादः कार्षापणस्य । निरुक्तोन्तरोः मानाकरः श्रोत्रियो राजपुमानथ प्रव्रजितबालवृद्धतरुणप्रदाता प्रागामिकाः कुमार्यो मृतापत्याश्च बाहुभ्यामुत्तर शतगुणं दद्यान्नदीकक्षवनशैलोपमांगा निष्कराः स्युस्तदुपजीविनो वा दद्युः । प्रतिमासमुद्वाहकैरेस्त्वागमयेद्राजनि च प्रेते दद्यात् । प्रासंगिकं तेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता । राजमहिष्याः पितृव्यमातुलांशजापितृव्यान् राजा बिभृयात्तद्गामित्वादंशस्य स्युस्तद्बंधूश्चान्याश्च राजपत्न्यो ग्रासाच्छादनं लभेरन् अनिच्छंतो वा प्रव्रजेरन् क्लीबोन्मत्तांश वापि ॥

देश, जाति, कुल, इनके सब धर्मोंको राजा जानकर चारों वर्णोंको अपने २ धर्ममें स्थितकरै और जब चारोंवर्ण अधर्ममें तत्पर होजायँ तब देश, काल, समय, धर्म, अवस्था, विद्या,स्थान इनकी विशेषताके अनुसार दंड दे, शास्त्रमें कहा नहीं इसवास्ते फलवाले वृक्षोंको काटना उचित नहीं. यदि खेती करनी हो तौ काटले गृहस्थकी सामग्री और नियमोंके मान तथा तालकी रक्षा राजाको करनी उचित है और नगरीमेंसे अपने करके मध्यमें अन्न इत्यादिको न ले परन्तु धन लेले, और देवस्थान,श्मशान, तथा मार्ग इनका कर राजाको लेना उचित नहीं युद्धकी यात्राके समय दश वाहक वाहिनी सेना दूनी लेजानी उचित है और सेना २ में प्याउ भी हों कमसे कम सौ गज योधाओंसे युद्धकरावे और जो योधा मृतक होगयेहैं उनकी स्त्रियोंको राजा खाने के लिये भोजन दे, और अतसीका कर आठ भुसका कर पांच और जलका कर चौथाई कार्षापण होताहै यदि जल सूख गयाहो, तौ करका लेना उचित नहीं, वेदपाठी,

राजाका पुरुष, संन्यासी, बालक, वृद्ध, विद्यार्थी, दाता, विधवा स्त्री और सेवकोंकी स्त्री इनसे राजाको कर लेना उचित नहीं, यदि कोई भुजाओंके बलसे नदीको पार हो तौ उससे सौ गुना कर लेनेका दंड दे; नदीके किनारे, वन दाह पर्वतोंके निवासियोंको निष्कर कहते हैं अथवा जो उन नदी इत्यादिसे जीविका निर्वाह करै वह राजाको कर दे या न दे; और जो अपने शरीरसे शिल्पविद्याका कार्य करते हैं उनसे प्रत्येक महीनेमें एक दिन काम कराले जिस राजाके संतान न हो और उसकी मृत्यु होजाय तौ राजाके करको राजाके श्राद्धमें लगा दे, इसकारण राजामें माताके समान वर्ताव कहा है, अर्थात् जिसभांति माताके श्राद्धमें पुत्र देताहै उसी भांति राजाके श्राद्धमें दे,और जिस रानीको राज्य मिलाहो, उसके चाचा, मामा, तथा बंधुओंका पालन राजा करै, राजाकी स्त्रियोंकोभी भोजन वस्त्र मिलना उचित है, जिस राजाकी रानीकी भोजन वस्त्रकी इच्छा नहो वह जहां इच्छा हो वहां चलीजाय, नपुंसक और उन्मत्तोंका पालन राजा करै, कारण कि उनका धन राजाकोही मिलताहै;

मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥ न रिक्तकार्षापणमस्ति शुल्कं न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न धर्मे ॥ न भैक्षवृत्तौ न हुतावशेषे न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे ॥ इति ।

शुल्कके विषयमें इस स्थानपर मनुके श्लोक कहतेहैं,व्यापारियोंकी दूकानपरसे राजा करले; और शिल्प, विद्या, बालक, दूत, भिक्षासे मिला, चोरीसे बचा, संन्यासी, यज्ञ इन स्थानोंमें राजाको करलेना उचित नहीं;

स्तेनाभिशस्तदुष्टशस्त्रधारिसहोढव्रणसंपन्नव्यपविष्टेष्वेकेषां दंडोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदंड्यदंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं वा ॥

यदि चोर चोरीका धन राजाको देदे तौ दूषित नहीं है, यदि शस्त्रधारी, अपराधी और जिसके शरीरमें घाव होजाय और वह राजाके पास चलाजाय तो वह अपराधी नहीं है; यदि राजा दंड देने योग्यको बिना दंडदियेही छोडदे तौ एक रात्रितक उपवास करै और पुरोहितको तीन रात्रितक उपवास करना उचित है, और दण्डके अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहितको कृच्छ्र करना उचित है,

अथाप्युदाहरंति ॥ अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥ राजभिर्धृतदंडास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ॥ एनो राजानमृच्छत्यप्युत्सृजंतं सकिल्बिषम् ॥ तं चेन्न घातयेद्राजा राजधर्मेण दुष्यति ॥ इति ।

यहां यह भी वचनहै, कि भ्रूणहत्याकरनेवाला अन्नके भोक्ताको, व्यभिचारिणी स्त्री पतिको शिष्य और याज्य गुरुको और चोर राजाको अपना पाप देतेहैं, यह पापकरनेवाले राजाके दंडदेनेसे शुद्ध होते हैं, और वह शुद्धहोकर स्वर्गमें इस भांति जातेहैं जिसभांति पुण्यात्मा, पापियोंके छोडनेसे पाप राजाको लगताहै, यदि राजा पापीका वध न करै तो राजधर्म दूषित होता है;

राज्ञामन्येषु कार्येषु सद्यः शौचं विधीयते ॥ तथा तान्यपि नित्यानि काल एवात्र कारणम् ॥ इति ॥ यमगीतं च श्लोकमुदाहरन्ति ॥ नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रतिनां नच मंत्रिणाम् ॥ ऐंद्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा इति ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

राजा हिंसाके कर्मोंमें शीघ्रही शुद्ध होजाताहै, उसीप्रकार सम्पूर्ण कर्मोंमें राजाकी शुद्धि है, कारण कि इसमें कारण समयही है, यहांपर यमऋषिके कहेहुए श्लोकोंको वर्णन करतेहैं, राजा, व्रतवान् और मंत्रके ज्ञाता इनको दोष नहीं लगता; कारण कि वह सब इन्द्रके स्थानमें (अर्थात् राजगद्दी और धर्म गद्दी यह इन्द्रका स्थानहोताहै इस वास्ते) वे सर्वदा ब्रह्म रूपसे विराजमान हैं ॥

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे सविकृतेऽप्येके । गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यम इति । तत्र च सूर्याभ्युदयतः सन्नहस्तिष्ठेत्सावित्रीं च जपेदेवं सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत् ॥

अज्ञानसे किये हुए पापका प्रायश्चित्त है और जानकर किये हुए पापका प्रायश्चित्त भी कोई २ कहते हैं, गुरु ज्ञानियोंका शासनकर्त्ता है, राजा दुरात्माओंका शासन करनेवाला है, इस लोकमें जो गुप्तभावसे पाप करतेहैं, उनका शासन करनेवाला यमराज है; प्रायश्चित्तके समयमें सूर्योदयसे लेकर सारे दिनतक खडाहुआ गायत्रीका जप करतारहै, और सूर्यास्त होनेपर सारी रात्रि बैठा रहै;

कुनखी श्यावदंतस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्निर्विशेत् । अथ दिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत् तां चैवोपयच्छेद्दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा निर्विशेत् चरणमहरहस्तद्वक्ष्यामः । ब्रह्मघ्नः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपनीतो वेदमाचार्य्यात् । गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदामलयान्निष्कालको वा घृताक्तस्तप्तां सूर्मिं परिष्वजेन्मरणान्मुक्तो भवतीति विज्ञायते। आचार्य्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवं योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीं च पतितां च गत्वा कृच्छ्राब्दं चरेत् एतदेव चांडालपतितान्नभोजनेषु ततः पुनरुपनयनं वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥

बिगडे नखवाला तथा जिसके काले दाँत हों वह बारह रात्रितक कृच्छ्र करतारहै; और [1]परिवित्ति बारह रात्रितक कृच्छ्र करै, इसके पीछे दूसरी स्त्रीके साथ विवाह करले; और

---

१ परिवेत्ता और परिवित्तिके लक्षण यह हैं कि बडे भाईके अविवाहित रहते छोटा भाई विवाह करे तो वह परिवेत्ता है और बडाभाई परिवित्ति कहाताहै ।

छोटे भाईकी स्त्री जिसका विवाह अपने विवाहसे प्रथम हुआहै उस स्त्रीको ग्रहण न करै, और परिविन्ति छोटाभाई कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करके उस स्त्रीको बडे भाईकी अनुमतिसे फिर ग्रहण करले; और अग्रेदिधिषुका पति बारह रात्रितक कृच्छ्र करकै अपना दूसरा विवाह करले, और पहली स्त्रीको ग्रहण न करै और दिधिषुके पतिको उस स्त्रीके अर्पणकर फिर उसे अंगीकार करै; और शूर वीरके हत्यारेका प्रायश्चित्त अगाडी कहैंगे, और वेदका त्यागकरनेवाला बारह रात्रितक कृच्छ्र करके फिर आचार्यसे वेद पढै, और गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला अण्डकोशों सहित अपनी लिंग इन्द्रियको काटकर हाथकी अंजुलीके ऊपर उसे रखकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरके चलाजाय; और जब न चलाजाय तो उसी स्थानपर मरण समयतक स्थित रहै, और जो जबभी मृत्यु न हो तो तपीहुई लोहेकी सलाका का स्पर्श करै, वह मृत्युसेही पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे विदितहै, आचार्य, पुत्र और शिष्य इनकी स्त्रियोंमें और अपनी जातिकी स्त्रियोंमें भी गमन करनेसे यही प्रायश्चित्त है, गर्भवती, मित्रकी स्त्री, वा गुरुके मित्रकी स्त्री, हीनजातिकी स्त्री और पतितके साथ गमन करनेवाला तीन महीनेतक कृच्छ्र करै, और जो मनुष्य चांडाल तथा पतित इनके यहांका भोजन करता है उसके लियेभी यही प्रायश्चित्त है और वह मनुष्य अपना पुनर्वार यज्ञोपवीत करै, परन्तु मुंडन न करावै;

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ वपनं मेखला दंडो भैक्षचर्यव्रतानि च । निवर्त्तते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ इति ॥

इस विषयमें मनुका श्लोक कहते हैं कि, मुंडन, मेखला, दंड, भिक्षा, व्रत यह द्विजातियों के दुवारा संस्कारमें नहींहोते अर्थात् इनका निषेध है;

सर्वमद्यपाने क्लीबव्यवहारेषु विण्मूत्ररेतोऽभ्यवहारेषु चैवम् ।

जो जानकर आटेसे बनी या गुड तथा मधुसे बनीहुई सबप्रकारकी मदिराको पीताहै, और जो क्लीबोंके व्यवहार करता है, वह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करै और पुनर्वार संस्कार करै; विष्ठा, मूत्र, वीर्य इनके खानेमेंभी यही प्रायश्चित्त करै;

मद्यभांडे स्थिता अपो यदि कश्चिद्द्विजोऽपिबत् ॥ पद्मोदुंबरबिल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । अभ्यासे सुराया अग्निवर्णां तां द्विजः पिबेत् ।

यदि कोई द्विज मदिराके पात्रमें रक्खे हुए जलको पीले तो पिलखन, गूलर, बेल और ढाकको औटाकर इनके जलको तीन रात्रितक पिये तब वह शुद्ध होताहै; और जो मनुष्य वारंवार मदिराको पीताहै वह अग्निके समान वर्णवाली तप्तमदिराका पान करै, तब उसकी शुद्धि शरीरपात होनेसे होती है अर्थात् वह मरकर शुद्ध होता है;

भ्रूणहनं च वक्ष्यामः । ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं च गर्भम् । अविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवंति तस्मात् पुंस्कृत्य जुहुयात् । लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति प्रथमां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयं लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयां

त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति चतुर्थीं मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसै-र्मृत्युं वासय इति पंचमीं मेदेन मृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय इति षष्ठीम-स्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमीं मज्जानं मृत्योर्जुहो-मि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इति अष्टमीम् । राजार्थे ब्राह्मणार्थे वा ग्रामेऽभिमुख-मात्मानं घातयेत् । त्रिरजितो वापराधः पूतो भवतीति विज्ञायते । द्विरुक्तं कृतः कनीयो भवतीति ।

ब्राह्मणको और जिस गर्भका ज्ञान न हो उस गर्भके मारनेसे मनुष्यको भ्रूणहत्याका पाप होता है; कारण कि, विना जाने गर्भ पुरुष होते हैं इसकारण पुरुष मानकर इन मंत्रोंसे हवन करै "लोमोंको मृत्युके निमित्त होमताहूं और लोमोंसे मृत्युको तृप्त करताहूँ" यह पहली "त्वचाको मृत्युके निमित्त होमताहूं और त्वचासे मृत्युको तृप्त करताहूं" यह दूसरी "रुधिरको मृत्युके निमित्त होमताहूं, और लोहितसे मृत्युको तृप्त करताहूं" यह तीसरी "मांसोंको मृत्युके निमित्त होमताहूं, और मांसोंसे मृत्युको तृप्त करताहूं " यह चौथी "स्नायुको मृत्युके लिये होमताहूं, और स्नायुसे मृत्युको तृप्त करताहूं" यह पांचवी "मेदाको मृत्युके निमित्त होमताहूं, और मेदासे मृत्युको तृप्त करताहूं" यह छटी "अस्थियोंको मृत्युके लिये होमताहूं, और अस्थियोंसे मृत्युको तृप्त करताहूं"यह सातवीं "मज्जाको मृत्युके निमित्त होमताहूं और मज्जाओंसे मृत्युको तृप्त करताहूं" यह आठवीं आहुति इसभांति दे राजा वा ब्राह्मणके निमित्त संग्राममें अपनेको मरवा दे पूर्वोक्त प्रकारसे जब उसकी तीनवार पराजय होजाय तब वह शुद्ध होताहै यह शास्त्रमें विदित है, यदि दूसरेको अपने पापको कह दे तो पापीका पाप कनिष्ठहोजाता है;

तदप्युदाहरन्ति ॥ पतितं पतितेत्युक्त्वा चोरं चोरेति वा पुनः॥वचसा तुल्यदोषः स्यान्न मिथ्यादोषतां व्रजेत् ॥ इति ।

अथवा चोरको चोर कहदे, और पतितको यदि पतित कहदे तो उसमें समानही दोष है इसमें मिथ्या दोष नहीं होसकता.

एवं राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि चरेत् । षड्वैश्यं त्रीणि शूद्रं ब्राह्मणीं चात्रेयीं हत्वा सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ च । आत्रेयीं वक्ष्यामो रजस्वलामृतुस्नातामा-त्रेयीमाहुः । अत्रेत्येषामपत्यं भवतीति चात्रेयी । राजन्यहिंसायां वैश्यहिंसा-यां शूद्रं हत्वा संवत्सरं ब्राह्मणसुवर्णहरणात् प्रकीर्य्य केशान् राजानमभिधा-वेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु भवानिति तस्मै राजौदुंबरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते । निष्कालको वा घृताक्तो गोमया-ग्निना पादप्रभृत्यात्मानमभिदाहयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

क्षत्रियको मारनेवाला आठ वर्षतक कृच्छ्र करै, वैश्यको मारनेवाला छै वर्षतक और शूद्रको मारनेवाला तीनवर्ष तक कृच्छ्र करै, और वैश्य तथा आत्रेयी और यज्ञमें स्थित क्षत्री और वैश्यको मारनेवाला तीन वर्षतक कृच्छ्र करै, आत्रेयीको कहते हैं कि जिस रजस्वला स्त्रीने ऋतुस्नान कियाहो उसीको आत्रेयी कहते हैं,यह ऋषियोंने कहाहै आत्रेयी पदका यह अर्थ है कि, जिसमें गमनकरनेमें संतान उत्पन्नहो, आत्रेयीके अतिरिक्त ब्राह्मणीकी हिंसामें

क्षत्रीकी हिंसामें और क्षत्रियाकी हिंसामें वैश्यकी हिंसाका और वैश्याकी हिंसामें शूद्रकी हिंसाका प्रायश्चित्त करके शूद्रको मारनेवाला एक वर्षतक कृच्छ्र करै; ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला अपने केशोंको खोलकर राजाके सन्मुख दौडकर चलाजाय और शीघ्रतासे जाकर यह कहै "कि हे राजन् ! मैं चोर हूं तुम मुझे दंड दो" तब राजाको उसे गूलरका शस्त्र देना उचित है, उससे वह अपने शरीरको मारे तब वह मरनेसे शुद्ध होताहै यह शास्त्र से जाना गयाहै, यदि वह न मरै तौ अपने शरीर पर घीको मलकर उपलोंकी अग्निसे परोंतक अपने शरीरको जला दे, उसकी शुद्धि मरनेसेही होतीहै;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ पुरा कालात्प्रमीतानामानाकविधिकर्मणाम् ॥ पुनरापन्न देहानामंगंभवति तच्छृणु॥ स्तेनः कुनखी भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा॥ सुरापः श्यावदंतस्तु दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ इति । पतितैः संप्रयोगे च ब्राह्मेण वा यौनेन वा तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदु-दीचीं दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

इस विषयमें किसीर का यहभी वचन है कि, जिन्होंने स्वर्गकी विधिके कर्म नहीं किये हैं, और जो समयसे प्रथमही मरगयेहैं, फिर जब उनका जन्म होताहै तब उनके शरीरपर यह चिह्न होतेहैं उनका वर्णन करतेहैं श्रवणकरो, चोरी करनेवालेके बुरे नख होतेहैं, ब्रह्महत्या करनेवाला श्वेतकुष्ठी होताहै; मदिरा पीनेवालेके दांत काले होतेहैं, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवालेका चमडा बुरा होताहै, पतितोंके साथ विद्या वा योनिका सम्बन्ध करनेसे जो उनसे धन आदि मिलै उसे त्याग दे, और उनके साथ फिर निवास न करै; फिर वह उत्तर दिशामें जाय भोजनको त्यागकर संहिताको पढतारहै तब वह शुद्ध होताहै, यह शास्त्र-से जाना गयाहै;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ शरीरपातनाच्चैव तपसाध्ययनेन च ॥ मुच्यते पापकृत्पा-पाद्दानाच्चापि प्रमुच्यते ॥ इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इसमें यह वचनभी कहाहै, कि शरीरके गिराने, तपस्या करने और पढनेसे पाप करनेवाला मुक्त होजाता है और दान देनेसे भी पापसे छूटजाता है यह शास्त्रसे विदित हुआ है ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां खरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरथमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रै-

वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां रक्तखरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् ॥ एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।

शूद्र यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करै तो शूद्रको तृणोंमें लपेटकर अग्निमें डालदे, और ब्राह्मणीका शिर मुडाकर उसके सारे शरीरमें घृत मलकर नंगी कर गधेकी पीठपर चढाकर सडकके बीचमें घुमावै ऐसा करनेसे वह ब्राह्मणी पवित्र होती है; यह शास्त्रसे जाना गया है वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो वैश्यको लाल कुशाओंसे लपेटकर अग्निमें डाल दे और ब्राह्मणीका मस्तक मुडाकर उसके सारे शरीरमें घी मलकर नंगीकर बैलोंके रथमें बैठाकर महामार्गमें निकालदे तब वह पवित्र होतीहै; यह शास्त्रसे विदित हुआ है यदि क्षत्रिय ब्राह्मणीके साथ गमन करै तो शरोंके पत्तोंमें लपेटकर क्षत्रीको अग्निमें डालदे और ब्राह्मणीका शिर मुडाकर उसके समस्त शरीरमें घृत मल नंगीकर गधेपर चढाकर महा मार्गको निकालदे इसीभांति वैश्य क्षत्रियाके साथ गमनकरै, और शूद्र क्षत्रिया वा वैश्यामें गमनकरै तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेसे उनकी शुद्धि होती है ।

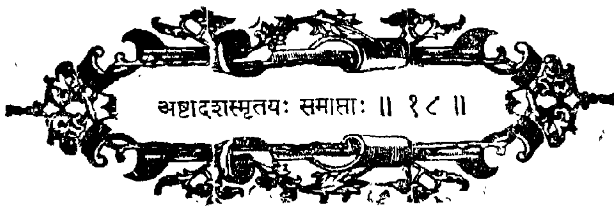
मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरं भुंजानाधःशयाना त्रिरात्रमप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्वा जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तेयं वासिष्ठस्मृतिः ।

जो स्त्री मनसे पतिका अवलंघन करदे वह तीन रात्रितक जौ और दूधको खाकर पृथ्वीपर शयन करै, जलमें तीन रात्रि स्नानकरै, और आठसौ गायत्री वा शिरोमन्त्रोंसे हवन करै तब वह पवित्र होती है, ऐसा शास्त्रसे जाना गयाहै ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय-बम्बई.